ब्रह्मांड दर्शन

१

ज्ञान-गंगोत्री ग्रंथश्रेणी : विज्ञान विद्याशाखा



ब्रह्मांड दर्शन

लेखक : डा. छोटुभाई सुथार

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय की मानक ग्रंथों की
प्रकाशन-योजना के अंतर्गत प्रकाशित
सरदार पटेल युनिवर्सिटी - वल्लभविद्यानगर

आभार-दर्शन

लेखक डा छोटुभाई सुथार नियामक-वेधशाला, अहमदाबाद
घर बैठे गंगा पायें आचार्यश्री काकासाहब कालेलकर
दो शब्द डा दौलतसिंह कोठारी
प्रकाशन-मार्गदर्शन रविशंकर रावल * बचुभाई रावत * मोहनभाई पटेल
ब्लॉक्स सारवमहल (आणंद) * नवजीवन मुद्रणालय

योजनादान हरि ॐ आश्रम – नडियाद

अनुदान शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
सरदार पटेल युनिवर्सिटी – वल्लभविद्यानगर

प्रकाशन विधि
राष्ट्रपति डा जाकिरहुसैनके करकमलोंसे

प्रकाशनतिथि
१ ली आवृत्ति २००० प्रतियाँ २७ सितंबर, १९६८

कीमत :
रु २०-०० (Rs 20 00) + पोस्ट खर्च रु २०० (Rs 2 00)

प्रकाशक
कांतिलाल अमीन, रजिस्ट्रार सरदार पटेल युनिवर्सिटी-वल्लभविद्यानगर (INDIA)

मुद्रक
शांतिलाल हरजीवन शाह, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद – १४

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालयकी मानक ग्रंथोंकी प्रकाशन-योजनाके अंतर्गत इस पुस्तकका अनुवाद और पुनरीक्षण वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावलीके आधारकी देखरेखमें किया गया है और इस पुस्तककी हजार प्रतियाँ भारत सरकार द्वारा खरीदी गई हैं।

प्रस्तावना

हिंदी और प्रादेशिक भाषाओंको शिक्षाके माध्यम के रूपमें अपनानेके लिए यह आवश्यक है कि इनमें उच्च कोटिके प्रामाणिक ग्रंथ अधिकसे अधिक संख्यामें तैयार किए जाएं। भारत सरकारने यह कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोगके हाथमें सौंपा है और उसने इसे बड़े पैमाने पर करनेकी योजना बनाई है। इस योजनाके अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओंके प्रामाणिक ग्रंथोंका अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह काम अधिकतर राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों तथा प्रकाशकोंकी सहायतासे प्रारंभ किया गया है। कुछ अनुवाद और प्रकाशन-कार्य आयोग स्वयं अपने अधीन भी करवा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान अध्यापक हमें इस योजनामें सहयोग दे रहे हैं। अनूदित और नए साहित्यमें भारत सरकार द्वारा स्वीकृत शब्दावलीका ही प्रयोग किया जा रहा है ताकि भारतकी सभी शिक्षा-संस्थाओंमें एक ही पारिभाषिक शब्दावलीके आधार पर शिक्षाका आयोजन किया जा सके।

ज्ञानगंगोत्री श्रेणीका प्रथम ग्रंथ 'ब्रह्मांडदर्शन' आयोग द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके मूल लेखक और अनुवादक डॉ० छोटुभाई सुथार हैं तथा पुनरीक्षक श्री गिरिराज किशोर हैं। आशा है भारत सरकार द्वारा मानक ग्रंथोंके प्रकाशन संबंधी इस प्रयासका सभी क्षेत्रोंमें स्वागत किया जाएगा।

बाबूराम सक्सेना

अध्यक्ष

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

निवेदन

स्वतंत्रता-प्राप्तिके पश्चात् हमारे देशमें शिक्षाका विस्तार हुआ है। साथ ही उच्च शिक्षाकी परिपाटीके कारण ज्ञान-विस्तारके नए अवसर सुलभ हुए हैं। तकनीकी क्षेत्रमें भी हम बड़े कदम भर रहे हैं। इतना होते हुए भी, कई कारणोंसे, उच्च शिक्षाकी प्राप्तिके लिए साधारण छात्र के ज्ञान-संस्कारका संबल पर्याप्त नहीं है; अतः विश्वविद्यालयीय छात्रका ज्ञान-व्याप भी बहुत कम प्रतीत होता है।

यह भी स्वाभाविक है कि स्वाधीन लोकतांत्रिक समाजके सर्वांगीण विकास-कालमें सर्व-साधारण शिक्षित प्रजाजन को चुनौतियाँ देनेवाली असंख्य जटिल समस्याएँ भी उपस्थित होती रहें। ऐसी परिस्थितिमें, बौद्धिक तालीमका ज्ञानसंचय अपर्याप्त रह जाने पर एक सुसज्ज नागरिकके रूपमें उसके व्यक्तित्वकी क्षति वैयक्तिक व राष्ट्रीय—दोनों दृष्टियोंसे प्रभावशाली पूर्तिकी अपेक्षा करती है।

इस क्षति-पूर्तिके उद्देश्यसे सरदार पटेल युनिवर्सिटीने अपनी सीमाओंमें रहकर यथासंभव, एक अल्प किंतु संनिष्ठ प्रयास किया है; और इसे 'ज्ञान-गंगोत्री' के माध्यमसे मानव विद्याशाखा के बीस और विज्ञान विद्याशाखाके दस-इस तरह कुल तीस ग्रंथोंकी माला की योजनासे आरंभ किया है।

महाविद्यालय-स्तर के छात्रों व शिक्षित नागरिकोंको ध्यानमें रखकर यह ग्रंथमाला तैयार करनेका निश्चित किया गया है। इस ग्रंथ-मालाके उद्देश्य हैं:

(१) अध्ययनकी इच्छावाले पाठक इन ग्रंथोंको थोड़े परिश्रमसे किंतु रसपूर्वक पढ़ें; उनकी ज्ञान-पिपासा अधिक बढ़े; (२) अध्ययनके उपरांत अध्येताके चित्तपटल पर बहुविध विकासके मुख्य सोपान उभर आवें; (३) जानकारी व तथ्योंकी अनेकविधता द्वारा ज्ञान-प्राप्तिका 'गुर' पाठक हस्तगत करें और (४) अध्येताओंके चित्तमें मूलभूत सत्य एवं मूल्योंके प्रति श्रद्धा का बीजारोपण हो।

इस दृष्टिसे इतिहास, चिंतन, साहित्य, ललितकला और विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रोंके विभिन्न प्रकारके आलेखनोंके लिये कुछ आधारभूत बातें स्वीकार करके ही हम अग्रसर हुए हैं यथा—

(१) मानव-विकासमें अनेक प्रेरक-शक्तियाँ क्रियाशील रहती हैं; परंतु अंततोगत्वा परि-स्थितियोंके परिवर्तनमें मानवीय चेतना ही प्रमुख भूमिका अदा करती है; और हरेक मानवके

व्यक्तित्वके यथासंभव पूर्ण विकासकी नींव पर ही सामाजिक व सामुदायिक विकासका भवन रचा जाना चाहिए।

(२) विज्ञानका रहस्य परिवर्तनशीलता में निहित है और अखंड शोध वृत्ति ही उसकी कुंजी है। विज्ञानकी विलक्षणता तथ्योंके भंडारका संचय करनेमें नहीं है किंतु बाह्य विशृंखलता-ओंकी अंतर्निहित संवादिता खोज लेनेमें है।

(३) अन्वेषणकी इस प्रक्रियामें मानवकी चेतना और कल्पनाशक्तिका योगदान असाधारण है, और यह वैज्ञानिक सत्य मुक्त मानवके निर्णयका ही फल है।

(४) आखिर तो विज्ञान भी अन्य मानवीय क्षेत्रोंकी भाँति मूल्योंके निर्णयके बिना मात्र यांत्रिक प्रवृत्तिके रूपमें टिकेगा नहीं। इस संदर्भमें विज्ञान और मानवविद्याओंके बीचकी ज्ञान-सीमाएँ अभिन्न प्रतीत होती हैं।

(५) जीवनकी समग्रताके साथ आदिकालसे तदात्मभूत बनी सृजन-प्रवृत्तियोंके प्रति विशेष अभिमुख होना व आत्मीयता जगाना उचित है। हमारा विद्यार्थी और नागरिक सौंदर्य निरखनेवाला बने, सौंदर्य पहचाननेवाला बने और उसका आस्वादन करनेवाला अर्थात् परमानंदी घूँट पीनेवाला बने ऐसी चैतसिक सृजनशक्तिका रहस्योद्घाटन करना चाहिए।

(६) इस ग्रन्थमालाका लक्ष्य उस रहस्यको अवगत करना है कि ज्ञान केवल जान-कारी नहीं है, विज्ञान भौतिक या प्राकृतिक तथ्योंका केवल संकलन या पृथक्करण नहीं है, अनुभूति केवल घटनाओंका बाह्य स्पर्श नहीं है ज्ञानानुभूति इससे भी कुछ विशिष्ट है।

हमने सदैव इस ममानताका अनुभव किया है कि उपर्युक्त बातें सिद्ध करनेका कार्य अति दुष्कर है। एक ओर युवकों व नागरिकोंके स्तर, उनकी अभिरुचि, अध्ययन-क्षमता और बोध-क्षमता की सीमाएँ हैं, तो दूसरी ओर इतिहास-विकास की झाँकी करानेका कार्य कठिन है। गभीर व कठिन समझे जानेवाले विषयोंको गभीरतासे किंतु आस्वाद्य बनाकर प्रस्तुत करनेका कार्य लेखकों के लिए कसौटी-रूप है। सम्पादकोंकी भी मर्यादाएँ होती हैं। इस प्रकार यह प्रयास महत्त्वा-कांक्षी व दुराराध्य लगते हुए भी अति महत्त्वाकांक्षी किंवा असाध्य नहीं है। इस यात्राका आरंभ हमने इसी विश्वाससे किया है कि गंगावतरण करानेका तो नहीं, गंगोत्रीमें आचमन करानेका यश तो हमें मिलेगा। विदेशी ग्रंथोंके अनुवाद या रूपांतरोंको प्रस्तुत करनेके बजाय यथासंभव मौलिक अध्ययन व चिंतन प्रस्तुत करना हमारा उद्देश्य है।

अपने इस प्रयासमें हरि ॐ आश्रम, नडियादवाले पू. श्री मोटासे, भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालय और राज्य सरकारके शिक्षा विभागसे तथा अन्य सज्जनों और संस्थाओंकी ओरसे जो आर्थिक सहायता हमें प्राप्त हुई है उसके लिये हम इन सभीके बहुत ही कृतज्ञ हैं। नडियाद और सदेरके अपने भक्तों और प्रशंसकों द्वारा ज्ञान-गंगोत्री श्रेणीके ग्रंथोंके प्रकाशनार्थ दो लाख रुपयों का दान सरदार पटेल युनिवर्सिटीको दिलवाकर पू. श्री मोटाने ज्ञान-गंगोत्रीके इस कार्यका मंगलारंभ किया है।

मगर यह हुई गुजराती ग्रंथश्रेणीकी वात। इस श्रेणीके प्रथम दो ग्रंथोंके प्रकट होनेके वाद पू. श्री मोटाने सोचा कि यह ग्रंथ-श्रेणी हिन्दी जनताके लिये उतनी ही उपयोगी है जितनी गुजराती जनताके लिये। और उन्होंने ज्ञान-गंगोत्रीकी हिन्दी आवृत्तिके लिये पैंतीस हजार रुपयेका दान सरदार पटेल युनिवर्सिटीको देनेका जाहिर किया। पू० श्री मोटा की यह शुभ भावना फलवती सावित हुई है। हिन्दी संस्करणके लिये अन्य व्यक्तियोंसे भी हमे दान मिलने लगा है और यों श्रेणीके प्रथम ग्रंथ 'ब्रह्मांड दर्शन' का प्रकाशन शक्य वना है। हम पू. श्री मोटाके और अन्य सभी सज्जनोंके वहुत कृतज्ञ हैं। हम आशा करते हैं कि हिंदी संस्करणके इस कार्यमे भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालयसे भी हमें उपयुक्त सहायता और उत्तेजन प्राप्त होगा।

गुजरातके अनेक श्रेष्ठ चिंतकों व लेखकोंने इस योजनाके सम्पादक-मण्डलके सदस्यों और परामर्श-दाताओंके रूपमे अपनी सेवायें अर्पित कर तथा अनेक प्राध्यापकों, अध्येताओं और विद्वानोंने लेखनका दायित्व स्वीकार कर हमारी योजनाको मूर्तरूप दिया है, तदर्थ हम उनके ऋणी हैं।

दिल्लीकी राधाकृष्ण प्रकाशन संस्थाके अध्यक्ष श्री ओमप्रकाशजीने इस ग्रंथके प्रमुख वितरक होनेकी स्वीकृति देकर हमारी योजनाको सहयोग दिया है।

हमारी युनिवर्सिटीकी सिंडिकेटके सदस्यों, अन्य अध्यापकों और प्रशासकीय कर्मचारियोंने 'ज्ञान-गंगोत्री' के इस कार्यमे उत्साहपूर्वक सहयोग प्रदान किया है उस वातका तथा इस योजना के सम्पादक श्री भोगीलाल गांधी और सह सम्पादक श्री वंसीधर गांधीकी नैष्ठिक यत्नशीलताका तथा हिन्दी संस्करणके प्रकाशन परामर्शक श्री मोहनभाई पटेल और श्री गिरिराजकिशोरकी सेवाका यहाँ उल्लेख करते हुए मुझे प्रसन्नता होती है।

भारतके राष्ट्रपति डा.जाकिर हुसेनने इस हिंदी ग्रंथकी प्रकाशनविधि करनेकी सम्मति देकर हमें वड़ा गौरव प्रदान किया है। इस सौजन्यके लिये हम आपके वहुत ही एहशानमंद हुए हैं।

भारत सरकारके शिक्षा मंत्रालय द्वारा निर्धारित पारिभाषिक पदावलीका प्रयोग इस ग्रन्थश्रेणीमें किया गया है।

ईश्वरभाई पटेल
उपकुलपति
सरदार पटेल युनिवर्सिटी

वल्लभविद्यानगर
ता० २०-९-१९६७

"घर बैठे गंगा पाये"

गुजरातमें प्रजाकीय पुरुषार्थसे जिन विद्यापीठोंकी स्थापना हुई उनमें सरदार पटेल युनिवर्सिटी वल्लभविद्यानगरका स्थान ऊँचा है। विलायतमें 'होम युनिवर्सिटी सीरीज' के जैसी जो अनेक ग्रंथमालाएँ चलती हैं और उनमें विद्वानोंकी मददसे अनेक क्षेत्रोंकी अद्यतन जानकारी देनेवाली लोकभोग्य किताबें प्रकाशित होती हैं वैसी ही एक ग्रंथमाला सरदार पटेल युनिवर्सिटी ने शुरू की है। इस ग्रंथमालाका प्रथम ग्रंथ 'ब्रह्माण्ड दर्शन' प्रकाशित हुए पूरा एक साल भी नहीं हुआ। 'प्रसन्न स्वागत' के नामसे उस ग्रंथकी भूमिका मैंने लिखी थी। इसके अंतमें मैंने आशा प्रगट की थी कि ऐसे राष्ट्रोपयोगी तृप्तिदायक ग्रंथका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित होना चाहिये। खुशीकी बात है कि सरदार पटेल युनिवर्सिटीके उपकुलपति ईश्वरभाई पटेलने सहयोगसे यह हिन्दी संस्करण इतना जल्दी प्रकाशित हो रहा है।

जब मैं गांधीजीके सत्याग्रहमें दाखिल हुआ तब मैंने आश्रमके लोगोंको आकाशके नक्षत्रोंका परिचय करानेकी प्रवृत्ति शुरू की। मेरे मन आकाशकी ज्योतियोंका दर्शन पाना देवोंका काव्य देखनेके समान ही था। 'पश्य देवस्य काव्यं, न ममार न जीर्यति।' शामकी प्रार्थनाके बाद स्वच्छ आकाशमें ग्रह और नक्षत्रोंका दर्शन कराना और उनके बारेमें स्वदेशी और विदेशी पौराणिक कथायें सुनाना और साथ-साथ पश्चिमके ज्योतिर्विदोंने आज कितनी प्रगति की है इसकी जानकारी भी आश्रमवासियोंको देना यह मेरा प्रिय और पवित्र व्यवसाय था। मैं उसे प्रार्थना का ही एक अंग समझता था। इस प्रवृत्तिका परिचय गुजरातमें जगह-जगह पहुँच गया और दो-चार जगह तारामंडलोंकी स्थापना भी हुई।

इस तरह तारामंडलोंकी स्थापना करके खगोलविद्यामें प्रगति करनेवाले लोगोंमें असाधारण निष्ठावान और ज्ञानोपयोगी साबित हुए श्री छोटुभाई सुथार। उन्होंने सन् १९६५ में 'तारक–मंडल आणंद' नामकी खगोलसंस्था स्थापित की। मैं अध्यात्मके साथ विज्ञानका भी भक्त हूँ सही। लेकिन असंख्य दूसरे कामोंमें फँसा हुआ मैं ज्योतिर्विद्यामें विशेष प्रगति नहीं कर सका। अनेक लोगोंमें आकाश-दर्शन और तारा-निरीक्षणका प्रेम पैदा करके ही मैंने संतोष माना। डा. छोटुभाई सुथारने अपने तारक–मंडलके द्वारा कल्पनातीत प्रगति की और ज्ञान-गंगोत्रीके प्रथम ग्रंथके तौर पर यह सुन्दर, रोचक ग्रंथ तैयार करके दिया। हिन्दीमें ऐसा कोई ग्रंथ है या नहीं सो मैं नहीं जानता। डा. गोरखप्रसादजीका 'सौर परिवार' नामक ग्रंथ मैंने चावसे पढ़ा था। इसके बाद ऐसा कोई ग्रंथ मेरे देखनेमें नहीं आया।

इस ब्रह्मांड-दर्शन ग्रंथके अंतिम भागमे भारतीय ज्योतिष-शास्त्रकी काफी जानकारी दी है। लेकिन ब्रह्मांड-दर्शन प्रधानतया पश्चिमके अद्यतन संशोध पर ही आधारित है। इसमे दिये हुए चित्र भी ज्यादातर पश्चिमके ही है। हालांकि भारतीय नक्षत्रके नाम देनेवाले चित्र भी उसमे काफी संख्यामे दिये गये हैं। सामान्य पाठक २३ वे अध्यायसे ही प्रारभ कर सकते है। साथमे आकाशके तारोंकी जानकारी रखनेवाले किसीकी मदद मिले तो और भी अच्छा।

पुराणकारोंने ब्रह्मांडकी उत्पत्ति, उसका विस्तार, आकाशगंगाकी कथा आदि बहुत रोचक कथाये दी है लेकिन पश्चिमके विज्ञानवेत्ताओंने जो संशोध किये है और उनके आधार पर कल्पनाये चलायी है वे अधिक विश्वसनीय, प्रेरक और भव्य है। हमारे पुराणकारोंके पास अगर इतनी सारी जानकारी होती तो नहीं मालूम उन्होने कितना विराट काव्य पैदा किया होता।

और अब तो आकाशकी जानकारी बढानेवाली महाकाय दूरबीनोके द्वारा तारोंका दर्शन हजारों और लाखों गुना बढ़ा है। और मानो यह कुछ विशेष है नहीं ऐसी भावना उत्पन्न करनेवाली 'रेडियो खगोलविद्या' का अभी-अभी अवतार हुआ है। अब इतनेसे भी संतोष न मानकर पश्चिमका मानव, रॉकेट (विमानबाण) मे बैठकर आकाशस्थ ग्रहों तक हो आनेकी महत्त्वाकांक्षा भी आजमाने लगा है। ऐसे दिनोंमे सामान्य सुशिक्षित संस्कारी भारतीयोंको कमसे कम इतनी जानकारी होनी ही चाहिये, जितनी ब्रह्माड दर्शनमे दी गयी है। पश्चिमके राष्ट्र जोरोंसे पुरुषार्थी प्रगति करे ऐसा पिछड़ापन आजाद भारतको असह्य होना चाहिये।

मैं फिरसे डा. छोटुभाई सुथारका और उपकुलपति ईश्वरभाई पटेलका अभिनन्दन करता हूँ कि उन्होंने ब्रह्मांड-दर्शनके हिन्दी संस्करणके द्वारा समूचे राष्ट्रकी सेवाका यह शुभ प्रारंभ किया है।

मेरा प्रवेशक अथवा पुरोवचन तो यहीं पूरा हुआ। लेकिन 'ब्रह्माडदर्शन' का महत्त्व समझानेवाला एक सुन्दर प्रसंग और गांधीजीका अभिप्राय यहीं पर देनेका लोभ मुझे नीचेकी पंक्तियाँ देनेको प्रेरित करता है।

जब अंग्रेज सरकारकी कृपासे मैं सन् १९३० मे गांधीजीके साथ पूनाके यरवडा जेलमे चार छह मास रहा था तब मैंने गांधीजीको आकाशके ग्रह-नक्षत्रोंका थोड़ा परिचय करवाया था। उनको बादमे इस बातकी ऐसी लगन लगी कि जब वे फिरसे सन् १९३१ मे यरवडा जेलमे रखे गये तब उन्होंने भारत सरकारको लिखकर जेलमे बैठे-बैठे आकाश-दर्शन करनेके लिए एक बड़ी दूरबीन रखनेकी इजाजत प्राप्त की।

मैंने पूना-निवासी लेडी ठाकरसीजीके वहाँसे उनकी बड़ी दूरबीन यरवडा जेलमे लाकर खड़ी कर दी, जिसमेसे महात्माजी, सरदार वल्लभभाई पटेल और महादेवभाई देसाई आकाश-दर्शन का आनंद ले सकते थे। पूना एग्रिकल्चरल कालेजके प्रो. जयशकर त्रिवेदीजीने गांधीजीको जेम्स जिन्सकी और ऐसी ही दूसरी किताबे भेज दीं। यह सारा अध्ययन और निरीक्षण करते

गांधीजीने मुझे जो पत्र लिखे थे उसमें से नीचेका अवतरण 'ब्रह्मांड दर्शन' के पाठकोंको हिंदी अनुवादके रूपमें अर्पण करता हूं।

"मेरा रस दूसरे ही प्रकारका है। आकाशका निरीक्षण करते अनंतताका, स्वच्छताका, नियमनका और भव्यताका जो खयाल मन में पैदा होता है वह हमें शुद्ध करता है।"

"अगर हम ग्रहों तक और तारों तक पहुँच सकें तो भले ही हमें वहां पर, पृथ्वी पर होता है वैसा भले-बुरेका अनुभव हो लेकिन इतने दूर उनमें जो सौंदर्य है और उनमें से जो शीतलता निकलती है उसका तो हम पर शांत असर ही होता है। वही मुझे अलौकिक प्रतीत होता है।"

"और अगर हमने आकाशके साथ अपना अनुसंधान बाँध दिया तो हम कहीं भी बैठे हों उसमें कोई आपत्ति नहीं रहती। यह तो मानो 'घर बैठे गंगा पाये।"

"इन सब विचारोंने मुझे आकाश-दर्शनका पागल बना दिया है। इसी कारण मैं यहां (यरवडा जेलमें) मेरे संतोषके जितना ज्ञान प्राप्त कर रहा हूं।" बापूके शुभाशिष

—काकासाहेब कालेलकर

दो शब्द

मुझे हर्ष है कि सरदार पटेल विश्वविद्यालय "ज्ञान-गंगोत्री" के प्रथम ग्रंथ 'ब्रह्मांड दर्शन' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर रहा है। आजके युगमे ब्रह्मांडकी जानकारी प्राप्त करनेके लिए मनुष्यके हृदयमे जितनी जिज्ञासा है उतनी शायद पहले कभी भी न थी। ब्रह्मांड विज्ञानकी हमारे देशमे एक गौरवशाली परंपरा रही है। इस क्षेत्रमे आजकल जो महत्त्वपूर्ण और क्रान्तिकारी खोज तथा विकास हो रहे हैं उसमे हमारे देशने भी कुछ अंशमें भाग लिया है। आशा है, हमारा देश इस क्षेत्रमें और भी आगे बढेगा। मुझे आशा है कि "ब्रह्मांड दर्शन" ग्रन्थ रोचक तथा लाभदायक सिद्ध होगा।

दौलतसिंह कोठारी।

चैयरमेन
युनि. ग्रान्ट्स कमिशन
न्यु दिल्ली

यह पुस्तक

'ब्रह्मांड दर्शन' को हिन्दीभाषी जनताके सामने प्रस्तुत करनेमें एक ओर आनंदका अनुभव करता हूँ तो दूसरी ओर संकोचका। आनंद इस बातका कि खगोल-विज्ञानकी आराधना करनेवाले हिन्दी पाठकोंके सामने यह ज्ञान-अर्घ्य लेकर उपस्थित होनेका मौका मुझे मिल रहा है और संकोच इस बातका कि मेरा यह साहस कम पूँजीका व्यापार साबित होनेका मुझे डर है। यह पुस्तक महाविद्यालयोंके उच्च शिक्षार्थी छात्रोंकी और बड़ी उमरवाले ज्ञानपिपासु गुजराती भाई बहनोंकी ज्ञान और संस्कारपूर्तिके लिये लिखी गयी थी। उसके प्रकाशनके बाद कई मित्राने उसे हिन्दीमें रूपांतरित करनेकी सलाह दी। इस सलाहके पीछे एक हेतु यह था कि विज्ञान-युगमें जीनेवाले आजके युवानोंको विज्ञानकी नयी शाखाओंसे अपरिचित रखना उचित नहीं है। ज्ञानका हमारा स्तर ऊँचा उठना चाहिये। मगर तब यह सवाल पैदा हुआ कि मेरे इस प्रयत्नको हिन्दी जनता किस दृष्टिसे देखेगी। 'ब्रह्मांड दर्शन' जिस रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है उसकी भाषा अहिन्दीभाषी एक भारतीयकी हिन्दी है। इस कारण ब्रह्मांड दर्शनके हिन्दी रूपांतरमें कहीं भावोंका तो कहीं शैलीका ज्वारभाटा-सा उभरता नजर आयगा। यह होते हुए भी यह रूपांतर मूल भावोंके अनुरूप प्रकट किया जा सका है ऐसा मेरा विश्वास है।

समयके साथ कदम मिलानेको सर्वग्राही पुस्तकोंकी हमेशा आवश्यकता रहती है। सामान्य पाठक भी अपने-आप समझ सके ऐसी वर्णनात्मक शैलीमें लिखी गयी और अनेक चित्रों और आकृतियोंवाली यह पुस्तक आकाशविज्ञानके जानकारोंका अभ्यास बढ़ानेमें संदर्भग्रंथका काम करेगी। 'ब्रह्मांड दर्शन' ऐसे पाठकोंको रुचिकर मालूम होगी ऐसा मैं समझ रहा हूँ।

'ब्रह्मांड दर्शन' का हिन्दी रूपांतर सही रूपमें हो वैसा करनेमें मुझे श्री गिरिराज किशोर, श्री नानुभाई बारोट और श्री भूपतिराम साकरियासे बहुत सहाय मिली है। श्री साकरियाजीने सारी पुस्तकको आदिसे अंत तक देखकर जो मूल्यवान सुझाव दिये हैं उस लिये मैं उनका अत्यंत कृतज्ञ हूँ।

आचार्यश्री काकासाहबने पुरोवचनके रूपमें 'घर बैठे गंगा पाये' का प्रवेशक देकर और श्री दौलतसिंह कोठारीने 'दो शब्द' लिखकर मेरे उत्साहको बढ़ाया है। मैं इन महानुभावोंका बहुत ऋणी हूँ।

सरदार पटेल युनिवर्सिटी और उसके वाइस चान्सलर श्री ईश्वरभाई पटेलकी ओर कृतज्ञता प्रकट करनेकी बात मेरे शब्द-सामर्थ्यके बाहरकी है।

छोटुभाई सुथार

संपादकीय

ज्ञानगंगोत्रीके प्रथम ग्रन्थ 'ब्रह्मांड दर्शनका' हिन्दी रूपातर हिन्दी-भाषी जनताके सामने रखते हुए हम गौरवका अनुभव कर रहे है। मूल पुस्तककी प्रकाशन – विधि हमारे विदग्ध चिंतक आचार्य श्री काकासाहब कालेलकरके हस्तोंसे हुई थी। उस वक्त आचार्यश्री ने कामना प्रकट की थी कि ब्रह्माडदर्शनका हो सके उतनी जल्द हिंदीमे रूपांतर प्रकट किया जाय। हमारे लिये संतोप और आनंदकी वात है कि पू० काकासाहबकी इस इच्छाकी पूर्ति मूल पुस्तकके प्रकाशित होनेके एक सालके भीतर ही हो रही है। हमारे लिए परम सौभाग्यकी वात यह है कि हमारे राष्ट्रपतिजी और अनन्य शिक्षाशास्त्री डा० जाकिर हुसेनके वरद हस्तों ब्रह्मांडदर्शनके हिन्दी रूपांतरका प्रकाशन हो रहा है।

प्रसन्नताकी एक और वात भी है। 'ब्रह्मांड दर्शन' के प्रकट होनेके वाद उसका शुमार उत्तम (Classic) ग्रन्थके रूपमे हो रहा है। ज्ञानगंगोत्री श्रेणीके ग्रन्थोंको प्रकाशित करनेकी हमारी प्रवृत्तिको गुजरातके विद्वानों, शिक्षाशास्त्रियों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओंने सराहा है। इतना ही नही उसे अनेक प्रकारसे वल भी प्रदान किया है। सर्व-मान्य इस ग्रन्थ श्रेणीके प्रथम ग्रन्थका हिंदी रूपातर उसके विद्वान लेखकने खुद किया है और यों विपय निरूपणकी दृष्टिसे त्रुटियोंकी संभावना वहुत ही कम रह गयी है।

'ब्रह्मांड दर्शन' का प्रकाशन भारतकी दो वड़ी भापाओंके साथ ज्ञानगंगोत्रीका त्रिवेणी संगम रचता है और यों 'सोहहिं' मिलत सुहागा' को चरितार्थ होता देख हम हर्पका अनुभव कर रहे है।

हमारे इस आनन्दोल्लासके कार्यमें सक्रिय सहानुभूति दर्शानेवाली सभी व्यक्तियोंके प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

ज्ञान-गंगोत्री

मानविकी विद्याशाखा [२० ग्रन्थ]

- मानवकुल दर्शन [विश्व इतिहास सोपान] ३ ग्रन्थ
- विश्व दर्शन [क्रान्तियाँ और वैज्ञानिक विकास] ३ ग्रन्थ
- भारत दर्शन [आदियुगसे अद्यतन विकास] ७ ग्रन्थ
- विदेश दर्शन [दुनियाके प्रमुख देशोका परिचय] ३ ग्रन्थ
- साहित्य दर्शन [विश्व साहित्य गुजराती साहित्य] २ ग्रन्थ
- ललित कला दर्शन [विविध कलायें सिद्धात परिचय] २ ग्रन्थ

विज्ञान विद्याशाखा [१० ग्रन्थ]

- ब्रह्माड दर्शन
- पृथ्वी दर्शन
- स्वास्थ्य दर्शन
- जीव रहस्य
- रसायण-विद्या
- यन्त्रविद्या
- कृपिविद्या
- परमाणु-दर्शन
- गणितविद्या
- विज्ञान मानव और मूल्य

कुल ३० ग्रन्थ

हरेक पुस्तकको कीमत रु २०-०० (Rs 20-00) + पोस्ट खर्च रु २-०० (Rs 2-00)

प्राप्तिस्थान -

राधाकृष्ण प्रकाशन
2 अन्सारी रोड, दरियागंज
दिल्ली – 6

अनुक्रमणी

खंड ६

परिशिष्ट

चित्रप्लेट

१. मानव एवं ब्रह्मांड

हमारी पृथ्वीके चारों ओर आकाश छाया हुआ है तथा इस आकाशमे सूर्य, चन्द्र और अनेक तारे प्रकाशित हैं । आदि मानवसे लगाकर आज तकका मानव समुदाय इन आकाशीय पदार्थोको गतिशील देखता आया है। सभी युगों और सभी जातियोंकी आकाश-निरीक्षणकी एक-सी पद्धति होते हुए भी, इन आकाशीय पदार्थोके अस्तित्व तथा उनकी गति-विधि संबंधित उनके निश्चित अनुमान क्रम-क्रमसे परिवर्तित होते रहे हैं।

प्राचीन कालके मनुष्योंका ज्ञान अर्वाचीन लोगोंकी भाँति व्यवस्थित व विकसित नहीं था। इसके अतिरिक्त इनके ज्ञानोपासनाका क्षेत्र भी मर्यादित था। आदि मानवोंका ज्ञान सूर्य, चन्द्र तथा तारों तक ही सीमित था। प्राचीन लोग पृथ्वीको स्थिर एवं सूर्य, चन्द्र व तारोंको पृथ्वीके चारों ओर घूमते होनेमें विश्वास करते थे तथा आज भी बहुतसे लोग ऐसा मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि जिस शेषनाग, कच्छप अथवा हाथी पर पृथ्वी अवस्थित है, उनके



१७२४ का सूर्यग्रहण : पेरिस

डोलनेसे ही पृथ्वी पर भूचाल आता है। सूर्य और चन्द्रके ग्रहण, राहु और केतु नामक राक्षसोंके कारण होते हैं। यह कथा ठेठ पुराणकालसे प्रारम्भ होकर आज तक चली आ रही है।

सूर्य और चन्द्रका ग्रहणमे छुटानेके लिए पटाके छोड़ने, ढोल व नगाडे बजाने, दरवाजे व पतवारोंको खड़खड़ाने, बदूके व तोपोको छोड़ने, बडे जोरसे चिल्लाकर कोलाहल करने आदि अनेक प्रकारके उपाय आज भी अनेक देशोंमें उपयोगमें लाए जाते हैं। भारतकी भांति सुमात्रा और अनेक देशोंमें ग्रहणको प्रत्यक्ष न देखनेकी प्रथा है। सूर्य व चन्द्रग्रहणके समय यदि गर्भवती स्त्री घरसे बाहर निकले तो उसके गर्भके हरण हो जानेका वहम आज भी प्रचलित है।

जैसा ग्रहणका वैसा उल्का और धूमकेतुका भी है। प्राचीन जातियोंने धूमकेतुका दर्शन अमंगल माना है और बहुतसे लोग आज भी ऐसा मानते हैं। तारेके टूटने पर हममें से बहुतसे लोग ऐसा मानते हैं कि किसी महान पुरुषकी मृत्यु हुई है। इसके विपरीत अफ्रीकाकी कई जातियां मानती हैं कि जब किसी महान मनुष्यकी मृत्यु होती है तो उसकी आत्मा तारेका रूप धारण करती है। हमारे देशमें भी मृग और व्याध, ध्रुव, सप्तर्षि आदिकी इसी प्रकारकी कथाएँ प्रचलित हैं।



धूमकेतु दर्शन

यह मान्यता कि तारे और ग्रहों पर मनुष्यका भाग्य अवलम्बित है, आज भी सार्वत्रिक है। इतना ही नहीं, पर इस मान्यताके कारण तारा अथवा ग्रहोंको अच्छा या बुरा माना जाता है। ग्रहोंकी भांति चद्रको भी कितने ही लोग अच्छा बुरा मानते हैं। किसी महान मनुष्यकी मृत्यु पर चद्र खराब तथा हाथमें लिए गए कार्यकी जब सफलता मिलती है तो चन्द्र अच्छा, ऐसा माननेका इस प्रदेशमें रिवाज है। दिनोंको भी इसी प्रकार अच्छा बुरा माननेका रिवाज अनेक स्थलों पर प्रचलित है। जावामें सोम तथा शुक्रवार उत्तम माने जाते हैं। विवाहके लिए ये लोग सोमवार पसद करते हैं। अन्य एक टापूमें विवाहकी सफलताके लिए कृष्णपक्षका बालचद्र और शुक्रवारका सुमेल बिठलाया जाता है। पूर्णिमाके आसपास जन्म लेनेवाले बालकको भाग्यशाली व अमावस्याके आसपास जन्म लेनेवाले बालकको दुर्भागी माननेका रिवाज पाऊग देशमें प्रचलित है। मूल नक्षत्रमें जन्म लेनेवाले बालकका मुँह नहीं देखनेका हमारे यहांका रिवाज भी ऐसा ही है न!

तांत्रिक और मैली विद्याओंके लिए होमा जाति द्वारा किया जानेवाला चद्रप्रयोग बड़ा भयकर है। निजके लाभ व सामनेवालेकी हानिके लिए किये जानेवाली इस विधिमें चद्रबिंबको एक कटोरेमें घोला जाता है। पानीमें घोला गया चद्र, परिवारके किसी सदस्यका बलिदान लिए बिना नहीं लौटता। बलिदान द्वारा प्रसन्न होने पर चद्रजल इतना शक्तिशाली बन जाता है कि इसके द्वारा घरकी कोई भी स्त्री शत्रुपक्षकी वंशपरपराको जड़मूलसे नष्ट करने जैसा

नृशंस कार्य कर सकती है। इसके विपरीत अफ्रीकामे एक और रिवाज प्रचलित है। मृत्युके उपरान्त शांतिचाहक लोग सूर्य-नृत्य कर, निजको सूर्यके समर्पण कर देते हैं। इसी प्रकार मृत्योपरांत अज्ञात जगतमे (प्रकाश प्राप्तिके हेतु वोर्नियो टापूकी स्त्रियाँ अपने हाथों पर चद्र-गोदना गुदवाती हैं।) पापकर्मोसे मुक्ति पानेके लिए गणेश-चतुर्थीके दिवस पड़ोसीकी गालियाँ खानेका पश्चिम भारतका रिवाज इसी कोटिका है। दैवीप्रकोपसे वचना असभव है। देव प्रकोप न करे अथवा इसका प्रकोप कुछ हलका हो इसके लिए देवोंको प्रसन्न करनेके हेतु यज्ञादि अनेक रीतियाँ प्रचलित हैं ही।

भूतप्रेतसे भयभीत न होनेवाली जाति शायद ही इस पृथ्वी पर होगी। भूतप्रेत अवेरेमे अधिक शक्तिशाली होते हैं। प्रकाश होते ही वे गायव हो जाते हैं। इसी कारण प्रखर प्रकाश देनेवाले आकाशीय ज्योतिर्पुंजोंकी भूतप्रेतोंमे उवारनेवालेकी भाँति पूजा होती है। शुक्र नक्षत्रका उदय होता देख जादू-टोनेवाले अपने कार्योको वंद करते दिखाई पडते हैं। वे यह मानते हैं कि शुक्रके पीछे ही सूर्य आता है और सूर्यके प्रकाशमे उनके मत्रतत्र का प्रभाव निष्फल होनेवाला है। आकाशसे टूटते हुए तारेका तेज शुक्रके तारेसे भी तेज होनेके कारण पूजाका अधिकारी हो गया है। ई. स. १८८० मे विहारमे एक तारा टूट पड़ा था जिसकी चमकने लोगोंके मन पर गहरा असर किया। परिणामस्वरूप यह तारा जहाँ गिरा था, उसी स्थल पर दो वर्षोंके वीच ही एक मंदिर निर्मित हुआ तथा उल्कादेवीकी पूजा प्रारम्भ हो गई।

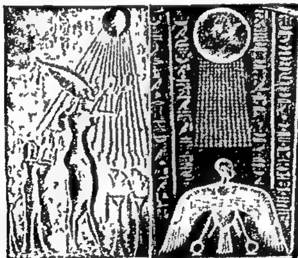
भूतप्रेतोंका सवसे वडा शत्रु सूर्य है। संसारके सभी देशोंमे यह माननेमे आया है कि सूर्यके प्रकाशसे भूतप्रेत भाग जाते हैं। इतना प्रतापी होते हुए भी कभी-कभी सूर्य वीमार पड़ता है, ऐसा अमेरिकाकी लेसकोला जातिके लोग मानते हैं। इनकी मान्यता है कि सूर्यको कभी-कभी काला कुष्ठ (सूर्य-कलंक) निकल आता है। रोग दूर करनेके लिए अग्नि प्रज्वलित कर उसमे सूर्यको सेककर जला दिया जाता है। सूर्यके जल जाने पर कितने ही नए सूर्य पैदा होते हैं। ये सूर्य भी उस अग्निमें कूद पड़ते हैं और उनमे से जो निष्कलक प्रमाणित होता है, वह आसमानका सम्राट वनता है। इस मान्यताके विपरीत एक मान्यता और भी है। किसी-किसी समय सूर्य वहुत प्रखर वनकर खूव गर्मी देने लगता है। इसका इलाज करनेके लिए सूर्यको शुक्र द्वारा तीर मरवाया जाता है। वाणविद्ध सूर्य एकदम सज्जनता धारण करता है तथा वह स्वस्थ हो पूजनीय वनता है। सूर्यके साथ धनुषवान लिए मूर्तिवाला शुक्र भी पूजा जाता है।

जिस प्रकार तारोंको देवोंके कल्पित आसन माने गए हैं, इसी प्रकार सूर्य और चंद्रको पितृओंके निवासस्थान माने गए हैं। पितृगण कल्याणकारी हैं। कल्याणकारियोंका कालांतरमे पूजन अर्चन होना ही चाहिये। इनको भी प्रसन्न करना ही पड़ता है। वोवदीच टापूमे 'मैं चद्रलोकमे जाता हूँ' नामक पितृपूजा चलती है। पितृओंकी पूजा करनेवालोंकी उन्नति होती है, ऐसी इसकी फलश्रुति है। सूर्यकी गर्मी और उसके प्रकाशमे रोगीको स्वस्थ करनेकी शक्ति निहित है। वीमार जल्दी रोगमुक्त हो जायँ, ऐसी कामना होना भी स्वाभाविक है। पितृलोकको प्रसन्न करनेकी वात संभवतया इसी कारण व्यापक वनी होगी। मनुष्य गोत्र व वंश द्वारा पहचाने जाते हैं। नाम वतलानेमें भी गुरुजनोकी महत्ताका, पितृओंको प्रसन्न करनेका

ख्याल रखा जाता है न! रही तारोंकी बात! तो ये सब सूर्य व चद्रकी अपेक्षा बहुत अधिक ऊँचे होनेसे अपने लिए पथप्रदर्शकका कार्य करते रहते है।

मनुष्य बुद्धिशाली जीव है। चमत्कारोंको कार्यकारणके ढग पर जोडकर, उपर्युक्त कथनानुसार गाथा, दतकथा, वहम एव रिवाजोंके अतिरिक्त मनुष्यने कल्पनाओंके ऐसे जाल गूथे है कि इन चक्रोंमे बाहर लानेके लिए विज्ञानको एक लम्बी मजिल तय करनी पडी है। अत्यन्त प्राचीन कालमें सत्यके वास्तविक स्वरूपका दर्शन वैज्ञानिक रीतिसे नही, परन्तु तरगो अथवा काव्यके स्वप्निल पखो पर उडकर किया जाता था। पृथ्वीतल पर विचरते मनुष्यकी दृष्टि आकाशकी ओर जाना स्वाभाविक है। पृथ्वी परके दृश्योंसे आकाशीय दृश्य अधिक भव्य व चिताकर्षक है इसीलिए यह नितात स्वाभाविक है कि मनुष्यने इस ओर अधिक ध्यान दिया हो। जीवसृष्टिमें आशा और चेतनाका सचार करनेवाले सूर्य, चद्र और तारे, इस कारण यदि पूज्य माने गये हो तो इसमें आश्चर्य जैसा कुछ भी नही है।

सूर्यके उदय व अस्त होनेकी नियमितता आश्चर्य उत्पन्न करे जैसी है। प्राचीन कालमें लोगोको यह ज्ञान नहीं था कि सूर्य रात्रिमें कहाँ जाता है। लोगोने मान लिया था कि उदय होनेके पूर्व सूर्य समुद्रमें डूबा रहता है। डूबा हुआ सूर्य समुद्रसे किस प्रकार बाहर आता है,



[इजिप्तमें सूर्यपूजा

इसका उन्हें ज्ञान न था। मनुष्यने इसलिए ऐसी कल्पना की कि देवता सूर्यको समुद्रसे बाहर निकालते हैं। ऋग्वेद सहितामें इस आशयकी ऋचा निम्नाकित है —

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥ ऋ स १० । ७२ । ७

[हे देवताओ! आपने समुद्रमें डूबे हुए सूर्यको बाहर निकाला है।]

इस भावार्थका कि अस्त होता हुआ सूर्य अपने तेजको अग्निमें स्थापित करता है, तैतिरीय ब्राह्मणका एक मंत्र उदाहरणके लिये नीचे दिया जा रहा है:–

अग्नि वावादित्यः सायं प्रविशति ।
तस्मादग्निर्दूरान्नक्तं ददृशे ।। तै.बा. २।१।२।९

[सूर्य शामको अग्निमें प्रवेश करता है, इसीलिए अग्नि रात्रिको दूरसे देखी जाती है।]

'उदित सूर्य हमको पवित्र करे' ऐसी भावना भी एक मंत्रमें है:–

य उदगान्महतोर्णवाद्विभाजमानः सरिरस्य मध्यात् ।
स मा वृषभो रोहिताक्षः सूर्यो विपश्चिन्मनसा पुनातु ।। तै.आ. ४।४२।५

[महान समुद्रमें पानीके बीचसे उत्तम रक्तलोचन देदीप्यमान सूर्य उदित हुआ है। वह हमको पवित्र करे।]

सूर्यके त्रिरूप दर्शन–प्रातःकाल उदित होना, दोपहरमें मध्याकाशमें आना और संध्या समय अस्त हो जाना–विराट (वामन) के तीन कदम भरने जैसा ही चमत्कार है। इस परसे प्रशस्ति निर्मित की गई कि अप्रतिहत सत्य द्वारा संचालित संपूर्ण आकाशीय व्यवहार अवर्णनीय है। अहोभाव, सौंदर्यदर्शन एवं विषयके कार्यकारणसे संबंधित मानवबुद्धि धीरे धीरे विकसित होती गई और परिणामस्वरूप सूर्यनमस्कार, गायत्रीमंत्र तथा सूर्यपूजा (सूर्य-मंदिर) का आविर्भाव हुआ।

चंद्रकी बात तो और भी अनोखी है। चंद्र, कलाएँ प्रदर्शित करनेवाला आकाशीय पदार्थ है। चंद्र-कलाओंसे ही प्रजापतिकी सत्ताईस कन्याओं (नक्षत्रों) वाली सुन्दर कल्पनाका उद्भव हुआ। इतना ही नहीं, इन कलाओंके आधार पर अनेक व्रत, त्योहार आदिकी रचना भी हुई, जिनमें ग्यारस और पूर्णिमाके व्रत, सर्वत्र प्रतिष्ठित हुए हैं। समयकी गणनाके हेतु कलायुक्त चंद्रकी ओर लोगोंका ध्यान जल्दी आकर्षित हुआ और पूर्णेन्दु से पूर्णेन्दु तकका समय (मास) चंद्रका पर्याय बन गया। **सूर्यमासा मिथ उच्चरातः** (सूर्य व चंद्र एक दूसरेके साथ भ्रमण करते हैं।) और **सूर्यमासा विचरन्ता दिवि** (सूर्य व चन्द्र आकाशमें भ्रमण करते हैं।) से स्पष्ट है कि ठेठ वेदकालमें चंद्रका एक नाम मास था।

चंद्रके कारण जिस प्रकार सागरमें ज्वार आता है, उसी प्रकार मनुष्यके हृदयमें भी ज्वार आता है। मनुष्यको पागल बना देनेवाली शक्तिवाले चंद्रविषयक अनेक प्रशस्ति व उपालंभके गीत और कविताएँ उपलब्ध हैं। संसारकी प्रत्येक जाति व भाषामें रचित इन गीतों और कविताओंमें चंद्रको अच्छा या बुरा, दोनों प्रकारसे अभिनदित किया गया है। किसीने चंद्रको रजनीपति कहकर अभिहित किया तो किसीने उसे पृथ्वीसुता कहकर अभिनंदित किया। किसी विरहिणीने चंद्रको अपना दूत माना तो किसी कंजूस धनपतिने चोर। किसीने उसे सुखकर माना तो किसीने दुखप्रद। आकाशीय ज्योतिष्पुंजोंमेंसे कदाचित् चंद्र ही ऐसा भाग्यशाली है कि जिसके विषयमें सर्वाधिक कहा गया है। लोकभाषामें भी चंद्रके प्रति मानवने अनेकविधि अपने हृदयस्थित भावोंको व्यक्त किया है:–

'वाटडी अभिसारिणीनो घडी वेघटी जजवाळजे हो गज', अथवा 'चन्द्रिकाए अमृत मोकल्या रे वहेन' तथा 'कन्यका हु कुळवंती, मुज मान मोटी मेदिनी' और 'छव्वीस नारो परहरी माटे भोगवे क्षय रोग' और 'आसो मासो शरद पूनमनी रात जो, चादलियो ऊग्यो रे सखी मारा चोकमा।'

यह तो कविहृदयकी बात हुई। पर वैद्य, ज्योतिषी या कीमियागर भी पीछे नहीं रहे। वैद्य मानते हैं कि वनस्पतिमें रोगोका प्रतिकार करनेकी जो शक्ति है उसका कारण ओषधपति चद्र है। प्रत्येक ऋतुकी खानपानकी व्यवस्था इसको केन्द्रमे रखकर हो की गई है। होलीके दिनामें चने और खील फांकने तथा शरदपूर्णिमाकी चांदनीमें दूधपौंए खानेका रिवाज भारत भरमें प्रचलित है। चद्रका रग पीला है। सोनेका रग पीला है। कीमियागरोने पारेसे सोना बनानेका जो कठोर प्रयत्न किया है, उसमें भी वनस्पतिके रस द्वारा चद्रमाकी ही कृपा अपेक्षित है। और ज्योतिषी? वे भी वैद्योके समान आगे बढे हैं। ये लोग राशियो व ग्रहो परसे मनुष्यकी जिंदगीका भविष्य कहते हैं और कष्टकारक ग्रहोके लिए, अनेक प्रकारके नग पहिननेकी सलाह देते हैं। मनुष्यके भविष्यको कहनेके लिए सामुद्रिक शास्त्रियोने भी चद्रमा और ग्रहोका उपयोग किया है। मनुष्यकी हथेलीके उठे हुए भागोको चद्र, गुरु, बुध आदिके पहाडो की सज्ञा देकर, इनके द्वारा मनुष्यके स्वभाव व उसके चरित्र आदिके विषयमें भविष्यवाणीकी इनकी रीति अनेक लोगोका भली-भाति मालूम है।

अपने रिवाजो और धार्मिक क्रियाओमे अनेक स्थलो पर विज्ञानका तानाबाना देखनेको मिलता है। दीवाली और देवदीवालीके बीचमें होनेवाली गेहूँओकी बुवाई, बागबगीचोंके पौधोको शामको सीचा जाना, गर्मीमें बाजरे व सर्दीमें कपासकी खेती, अक्षयतृतीया पर बनाए जानेवाले थाले आदि खेतीविषयक अनेक रीति-रिवाज हैं। विवाहादि सस्कारो तथा अन्य शुभ कार्योंके लिए सूर्यके उत्तरायण होने पर बल दिया जाना, ऐसी ही मनोवृत्तिका सूचक है। भीष्मपितामहने भी उत्तरायणके दिनोमें जो प्राणत्याग करना पसद किया था, उसके पीछे भी यही तत्त्व सामिल है।

वहमो और रिवाजोकी इस दुनियामें चद्र और सूयके ग्रहणोको विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं। अधिकाशत ये भयोत्पादक हैं। महाभारतके युद्धके प्रारम्भ होनेके पूर्वके प्रथम मासमें चद्र और सूयके ग्रहण हुए थे और वे भी अकल्पित साढे तेरह दिनोंके अन्तर पर। इस घटनाको घोर मानवसहारका सूचक माननेमें आया था। ग्रहणभीरु जनताकी मनोदशाका अनुचित लाभ उठाकर निजकी स्वार्थसिद्धि करनेवाले अनेक पादरियो-पुजारियोंके दृष्टान्त इतिहासके पृष्ठो पर आलेखित हैं। इससे विपरीत ऐसी ही मानसिक प्रवृत्तिका लाभ उठाकर प्राण बचानेके भी अनेक प्रसग भी जाननेको मिले हैं। ई स ५८४ पूर्व, लीडिया और मीडियाके बीचके युद्धका पाचवां वर्ष था। खूखार युद्ध चल रहा था। इतनेमें एकाएक सूर्यका खग्रास ग्रहण हुआ और दिवस रात्रिमें बदल गया। इस दैवी प्रकोपसे दोनो इतने भयभीत हुए कि उन्होंने युद्ध रुकवा दिया और सधि कर, एकत्रित हुए। ग्रहणभयका अर्वाचीन उदाहरण कोलम्बसका है। जब वेस्ट इडीज टापुओमें वहाके आदिवासियोने कोलम्बसके विरुद्ध सघर्ष प्रारम्भ किया तो कोलम्बसने उन लोगोसे कहा कि उनके दुष्कृत्योके कारण चद्रमा कुपित हुआ है और इसीलिए वह आज

(२९ फरवरी १५०४को) दर्शन नहीं देगा। कोलम्बसकी भविष्यवाणी सच्ची साबित हुई और वह एक बड़ी विपत्तिसे पार हो गया।

उपर्युक्त उदाहरणोंसे एक बात फलित होती है कि भयोत्पादक और आश्चर्यजनक प्राकृतिक घटनाओंको उनके यथावत् रूपमें देखने तथा उनको कार्यकारण रूपमें योजित करनेवाला एक छोटा पर बुद्धिशाली वर्ग सदा कार्यशील रहता आया है। जंगली और सभ्य जनतामें से ऐसे अनेक कल्पनाशील मनुष्य अवकाशीय आवागमनका–चंद्र, सूर्य और तारोंके उदयास्त, ग्रहण एवं उन्मीलन, ग्रह, धूमकेतु, उल्का, मेरुज्योति, आकाशीय जलचक्र आदिके दर्शन तथा लोपका रहस्य प्राप्त करनेके लिए वैज्ञानिक मार्ग पर कूच कर रहे थे। कवियों, साहित्यकारों, ज्योतिषियों आदिके समान वे भी प्राकृतिक छटाका मुग्धभावसे आनंदोपभोग करते थे। उनकी दृष्टि थोड़ी भिन्न थी पर ये सभी उपासक ऐसा मानते थे कि दृश्य जगतका संचालन करनेवाली कोई अदृश्य शक्ति कार्य कर रही है, जिसकी सत्ता सबके भलेके लिए है। इस प्रतीतिके साथ ही उन्होंने इस शक्तिको ब्रह्म कहा है और उसके कार्यक्षेत्रको ब्रह्मांड घोषित कर इसके भेद समझनेका प्रयत्न किया। ये समस्त प्रयत्न ही खगोलशास्त्रकी नींव बने, जिनमेंसे अंकुरित वृक्ष, विकसित हो आधुनिक युगका विशिष्ट विज्ञान बन गया।

आकाशीय ज्योतिष्पुंजोंके विज्ञानका उद्भव सर्वप्रथम कहाँ और कब हुआ, इसकी विशेष जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। जिन देशोंमें इसका प्रारम्भिक विकास हुआ, वे देश भारत, चीन और खाल्डिया हैं। ज्योतिषशास्त्र या खगोलशास्त्र तीन सहस्र वर्षोंसे भी अधिक पुराना विज्ञान है। दिशा और समय नापनेके कार्यको करनेवाले प्रारम्भिक विज्ञानकी भाँति जन्म ले, यह विज्ञान आज तारे और तारा-विश्वोंके भेदोंका उन्मेष करनेवाला विशिष्ट विज्ञान बन गया है। तारे क्या हैं, उनकी कुल संख्या कितनी है, हमसे वे कितने दूर हैं, दिनको ये दिखाई क्यों नहीं पड़ते, सूर्य-चंद्रके उदय-अस्तके स्थान किन कारणोंसे बदलते रहते हैं, ग्रहण क्यों होते हैं, महीने और वर्षका संबंध क्या है आदि प्रश्नोंका निराकरण ढूंढ़नेके लिए खगोलशास्त्रका उद्भव हुआ। खगोलशास्त्रका प्रारम्भिक विकास उसके आजके विकास जैसा क्षिप्रगामी एवं दूरगामी न था। सूर्य गर्मी और प्रकाश देता है। इसके इन शक्तिस्रोतोंका स्पष्ट खयाल आजसे एक शताब्दी पूर्व मनुष्य को न था। पृथ्वीको हम एक ग्रह समझते हैं, पर उसके ग्रह होनेके तथ्यको खगोलशास्त्रके इतिहासमें बहुत बादमे स्थान मिला है। आकाश स्थित तेजदूत तारोंके आंतरिक कलेवर संबंधी और ऐसे ही उनकी गर्मी-निक्षेपनकी बात अभी कल तकका शोध ही माना जाता है। आकाशीय ज्योतिष्पुंजोंसे संबंधित मनुष्य द्वारा अर्जित ज्ञान मनुष्यकी अनेक पीढ़ियोंके भगीरथ प्रयत्नका सुफल है। इस स्थिति तक पहुँचते मनुष्यको सुदीर्घ यात्रा करनी पड़ी है। यह यात्रा पृथ्वीसे सूर्य, तारे, ताराविश्व और अनंतगामी ब्रह्मांडकी क्रमिक शोधवाली होनेके अतिरिक्त विराटके दर्शन करानेवाली यंत्र सामग्रीके निर्माणकर्ता मनुष्यकी बुद्धिकी चरम उत्कृष्टताको दर्शानेवाली भी है।

हम अवकाश-यात्री हैं, ऐसा यदि कोई कहे तो हमको यह बात थोड़ी विचित्र लगेगी। इस बातको शायद हम हँसकर भी छोड़ दें। अवकाशमें चलनेवाले अथवा खिसकनेवाले

पदार्थोंको यदि हम अवकाशयान कहें तो हमारी पृथ्वी भी एक अवकाशयान है। हमें साथमें रखकर, पृथ्वी प्रति घंटे लाख किलोमीटरकी गतिसे सूर्यकी प्रदक्षिणा करती है। पृथ्वी परसे छोडे जानेवाले अवकाशयानोंके वेगके मुकाबिलेमें पृथ्वीका वेग ढाई गुना अधिक है!

पर कहां पृथ्वी और कहां हमारे द्वारे छोडे हुए अति छोटे अवकाशयान। मनुष्यनिर्मित अवकाशयानोंकी समकक्षतामें पृथ्वी अत्यधिक विशाल है। अपने इस प्राकृतिक अवकाशयानका व्यास साढे बारह हजार किलोमीटर है। और वजन? पृथ्वीका वजन साढे छ हजार अरब टन है। अस्सी अरब टन वजनवाले चंद्रको अपने चारों ओर फिरानेवाली पृथ्वीके सामने कुछ टन वजनवाले अवकाशयानोंकी क्या बिसात!

तो क्या पृथ्वी आकाशका सर्वाधिक बडा पदार्थ है?

आकाशमें सूर्य, चंद्र, तारे और ग्रह आए हुए हैं। कभी-कभी उल्का और धूमकेतुके दर्शन भी होते हैं। ये सभी ज्योतिष्पुंज एक-से नही हैं। अपने पीछे एक चमकती रेखा बनाकर विलुप्त हो जानेवाली उल्का (टूटता हुआ तारा) पृथ्वीकी तुलनामें बिल्कुल क्षुद्र पदार्थ है। कुछ अपवादोंको छोड कर, अधिकांश उल्काएँ राईसे लेकर नारियल जितनी बडी होती हैं। पर तारोंकी बात अलग है। तेजोबिंदु जैसे प्रतीत होते तारे वास्तवमें छोटे-मोटे सूर्य हैं। पृथ्वी जैसे तारे भी हैं परन्तु उनकी संख्या अति स्वल्प है। अधिकांश तारे पृथ्वीसे अनेक गुना बडे हैं। अति विराट तारे तो सूर्यसे लाखों गुना बडे हैं। अपने ताराविश्वका सबसे बडा अति विराट तारा सूर्यसे पचास करोड गुना बडा है!

कहां तारे और कहां पृथ्वी? पर इतनेसे ही बात समाप्त नही होती। तारे आकाशके कोई सबसे बडे पदार्थ नहीं हैं। तारोंसे बडे ताराबादल हैं और उनसे भी बहुत बडे हैं ताराविश्व।

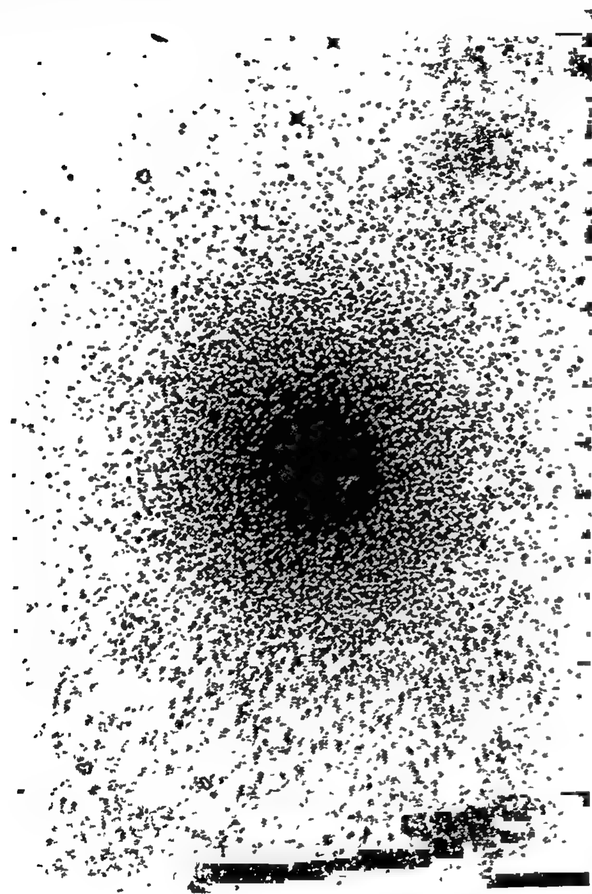
जिस प्रकार पृथ्वी, ग्रह, उपग्रह और धूमकेतु आदि मिलकर सौर-जगतका निर्माण करते हैं उसी प्रकार अनेक तारा-परिवार मिलकर ताराविश्व बनाते हैं। सूर्य जिस ताराविश्वका सभ्य है, उसका नाम है आकाशगंगाविश्व। हम इसको मंदाकिनीविश्व कहेंगे।

निर्मल अंधेरी रात्रिको यदि हम आकाशकी ओर दृष्टि डालेंगे तो प्रकाशसे लीपा हुआ सा एक पट्टा दिखाई देगा। ये सफेद पट्टा तारोंके बादलोंका है। तारोंसे निर्मित इस पट्टेको मंदाकिनी, स्वर्गंगा या आकाशगंगा कहा जाता है। आकाशके अन्य तारोंकी भाँति आकाशगंगाके तारे बिखरे हुए नहीं हैं, वहीं थोडे अंतर पर तो कहीं अत्यन्त सटकर अवस्थित हैं। सटे हुए तारोंके कारण ही आकाशगंगाका रूप अत्यन्त उज्ज्वल दिखाई देता है।

उज्ज्वल ताराबादलोंके अलावा आकाशगंगाके पाटमें अनेक स्थलों पर श्याम और श्वेत वायुबादल आये हुए हैं। श्वेत वायुबादल तारोंसे प्रकाशका परावर्तन कर चमकते हैं पर श्याम बादल इस तरह नहीं चमकते हैं। आकाशगंगाका पाट जहाँ कालिमा दिखाता है वैसे सभी स्थानों पर श्याम वायुबादल आए हुए हैं। वैज्ञानिकोंका कहना है कि आकाशमें अवस्थित ये श्वेत वायुबादल निष्प्रयोजन नहीं हैं। इनमेंसे कई तो तारोंको जन्म देनेवाले उद्भवस्थान या निहारिकाएँ हैं।

आकाशगंगाके बाहर फैला हुआ तारा जगत आकाशगंगाके पाट जैसा सघन नहीं है। ऐसा होते हुए भी किसी-किसी स्थान पर थोड़े तारे एक-दूसरेसे सटे हुए होनेसे तारागुच्छ रचते दिखाई देते हैं। पर इनकी इस प्रकारकी भीड़ आँखको खटकनेवाली नहीं है। कृत्तिका और शौरिके तारागुच्छ इसके सुन्दर उदाहरण हैं।

अनेक तारों, तारागुच्छों, तारावादलों और निहारिकाओंसे मिलकर जो ताराविश्व वनता है वही अपना ताराविश्व अथवा मंदाकिनीविश्व है। अपना यह ताराविश्व वास्तवमे अत्यन्त विशाल ताराविश्व है। इसके एक किनारेसे निकल कर दूसरे किनारे तक प्रकाशको पहुँचते एक लाख वर्ष लगते हैं। ऐसा यह ताराविश्व संपूर्ण गोलाकार नहीं है। यह फूली हुई पूड़ीकी भाँति है, जिसके मध्यभागकी मोटाई पंद्रहसे वीस हजार प्रकाशवर्ष है।



शौरि तारकगुच्छ

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि अपने ताराविश्वकी संपत्ति कितनी है? मंदाकिनी विश्वकी तारासंपत्ति वहुत अधिक—सौ अरव सूर्य जितनी—है। सूर्यको सामान्य तारा मानकर चलें तो मंदाकिनी विश्वके समस्त तारोंका द्रव्य सौ अरव सूर्य जितना होगा।

प्रश्न उठ सकता है कि क्या मंदाकिनीविश्व आकाशका सवसे वड़ा पदार्थ है? आश्चर्यकी वात तो यह है कि आकाशमें एक नहीं लेकिन छोटे-मोटे कुल मिलाकर सौ अरव ताराविश्व आए हुए ह। उनमेंसे प्रत्येककी औसत तारासमृद्धि सौ अरव सूर्यकी है! सौ अरव ताराविश्वोंवाला व्रह्मांड कितना विराट होगा!! अकल्पनीय कथा है न?

व्रह्मांडका वास्तविक वैभव इसके तारों अथवा ताराविश्वोंका न होकर शून्य या अवकाश-का है। अरवों ताराविश्वोंको समाहित करनेवाला व्रह्मांड वास्तवमें खाली है!

ऊपर हमने मंदाकिनीविश्वके तारोंकी बात की। ये सभी एक दूसरेसे कितने अन्तर पर होंगे? आप कदाचित् यह कहें कि पृथ्वीसे सूर्य जितने अन्तर पर या अधिक से अधिक इससे पच्चीस गुना अन्तर पर होंगे। परंतु वास्तविकता यह नहीं है। तारे एकदूसरेसे लगभग चार प्रकाश वर्ष जितनी दूरी पर आए हुए हैं। सूर्य और पृथ्वीके हिसाबसे यह दूरी पौने तीन लाख गुना है। तात्पर्य यह है कि यदि किन्ही दो तारोंके बीचके स्थलको भरना हो तो उसके लिये तीन करोड़ सूर्योंको एक पंक्तिमें खड़ा रहना पड़े। पृथ्वीके द्वारा यदि यह अन्तर पाटना हो तो सवा तीन अरब पृथ्वियोंके एक सेतुका निर्माण करना पड़े।

तारोंके बीचका स्थान वास्तवमें रिक्त है या नहीं?

और फिर, ताराविश्वोंके बीचके अन्तरोंका क्या?

ताराविश्व एकदूसरेसे बीस लाख प्रकाश-वर्ष अन्तर पर आए हुए हैं। दो ताराविश्वोंके बीचका अन्तर सूर्यसेतु द्वारा जोड़ना पड़े तो पंद्रह हजार अरब सूर्योंकी आवश्यकता पड़े। तात्पर्य यह है कि किन्ही भी दो ताराविश्वोंके अन्तरको पाटनेके लिए डेढ़ सौ ताराविश्वोंके सभी तारोंको एक पंक्तिमें रखना पड़े।

मगर ऐसा करते समय डेढ़ सौ ताराविश्व नामशेष होकर उनके स्थान पर शून्य ही हो जाय न?

अब मैं यदि ऐसा कहूँ कि ब्रह्मांडमें सौ अरब ताराविश्व होते हुए भी इसका ९९.९% भाग बिल्कुल खाली है तो आश्चर्य नहीं होगा न? अब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि क्या ब्रह्मांडकी कथा केवल विराट की ही कथा है?

ब्रह्मांडमें तारे हैं और उनके प्रकाशमें अवरोध उत्पन्न करनेवाले धूलिकण जैसी छोटी वस्तुएँ भी हैं। तारे जबकि विराट हैं तो धूलिकण वामन तो भी इन दोनोंके निर्माण करनेवाले मूलभूत उपादान एक समान ही हैं। ब्रह्मांडके सारे पदार्थ सूक्ष्म परमाणुओंसे निर्मित हैं। इसीलिए ब्रह्मांडकी यह कथा सूक्ष्मकी भी कथा है।

तारों और ताराविश्वोंका अपना यह ज्ञान दूरबीनोंके द्वारा ही प्राप्त किया हुआ है। ये दूरबीनें आकाशीय ज्योतियोंके प्रकाशको ग्रहण कर, उसका विश्लेषण करती हैं। प्रकाशके कण अत्यन्त सूक्ष्म हैं और इसीलिए इनके द्वारा व्यक्त होती ब्रह्मांडकी कथा भी सूक्ष्म से विरचित विराटकी कथा है।

ब्रह्मांडदर्शन सूक्ष्म और विराट की संयुक्त कथा है।

२. घर और पड़ोस

जिस पृथ्वी पर हम लोग रहते हैं, वह इतनी वड़ी है कि इसके विषयमें हम संपूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके हैं। पृथ्वी गोल है—यह हम जानते अवश्य हैं, पर इसके वास्तविक आकारका ख्याल अवकाशसे देखे विना नहीं आ सकता। पृथ्वीसे दूर, अवकाशमें जाना अव संभव वना है। भूतकालमें यह कल्पनातीत था। तो भी आश्चर्यकी वात तो यह है कि क्षितिजमर्यादाके आधार पर, पृथ्वीके गोलाकार होनेका ज्ञान प्राचीन कालके लोग जान सके थे। आज रॉकेटोंमें ऊँचे चढ़कर और पृथ्वीके फोटो लेकर, उसके गोलाकार रूपको प्रमाणित किया जा सका है। पृथ्वीकी गोलाईको नग्न नेत्रोंसे देखनेका सर्वप्रथम सौभाग्य, अवकाशयानमें प्रदक्षिणा करनेवाले अवकाशयात्रियोंको प्राप्त हुआ है।

किसीसे ऐसा पूछा जाय कि पृथ्वीके मुख्य विभाग कौन-कौनसे हैं तो उत्तर मिलेगा कि जमीन और पानी। सच तो यह है कि ये दोनों पृथ्वीके गोलेकी सतहके भाग हैं। पृथ्वीके दो मुख्य विभाग तो पृथ्वीका गोला और पृथ्वीका वातावरण हैं। पृथ्वीका वातावरण पृथ्वीसे १००० कि. मी. ऊपर तक फैला हुआ है। यह वातावरण पृथ्वीसे मजवूतीसे चिपटा हुआ है। पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिमसे पूर्वकी ओर प्रति घंटा १६०० कि. मी. के वेगसे भ्रमण करती है। इतनी तेज गतिसे भ्रमण करते हुए भी पृथ्वीका वातावरण आकाशमें छटक नहीं जाता। पृथ्वी अपने गुरुत्वाकर्षणकी शक्ति द्वारा उसे वरावर पकड़े रखती है। पृथ्वीसे अलग होकर आकाशमें भाग कर चले जानेके लिए, इसको प्रति सेकंड ग्यारह कि. मी. अथवा प्रति घंटा लगभग चालीस हजार कि. मी. (पृथ्वीके अक्ष भ्रमणसे २५ गुना) के प्रवल वेगकी आवश्यकता पड़ेगी। सूर्यचंद्रकी प्रदक्षिणाके लिए छोड़े गए अवकाशयानोंके अतिरिक्त अन्य सारे रॉकेट और कृत्रिम चंद्रोंका पलायन-वेग भी उपर्युक्त वेगसे कम है।

विद्वानोंका कहना है कि पृथ्वीका आजका वातावरण इसका मूल वातावरण नहीं है। पृथ्वीका जन्म हुआ तव वह वायु रूपमें थी। वादमें ठंडी होकर जव इसने द्रव रूपको प्राप्त किया तव ठंडी नहीं हो सकनेवाली वायुएँ इसका वातावरण वन गईं। पर यह स्थिति अधिक लम्वे समय तक नहीं टिक सकी। पृथ्वी तव अपनी धुरी पर अत्यन्त वेगसे परिभ्रमण करती थी। वेगके कारण इसका वातावरण अवकाशमें छटक गया। पृथ्वीका घन कवच इसके अनेक वर्षों पश्चात् वना है। पर तव भी इसके नीचे उवलते हुए प्रवाहित द्रवोंके एकत्रित होनेके कारण, यह कवच वार-वार टूट जाता था। फिर, उस अत्यन्त उष्ण द्रवमें से निरंतर वायुएँ वाहर आती थीं और छटक कर आकाशमें चली जाती थीं। कालक्रमसे पृथ्वीके अक्षभ्रमणका वेग कम पड़ा और तव पृथ्वीके भीतरसे वाहर निकलकर तथा अवकाशमें छटककर जानेवाली वायुएँ पृथ्वीकी

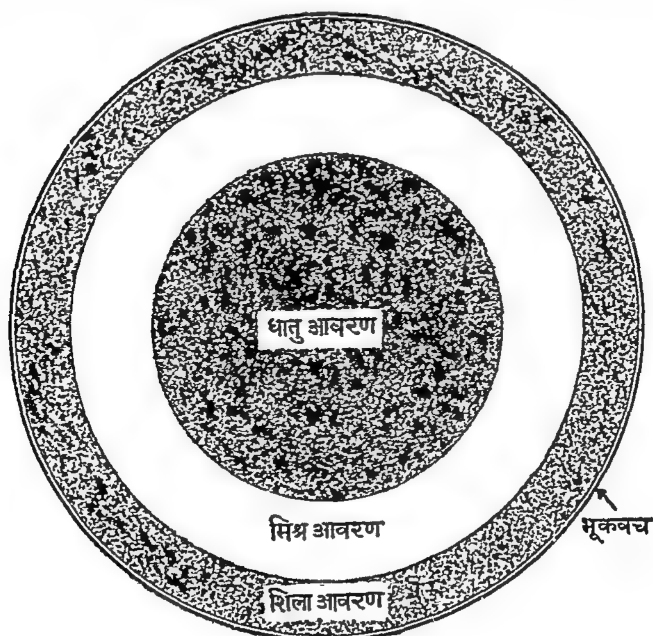


पृथ्वीकी गोलाई (अन्तरिक्षसे देखने पर)

पकड़में बंधती गईं और इस प्रकार हमारा वातावरण अस्तित्वमें आया। विद्वान लोग मानते हैं कि इस प्रकारकी प्रक्रियामें किरणोत्सर्गी धातुओंका महत्त्वपूर्ण प्रदान है।

वायुयान संचालनमे तथा अन्य अनेक रीतियोंसे उपयोगी होनेवाले वातावरणका यदि वास्तवमे कोई महान उपकार हो तो वह है पृथ्वीकी जीवसृष्टिकी रक्षा करनेका कार्य। यदि वातावरण पृथ्वीको छोड़कर आज ही छटक जाय तो हम एक ही रातमे सर्दीसे ठंडे होकर हिम बन जायँ। भाग्यवशात् यदि कोई बच जाय तो दूसरे दिन ही सूर्यकी अल्ट्रावायोलेट तथा अन्य किरणोंसे पीड़ित हो उसे मृत्युको भेंटना पड़े।

वातावरणके मध्यमें आया हुआ पृथ्वीका गोला बारह हजार कि. मी. व्यासवाला बड़ा आकाशीय गोला है। इसकी ठेठ बाहरकी सतह (भूकवच) की बातको यदि हम छोड़ दें तो यह गोला प्रधानतः तीन भागोंमे विभक्त हो जाता है; (१) भूगर्भ, (२) भूगर्भको परिवेष्ठित करने-वाला धातु-पत्थरका मिश्रावरण और (३) शिलावरण। पृथ्वीका भूगर्भ ४,८०० कि. मी. व्यास-वाला द्रव पदार्थ है। भूगर्भमे अधिकांशतः धातुएँ हैं, जिनमें लोहा मुख्य है। धातुओंसे बने भूगर्भ-का घनत्व बहुत अधिक है। पिघली हुई धातुओंवाले इस भूगर्भका सामान्य उष्णतामान पाँच हजार सेन्टिग्रेड अंश माना जाता है। बहुत अधिक उष्णतामानके कारण भूगर्भके भीतरका धातु-द्रव सदैवके लिए प्रक्षुब्ध या उत्पातजनक स्थितिमें रहता है। धातुएँ बहुत सरलतासे बिजलीको



पृथ्वीका गोला (भूकवच और अंतराल)

वहन करती हैं। इन सब कारणोंसे पृथ्वीका यह विराट धातुद्रव डाइनेमोकी भाँति कार्य करता है और पृथ्वीका चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करता है। पंथशून्य रेगीस्तान हो या विस्तृत बर्फीला

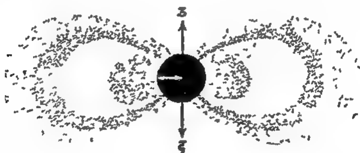
रन, खुला दलदलीय प्रदेश हो या असीम जलराशिवाला समुद्र, इन सार प्रदेशोंमें यात्रा करते समय, जिसकी अपरोक्ष सहायतासे हम दिशाएँ ढूढ सकते हैं, वह वास्तवमें पृथ्वीके केंद्रीय भागमें अवस्थित उबलती और उछलती धातुओं द्वारा निर्मित पृथ्वीचुंबक ही है।

पृथ्वी अपने वातावरणको भेदकर अपने प्रभावको बहुत दूर तक पहुँचाती है। कृत्रिम चंद्रों द्वारा मालूम हुआ है कि सूर्यसे उद्भवित, अंतरिक्षमें गतिशील परमाणुसे भी सूक्ष्म और अत्यन्त द्रुतगामी विविध प्रकारके इलेक्ट्रोन, प्रोटोन जैसे विद्युतकण पृथ्वीके चुंबकीय जालमें फँस जाते हैं। चालीस अक्षांशसे उत्तरके प्रदेशोंमें दिखाई देनेवाली मनोहर मेरुज्योतिका अस्तित्व भी ऐसे प्रकाशित विद्युतकणोंसे निर्मित है। पृथ्वीके एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुव तकके आवागमनकी भागदौड़की स्पर्धामें अनेक इलेक्ट्रोन मैदानमें उतरे हुए दिखाई देते हैं। एक सेकंडसे भी कम समयमें पृथ्वीके दो ध्रुवोंके बीचके अन्तरको तय करनेवाले इलेक्ट्रोन मेरुज्योतिके अनेक स्वरूपोंकी रचना करते रहते हैं।

ध्रुव प्रदेशोंमें छ छ मासके रात-दिन होते हैं, परन्तु रात्रिके समय भी मेरुज्योतिके झलाझल प्रकाशमें इस प्रदेशके निवासी अपना दैनिक कार्य कर सकते हैं।

सूर्यसे उद्भवित होकर अंतरिक्षमें बहते हुए वायुप्रवाहको 'सूर्यप्रवात' से संबोधित किया जाता है। इस वायुप्रवाहमें निहित विद्युतभार-प्राप्त सूक्ष्मकणोंको 'आयन' कहा जाता है। जब उपर्युक्त आयनोंको पृथ्वीका चुंबकीय क्षेत्र आत्मसात् करता है तब पृथ्वीके चारों ओर झिलमिल करता, एक प्रकाशित वातावरणका निर्माण हो जाता है।

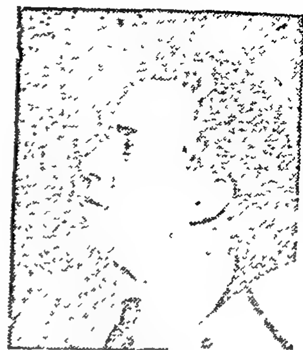
यह आवरण स्थिर प्रकृतिवाला नहीं होता, यह परिवर्तनशील होता है। सूर्य पर होनेवाले उपद्रवोंके समय, यह एकाएक विलुप्त भी हो जाता है और अदृश्य होनेके पश्चात् थोड़े समयमें



वान एलन पट

पुन: निर्मित भी हो जाता है। उपर्युक्त आवरणको 'वान एलन पट' कहा जाता है। ये पट दो आवरणोंके रूपमें पृथ्वीको आवेष्टित किये होते हैं। एक आवरण पृथ्वीके समीप दस हजार कि मी के अन्तर पर अवस्थित है और दूसरा चालीस हजार कि मी के अन्तर पर। ये दोनों आवरण एक समान नहीं हैं। हमारे समीपका आवरण प्रोटोनसे निर्मित है और कुछ सीमा तक वह स्थिर प्रकृतिवाला भी है। दूसरा आवरण इलेक्ट्रोनसे बना है। ये दोनों आवरण प्रबल संहारक शक्ति रखते हैं और मनुष्यकी अंतरिक्ष यात्राके मार्गमें बड़े भयावह हैं।

इसमें कोई भी अतिशयोक्ति नहीं है कि अंतरिक्षमें दूर तक फैले हुए पृथ्वीके हाथ, वान एलन पट'को पार करके ठेठ चंद्रमा तक पहुँचते हैं। चंद्र हमसे पौने चार लाख कि. मी. पर अवस्थित ३२०० कि. मी. व्यासका वड़ा आकाशीय पदार्थ है। यह ज्योति भी पृथ्वीके अधिकारमें है। पृथ्वी इसे अपने चहुँ ओर फिराती है। पृथ्वीके चगुलसे छटकनेका प्रयत्न चंद्र हमेशा करता है, पर इसमें यह सफल नहीं हुआ है। हाँ, एक विषयमें उसे अवश्य सफलता प्राप्त हुई है। पृथ्वी पर ज्वार और भाटा उत्पन्न करके तथा पृथ्वीके अक्षभ्रमणको धीरे-धीरे मंद करके वह पृथ्वीके अपनी ओरके आकर्षणको कम कर रहा है। इसकी इस करामातके कारण पृथ्वी और चंद्रमाके बीचका अंतर धीरे-धीरे वढ़ता जा रहा है। कदाचित् चंद्रमाकी चाल, अधिक अंतर उत्पन्न कर छटक जानेका पैंतरा होगा, पर वैज्ञानिक मानते हैं कि इसमें इसको सफलता प्राप्त नहीं होनेवाली है। गत चार अरब वर्षोंसे वह निरंतर पृथ्वीका कैदी बना रहा है। अंतरिक्षमें आन्तरग्रहीय यात्रा करनेवाले मानवयात्रियोंने पृथ्वीके जो दर्शन किए हैं, वे अन्य दर्शनोंसे अधिक देदीप्यमान लगेंगे और तब एक नई समझका भी उदय होगा। उन्हें यह मालूम पड़ेगा कि हमारी धरती माता अंतरिक्षमें अकेली नहीं है। इस विचारके उद्भव होते ही, अवकाशयात्रियोंके मनमें, फिर वे किसी राष्ट्र अथवा धर्मके क्यों न हों, नया विश्ववाद जन्म लेगा।


वान एलन

हम लोगोंको सुन्दर दिखलाई देनेवाला चंद्रमा भी वास्तवमें चट्टानोंसे बना आकाशीय पदार्थ है। इसका आकार पृथ्वीका पचासवाँ और पृथ्वीके वजनकी दृष्टिसे अस्सीवाँ भाग जितना है। अंकशास्त्रानुसार चंद्रमाका दल ७४×१०^{१८} (७४ के आगे १८ शून्य) टन है। इतना भारी चंद्र अपनी पृथ्वीका उपग्रह है। तात्पर्य है कि चंद्र पृथ्वीके चहुँ ओर लगभग वर्तुलाकार कक्षामें परिभ्रमण करनेवाला आकाशीय पदार्थ है। चंद्रमा अपने कक्षाभ्रमणको जितने समयमें पूर्ण करता है, उसे हम लोग चांद्रमास कहते हैं। पृथ्वी पर आनेवाले ज्वार व भाटोंके कारण इस मासकी लंबाई धीरे धीरे वढ़ती जा रही है। भूतकालमें यह अवधि बहुत कम थी। ऐसा माना जा सकता है कि उस समय पृथ्वी और चंद्र एकदूसरेके अति निकट होंगे। यह विषय तथा साथ ही कि चंद्रमा पृथ्वीके अधिकारमें है आदिका विचार कर ऐसा अनुमान लगाया गया कि चंद्रमाका जन्म पृथ्वीसे हुआ है। स्वयं पृथ्वीका जन्म सूर्यसे हुआ है—इस उपपत्तिकी भाँति यह अनुमान विवादास्पद रहा है। कई वैज्ञानिक यह मानते हैं कि पृथ्वी और चंद्रमा दोनों जुड़वाँ ग्रह हैं और उनका जन्म सूर्यसे नहीं हुआ है।

चंद्रमा पर अनेक ज्वालामुख हैं। उन्हींके कारण चंद्रमाका धरातल चेचकके व्रणोंके समान धब्बेवाला लगता है। पृथ्वीसे चंद्रमाके धरातलके एक ही भागको देखा जा सकता है इसीलिए हम जानते ही न थे कि इसका दूसरा भाग कैसा होगा। परंतु अंतरिक्षयान द्वारा लिए गए

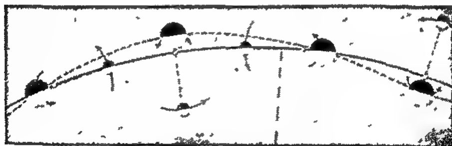
हालके चित्रोंसे चन्द्रमाकी दूसरी ओर भी ज्वालामुख होनेका पता चला है। चन्द्रभूमिका यह दृश्य ऐसा दिखाई पड़ता है, जैसे रणक्षेत्रमें बहुत अधिक सख्यामें विशालकाय अवकाशीय अस्त्र टूटकर गिरे हों।

यह अभी तक निश्चित तौरसे नहीं जाना जा सका है कि चन्द्रमाके ज्वालामुख किस कारणसे बने हुए हैं। एक समय ऐसा माना जाता था कि चन्द्रमाके ये धब्बे शात हो जानेवाले ज्वालामुखियोंके हैं। पर, अब ऐसा नही माना जाता। चन्द्रमा के ज्वालामुख एक ही सरचनावाले हैं जबकि पृथ्वीके ज्वालामुख एक ही सरचना नही रखते।



पृथ्वी-सूर्यका आकाशीय मार्ग

ऐसा माना जाता है कि चद्रके ज्वालामुखोंके उत्पन्न होनेका कारण आकाशसे चद्रमा पर टूटकर गिरनेवाली उल्काएँ नहीं बल्कि इन उल्काओंका चद्रमाकी सतहसे टकरानेके कारण उत्पन्न होनेवाली गर्मी है। पवन उत्पन्न न होते हुए भी गुरुत्वाकर्षणके कारण चद्रभूमि पर उत्पन्न होनेवाली रजका ऊपरके भागमेंसे नीचेके भागमें परिवहन होता रहता है। चद्रके मुख्य-मुख्य ज्वालामुखोको भिन्न-भिन्न नामोंसे अभिहित किया गया है, जिनमेंसे एक ज्वालामुख 'टायको' नामसे जाना जाता है। इसके चारो ओर तेज रेखाएँ फैली दिखाई देती हैं, जो इसमेंसे फूट कर निकली हैं। ऐसा माना जाता है कि रजके परिवहनके समय ये तेजरेखाएँ तरल पदार्थके जमनेसे ठडी बनी हुई रजकणोंके कारण हैं।

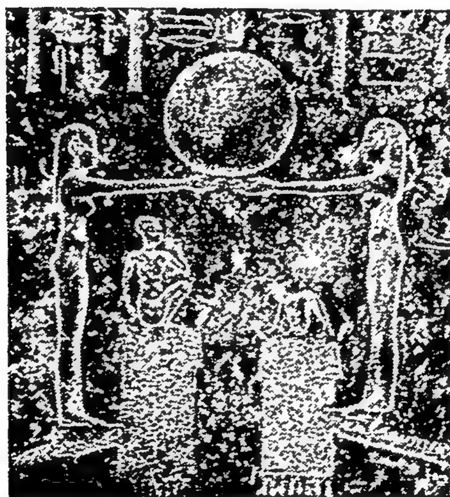


पृथ्वी-चन्द्रका आकाशीय मार्ग

वातावरण रहित चद्रमा बिल्कुल ठडी मृत दुनिया जैसा है। ऐसा होते हुए भी कभी किसी ज्वालामुखके भीतरसे दिखाई पड़नेवाले परिवर्तन, चद्रमाके अतरालकी आतरिक प्रक्रियाकी ओर अगुलीनिर्देश कर जाते हैं।

प्रतिदिन देरीसे उगनेवाला परप्रकाशित चंद्रमा केवल हमारे समुद्रोंमे ही ज्वार उत्पन्न नही करता, वह हमारे वातावरण तथा हृदयमे भी ज्वार उत्पन्न करता है। ऐसे ज्वारकर्ता चंद्रमा पर पहुँचनेका प्रयत्न मनुष्य आज पर्यंत कर रहा है। चंद्रमा पर एक अंतरिक्ष-केंद्र स्थापित कर मनुष्य विश्वकी अनेक विचित्रताओंका रहस्योद्घाटन करना चाहता है। इसलिए आजके रोकेटशास्त्री इस कार्यमें जुटे हुए है कि चंद्रभूमि पर मानव किस प्रकार सुरक्षित रह सकता है।

जैसा कि हम जानते है, यह पूर्ण सत्य नही है कि चंद्रमा हमारी पृथ्वीके चारों ओर भ्रमण करता है। चंद्रमा और पृथ्वी अपने सामान्य गुरुत्वकेन्द्रके आसपास भ्रमण करते है। उनका यह केन्द्र पृथ्वीके भीतर आया हुआ होनेके कारण हम ऐसी कल्पना करते है कि चंद्रमा पृथ्वीके आसपास भ्रमण करता है। कई यह भी मानते है कि चंद्रमा कोल्हूके बैलकी भाँति एक ही रास्ते पर निरंतर पृथ्वीकी परिक्रमा करता रहता है। पर, यह भी सत्य नहीं है। वास्तवमें चंद्रमा, पृथ्वी एवं सूर्य प्रतिदिन पेच (Screw) की चूड़ियों जैसे मार्ग पर अतरिक्षमे आगे बढ़ रहे हैं और इसीलिये कोल्हूके बैलकी भाँति एक ही रास्ते पर उसी ठौर पर बारम्बार नहीं आते।

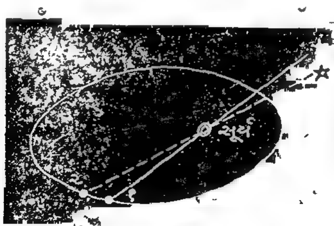


रात्रि दिवसको सूर्य सुपरत करतो है।

३. हमारा जगत

पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिमसे पूर्वकी ओर भ्रमण करती है, इसी कारणवश सूर्य, चंद्रमा और तारे पूर्वसे पश्चिमकी ओर खिसकते हुए दिखाई देते हैं। पर इन सबकी इस प्रकार खिसकनेकी क्रिया एक समान नहीं है। फिर, उनके उदयास्तका समय भी सदैव एक-सा नहीं रहता। सूर्यके अस्त और उदय होनेका समय दिन प्रतिदिन बदलता रहता है। तारे प्रतिदिन चार मिनट जल्दी उगते तथा अस्त होते हैं, जबकि चंद्रमा रोज पचास मिनट देरीसे उदय तथा अस्त होता है। शुक्ल पक्षकी द्वितीयाके चंद्रमाको देखनेके पश्चात् तृतीयाके चंद्रमाको देखनेवालोंने अनुभव किया है कि पूर्वसे उदय होकर पश्चिममें अस्त होनेके अलावा चंद्रमा आकाशीय तारों की पृष्ठभूमि पर प्रतिदिन पश्चिमसे पूर्वकी ओर भ्रमण करता है। क्या सूर्यकी भी इसी प्रकार की गति होगी? क्या वह भी तारोंकी पृष्ठभूमि पर खिसकता है?

पर यह सब कैसे जाना जाय? सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि सूर्यकी उपस्थितिमें तारोंके दर्शन नहीं होते। फिर भी, एक दूसरी रीतिसे इसे समझा जा सकता है। यदि सूर्य तारोंके बीचमें होकर न खिसकता हो तो सूर्यास्तके पश्चात् पूर्व और पश्चिमकी ओरके आकाशमें सदैव वही



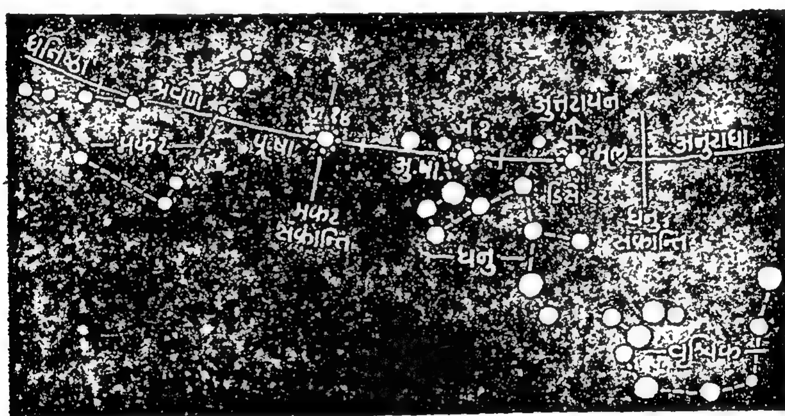
[पृथ्वी जब १ स्थानमें होगी तब सूर्य जिस तारेके समक्ष दिखाई पड़ेगा उस तारेके सामने, वह, पृथ्वीके २ स्थानमें आने पर न दिखाई देगा। वह दूसरे ही तारेके आगे दिखाई पड़ेगा]

तारे दिखाई पड़े। पर ऐसा नही होता। मिगसर मासकी ढलती रातको पूर्वमें उगता मृगमंडल चैत्र मासकी संध्याको पूर्वके वदले पश्चिममे दिखाई पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सूर्य तारोंमें स्थिर नहीं है। वह भी खिसकता रहता है। तारोंके वीचमें खिसकता सूर्य अपने मूल स्थान पर एक वर्ष वाद आता है। पर इसका अर्थ क्या?

उपर्युक्त वातका मर्म दीर्घकाल तक समझा नही जा सका था। ठेठ सोलहवी शतीमे खगोलशास्त्री निकोलस कोपरनिकस द्वारा यह रहस्य उद्घाटित हुआ था। आज यह वस्तु रहस्य न रहकर सर्वविदित वन गई है। पृथ्वीके सूर्यके आसपास भ्रमण करनेके कारण सूर्य तारोकी पृष्ठभूमि पर खिसकता दिखाई देता है। पृ. १८ का चित्र इस वस्तुको अधिक स्पष्ट कर सकेगा।

सूर्यके आसपास केवल पृथ्वी ही भ्रमण नही करती, अन्य कई पृथ्वियाँ (ग्रह) भी भ्रमण करती हैं। इन ग्रहोंमेसे कितनोंके अपने उपग्रह या चद्र भी हैं। ये चद्र निजके ग्रहोंके आस-पास फिरनेके अतिरिक्त सूर्यकी परिक्रमा भी करते रहते हैं।

आकागमे ग्रहोंका पता लगाना जरा भी कठिन कार्य नही है। ये सभी सूर्यके भ्रमण-पथके आसपास ही रहते हैं। सूर्य आकागमे जिस मार्गसे खिसकता दिखाई देता है, उसे रवि-मार्ग कहते है। इस रविमार्गके सत्ताईस समान भाग नक्षत्र और वारह समान भाग राशियाँ हैं। ये नक्षत्र या राशियाँ वर्तुलाकारके भाग हैं और इसीलिए इन्हे विभागात्मक नक्षत्र अथवा राशियाँ कहा जाता है। इनके नाम भी इन विभागोके समीप आए हुए नक्षत्रों और राशियोंके



नक्षत्रोमें सूर्य

अनुसार हैं। अधिक स्पष्टताके लिए—इन दूसरे प्रकारके नक्षत्रों अथवा राशियोंको तारात्मक नक्षत्र या राशियाँ कहा जाता है। सूर्य, चंद्र और ग्रह इन नक्षत्रों अथवा राशियोंमे से होकर गुजरते रहते हैं। अमुक समयमें आकाशमें ये सभी कहाँ दिखाई देगे, इसका दैनदिन व्योरा अपने देशी पंचागोंमे दिया जाता है। जिनको आकाशके तारोंसे परिचय है, ऐसे लोग स्थिर ग्रहोंको झट पहिचान लेते हैं।

सूर्यके आसपास केवल ग्रह ही भ्रमण नही करते। अनेक धूमकेतु, ग्रहकणिकाएँ और उल्काएँ भी उसके आसपास परिभ्रमण करती है। पर इन सवमें अधिक प्रतिष्ठित ग्रह हैं और इसीलिए

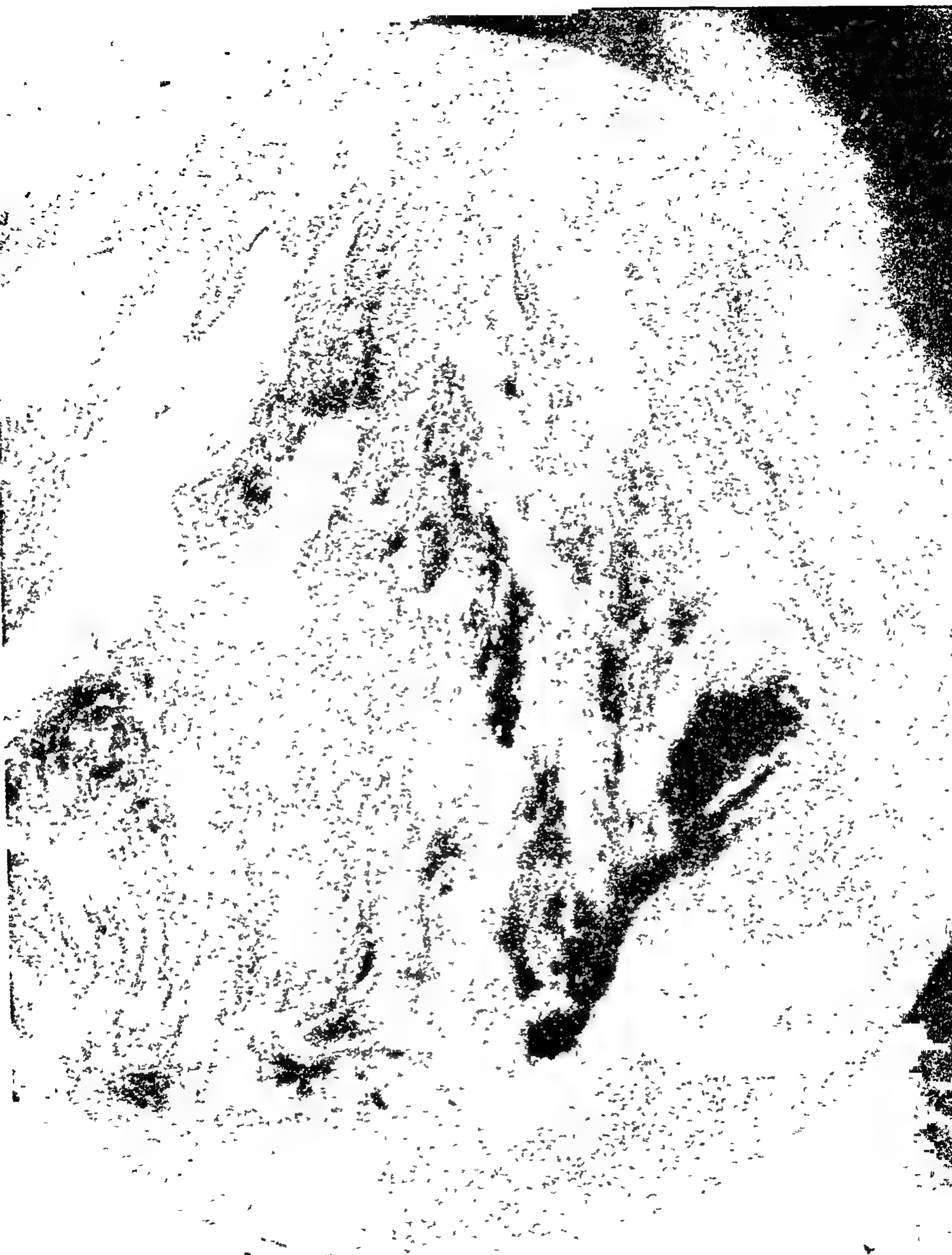
सूर्यको ग्रहपति कहा जाता है। ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु, उल्का, सूर्य आदि सम्मिलित रूपसे एक विशाल आकाशीय संस्थान है, जिसे सूर्यमंडल, सूर्य-परिवार अथवा सौर-जगत कहा जाता है।

सौर-जगत पर विचार करनेके पूर्व सूर्य और ग्रहोंके तात्त्विक भेदको समझ लेना चाहिए। सूर्य और ग्रहोंके बीचकी विशिष्ट असमानता उनके आयतन की है। ग्रहोंकी तुलनामें सूर्य बहुत बडा है। सौर-जगतका सबसे बडा ग्रह गुरु है। गुरु पृथ्वीकी अपेक्षा १३०० गुना बडा है। पर सूर्य गुरुसे १००० गुना बडा है। पृथ्वीकी अपेक्षा १३ लाख गुना बडा सूर्य वास्तवमें कितना विराट आकाशीय गोला होगा, उसकी कल्पना ही करते रहो। इतना बडा सूर्य हमसे १५ करोड कि मी की दूरी पर आया होनेके कारण हमको वह एक थालीके सदृश दिखाई देता है।

द्रव्यसंपत्तिकी दृष्टिसे भी सूर्य महान है। समग्र सूर्यमंडलकी जितनी सम्पत्ति है, उसका ९९% सूर्यमें है, जबकि शेष जगतमें केवल एक प्रतिशत द्रव्य ही है। वजनकी दृष्टिसे भी सूर्य पृथ्वीकी अपेक्षा ३,३०,००० गुना भारी है। विशाल आयतनवाले सूर्यके कम वजनदार होनेका कारण उसकी द्रव्यसंपत्तिका हलकापन है। पृथ्वी घन पदार्थ है, जबकि सूर्य वायवीय। सूर्य-मंडलके सभी सदस्य पृथ्वी जैसे ही हैं, ऐसा नहीं है। कितनेक कम घन और अधिक वायवीय भाग रखनेवाले भी हैं। पर, उन सबकी और सूर्यकी वायुओंके बीच भारी अंतर है। ग्रहोंकी वायु ठंडी है जबकि सूर्यकी अत्यन्त गर्म। सूर्य एक धधकती हुई विराट भट्ठी है। ठंडे ग्रह इस भट्ठीसे प्रकाश और गर्मी प्राप्त करते हैं।

ग्रहोंको ठंडे कहा वह सूर्यके मुकाबलेमें है। हमें विदित है कि हमारी पृथ्वी भी भीतरसे गर्म है। दूसरे ग्रहोंमें भी आंतरिक गर्मी है, फिर भी यह गर्मी इतनी प्रखर नहीं है कि ग्रहमें से निकल कर बाह्य दुनियाको उष्णता प्रदान कर सके। ग्रहोंकी गर्मी चूल्होंकी-सी है, होलीकी-सी नहीं। इसी कारण अत्यधिक गर्मी देनेवाला उत्तप्त सूर्य स्वयं प्रकाशित दिखाई देता है, जबकि ग्रह अप्रकाशित हैं। ग्रहोंको हम लोग जो चमकते देखते हैं वह उनके स्वयंके तेजके कारण नहीं बल्कि सूर्यके प्रतापसे ही है।

सूर्य केवल वायु पदार्थोंकी बनी ज्योति है, परन्तु ग्रह घन, प्रवाहशील और वायुपदार्थोंके बने आकाशीय पिंड हैं। सूर्यकी गर्मीके हिसाबसे ग्रहोंका तापमान और दबाव अत्यन्त कम है और इसी कारण ग्रहोंके द्रव्य या तो स्थायी रूप प्राप्त परमाणुओंकी या उनके घटकोंकी संरचनावाले हैं। ग्रहों पर भौतिक प्रक्रियाएँ और रासायनिक संयोजन चलते रहते हैं। सूर्यमें परमाणुओंके आंतरिक घटकोंकी एवं नाभियोंकी टूटफूट अथवा अति उष्णतामान पर सिद्ध हो सके ऐसी नवसर्जन जैसी नाभिकीय प्रक्रियाएँ सतत चलती रहती हैं। सूर्यके भीतरके प्रबल वायु-घनताकी समता ग्रहोंकी भारी धातुएँ भी नहीं जता सकतीं। इसका कारण ग्रहद्रव्यकी स्थायी स्वरूप-प्राप्त पारमाणविक संरचना है। सूर्यके अंतरालमें परमाणु अपने स्थायित्वको बनाये नहीं रख सकते। प्रचण्ड गर्मी व दबावके कारण वे टूट जाते हैं। इस प्रकार इलेक्ट्रोन नाभिसे अलग होकर शक्तिके रूपमें बहते हैं। परमाणुओंकी नाभियां तब भारी दबावसे सान्निध्य प्राप्त करती हैं और इससे वायुका घनत्व बढ़ जाता है।



पृथ्वी दर्शन
[३५ हजार किलोमीटर दूरसे]

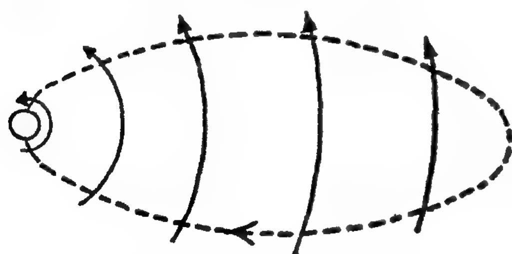


पृथ्वी दर्शन
[सवा लाख किलोमीटर दूर से]

सूर्य और ग्रहोंके बीचका एक अन्तर उनकी तत्त्व-सम्पत्ति का भी है। सूर्य हेलियम जैसी हलकी (किन्तु परम संघनित स्थितिमें रहे हुए) वायुओंसे बना हुआ है, जबकि ग्रह भारी और हलके दोनों तत्त्वोंसे बने हुए हैं। कितने ही बड़े ग्रहों पर हाइड्रोजनका अस्तित्व है, परन्तु छोटे ग्रह इससे वंचित हैं। सूर्य परके हाइड्रोजन और हेलियमका प्रमाण सूर्यके कुल द्रव्यका ९९ प्रतिशत है, जबकि शेषतत्त्वोंकी कुल सम्पत्ति एक प्रतिशत जितनी है।

सूर्यको यदि राजा मान लिया जाय तो ग्रह, उपग्रह आदि उसकी प्रजा होगी। सौर-जगतका राज्यतंत्र समझने योग्य है। सूर्यमंडलके कुल नौ ग्रह हैं। सूर्यसे विभिन्न दूरी पर स्थित इन सारे ग्रहोंके बीचमें कहीं भी टकराहट हो जाना संभव नहीं है। सूर्यसे क्रमशः बढ़ते जाते अन्तर पर क्रमानुसार बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, युरेनस, नेप्चुन और प्लुटो स्थित हैं। ग्रहपरिवारके अंतिम सदस्यकी संभाल लेनेमें सूर्यको कमसे कम छः घंटे लगते हैं। पर सूर्य की सत्ता इतनेसे नहीं रुकती। यह इतने ही अधिक अन्तर पर अवस्थित धूमकेतुओंको भी अपने चारों ओर घूमनेके लिए बाध्य करती है। सूर्यके आसपासके ग्रहोंके प्रदक्षिणामार्ग लगभग वर्तुलाकार हैं जबकि धूमकेतुओंकी कक्षाएँ दबे हुए रूपमें और काफी लम्बाईवाले (बड़ी कक्षा केन्द्र-च्युतिवाले) दीर्घ वृत्त हैं। परिणामस्वरूप ग्रहोंके सूर्यसे दूरत्व अथवा सामीप्यकी गणनासे उन पर पड़नेवाली गर्मीमें बहुत कम फर्क रहता है। धूमकेतुओंके विषयमें यह बात नहीं है। जलकर भस्म हो जाय इस प्रकारकी गर्मी और शरीर हिमवत् बने, ऐसी सर्दी इनको भोगनी पड़ती है। तापका आघात सहकर धूमकेतु धीरे धीरे जीर्ण बनता जाता है। जब धूमकेतु सूर्यके समीप आता है तब सूर्य तापके कारण उसकी पूंछ फूट पड़ती है। सूर्यकी अनेक प्रदक्षिणाएँ करनेके पश्चात् धूमकेतुके जीवनके अंतमें ऐसा समय आता है जब वह टूट कर विलुप्त हो जाता है और उसकी कक्षामें फूलझड़ी जैसी उल्काएँ ही घूमती नजर आती हैं।

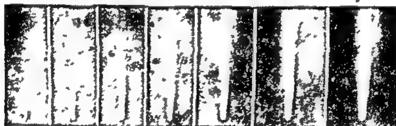
हम ग्रह संबंधी चर्चा कर रहे थे। सूर्यके समीपके चार ग्रह छोटे हैं जबकि इनके बादके अन्य चार ग्रह बड़े हैं। सबसे अंतका ग्रह छोटा है। अंतिम ग्रहकी बातका जिक्र छोड़ भी दें तो सूर्यमालाके आठ ग्रहोंको चार चारके दो भागोंमे विभक्त किया जा सकता है। छोटे ग्रहोंको पार्थिव ग्रह और बड़े ग्रहोंको सौर ग्रह कहा जाता है। आयतनकी दृष्टिसे भिन्नता रखनेवाले ये ग्रहसमूह, दूसरी दृष्टिसे भी भिन्नता रखनेवाले हैं। छोटे ग्रहोंमें से केवल पृथ्वीको ही बड़ा चंद्र प्राप्त है। मंगलके दो चंद्र हैं अवश्य, पर वे बिलकुल छोटे हैं। बुध और शुक्रके चंद्र ही नहीं हैं। इससे विपरीत बड़े ग्रहोंमें गुरुके बारह, शनिके दस, युरेनसके पाँच और नेप्चुनके दो चंद्र हैं। इनमेंसे अनेक चंद्र बहुत बड़े हैं। चंद्रके अतिरिक्त शनिके एक वलय भी है।


धूमकेतु की कक्षा (खंडित रेखा)

वातावरणकी दृष्टिसे भी ये ग्रह-समूह भिन्न हैं। छोटे ग्रहोंका वातावरण पतला है जबकि बड़े ग्रहोंका काफी गाढ़ा। छोटे ग्रहोंमें से दो ग्रह बुध और मंगल, बड़े ग्रहोंके बड़े चंद्रमाओंसे भी छोटे हैं। छोटे होनेके कारण पार्थिव ग्रहोंकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति भी कम है। परिणामस्वरूप हाइड्रोजन, हेलियम आदि हल्की वायुएँ इनका छोड़ अतरिक्षमें भाग गई हैं। बुध पर वातावरण नहीं है। मंगल पर वह बिल्कुल पतला है, जबकि पृथ्वी और शुक्र पर वह संतोषजनक प्रमाणमें है। इस वातावरणमें आक्सिजन, नाइट्रोजन, कार्बोनिक ऐसिड गैस जैसी भारी वायुएँ तथा जल-वाष्प रह सके हैं। बड़े ग्रहोंकी बात बिल्कुल निराली है। जितना बड़ा इनका आयतन है उतना ही बड़ा उनका वातावरण भी है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बड़े ग्रहोंमें ग्रहगर्भ-भाग कम और वातावरण-भाग अधिक है। इनके गर्भ-भाग भले ही छोटे हों परन्तु बड़े होनेके कारण इन ग्रहोंने हाइड्रोजन, एमोनिया और मीथेन जैसी हल्की वायुओंका कैदी बनाकर रखा है, इतना ही नहीं, इन वायुओंको ठंडा बनाकर इनके समुद्र भी बनाए हैं। छोटे ग्रहों पर अनेक भारी धातुएँ हैं। इनमें लोहा मुख्य है। इन ग्रहोंमें से पृथ्वी एक ऐसा ग्रह है कि जिसके वातावरणमें हाइड्रोजन और हेलियम बहुत अल्प मालूम होते हैं। इसका कारण पृथ्वी पर पानीके समुद्रोंका होना है। वस्तुतः पृथ्वीके वातावरणमें हेलियम और हाइड्रोजन बहुत अल्प प्रमाणमें हैं।



एडमंड हेली
(हेली धूमकेतुका शोधक)



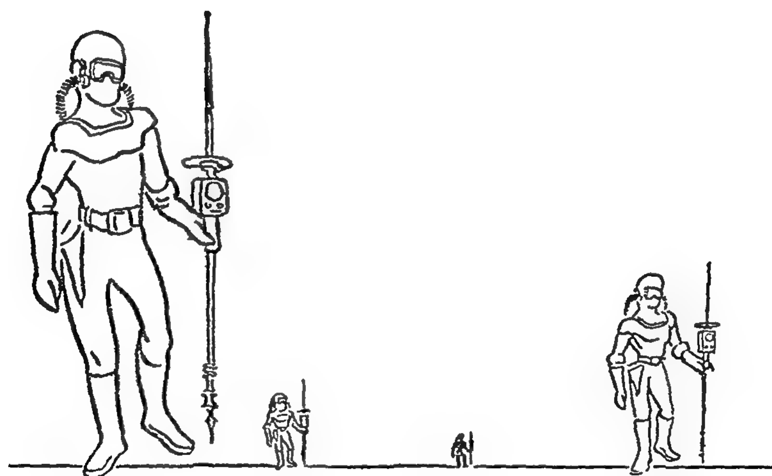
धूमकेतुके विभिन्न दर्शन

आश्चर्यकी बात तो यह है कि बड़े ग्रहोंके चंद्र अपने-अपने ग्रहोंके गुणधर्म जताते नहीं हैं। विपरीत इसके वे छोटे ग्रहोंके गुणधर्म रखते हैं। यह तथ्य बतलाता है कि चंद्र ग्रहोंसे उत्पन्न नहीं हुए हैं। सूर्यसे पृथ्वीकी उत्पत्ति भी इसी प्रकार की बात है न?

प्लूटोकी बातको हम ऊपर अधूरा रख आए हैं। ऐसा करनेका कारण यह था कि प्लूटोको किसी भी ग्रहसमूहमें नहीं रखा जा सकता। इसमें कोई शंका नहीं कि वह एक छोटा ग्रह है। उसके उपग्रह और वातावरण भी नहीं है और इस प्रकार इसे छोटे ग्रहोंमें रखा भी जा सकता है। पर, आश्चर्यकी बात है कि इसके अतिरिक्त वह छोटे ग्रह-समूहकी कोई

विशेपता नहीं रखता। कदाचित् वह किसी गुटवंदीमें नहीं मानता हो। अपने-आप चाहे वह कुछ भी क्यों न मानता हो, कई खगोलशास्त्रियोंने उसे 'स्थानभ्रष्ट नेप्चुन चंद्र' कहकर जातिसे वाहर कर दिया है!

प्लुटोने जिस प्रकार अपवाद दिखाया है, इसी प्रकार पृथ्वीने भी एक विशिष्ट प्रकारका अपवाद दिखलाया है। इसका यह अपवाद है इसकी प्राणवान जीवसृष्टिकी वहुलता। मंगल पर जीवसृष्टि है पर वह अंतिम अवस्थाकी मानी जाती है। उसकी जीवसृष्टिमें वुद्धिशाली प्राणीतत्त्वका अभाव कल्पित किया जाता है। जीवसृष्टिका अन्य एक अधिकारी शुक्र भी है। पर इसकी जीवसृष्टिको अधिकसे अधिक प्रारम्भिक अवस्थाकी जीवसृष्टि माननेका मत प्रवल है। रही अव पृथ्वी की वात। वुद्धिशाली प्राणीयुक्त इसकी जीवसृष्टि अनन्य है—अलवत्ता ऐसा साधिकार कहनेमें मनुष्यको अभी अनेक मंजिलें तय करनी हैं। ब्रह्मांडके किसी भी तारा-विश्वके एकाव तारेके किसी ग्रह पर मनुष्यसे भी उन्नत प्राणीसृष्टि अवस्थित होनेका नकारा नहीं जा सकता है। पर साथ-साथ तत्संवंधी प्रमाण भी प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं। संभवित और असंभवित सभी प्रकारकी विचारशक्तिसे मनुष्य सम्पन्न है इसीलिये हमने कहा है कि पृथ्वीकी जीवसृष्टि अनन्य है।



[मनुष्यकी ऊँचाई और वजनमें एक निश्चित प्रकारका संवंध है। अलग-अलग ग्रहों पर कम ज्यादा गुरुत्वाकर्पण होनेके कारण, यदि वहाँ हमारी पृथ्वी जैसे ही मनुष्य वसते हों तो उपर्युक्त संवधानुसार ऊँचाई वताते हुए मनुष्यका चित्र।]

४. ग्रहपति सूर्य

सूर्यसे हम ऐसे अभ्यस्त हो गये हैं कि कभी इसके नहीं देखनेकी कल्पना भी नहीं कर सकते। कल्पना नहीं करनेका एक कारण ऐसे प्रसंगका विरल होना भी है। सौ डेढ़ सौ वर्षों के पश्चात् ऐसा प्रसंग उपस्थित होता रहता है जब सूर्य एकाएक दीखना बन्द हो जाता है। एक तो इस कारण और दूसरे अधिकसे अधिक सात मिनट तक सूर्यके अदृश्य होनेके कारण, इसके न दीखनेकी बात पर अनेकोंको विश्वास नहीं होता। खग्रास सूर्यग्रहणके समय सूर्यका एकाएक दीखना बंद हो जाता है। उस समय काला चंद्र सूर्यबिम्बको संपूर्णतया ढककर उसके प्रकाश और गर्मीके मार्गमें अस्थायी आड़ खड़ी कर देता है।

सूर्यकी महत्ताका वास्तविक ख्याल तो खग्रास ग्रहणके समय ही आता है। घिर जानेके अंतिम क्षण तक सूर्य प्रकाश देता रहता है। परन्तु इसके संपूर्ण घिर जाने पर ही दिवस एकाएक रातमें परिवर्तित हो जाता है। आकाशमें तारे निकल आते हैं और अंधकारकी अचिंत्य सत्ताके प्रभावसे प्राणीमात्र अत्यन्त भयभीत हो जाते हैं। वृक्षोंमें छिपनेका प्रयत्न करते हुए पक्षियोंकी चीखें, पशुओंकी दौड़धूप और मनुष्योंकी घबराहट इस समय चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं। प्रकाश और छाया इसमें वाद्यक्य करते हैं। पृथ्वीतल पर दिखाई पड़ता इसका उन्मादक दृश्य कमजोर दिलोंको झकझोर कर डालता है। पांच सात मिनट तक ही चलनेवाला यह तांडव प्रबल दैवी प्रकोप समान अपरिहार्य एवं असह्य बन जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्यकी महत्ताका ध्यानमें रखकर हमारे पूर्वजोंने ग्रहणको विशेष महत्त्व दिया होगा। यद्यपि आज ग्रहण रहस्यपूर्ण नहीं रहे तो भी सूर्यकी महत्तामें कोई कमी नहीं हुई है। वास्तविकता तो यह है कि सूर्यका महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। सूर्य एक तारा है। प्रकृति द्वारा रचित अनेक ताराओंमें से यह एक सम्मानित तारा है। इसको यह सम्मान उसके परिवारके रूपमें भेंटमें प्राप्त हुआ है। परिवार-सम्पन्न इस तारेके अपने कई रहस्य हैं। इनमें से कइयोंका रहस्योद्घाटन हो चुका है जबकि कितनेक अभी रहस्यमय ही हैं। जीवनदाता होनेके कारण जिस प्रकार सूर्य हमारी पूजाका पात्र है, उसी प्रकार उसके अनेक रहस्योंके कारण वह हमारी खोजका भी पात्र है। अत्यन्त दूर होनेके कारण सूर्यके अत्यन्त निकट पहुँचकर उसका अभ्यास करना संभव नहीं है इसीलिए सूर्यका अभ्यास विशिष्ट युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा किया जाता है।

अब हम सर्वप्रथम सूर्यके ग्रहपतिस्वरूपका दर्शन करेंगे।

चार सौ किलोमीटरकी रफ्तारसे उड़नेवाले वायुयान द्वारा पृथ्वीकी एक परिक्रमा करनी पड़े तो उसमें कमसे कम चार दिन लग जायँ। पर सूर्यके चारों ओर उसी वेगसे एक चक्र लगाना

हो तो उसमें ४५० दिन अथवा सवा वर्ष जितना समय लग जाय। सूर्य एक विराट आकाशीय गोला है। इसकी सतहका द्रव्य अपनी हवा जितना पतला है पर सूर्यके भीतर जाने पर यही द्रव्य उत्तरोत्तर गाढ़ा बनता जाता है। सूर्य-त्रिज्याके आधे भाग पर आए हुए द्रव्यका घनत्व पानी जितना गाढ़ापन बताता है। पर सूर्यके केन्द्रभागमें आए हुए द्रव्यका घनत्व पानीके घनत्वके हिसाबसे ७५ गुना अधिक बन जाता है। सूर्यगर्भका यह घनत्व सीसेके घनत्वके मुकाबिले ११ गुना और पृथ्वीकी सर्वाधिक भारी धातु ओसमियमके घनत्वसे साढ़े तीन गुना है।

तो क्या सूर्यका केन्द्रभाग ओसमियम जैसी भारी धातुओंसे बना हुआ है? नहीं, यह केवल वायुओंसे बना हुआ है। वैज्ञानिकोंका कहना है कि सूर्यके केन्द्रभाग पर होता दबाव अपने हवा-दबावसे सौ अरब गुना है। सामान्य भाषामें कहें तो यह दबाव प्रति चौरस सेन्टिमीटर आठ करोड़ टन है। इसके अतिरिक्त एक और दबाव भी सूर्यके पेटमें कार्य करता है। यह है प्रकाशका दबाव। प्रकाशका दबाव प्रति चौरस सेन्टिमीटर बीस लाख टन है। मस्तिष्कको भ्रमित कर देनेवाली इस बातको किनारे रख, चलिए सूर्यका एक तारेके रूपमें परिचय प्राप्त करें।

सूर्य जलती हुई वायुओंका एक विराट पिंड है। इसकी सतह सदैव अस्थिर और अशांत रहती है। सूर्य-सतहकी वायुएँ बिलोनेमें घूमती हों इस प्रकार ऊँची-नीची होकर अनेक रूप धारण करती रहती हैं। सूर्य पर होनेवाले बवंडरोंके मुख्य पात्र सूर्योन्नत अग्निपिंडोंके नामसे परिचित सूर्यमेंसे दूर-दूर तक उछलनेवाली अग्नि ज्वालाएँ, वायुजिह्वाएँ एवं मशालें हैं। ये सूर्योन्नत अग्निपिंड सुन्दर होते हुए भी अत्यन्त भयानक हैं। विशाल आयतनवाले अग्निपिंडों ५० हजार किलोमीटर लम्बे, ९००० कि. मी. चौड़े और दो लाख कि. मी. ऊँचे उछलनेवाले अग्निपिंड सामान्य गिने जाते हैं। सन् १९४६ में दर्शित बड़ा अग्निपिंड आजतकके दर्शित अग्निपिंडोंमें सबसे विराट है। उसके उछलने की रफ्तार प्रतिघंटा छः लाख कि. मी. थी जबकि उसकी सबसे ऊँची छलांग १६ लाख कि. मी. ऊँचाईकी थी।



सूर्योन्नत अग्निपिंड

सूर्यसे छोटी-मोटी अग्नि ज्वालाएँ निरंतर निकलती रहती हैं। ये अग्निज्वालाएँ प्रति सेकंड ३० कि. मी. के वेगसे लपकती रहती हैं। लपलपाहट करती हुई इन जिह्वाओंका जीवन क्षणिक है। वे पाँच मिनटसे अधिक टिक नहीं सकतीं। इन अग्निशिखाओंके प्रिय विहारस्थान सूर्यके ध्रुवप्रदेश हैं।

अग्निपिंडों और वायुजिह्वाओंके अतिरिक्त सूर्य के अनेक स्थानों पर अग्निमशालें दिखाई पड़ती हैं। अग्निमशालोंका रूप धारण करनेवाला सूर्यभाग एकाएक प्रकाशित हो जाता है और फिर कुछेक मिनटोंमें अपने बहुरंगी रूपको उतार देता है। अग्निमशालोंका खास काम मेरुज्योतिका उत्पन्न करने तथा पृथ्वी परके रेडियो श्रवणमें अड़चन पहुँचाना है। अग्निमशालोंको सूर्यके शोधित रूपका संकेत कहा जा सकता है। इनके द्वारा होनेवाली रेडियो-दखलकी प्रवृत्तिकी अन पूर्व सूचना दी जा सकती है। सूर्य पर मशालके प्रकटित होनेके छब्बीस घंटे बाद उसका प्रभाव पृथ्वी पर पहुँचता है। यह हमारी कमनसीबी है कि सूर्य पर उत्पन्न होनेवाली पांच मशालोंमें से चार गड़बड़ पैदा करनेवाली ही होती हैं। घाव पर नमक छिड़कने जैसी बात तो यह है कि जब सूर्य पर अधिक कलंक होते हैं तब ये मशालें भी अनुपातमें अधिक अस्तित्व रखनेवाली होती हैं।



सूर्योन्नत ज्वाला

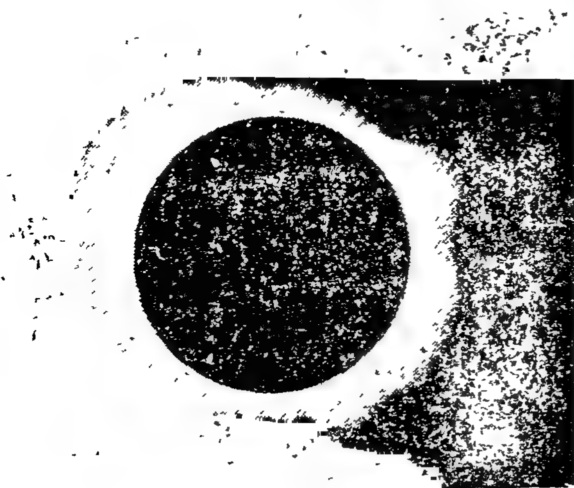
सूर्योन्नत अग्निपिंडोंके अतिरिक्त सूर्य पर नग्न आंखोंसे देखे जानेवाले सूर्य कलंक हैं। सूर्यकी सतहके अनुपातमें कम उष्णतामानवाले होनेके कारण ये काले दिखाई देते हैं। वास्तवमें ये अपनी जैसी अनेक पृथ्वियोंको कुछेक मिनटोंमें निगल जाय उतने गर्म और विशाल होते हैं। सूर्य-कलंकोंका सूर्यके चुंबकीय क्षेत्रके कारण उत्पन्न होना माना जाता है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि ये कलंक सूर्यके ५° से ४५ अक्षांश प्रदेशमें ही उत्पन्न होते हैं। इतना ही नहीं पर अधिकांशतः दो-दोके

युग्मोंमे खिसकते दिखाई देते है। सूर्य अक्षभ्रमण करता है यह बात हमे सूर्य कलंकोंके कारण समझमें आई थी।

सूर्य पर सदैव कलंक होते है ऐसा नहीं है। कभी कलक विलकुल नही होते तो कभी अत्यधिक मात्रामें होते हैं। अनेक निरीक्षणोंसे यह ज्ञात हुआ है कि अधिकतम या न्यूनतम कलंक दिखाई देनेकी समयावधि ग्यारह वर्षकी है। ये दोनों प्रसंग अभ्यासकर्ताओंके लिए वड़े महत्त्वशील हैं। सूर्यकलंकोंकी चुवकीय शक्ति वड़ी भारी है। अपनी पृथ्वीकी चुवकीय शक्तिसे सूर्यकलंकोंकी चुंवकीय शक्ति एक हजार गुनासे भी अधिक है। यह प्रवल चुवकीय क्षेत्र अनेक प्रकारके झंझावात उत्पन्न करता है।

सूर्यके वातावरणको सूर्यग्रहणके समयके अलावा नग्न आँखोंसे नहीं देखा जा सकता। यह आवरण तीन परतोंसे वना हुआ है। सूर्यविवके सर्वाधिक सामीप्यका तथा २०० से ३०० कि. मी. तक पहुँचनेवाला प्रथम आवरण 'परिवर्तित सतह' (Reversing layer) है। सूर्य-वर्णपटकी चमकती रेखाएँ इस आवरणके वर्णपटमे परिवर्तित हो काली दिखलाई पड़नेके कारण इसे यह संज्ञा दी गई है। परिवर्तित परतका उष्णतामान सूर्यकी सतहके उष्णतामानकी अपेक्षा वहुत कम है।

सूर्यका दूसरा आवरण 'रंगावरण' परिवर्तित सतहके ऊपर आया हुआ है। यथा नाम तथा गुणकी भाँति यह रंगोकी लहरोंवाला आवरण है। सूर्यग्रहणके समय रक्तरंगी दिखलाई पड़ने-वाले इस आवरणमें सूर्योन्नत ज्वालाओं और अग्निपिंडोंका तांडव देखनेको मिलता है। इसके साथ-साथ केल्शियम-के चमकते वादल हाइड्रो-जनके निस्तेज वादलोंके साथ मिलकर तेजछायाका एक अनोखा रास-नृत्य करते हैं।

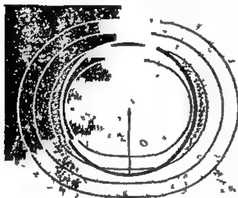


सूर्यका किरीटावरण

सूर्यके सवसे ऊपरका तथा अति महत्त्वका आवरण किरीटावरण है। १२ लाख कि. मी. से २० लाख कि. मी. तककी उसकी व्यापकता आश्चर्य उत्पन्न करती है। आश्चर्यकी दूसरी वात उसका सौन्दर्य है। उसकी किरणछटा अलौकिक है। सूर्यकी ओरका पीले रंगका जामा पहननेवाला किरीटावरण विभाग वाहरके हिस्सेमें सफेद रंगछटा दिखाता है। पूर्णचंद्रकी तुलनामें आधा तेज प्रदत्त करनेवाले इस आवरणकी कमनीय रूपछटा केवल खग्रास सूर्यग्रहणके समय और

वह भी अधिकसे अधिक सात मिनट तक ही देखनेको मिलती है। शेष समय सूर्यके प्रखर प्रकाशमें वह अदृश्य बनी रहती है। स्पंदित रहते इस किरीटावरणमें इलेक्ट्रोनोंकी नियमतापूर्ण खींचातानी बराबर चल रही है। यहाँ परमाणुओंको अपने इलेक्ट्रोनोंसे वंचित किया जाता है। कॅल्शियम, लोहा तथा निकल जैसे तत्त्व इस विदेह-क्रियाका भोग बन रहे हैं। किरीटावरणका तापमान एक लाखसे दस लाख अंश सेन्टिग्रेड जितना ऊँचा आँका जाता है।

पर यह हुई खगोलशास्त्रकी दृष्टिसे सूर्यकी बात। रेडियोखगोलशास्त्री सूर्यको दूसरी ही दृष्टिसे देखते हैं। इनका संबंध सूर्यके प्रकाशकी अपेक्षा आवाजसे अधिक है। इस कारण वे सूर्यबिंबकी अपेक्षा किरीटावरणको अधिक महत्त्वपूर्ण गिनते हैं। रेडियो-खगोलशास्त्रियोंके अनुसार सूर्यबिंब काला (आवाज नहीं करनेवाला) है। इस कालें सूर्यके चारों ओर विस्तीर्ण और चमकता रेडियो-सूर्य अवस्थित है। दूसरे रूपमें कहा जाये तो रेडियो-सूर्य काले छिद्रवाली चमकीली अंगूठी है। अगर केवल इतना ही है कि रेडियो-सूर्यका वलय पतला कंगन होनेके बजाय सूर्यबिंबसे बीस गुना अधिक मोटा है। अर्थात् रेडियो-सूर्य दृश्य-सूर्यसे विस्तारमें ४०० गुना और आयतन में ८००० गुना बड़ा है। अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि रेडियो-सूर्य गोल होनेके स्थान पर अंडाकार है।



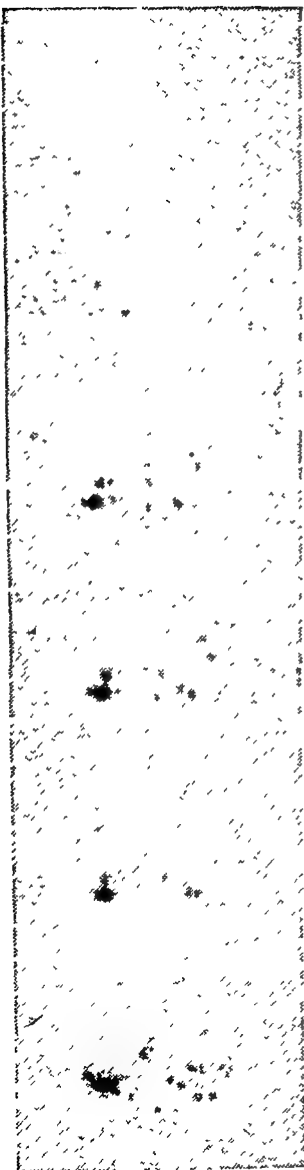
रेडियो-सूर्य

रेडियो-सूर्य स्पंदनशील है। इसके रेडियोवाई (फेफड़ा) आती है। इसके कारण इसका शिखाप्रकाश प्रकम्पित रहता है। रेडियो-सूर्यके ये स्पंदन कभी-कभी कम तो कभी-कभी बहुत अधिक, एक मिनटमें दस हजारसे दस लाख जितने होते हैं। सूर्यके इस द्रव्यक्षयकी रीतिकी टोह लगानेके लिए जब वैज्ञानिकोंने कार्यारम्भ किया तब इसके मूलमें उन्हें सूर्यकलंकके दर्शन हुए। सूर्यकलंकोंको हम क्या मानें—शक्ति स्रोत या उद्दीपक?

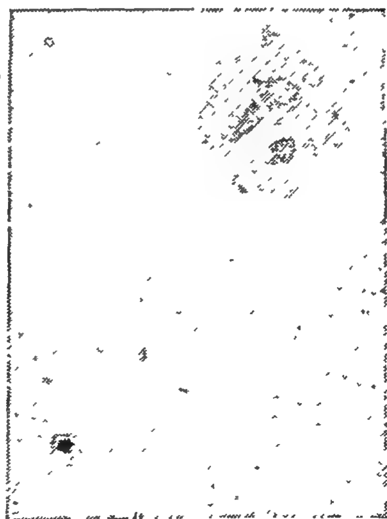
किरीटावरणकी वायु निरंतर विकसित रहती है। सूर्यमेंसे आकाशमें बह जानेवाली इस वायुको 'सूर्यप्रवात' कहा जाता है। इस प्रवातके कारण पृथ्वीके चारों ओर जो वातावरण निर्मित होता है उसे 'वान एलन पट' कहा जाता है। पृथ्वीसे १०,००० कि मी दूर से प्रारम्भ होता यह आवरण प्रबल संहारक शक्तिवाला होता है और उसके कारण ही वह मनुष्यकी अंतरिक्षयात्राके लिए अत्यन्त खतरनाक माना जाता है।

परंतु भौतिक खगोलशास्त्री सूर्यको दूसरे प्रकारसे ही देखते हैं। इनकी शोधका विषय है ऊर्जा। सूर्यमें ऊर्जा कैसे पैदा होती है तथा यह ऊर्जास्रोत कहाँ तक प्रयोगमें आता रहेगा वगैरह उनकी शोधका अन्य विषय है। ऊर्जाका संबंध उष्णतामान और विकिरणके साथ है।

सूर्यकी सतहका उष्णतामान ६०००° सेन्टिग्रेड है जबकि रंगावरणका २०,०००° सेन्टिग्रेड और किरीटावरणका १०,००,०००° सेन्टिग्रेड है। आवरणोंमें इतना अधिक उष्णतामान किसलिए है?—इस प्रश्नके फलस्वरूप ही अनेक अन्वेषण हुए हैं और इन्होंने ज्ञानोपार्जनके कितने ही नए रहस्योंका उद्घाटन किया है।



यह हमने जान ही लिया है कि सूर्यके केन्द्रीय भागका उष्णतामान डेढ़से दो करोड़ अंश सेन्टिग्रेड जितना है। पर इतने अधिक उष्णतामानकी कल्पना कैसे करें? वैज्ञानिकोंका कहना है कि आलपीनका शीर्षभाग यदि इतना अधिक उष्णतामान धारण करे तो उससे विमुक्त शक्ति द्वारा आलपीनके चारों ओरके १६० कि. मी. के क्षेत्रकी सभी वस्तुएँ जलकर खाक हो जायँ। पर यह तो हुई केवल पृथ्वीकी सतहके हिसाबसे होनेवाले परिवर्तनोंकी बात। सूर्यके पेटेकी वायु पृथ्वीके वातावरणकी वायुकी भाँति मुक्त नहीं है। इस पर सूर्यद्रव्यका भारी दबाव पड़ा हुआ है। भारी दबाव तथा ऊँचे उष्णतामानके कारण सूर्यके अंतरालके परमाणु मूल रूपमें नहीं रह सकते। वे टूट जाते हैं। परमाणुओंके इलेक्ट्रोन इनकी नाभियोंसे अलग हो जाते हैं। परमाणुभंजनकी इस क्रियासे प्रचंड शक्ति उत्पन्न होती है। सूर्यमें उत्पन्न होकर आकाशमें बह जानेवाली ऊर्जाका मात्र दो अरबवाँ भाग



सूर्यकलंक (दोनों चित्र)

अपनी पृथ्वीके हिस्सेमें आता है। शक्ति उत्पन्न करनेके लिए सूर्य प्रति सेकंड ५६४० लाख टन द्रव्यका ५६०० लाख टन हेलियममें रूपान्तर करता है। सूर्यका शेष चालीस लाख टन द्रव्य शक्तिके रूपमें रूपांतरित हो जाता है।

प्रति सेकंड ४० लाख टन द्रव्य खो देनेवाले सूर्यकी आयु कितनी होगी—ऐसा प्रश्न उठना स्वाभाविक है। जिनको सूयके आयतनकी वास्तविक कल्पना नहीं है, वे यही मान लेंगे कि सूर्य अधिकसे अधिक दस पन्द्रह हजार वर्ष तक टिक सकेगा। पर भौतिकशास्त्री इस प्रकारके भयकी कल्पना नहीं करते। उनका कहना है कि सात अरब वर्षोंसे निरंतर प्रकाशित सूर्य अब भी चालीस पचास अरब वर्षों तककी आयुको भोगनेवाला है। हाँ, इस सबधमें सभी एक राय नहीं हैं कि आयुष्यकी समाप्ति पर सूयका स्वरूप कैसा होगा। सूयका अंतिम स्वरूप रूपविकारी तारेका अथवा स्फोटक तारेका भी हो सकता है। सूयके सफेद वामन तारेका स्वरूप धारण करनेकी सामान्य कल्पना भी प्रचलित है। पर यह अत्यन्त दूर की बात है। वनमानको त्यागकर हमको उतने अधिक गहरे पानीमें जानेकी अभी कोई आवश्यकता नहीं है।

सूयका सर्वसामान्य आश्चर्य उसका अपना प्रखर प्रकाश है। हम जानते हैं कि तारे भी छोटे-मोटे सूर्य हैं पर अत्यन्त दूर अवस्थित होनेके कारण सूयकी भाँति वे अपना रोब नहीं बता सकते। आकाशमें जो तारे सर्वाधिक चमकते दिखाई देते हैं उनको प्रथम वर्गके तारे कहे जाते हैं। ऐसे ताराओंकी तुलनामें सूयकी चमक १२० अरब गुना अधिक है। इसका अर्थ यह हुआ कि अपने ताराविश्वके आधे तारे प्रथम वर्गके तारे बनकर प्रकाश देना प्रारम्भ करें तो भी उनका सम्मिलित प्रकाश बड़ी कठिनाईसे सूर्य जितना होगा। रजनीपति चन्द्रके पृथ्वी पर पड़नेवाले प्रकाशकी तुलनामें सूर्य प्रकाश ४ लाख गुना तेजस्वी है।

हम सहसा कह उठेंगे कैसा महान है हमारा सूर्य! पर ऐसा कह उठने पर सुदूर स्थित तारोंके साथ हम किसी प्रकारका अन्याय तो नहीं करते हैं न?

न्याय अन्यायका फैसला किस प्रकार करें? इसके लिये क्या सभीको एक तराजू तौलना चाहिए? क्या तारोंके विषयमें यह सचमुच सम्भव है? समानताके लिए सभी तारोंको एक ही तुला पर तौला जा सकता है क्या?

अपने ताराविश्वके तारोंमेंसे कितने ही तारे हमारे नजदीकके हैं तो कितने ही अत्यन्त दूरके। इन सारे तारोंको अपनेसे ३२.६ प्रकाशवर्षके एक समान अंतर पर रख देनेसे एक भारी आश्चर्यकी बात देखनेको मिलती है। आकाशके कई धुँधले तारे एकदम तेजस्वी बनते दिखाई देते हैं। विपरीत इसके कई प्रकाशवान तारे धुँधले नजर आते हैं। सबसे अधिक विचित्रता तो सूय जताता है। वह एकदम निस्तेज तारा बन जाता है!!

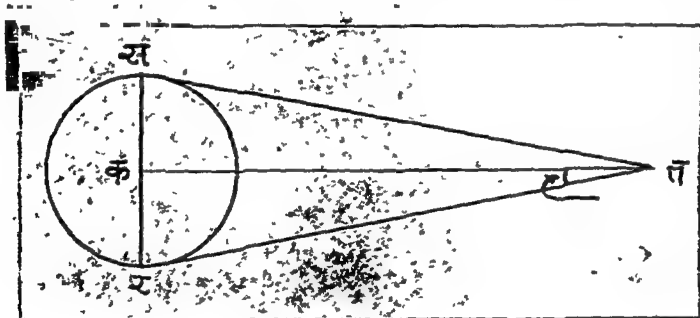
इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा यह महान सूर्य मंदाकिनीविश्वके तारोंमेंसे एक अति सामान्य तारा है। सूयके लिए हम गर्व करें पर क्या हमारा ताराविश्व ऐसा करता होगा?

पर इसके लिये हमें तारों और ताराविश्वकी बात करनी रही।

५. तारकतेज और वर्ग

हमसे नजदीकके तारे—दिनपति सूर्यकी बात हमने अभी की। उसके अनुसंधानमें आकाशके और तारोंकी चर्चा करते समय हमें अनेक बातोंका खयाल रखना पड़ेगा। तारे हमसे कितने दूर हैं? तारोंका तेज कैसे नापा जाता है? तारे कितने गरम हैं? तारे कितने बड़े हैं? तारोंमें किन प्रकारके और कौनसे द्रव्य हैं? ताराद्रव्यकी घनता क्या है? तारोंकी गतियाँ कौनसी-कौनसी हैं? वगैरह इनमें मुख्य हैं।

उपर्युक्त प्रश्नोंमेंसे सबसे पहले प्रश्नकी थोड़ी चर्चा करेंगे। दूरबीनसे देखने पर सूर्य, चंद्र और ग्रह नग्न आँखोंकी अपेक्षा ज्यादा बड़े दिखाई पड़ते हैं। मगर तारोंका हाल वैसा नहीं है। तारे केवल प्रकाशबिन्दु ही दीखते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि तारे हमसे बहुत-बहुत दूर हैं। सूर्यकी बात छोड़ दें तो हमसे एकदम नजदीकका तारा सवा चार प्रकाशवर्षकी दूरीवाला है। दूसरे तारे इससे भी ज्यादा दूर हैं। तारोंकी दूरी नापनेकी बहुत प्रसिद्ध एक रीति लंबन



(Parallax) पद्धति है। सूर्य-पृथ्वीके बीचके औसत अंतरके द्वारा तारेके आगे जो कोण बनता है उसे लंबन कहा जाता है। लंबनका नाप कोणीय है और इस कारण उसे अंश, कला और विकलामें दर्शाया जाता है। एक अंशमें ६० कला और ३६०० विकला होती हैं। हमसे अत्यंत नजदीकके तारेका—समीप नराश्वका लंबन ०.७६ विकला है। आकाशके सबसे ज्यादा तेजस्वी तारे व्याधका लंबन ०.३७८ विकला है। समीप नराश्व हमसे ४.३ प्रकाशवर्ष दूर है जबकि व्याध ८.७ प्रकाशवर्ष दूर। और तारे तो इनसे भी ज्यादा दूर हैं। कईएक तारे इतने दूर हैं कि उनके प्रकाशको पृथ्वीतक पहुँचनेमें हजारों वर्ष बीत जाते हैं।

आकाशके सभी तारे एक-से प्रकाशित नहीं हैं और वे सभी हमसे एक-सी दूरी पर भी नहीं हैं। एक समान तेजस्वी तारोंमेंसे जो तारे हमसे नजदीक हैं वे चमकते दिखाई पड़ते हैं और दूरवाले तारे निस्तेज। तारे सचमुच कितने तेजस्वी हैं यह जाननेके लिए तारोंको एक-से अंतर पर होनेका मानकर उनके प्रकाशकी तुलना की जाती है। (प्रकाशकी तुलनाके लिये १० पार्सेक या ३२.५८ प्रकाशवर्ष अंतरका उपयोग किया जाता है। १० पार्सेकके हिसाबसे तारेका जो वर्ग निश्चित होता है उसे तारेका निरपेक्ष वर्ग कहा जाता है। निरपेक्षमें वर्ग तारेके दृश्य वर्गसे बिलकुल भिन्न है।) दक्षिणाकाशमें दिखाई पड़ते जय और विजय तारे नग्न आंखोंसे एक-से तेजस्वी मालूम होते हैं मगर हकीकत और है। जय हमसे निकटका तारा है जबकि विजय दूरका। जयका निरपेक्ष वर्ग ४५ है मगर विजयका—१०। मतलब कि विजयका सच्चा तेज जय तारेके तेजके हिसाबसे १६५ गुना है। विजय दूर है इसी कारण वह जयके बराबर दिखाई देता है।

हमें अत्यन्त तेजस्वी दिखाई पड़ता सूर्य वास्तवमें एक निस्तेज तारा है। उसका निरपेक्ष वर्ग ४८ है। जय तारेका निरपेक्ष वर्ग ४५ है। यों हम कह सकते हैं कि सूर्य और जय करीब एक-से तेजस्वी तारे हैं। इस बातको दूसरे ढंगसे यों कहा जायगा—सूर्यको हमसे दूर हटाकर जय तारेके अंतर पर रखा जाय तो वह जयकी तरह प्रथम वर्गका तारा मालूम होगा।

सूर्य-तेजको इकाई मानकर अन्य तारोंकी सच्ची तेजस्विता (जिसे तेजांक कहा जाता है) दर्शाई जाती है। जयका तेजांक १४ है और विजयका १६५। व्याध तारा हमसे ८.७ प्रकाशवर्ष दूर है। उसका तेजांक २६ है। अगस्त्यका दूरत्व १५० प्रकाशवर्ष है और उसका तेजांक ४,२०० है।

सूर्यके स्थानमें व्याधको रख दिया जाय तो हमें प्राप्त होती गरमी और प्रकाश २६ गुना बढ़ जायगा। मगर ऐसा होनेके साथ ही पृथ्वी परका जीवन बहुत कम समयमें खतम हो जायेगा। व्याधके स्थान पर यदि अगस्त्यको पसंद करें तो? ऐसा होने पर अगस्त्यकी गरमीके कारण दो चार मिनटमें ही पृथ्वी गलकर वायुपिंडके रूपमें नामशेष हो जायगी।

तारोंके तेजकी तरह उनके तापमान भी एक-से नहीं हैं। तापमानके फर्कके कारण भिन्न-भिन्न तारोंके रंग भी भिन्न-भिन्न हैं। कई तारे लाल हैं तो कई पीले या नीले। रंगोंके हिसाबसे भी तारकवर्ग माने गये हैं। इस प्रकारके वर्गोंको वर्णवर्ग कहा जाता है। तारोंके रंग उनके तापमानके द्योतक हैं। लाल तारे औसतन ठंडे तारे हैं जबकि नीले तारे अत्यन्त गरम। लाल और नीले तारोंके बीचमें नारंगी, पीले, पीतश्वेत और नीलश्वेत तारे आते हैं। लाल तारोंका तापमान २,०००° से से ३०००° से है। रंगानुक्रमसे तारोंके तापमानका क्रम ३, ४, ६,८ और १० हजार अंशका होते हुए नीले या अतिनीले तारोंके लिए वह २० हजारसे ३० हजार अंश सेंटिग्रेड हो जाता है। वर्णवर्गके हिसाबसे हमारा सूर्य करीब ६००० अंश सेन्टिग्रेड तापमान-वाला पीले रंगका एक तारा है। बलिहारी है रंगकी! वर्णवर्गके हिसाबसे भी सूर्य एक सामान्य तारा ही है!

करीव साठ साल पहले तारोंके रंग और वर्गके संवंधके वारेमें किसीको कोई जानकारी नहीं थी। हर्ट्झस्प्रंग नामक वैज्ञानिकने तव यह घोषित किया कि सारे लाल तारे (म वर्णवर्ग) एक-से नही है। विश्वकी अनेक चीजें एक-सी नहीं हैं इस कारण उपर्युक्त वातका आश्चर्य पैदा न भी हो। फिर भी वात आश्चर्यजनक थी ही। तारोंके तेज अलग-अलग रंगके होनेके अतिरिक्त कम या अधिक मात्रावाले भी हो सकते हैं। मगर एक ही रंगवाले तारोंके दो विभिन्न या स्पष्ट समूह हों यह वात विलकुल नई थी। हर्ट्झस्प्रगने दिखाया कि अवकाशस्थित लाल तारोंमेंसे कई एक अत्यंत तेजस्वी हैं तो कई धुंधले। उन्होंने तेजस्वी तारोंको विराट तारे कहा और निस्तेज तारोंको वामन।



हर्ट्झस्प्रंग

सन् १९१३ का वर्ष महत्त्वका रहा जवकि अमेरिकन खगोलशास्त्री रसेल उपर्युक्त वातकी गहराईमें उतरे। आकाशके तारोंको निरपेक्ष वर्ग और वर्ण वर्गकी दृष्टिसे आलेखित करने पर उन्हें मालूम हुआ कि अकेले लाल तारे ही नहीं किन्तु नारंगी (क वर्ग), पीले (ग वर्ग) और पीतश्वेत (फ वर्ग) तारे भी तेजस्वी और निस्तेज ऐसे दो तारासमूहोंमें वँट जाते हैं।

इस आलेखसे कुछ और वातें भी जाननेमें आई हैं। उनमेंसे एक वात यह है कि आकाशके अधिकांश तारे तेज और रंगके क्रमको अनुसरनेवाले हैं। आकृतिमें (पृष्ठ ३४) इनको अवग्रह ऽ द्वारा दर्शाया गया है। पहचाननेमें आसानी हो इस कारण इन तारोंको मुख्य श्रेणीके या समक्रम-तारे कहा गया है। दूसरी वात तापमान और तेजांककी है। कम तापमानवाले कई तारोंका निरपेक्ष वर्ग ऊँचा है, मतलव कि उनका तेजांक ज्यादा है। तारोंकी गरमी निक्षेप-शक्ति ज्यादा हो (या उनकी वाहरी सतहका क्षेत्रफल ज्यादा हो) तभी यह संभव है। इन सारी वातोंका अर्थ यह हुआ कि म, क, ग और फ वर्णवर्गके अति-तेजस्वी तारे हकीकतमें अति-विशाल सतहवाले वहुत वड़े तारे या विराट तारे होने चाहिये। आलेख द्वारा मालूम होता है कि इन तारोंके निरपेक्ष वर्ग १ से ३ तकके हैं। इतना ही नहीं उनका अपना अलग चौका (आलेखमें दाहिनी ओर) भी है। इन तारोंके तेजांक ६० से लेकर १२०० तकके हैं। सुप्रसिद्ध स्वाति और रक्तांगी रोहिणी इसी प्रकारके तारे हैं। तीसरी वात म, क, ग और फ वर्ण वर्गके कुछ तारोंकी है। ये तारे विराट तारोंसे भी ज्यादा ऊँचा तेजांक दर्शाते हैं। उनके निरपेक्ष वर्ग –५ से –८ हैं और उनका आलेखपट विराट तारोंके जैसा ही है।

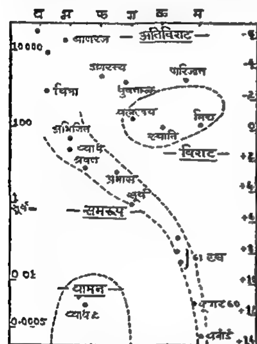


हेनरी नोरिस रसेल

पारिजातक, आर्द्रा वगैरह इस प्रकारके अतिविराट तारे हैं। आलेखमें नीचेकी ओर बायीं तरफ 'वामन' संज्ञामें तारे दर्शाये गये हैं। वामन तारे वास्तवमें ऊँचे तापमानवाले तारे हैं मगर उनके तेजांक बहुत कम हैं। इसका मतलब यह हुआ कि श्वेत वामनोंकी प्रकाश छोडनेवाली सतह बहुत ही कम है।

ऊपरकी बातोंको कुछ और स्पष्ट करना आवश्यक है।

समक्रम तारोंका वर्ण-विस्तार पट गरम तारोंसे लेकर ठंडे तारों तकका है। उसके एक छोर पर विराट नीले तारे हैं और दूसरे छोर पर वामन लाल तारे। इन दोनोंके बीचमें सूर्यके समान तारे हैं जिन्हें सूर्यसम या समरूप तारे कहा जाता है। भ से फ वर्णवर्गवाले विराट और अतिविराट तारे समक्रम श्रेणीवाले नीले और अतिनीले विराट तारोंसे भिन्न प्रकारके हैं। समक्रम नीले विराट तारोंको शिशुतारे कहा जाता है। जबकि उपर्युक्त भ से फ वर्णवर्गवाले विराटतारोंको वयप्राप्त तारे कहा जाता है। वयप्राप्त तारे सामान्यतया ताराविश्वोंके केन्द्र भागोंमें अवस्थित हैं जबकि शिशुतारे उनकी भुजाओंमें। तारोंके इन दोनों प्रकारोंकी चर्चा बादमें करेंगे।



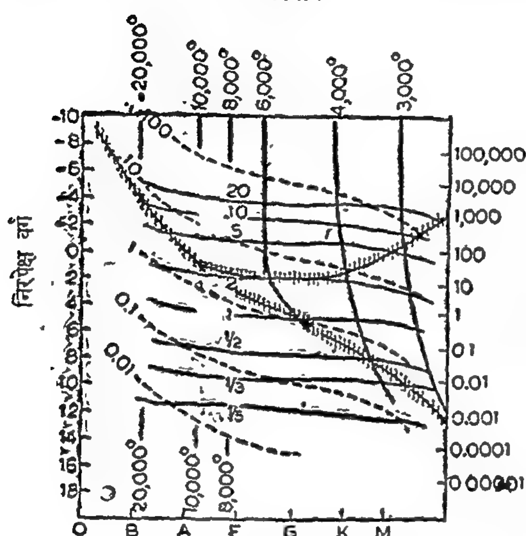
तारोंके निरपेक्ष बो (तेजांक) और वर्ण बो (तापमानके आधार पर रचा गया रसेल-हर्ट्सप्रंग-आलेख

विराट तारोंकी तरह वामन तारोंके भी दो प्रकार हैं। श्वेत वामन और लाल वामन। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि अपनी द्रव्यसंपत्तिको वेगसे खर्च करनेवाले नीले विराट तारे अपने तेज और आयतनको धीरे-धीरे गँवाते हुए अंतमें लाल तारे बन जाते हैं। मतलब कि उनका उत्क्रान्तिक्रम सरल और एक ही ढंगका है। मगर लाल तारोंका ऐसा नहीं है। उत्क्रान्तिकी सीढियाँ उतरते समय वे सूर्य प्रकारके तारे बनते हैं और बादमें श्वेत वामन या क्ष-किरणी (एक्स-रे) तारोंमें पलट जाते हैं। लाल विराट तारे सरल उत्क्रान्तिवाले नहीं हैं, वे उपविराट (विराटसे छोटे) और उपवामन (वामनसे बडे) तारोंके वर्गोंकी भी रचना करते हैं।



तारोंकी उत्क्रांति सरल ढंगकी हो या पेचीदे प्रकारकी, रंग और तेजके हिसाबसे आकाशके सारे तारे तीन मुख्य प्रकारोंमें बँट जाते हैं। वामन, विराट और समरूप। तारोंका यह विभाजन तेजांककी दृष्टिसे जितना वास्तविक है उतना ही यथार्थ आयतनके हिसाबसे भी है।

हम देख आये हैं कि श्वेत वामनोंके तापमान ज्यादा होने पर भी उनकी सतह बहुत छोटी है। अधिकतर श्वेत वामनोंका द्रव्यसंचय सूर्यके द्रव्यसंचयके बराबर है। छोटे तारेमें यह बात



निरपेक्ष वर्ग (तेजांक) और वर्ण वर्ग (तापमान) के आधार पर बनाया गया रसेल-हर्ट्झस्प्रंग-आलेख

विवरण—

(१) कटी हुई रेखायें तारोंके आलेख हैं।

(२) पतली अखंड रेखायें तारोंके द्रव्यसंचय (सूर्य-द्रव्यसंचय=१के हिसाबसे) दिखाती हैं।

(३) पतली खंडित रेखायें तारोंकी त्रिज्या (सूर्यत्रिज्या=१ के हिसाबसे) दिखाती हैं।

(४) ऊभी काली रेखायें तापमान दर्शाती हैं।

तभी संभवित हो सकती है कि जब उसका द्रव्य बहुत ही ठूँस-ठूँस कर भरा हुआ हो। दूसरे ढंगसे कहें तो यों कहा जायगा— श्वेत वामन तारेके द्रव्यकी घनता बहुत अधिक होनी चाहिये। व्याध युग्म तारा है। उसका साथी एक श्वेत वामन तारा है। इस बौनेकी द्रव्यसपत्ति सूर्यके द्रव्यसंचयके बराबर है मगर उसका व्यास सूर्य-व्यासके ३७वें भागका है। यों उस वामनका आयतन सूर्य-आयतनके हिसाबसे ५१,००० वें भागका है। इसका सीधा-सादा अर्थ यह हुआ कि व्याधके साथी तारेका द्रव्य सूर्यद्रव्यकी तुलनामें ५१,००० गुना और पानीके हिसाबसे ७१,००० गुना गाढ़ा है!

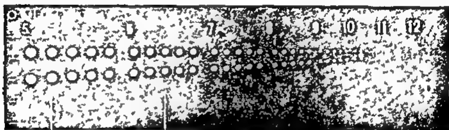
सभी श्वेत वामन एक-से गाढ़े नहीं हैं। कई ज्यादा ठोस हैं तो कई बहुत कम। सबसे ज्यादा विशिष्ट घनतावाला वामन तारा (एल ८८६-६ नामका) है जो आयतनकी दृष्टिसे हमारे चंद्रसे कुछ थोड़ा ही बड़ा है। इस वामनजीकी द्रव्यसंपत्ति सूर्यके हिसाबसे १.४ गुना है। हिसाब लगाने पर मालूम हुआ है कि इस बौने तारेकी विशिष्ट घनता ८,५४,००,००० है! इस तारेके चुटकी भर द्रव्यका वजन भी टन भर हो जायगा।

उपर्युक्त बातोंसे एक दूसरा इशारा मिलता है। तेजांक, आयतन और विशिष्ट घनता चाहे कम हो या ज्यादा, तारोंके द्रव्यसंचय उनके अनुपातमें नहीं हैं। आकाशके नब्बे फ़ी सदी तारोंका (जिनमें विराट तारे भी शामिल हैं) व्यक्तिगत द्रव्यसंचय सूर्यके हिसाबसे $\frac{1}{10}$ से

लेकर १० गुना तकका है। अतिविराट तारोंकी द्रव्यसंपत्ति सूर्यसंपत्तिसे ९ से ४० गुना (अपवाद रूपमें, किसी विराटकी द्रव्यसंपत्ति सूर्यसे १०० गुना तककी भी) है।

इन बातोंका क्या अर्थ हो सकता है?

ऊपरकी बातोंसे हमें यह मालूम होता है कि तारोंके द्रव्यसंचयको वशमें रखनेवाली कोई कुदरती व्यवस्था अस्तित्वमें है। तारेको एक हदसे बड़ा न होने देनेवाली कोई शक्ति काम कर रही है। वैज्ञानिक लोग इस शक्तिको 'विकिरण दबाव' कहते हैं। धूमकेतुमें उत्पन्न होनेवाले वायुको दूर-दूर तक ढकेलकर धूमकेतुपुच्छ उत्पन्न करनेवाली सूर्यकी विकिरण शक्तिका हमें परिचय है। सूर्यके केन्द्रभागका तापमान दो करोड़ अंश सें. ग्रे है। और वहाँका



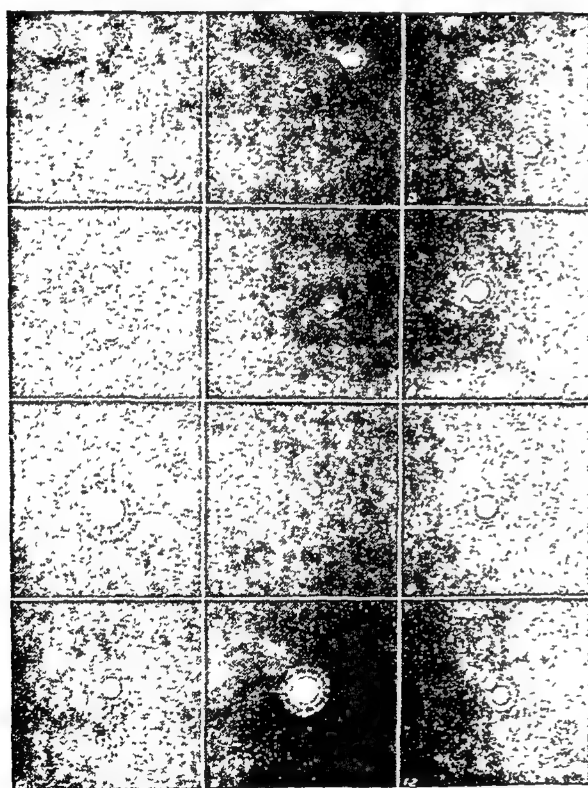
तारकवर्ग

विकिरण दबाव हर वर्ग सेन्टिमीटर पर २० लाख टन है। सूर्यसे ज्यादा द्रव्यवान तारोंके केन्द्रीय तापमान इससे भी ज्यादा है। अब कल्पना कीजिये कि सूर्य सरीखे किसी तारेका केन्द्रीय तापमान दुगुना या तिगुना हो जाता है। इस परिस्थितिमें विकिरण दबावका क्या होगा? विकिरण दबाव तापमान बढ़ने पर उसके चतुर्घातके अनुपातमें बढ़ता है। तापमान दुगुना होने पर विकिरण दबाव १६ गुना और तिगुना होने पर वह ८१ गुना हो जाता है। मतलब यह कि कोई तारा ज्यादा द्रव्य इकट्ठा करके बहुत भारी बननेका प्रयत्न करेगा तब उसकी आन्तरिक विकिरण-शक्ति उसके रास्तेमें रोड़ा अटकायेगी। हदसे ज्यादा द्रव्य-जमावका वह सामना करेगी और यों तारेमें बलकी समतुला स्थापित होगी। अगर उसमें उसे सफलता न मिली तो मूल तारेको वह दो, तीन या चार तारोंवाले बहुल तारेमें पलट देगी।

हमारे सूर्यको ऐसी कोई दबावरूपी सजा होनेवाली नहीं है ऐसा आश्वासन रखना हमारे लिये उचित होगा?

६. ताराविश्वकी समृद्धि

निरभ्र अंधेरी रातको आकाश तारोंसे आच्छादित दिखाई देता है। आकाशमें तारे सब जगह एक-से बिखरे हुए नहीं हैं। किसी जगह वे ज्यादा संख्यामें हैं तो किसी जगह कम। कई स्थान ऐसे भी है जहाँ तारे नजर आते ही नहीं हैं। मगर ये सारी जगहें एकदम तारेरहित हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। इन स्थानोंमें तारे अवश्य होते हैं मगर वे अत्यंत निस्तेज होनेके कारण नग्न आँखोंसे दिखाई नहीं देते हैं। बायनोक्युलर या दूरबीनसे देखने पर तारारहित स्थानोंमें भी अनेक तारे नजर आते हैं। ये तारे एक-से न होकर अनेक रंगके और विभिन्न ढंगके होते हैं।



विभिन्न तारकयुग्म

दूरबीनसे तारा-दर्शन करनेमें निस्तेज तारोंके प्रत्यक्ष होनेके अलावा एक और फायदा भी होता है। नग्न आँखोंसे देखने पर जो तारे एक दूसरेसे सटे हुए मालूम होते हैं वे एक दूसरेसे अलग दिखाई देते हैं। और इस प्रकार वे सचमुच युग्म या बहुल तारे हैं या नहीं उसकी जानकारीके साथ-साथ उनके आपसके अंतरोंका भी हमें खयाल आता है।

आकाशमें तारोंके सिवा प्रकाशकी लीपाईवाला एक सफेद पाट देखा जाता है। क्षितिजके एक स्थानसे दूसरे स्थान तकका आकाशी पुल रचनेवाले इस आकाशीय पाटको आकाशगंगा

नाम मिला है। नग्न आंखोंको सुन्दर दिखाई पड़नेवाले इस पाटका सही स्वरूप दूरबीनोंकी मददसे ही समझा गया है। दूरबीनसे आकाशगंगाको देखने पर उसका सफेद पाट गायब हो जाता है और उसके स्थान पर एक दूसरेके नजदीक बैठे हुए अगणित तारे देखनेको मिलते हैं। आकाश-गंगाके ये सारे तारे एक-से नहीं हैं। कई बड़े हैं तो कई छोटे। कई हमसे नजदीक हैं तो कई हमसे दूर। यह होते हुए भी वे हैं सभी अपने विश्वके ही तारे। आकाशगंगाके पाटसे अलग, आकाशमें तितर-बितर तारे हैं। इन तारोंको दूरबीनसे देखने पर उनके बीचमें भी अनेक तारे नजर आते हैं। नग्न आंखोंसे और दूरबीनोंके द्वारा जो तारे हम देख पाते हैं वे सभी मिलकर एक बड़े ताराविश्वकी रचना करते हैं। इस विश्वको 'मदाकिनी विश्व' नाम दिया गया है। हमारा सूर्य इस विश्वका ही एक सदस्य है। मदाकिनी विश्वमें छोटे बड़े मिलकर करीब १०० अरब तारे हैं।

वामन, विराट और समरूप सारा प्रकारोंवाले अपने ताराविश्वके तारे रूप और गुणकी दृष्टिसे भिन्न भिन्न विशिष्टताओंसे युक्त हैं। इन विशिष्टताओंमेंसे एक युग्म या बहुल तारा होनेकी है। युग्म तारेमें दो तारे होते हैं जो अपने गुरुत्वकेन्द्रके इर्दगिर्द चक्कर काटते रहते हैं। युग्म तारेके दोनों तारे आयतन या तेजस्वितामें एक-से नहीं होते हैं। रूप और रंगमें वे एक दूसरेसे एकदम विभिन्न भी होते हैं। बहुल तारेमें दोसे अधिक तारे होते हैं। तीन या चार तारोंसे बने बहुल तारे सामान्यतया पाये जाते हैं। हमारा ध्रुवतारा चार तारोंसे मिलकर बना हुआ बहुल तारा है। मिथुन मंडलका प्रकृति तारा छ तारोंसे मिलकर बना हुआ सबद्ध तारा है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि आकाशके तारोंमेंसे पांचवें भागके तारे युग्म या जुड़वें तारे हैं।

रूपविकारी तारे आकाशके विशिष्ट तारे हैं। उनके तेजमें विकार होता रहता है। वे कभी निस्तेज तो कभी तेजस्वी हो जाते हैं। रूपविकारी तारोंका तेजविकार क्रमिक रूपका नहीं है। कई रूपविकारियोंके तेजविकार बिलकुल अनियमित ढंगसे होते हैं। तेजकी कमीबेशी कई तारोंमें बहुत अल्प समयमें होती है तो कई तारोंमें लंबे अरसेके बाद। गुणभेदके हिसाबसे रूपविकारी तारोंके छ प्रकार मालूम हुए हैं। (१) वीणा प्रकार, (२) वृषपर्वा प्रकार (३) ग्रहणवर्गी, (४) अनियमित (५) दीर्घकालीय और (६) अनिश्चितवर्गीय। इनमेंसे कई रूपविकारियोंका रूपविकार-समय शायद ही २० घंटेका हो। वृषपर्वा प्रकारके तारे आकाशीय अंतर नापनेके मापदंडका काम देते हैं। इन तारोंका रूपविकार-समय दो दिनोंसे लेकर डेढ़ मास तकका होता है।

स्फोटक तारे आकाशके विशिष्ट अंग हैं। थोड़े-थोड़े समयके बाद थोड़ी शक्तिका उत्सर्ग करनेवाले स्फोटक तारे अपने विस्फोटोंके समय सूर्यसे २० हजारसे लेकर ५० हजार गुना तेजस्वी हो जाते हैं। अपवादरूप कुछ स्फोटक तारे लाख गुना तक प्रकाशित हो जाते हैं। ये सारे तारे विस्फोटोंके बाद 'जैसे थे' की मूल स्थितिवाले हो जाते हैं। स्फोटक तारोंके सिवाय आकाशमें परम स्फोटक तारे भी हैं। हां, उनकी संख्या स्फोटकोंके हिसाबसे बहुत ही कम है। परम स्फोटकोंका विस्फोट केवल एक ही बार होता है और वह बहुत ही प्रचंड रूपमें होता

कर्क निहारिका

मृग निहारिका

सर्पधर निहारिका

त्रिकोण तारविश्व

है। विस्फोटके समय परम स्फोटक तारे दस करोड़ सूर्य-तेजवाले हो जाते हैं। ज्यादा आश्चर्यकी वात यह है कि विस्फोटके वाद ये तारे नामशेष हो जाते हैं। उनके स्थानमे तव केवल वायु-वादल ही नजर आते हैं। कर्क निहारिका (प्लेट ५) ऐसे ही एक परम स्फोटकका अवशेष है।

उपर्युक्त तारोंके अलावा आकाशमें गुटवंदी करनेवाले तारकगुच्छ और तारासंघ वनाने-वाले तारे भी हैं। गुच्छ या संघके तारे करीव एक-सी गतिसे अवकाशमे यात्रा करते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि तारागुच्छके तारे एक ही तारासमूहके तारे हैं मगर तारासंघके तारे ऐसे नहीं हैं। तारासंघमे दो या ज्यादा तारामंडलोंके तारे होते हैं। मंदाकिनी विश्वके प्रख्यात तारासंघ रोहिणी, सप्तर्षि और स्वस्तिक हैं।

मगर यह हुई सिर्फ तारोंकी वात। आकाशमें अकेले तारे ही हैं ऐसा नहीं है। तारोंके अलावा उन तारोंमें फैले हुए छोटे-वड़े वायुवादल और अंततरिकीय वायु भी मौजूद हैं। वायुवादल तारोंकी तरह एकदम हमारा ध्यान आकर्षित करे वैसे आकाशीय घटक नहीं हैं। फिर भी उनके अस्तित्वके कारण अपना मंदाकिनी विश्व भरापूरा या आवाद मालूम होता है। तारोंको अगर नकद धन कहें तो वायुवादल अमानत धन हैं। अमानत द्रव्यके रूपमें वायु-वादलोंका विशेष महत्त्व है।

तारोंके वीच फैले हुए उपर्युक्त वायुवादल रूपरंगमें तारोंकी तरह एक-से नहीं हैं। नग्न आँखसे दिखाई देनेवाले वायुवादलोंमें कृत्तिका और मृगपुच्छके वायुवादल दर्शनीय पदार्थ हैं। दूरवीनोंसे देखने पर इनका अलौकिक रूप-वैचित्र्य प्रकट होता है। आकाशगंगा-पाट अनेक उज्ज्वल वादलोंसे समृद्ध है। आकाशगंगामें केवल उजले वादल हैं ऐसा नहीं है। उसके पाटमें सुराखोंकी तरह अनेक स्थानोंमें काली जगहें दिखाई देती हैं। वास्तवमें ये सभी काले वायु-वादल हैं। आकाश स्थित इन काले और सफेद वायुवादलोंको निहारिकाएँ कहा गया है।

निहारिकाएँ वायुओंसे वनी हुई हैं। इन वायुओंका द्रव्य वहुत ही पतला होता है। पृथ्वीकी हमारी प्रयोगशालाओंमें उत्पन्न होनेवाले उत्तम शून्यावकाशका विशिष्ट गुरुत्व $१०^{-११}$ (पानीके हिसावसे दस हजार अरववें भागका) है। निहारिकाओंके वायुओंका विशिष्ट गुरुत्व उससे भी करोड़वें भागका है। निहारिका द्रव्य वास्तवमें इतना पतला होता है कि उसके परमाणुओंको एक-एक करके गिना जा सकता है और उसके एक घन-सेन्टिमीटर जगहमें केवल एक हजार परमाणु होते हैं। याद रहे कि हमारे सरके एक वालकी मोटाई, सवा तीन लाख परमाणु-ओंको एक पंक्तिमें विठानेसे वनती है! परमाणुओं और धूलिकणोंका उपर्युक्त पतला द्रव्य लंवे-चौड़े फैलाव जमाकर विशाल वायुवादलों या निहारिकाओंका रूप धारण करता है।

रूपभेदकी दृष्टिसे निहारिकाओंके 'श्वेत' और 'श्याम' ऐसे दो प्रकार माने गये हैं। सामान्यतया श्याम निहारिकाओंकी संख्या ज्यादा है। वैसे तो इन दोनों निहारिकाओंकी संरचना एक ही प्रकारकी है मगर अप्रकाशित रहनेके कारण श्याम निहारिकाएँ काली दीखती हैं।

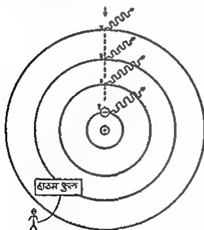
अपने अंदर या नजदीकके तारोंके प्रकाशके कारण श्वेत निहारिकाएँ चमकती हैं। चमक-की भिन्नताके कारण इन निहारिकाओंके दो वर्ग माने गये हैं। एक वर्ग प्रकाशका परावर्तन

करनेवाली निहारिकाओंका है और दूसरा स्वय-तेजस्वी या खुद प्रकाश फेंकनेवाली निहारिकाओंका है। पहले वर्गकी निहारिकाओंमें धूलका प्रमाण ज्यादा होता है जबकि दूसरेमें वायुका। यह फर्क एक और बातको इंगित करता है। परावर्ती निहारिकाओंका सबंध १८,००० सें ग्रे से कम गरम तारोंके साथ होता है मगर स्वयप्रकाशी निहारिकाओंका नाता ज्यादा गरम—३०,००० सें से ५०,००० सें तापमानवाले—तारोंके साथ होता है। वर्णपटकी भाषामें कहें तो यों कहा जायगा कि परावर्ती निहारिकाओंका वर्णपट काली रेखाओंवाला शोषक (absorptive) वर्णपट है मगर स्वयप्रकाशी निहारिकाओंका वर्णपट चमकती रेखाओंवाला उत्सर्जनशील (emmisive) वर्णपट है। कृत्तिका मंडलकी निहारिका शोषक प्रकारकी है मगर मृग-मंडलकी श्वेत निहारिका उत्सर्जनशील वर्गकी है।

यहाँ उत्सर्जनशील निहारिकाओंके बारेमें कुछ सोचेंगे।

उत्सर्जनशील निहारिकाओंके वर्णपटमें हरी रेखाएँ दिखाई देती हैं। पृथ्वी परका कोई तत्त्व हरी वर्णपट रेखाएँ नहीं दिखाता था इसलिए हरी रेखायें दिखलानेवाले इस तत्त्वको वैज्ञानिकोंने 'नेब्युलियम' नामसे पहचाना। बादके शोधोंसे मालूम हुआ कि वास्तवमें ऐसा कोई नया तत्त्व है ही नहीं। नेब्युलियम एक ज्ञात-तत्त्वका विकृत रूप ही है। वह तत्त्व है हाइड्रोजन।

उत्सर्जनशील निहारिकाओंके भीतर और नजदीकमें जो तारे हैं वे अल्ट्रावायोलेट किरणोंको फेंकनेवाले गरम तारे हैं। ऊँचे तापमानवाले ये तारे छोटी तरंगलबाईवाले प्रकाशकणोंको विकिरित करते हैं। ये प्रकाशकण बहुत ही जोरदार होते हैं। फल यह होता है कि तारेके नजदीकके वायुबादलके परमाणु टूट जाते हैं। परमाणुओंसे अलग होनेवाले इलेक्ट्रोन वापस परमाणु-नाभिके साथ जुटनेका प्रयत्न करते रहते हैं। परमाणुओंकी इस तोड़-जोड़की प्रक्रियाके कारण



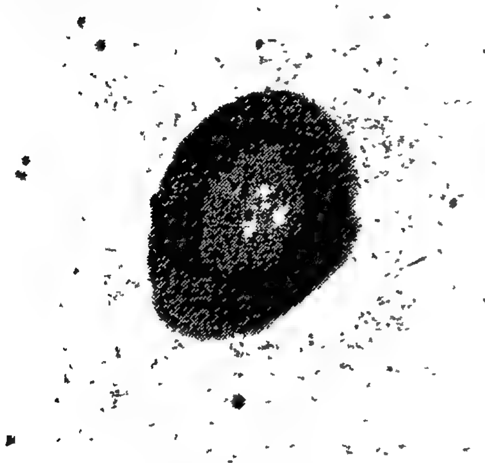
शक्ति निर्गम

ऊर्जाके प्रपात बहने लगते हैं। और ऊर्जाके प्रकटनेमें उत्सर्जनशील निहारिकायें स्वतज्योतिका स्वरूप धारण करती हैं। लक्ष्य दूर होनेपर भी गरम तारे वायुबादलोंको उत्तेजित करते हैं। सामान्य अंदाजा यह है कि १०,०००° सें तापमानवाले अ वर्णवर्गके तारे १½ प्रकाशवर्ष दूर तक उत्तेजना पहुँचा सकते हैं जबकि २५,०००° सें तापमानवाले ब वर्गके तारे ४० प्रकाशवर्ष दूर तक। ६०,०००° सें या उससे ज्यादा ऊँचे तापमानवाले तारोंकी बात निराली है। वे १५० प्रकाशवर्षसे लेकर ५०० प्रकाशवर्ष दूर तक अपनी सत्ता चलाते हैं। ऐसे गरम तारोंके अगर कहीं गुच्छ हों तो उनके द्वारा होनेवाली वायुबादलोंकी दुर्दशाका पूछना ही क्या? वायुबादलोंके आसपास पर हाइड्रोजन वर्तुलोंके रूपमें उसे अंकित होना देखा जाता है। आकाशगंगाके हम (हार, वीणा, लोमशके साथ) विस्तारमें हाइड्रोजनके बड़े वृत्त देखे गये हैं। अति ऊँचे तापमान

पर आयनित होनेवाला हाइड्रोजन ही ऐसे वृत्तोंकी रचना करता है। इन वृत्तोंके अस्तित्वसे ही अपने मंदाकिनी विश्वके वायुभुजाये होनेका सावित हो सका है।

२० से २५ प्रकाशवर्षके लंवे-चौड़े विस्तारवाली मृग श्वेत निहारिका रूपहली तो है ही: उसके अतिरिक्त उसकी एक और विशिष्टता है। मृग श्वेत निहारिकामे नए तारे जन्म पा रहे हैं!

ट वृषभ प्रकारके रूपविकारी तारोंको शिशु तारे माने गये हैं। सन १९४७ में मृग निहारिकाके विस्तारमे, एक जगह तीन शिशु तारोंका एक समूह देखा गया था। सन १९५४ मे उसी विभागका पुर्नानिरीक्षण करने पर मालूम हुआ कि वहाँ तीन के वजाय पाँच शिशु तारे हैं। दो और तारे वढ़े कहाँसे? जन्म पाकर ही?! मतलव यह कि तारोंको जन्मते देखनेका मनुष्यको सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ताराजन्मकी एक और भी मजेदार वात है। २६ लाख वर्ष पहले मृग श्वेत निहारिकामे दो तारे जन्मे थे। वे दोनों आज वहाँ नहीं हैं। जन्म पानेके वाद वे दोनों तारे एक-दूसरेसे उल्टी दिशामें भ्रमण कर रहे हैं। ढ कपोत और अइ सारथि नामक ये तारे, आज, एक-दूसरेसे १००० प्रकाशवर्षकी दूरीपर स्थित है। ताराजन्म कभी स्फोटक भी हो सकता है इस वातका यह अच्छा उदाहरण है।


वीणा वलयनिहारिका

श्वेत निहारिकाओंका एक प्रकार ग्रहरूप निहारिका है। ग्रहरूप निहारिकाके केन्द्रमे एक तारा होता है। ऐसी निहारिकाओंको दूरवीनसे ही देखा जाता है और उस वक्त वे तेजस्वी चक्रके रूपमें दिखाई पड़ती हैं।

ग्रहरूप निहारिकाका विस्तार १ से २ प्रकाशवर्षका होता है। इस निहारिकाका द्रव्य अत्यंत पतला होता है और वह हर सेकंड १० से ५० किलोमीटरके हिसावसे आकाशमें फैलता रहता है। केन्द्रस्थ तारेके कारण ही यह विस्तरण होता है। ४०,०००° सें. से लेकर १,७०,०००° सें. तकका तापमानवाला यह तारा आम तौर पर अति विराट लाल तारा होता है। तारेसे उत्पन्न होनेवाले अल्ट्रावायोलेट किरणोत्सर्गके कारण निहारिकाका द्रव्य उत्तप्त होकर दूर-दूर सरकता जाता है। ग्रहरूप निहारिकाका ज्यादातर द्रव्य आयनित हाइड्रोजन है।

ग्रहरूप निहारिकाको चमकानेवाला तारा वयप्राप्त वृद्ध तारा होता है। इस प्रकारके तारे सामान्यतया मंदाकिनी विश्वके केन्द्रके समीप ज्यादा प्रमाणमें पाये गये हैं। उनकी इस प्रकारकी

अवस्थितिके कारण मंदाकिनी विश्व अपने अक्ष पर भ्रमण करता है उसका और उसका भ्रमणकेन्द्र धनु राशिमें होनेका पता चला है।

निरीक्षणोंसे मालूम हुआ है कि ग्रहरूप निहारिकाका केन्द्रवर्ती तारा निहारिकाके विकसित होनेके साथ उत्क्रान्ति करता रहता है। अपने-आप धीरे-धीरे फटता जाता यह तारा आखिरमें श्वेत वामनका रूप धारण करता है। मगर इस दरमियान विद्युत-चुंबकीय बलका जो क्रिया-कलाप वह दिखाता है उसने साबित किया है कि आकाशके तारे केवल गरमी और प्रकाश देनेवाले ज्योति ही नहीं लेकिन भौतिक खगोलवेत्ताओंको अपनी विशेष पहचान पानेका आह्वान देनेवाले कुदरती घटक हैं। ग्रहरूप निहारिकाओंकी उम्र २०,००० वर्षकी मानी गई है। इसका एक अर्थ यह है कि अवकाशमें अवस्थित ग्रहरूप निहारिकाओंकी संख्याको अगर कायम रहना है तो प्रतिवर्ष ३ नई निहारिकाओंका जन्म लेना चाहिये। अगर यह सही है तो उनका इस प्रकारका आविर्भाव कुदरत किस ढंगसे करती होगी? केन्द्रस्थानमें पुरातन तारा और उसके इर्दगिर्द नूतन वायुपिंडका संयोजन वह किस तरह करती होगी? ये और दूसरे ऐसे प्रश्न अनुत्तरित ही रहे हैं।

श्याम निहारिकाओंको श्वेत निहारिकाओंकी तरह ज्यादा प्रसिद्धि नहीं मिली है। श्याम निहारिकाओंमें प्रसिद्ध स्वस्तिककी कोलसैक, मृगकी अश्वशीर्ष निहारिका, सर्पधरकी श्याम



अश्वशीर्ष निहारिका

निहारिका वगैरह हैं। श्याम निहारिकायें बिलकुल स्याह नहीं होती हैं। कैमरेको उनकी ओर लंबे अरसे तक खुला रख कर लिये गये फोटोग्राफसे मालूम हुआ है कि श्याम निहारिकामें भी तारे अवस्थित हैं। रेडियो दूरबीनसे मालूम हुआ है कि श्याम निहारिकाओंके पीछे भी तारे हैं। इन हकीकतोंके आधार पर हम कह सकते हैं कि श्याम निहारिका प्रकाशको रोकनेका नहीं लेकिन छाननेका काम करती है। श्याम निहारिकामें अगर कोई रूपविकारी या स्फोटक

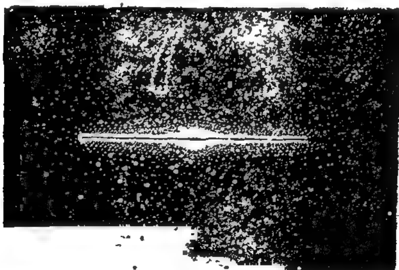
तारा चमक उठे तो उसकी गरमीके कारण श्याम निहारिका अपना श्याम बुरका उतारकर श्वेत निहारिकाका रूप धारण करनेमे जरा भी हिचकिचाहट, विलंब या सकोच न करेगी।

अवकाशमे जिन जगहोंमे श्वेत और श्याम निहारिकाये नही है वहाँ तारोंके बीच अंततारकीय द्रव्य है ही । यह द्रव्य दूर-दूरके तारोंके प्रकाशको सुर्ख बनाता है और यों उनके दूरत्वको नापनेमे तकलीफ खड़ी करता है। निहारिका-द्रव्यके हिसाबसे अंततारकीय द्रव्य १००० वाँ भाग पतला है। मगर यही नगण्य द्रव्य कभी-कभी वायुबादलोंका रूप धारण करके तारोंको जन्म देनेवाली श्वेत निहारिकाओंमे पलट जाता है। तारोंके बीच अवस्थित उपर्युक्त वायुद्रव्य और हाइड्रोजनके बादल विशाल तारासृष्टिकी तुलनामे चाहे क्षुद्र भले ही माने जायँ उनकी कुल द्रव्य-संपत्ति १०० अरब तारोंको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य रखती है।

हमने यहाँ अपने ही ताराविश्वकी वायुसंपत्ति और निहारिकाओंकी बात की। मगर आकाशमें यह अकेला ही विश्व नही है। आकाशमे और अनेक ताराविश्व हैं और उनमे भी वायुबादल या निहारिकाये हैं। ताराविश्वोंको नग्न आँखोसे देख पाना अशक्य है। छोटी दूरबीनों से देखने पर वे वायुपिंड या वायुबादल जैसे दीखते हैं। इसी वजहसे ताराविश्वोंकी शुरूआतकी खोजोंके दिनोंमें उनको भी निहारिकाये करार कर दिया गया था। बादमे उनके स्वरूप स्पष्ट होने पर उनको अलग निहारिकायें या बहिर्विश्व निहारिकायें कहा गया। मगर इन ताराविश्वोंमे श्याम और श्वेत वायुबादल हैं इसीलिये इस बातको खयालमे लेकर अब निहारिका शब्दका प्रयोग ताराविश्वोंमें आए हुए वायुबादलोंके लिये ही किया जाता है।

७. मंदाकिनी विश्वका स्वरूप

अपने ताराविश्वमें सौ अरब तारे और उतने ही और तारोंको जन्म दे सकनेवाले निहारिका-द्रव्य होनेकी बात पढ़कर, स्वाभाविक प्रश्न होगा कि यह सब कैसे योजित किया गया होगा? मनुष्यकी दृष्टिशक्ति कुछ सीमा तक मर्यादित है। नग्न आंखमें ५०० प्रकाशवर्ष की दूरीवाले शून्य (०) निरपेक्ष वर्गके तारोंको हम देख सकते हैं। इन तारोंसे अधिक दूरके आकाशको देखनेके लिये दूरबीनका उपयोग अनिवार्य है। दूरबीनोंसे आकाशदर्शन करनेपर मालूम हुआ है कि आकाशके तारे मिलकर सपुट आकारका ताराविश्व रचते हैं। फूली हुई पूडीके आकारवाले इस मंदाकिनी विश्वका व्यास १,००,००० प्रकाशवर्ष है और उसके मध्यभागकी मोटाई १५,००० प्रकाशवर्ष है। अपना सूर्य मंदाकिनी विश्वका ही एक तारा है और विश्व केन्द्रसे वह ३०,००० प्रकाशवर्ष दूर अवस्थित है। सूर्यके चारों ओरके ताराविश्वकी मोटाई २,५०० वर्षके करीब है। नीचे दिये गये चित्रमें सूर्यका स्थान तीर (↓) से दिखाया गया है।

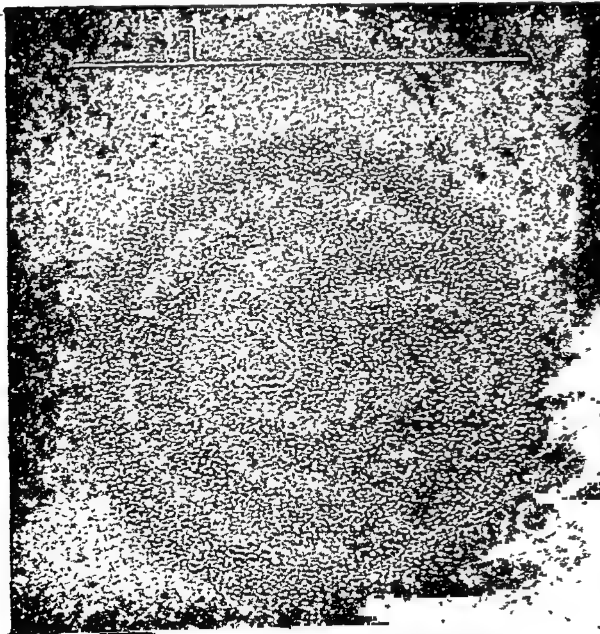


मंदाकिनी विश्वका स्वरूप

मंदाकिनी विश्वके चित्रको गौरसे देखने पर मालूम होगा कि सपुट आकारके इस विश्वके बाहरके क्षेत्रमें भी तारोंका अस्तित्व है। मगर ये सभी खचाखच अवस्थित नहीं हैं, वे

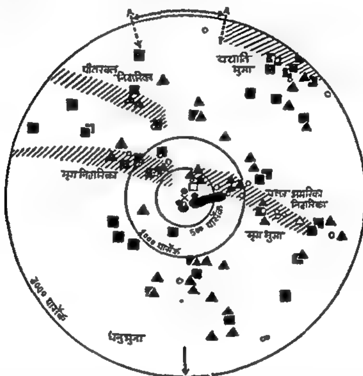


छितरे हैं। (चित्रमें बड़े वर्तुलाकारमें जो बिन्दु हैं वे सघन तारकगुच्छ हैं। इन गुच्छोंमें अनेक तारे छोटी जगहमें एकसाथ जमे हुए ह।) विश्व संपुटके चारों ओरकी इस सारी तारासृष्टिको मंदाकिनी विश्वका प्रभामंडल कहें तो हमारे विश्वका समग्र गोलाकार स्वरूप हमारे सामने प्रकट हो जायगा। वैसे प्रभामंडलकी तारा-संपत्ति बहुत ही कम है फिर भी वह बिलकुल असमृद्ध नहीं है। प्रभा-मंडलमें जो सघन तारागुच्छ हैं वैसे तारकगुच्छ मंदाकिनी विश्वमें और कहीं भी नहीं हैं। एक बात और भी है। प्रभामंडलमें नामके भी वायुबादल नहीं हैं। इधर-उधरके अंततारकीय वायुकणोंको छोड़ दें तो प्रभामंडलकी ९९ प्रतिशत संपत्ति तारोंकी – और वह भी अधिकांशत: लाल विराट तारोंकी – है।



मंदाकिनी विश्वके दो पहलू
(तीरछा और ऊपरसे देखने पर)

मदाकिनी विश्वका सपुट विभाग विभिन्न प्रकारके तारे, तारागुच्छ, तारावादल, निहारिकायें, अन्तरिक्षीय वायु वगैरहकी भारी समृद्धिवाला है। अवकाशस्थित अन्य ताराविश्व भी इसी प्रकारकी संपत्तिवाले हैं। ये ताराविश्व सामान्य गेंदकी तरह गोलकार नहीं हैं मगर केन्द्रसे निकले हुए और केन्द्रके चारों ओर लिपटनेवाले बाहुयुक्त गेंदके आकारके हैं। यह भी पता चला है कि ताराविश्वोंके इन बाहुओंमें जो वायुबादल हैं उनमें अति गरम ब और ओ वर्ण वगके नीले तारे हैं। यही नहीं इन तारोंके चारों ओरके विस्तारमें अवकाशी तारकगुच्छ भी मौजूद हैं। विराट नील तारे और अवकाशी तारकगुच्छ हमारे मदाकिनी विश्वमें भी हैं। क्या इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि अपने ताराविश्वके भी वायुभुजाएँ हैं?



मदाकिनी विश्वकी वायुभुजायें

अति गरम तारोंके और आयनित हाइड्रोजन वायुके निरीक्षणोंसे पता चला है कि अपने मदाकिनी विश्वके भी वायुभुजायें हैं। हमारा सूर्य उसकी एक वायुभुजाके नजदीकमें है। इस वायुभुजामें कृत्तिका और मृग मडलकी निहारिकाओंके अतिरिक्त हम मंडलके निहारिका-क्षेत्रका भी समावेश होता है। रेडियो-दूरबीनोंसे, अवकाशस्थित शिथिल हाइड्रोजनका और श्याम निहारिकाओंके पीछे आये हुए तारोंके अस्तित्वका पता लगने पर मदाकिनी विश्वकी भुजाओंके खोजकार्यको बहुत बल मिला। और उसीके अनुसधानमें धनुभुजा और ययातिभुजाके अलावा अन्य दो विश्वभुजाओंका भी आविष्कार हो सका है।

विश्वभुजायें सामान्यत. १०,००० प्रकाशवर्ष लंबी और ५०० प्रकाशवर्ष चौड़ी होनेका मालूम हुआ है। चाक्षुप-दूरवीने इन भुजाओंके केवल छोरको ही देख पाती है, उनके आर-पारका कुछ नहीं। विश्वभुजाओंमें अवस्थित शिथिल हाइड्रोजनका और व और ओ वर्ण वर्गके अति गरम तारोंका पता रेडियो-दूरवीनके द्वारा चला है और यों मंदाकिनी विश्वका चित्र और भी स्पष्ट हुआ है। हाँ, एक वात सही है कि केन्द्रसे ४०,००० प्रकाशवर्षसे भी ज्यादा दूरकी विश्वभुजाओंका पता लगाना अभी वाकी ही है।

मंदाकिनी विश्वके वीचके भागमें तारोंकी भीड़भाड़ प्रतीत होती है मगर वास्तवमें वैसा नहीं है। विश्वकेन्द्रके आसपासके ६ से ७ हजार प्रकाशवर्ष मोटाईके और १६ हजार प्रकाशवर्ष व्यासवाले अडाकार विभागमें १० अरव तारे हैं। और वे सभी एकदूसरेसे काफी अंतर पर हैं। उनके आपसमें भीड़भाड़ जैसा है ही नहीं। इन तारोंके वीचमें अंततारिकीय द्रव्य मौजूद है या नही इसका फैसला नही हो सका है। कई निरीक्षकोंका अनुमान है कि मंदाकिनी विश्वके केन्द्रभागमें उत्पन्न होकर विश्वभुजाओंकी ओर पसरनेवाले हाइड्रोजनका वहाँ अस्तित्व है मगर यह वायु किस प्रकार उत्पन्न होती है उसका कोई कारण अभी तक समझमें नहीं आया है। दूर दूरके ताराविश्वोंके निरीक्षणोंसे भी इसमें सहायता नही मिली है। सामान्यतया यह माना जाता है कि ताराविश्वोंके केन्द्रोंमें वायु नहीं होती है।



मंदाकिनी विश्वका बाहु-स्वरूप
(वर्तुल सूर्यका स्थान दर्शाता है।)

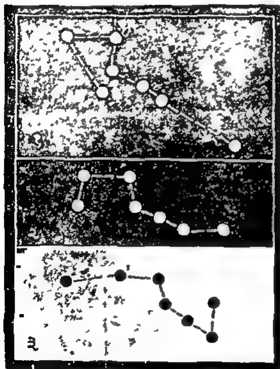
सौ अरव तारेवाला हमारा ताराविश्व अक्षभ्रमण करता है।

प्रश्न उठेगा कि वह मालूम हुआ किस तरह?

सूर्यके इर्दगिर्दके तारोंकी गतियोंके कारण ताराविश्वके अक्षभ्रमणका पता चला है।

मदाकिनी विश्वका अक्षभ्रमण अखंडित पदार्थके भ्रमण जैसा नहीं है। हमारे विश्वका अक्षभ्रमण-वेग केन्द्रके समीप बहुत कम है मगर केन्द्रसे दूर हटने पर वह क्रमिक रूपमें बढ़ता जाता है। केन्द्रसे २१,००० प्रकाशवर्षकी दूरी पर वह सबसे ज्यादा हो जाता है और आगे बढ़नेके बजाय घटने लगता है। विश्वके छोर तक पहुँच कर वह बहुत ही कम हो जाता है। मदाकिनी विश्वमें सबसे ज्यादा वेग हर सेकड २१० किलोमीटरका है। हमारा सूर्य जहाँ अवस्थित है वहाँका वेग हर सेकंड २०० किलोमीटर है। इतना वेग धारण करने पर भी सूर्यवाले विश्वभागको विश्वकेन्द्रका एक पूरा चक्कर काटनेमें २२ करोड़ वर्षका समय लगता है। सूर्यकी उम्र ७ अरब वर्षकी मानी जाय तो अपने जन्मके बाद सूर्यने मदाकिनी विश्वके ३० ही चक्कर काटे समझे जायेंगे। सूर्यका अस्तित्व २०० चक्कर और काटने तक टिकनेका अदाजा है। मदाकिनी विश्वके छोर पर जो तारे हैं उनको एक विश्व-चक्कर पूरा करनेमें करीब ३७ करोड़ वर्ष लग जाते हैं।

विश्वभ्रमणके अनुसंधानमें दो तीन अन्य बातें जानना रसप्रद होगा। इनमें एक बात है विश्वबाहुओंके प्रसरणकी। अक्षभ्रमणके कारण विश्वभुजायें एकदूसरीसे ज्यादा दूर सरकती रहती हैं। मतलब यह कि उनके बीचका अतर बढ़ता रहता है। ताराविश्वकी भुजायें जिस तरह आज विश्वके केन्द्रको लिपटी हुई हैं उसमें समय बीतने पर फर्क होगा—उनके आटे और ज्यादा खुले हो जायेंगे। मगर उस समय एक तकलीफ और खड़ी होगी। ताराविश्वके अलग-अलग विभागोंके अलग-अलग भ्रमणवेग इन भुजाओंको असमान ढगसे फैलायेंगे। और इसके फलस्वरूप विश्वभुजाओंका अपना स्थायी रूप बनाये रखनेका मामला खटाईमें पड़ जायगा। उस समय उनको टूटना पड़ेगा। टूटनेकी क्रियासे बचनेका एक प्राकृतिक उपाय भी है। यदि चुबकीय शक्तियाँ अपना काम करे तो टूटनेकी क्रिया रुक जाती है। सभवत यह अनुमान ठीक न हो। आजकी परिस्थितिके हिसाबसे भविष्यका अदाजा लगाना सचमुच टेढ़ी खीर है।



सप्तर्षिकी तीन स्थितियाँ

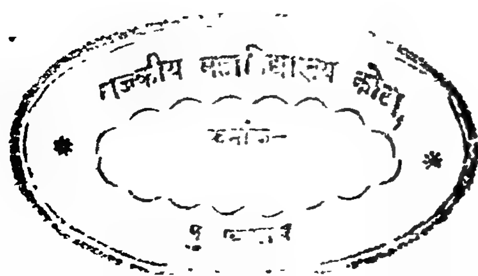
दूसरी बात है सूर्यकी गतिकी। मंदाकिनीविश्वका परिभ्रमण करनेके अतिरिक्त उसकी एक और भी गति है। सूर्यके नजदीकका विश्वविभाग (सूर्य समेत) अलग इकाईके रूपमें अक्षभ्रमण करता है! चंद्र पृथ्वीके चारों ओर उसी प्रकार परिक्रमण करता है जिस प्रकार वह पृथ्वीके साथ सूर्यके चारों ओरकी परिक्रमा करता है। मदाकिनीविश्वकी इन गतियोंके कारण आकाशीय तारोंके स्थानोंमें और उनकी आकृतियोंमे, अनेक वर्षोंके बाद, फर्क पड़ता है। सप्तर्षिमडलकी आकृतियोंसे यह स्पष्ट हो जायगा।

मंदाकिनी विश्वके प्रभामंडलकी चर्चा हमने की है। इस प्रभामडलके तारे विश्वके अक्षभ्रमणमे साथ नही देते है। मतलब कि घूमनेवाला पदार्थ ताराविश्वका सपुट ही है। प्रभामडलमे लाल विराट तारे हैं। मंदाकिनीविश्वके केन्द्रभागमे भी ऐसे ही तारे हैं। क्या हम ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि ताराविश्व-केन्द्रभागके तारे भी उपर्युक्त अक्षभ्रमणमे साथ नही देते हैं। स्वाति ऐसे भारी निजगतिवाले तारे इस ओरका संकेत देते हैं सही।

अक्षभ्रमणको गतिमान बनाते हैं नील तारे। इन तारोंका ऊर्जा-उत्सर्ग बहुत ही प्रचंड है। परमाणुओंको तोड़फोड़कर वायुबादलोंको गतिमान कर देनेकी भारी ताकत उनमे है। अन्य तारोंकी तुलनामे नील तारे कम उम्रवाले या युवा तारे हैं, मदाकिनी विश्वके केन्द्रभागवाले और प्रभामंडलमे अवस्थित तारे अधेड़ तारे हैं। अपने द्रव्यका भारी अपव्यय करनेवाले उपर्युक्त नील तारे ताराविश्वकी वायुभुजाओंमे हैं। इन भुजाओंमे बहुत जगह, मृगश्वेत निहारिकामे हो रहा है वैसे, नये-नये तारे आज भी जन्म पा रहे हैं। युवा (नील) और अधेड़ (लाल) तारोंको अनुक्रमसे तारावस्ती (Stellar population) १ और तारावस्ती २ के तारे कहे जाते हैं। ताराविश्वके सारे तारे इन दो मुख्य विभागोंमे विभक्त किये गये हैं। ताराविभाग १ मे ब और ओ वर्णवर्गके गरम तारे, अतिविराट तारे, वृषपर्वा प्रकारके रूपविकारी तारे और अवकाशी तारा-गुच्छोंके तारे हैं जबकि ताराविभाग २ मे प्रभामंडलके सारे तारे, र र (R R) वीणावर्गके तारे, दीर्घकालीन रूपविकारी तारे, ग्रहरूप निहारिकाये, स्फोटक तारे और विश्वकेन्द्रके ज्यादातर तारोंका समावेश होता है।

कई विद्वानोंका अनुमान है कि ताराविश्वके तारोंको उनकी स्थानस्थिति और उम्रके हिसाबसे केवल दो विभागोंमे बाँट देना उचित नही है। मदाकिनीविश्वका स्वरूप उस कद्र सरल होनेका वे कबूल नहीं रखते हैं। मंदाकिनीविश्वकी जटिलताको स्पष्ट करनेके हेतु ताराविश्वके तारोंको वे छः विभागोंमे बाँटनेकी तरफदारी करते हैं। ये विभाग है (१) र र वीणा-प्रकारके और सघन तारागुच्छके तारे (२) मिरा प्रकारके रूपविकारी तारे (३) दीर्घकालीन वृषपर्वा तारे (४) स्फोटक तारे (५) अवकाशी तारागुच्छके तारे और (६) ओ वर्णवर्गके तारे।

तारोंको इच्छानुसार कितने ही विभागोंमे बाँट दीजिए, मंदाकिनीविश्व हर प्रकार अपना अद्भुत स्वरूप दिखाता ही रहता है।



ग्र.-४

८. तारक जीवनपंथ

विश्वकी विशालता और अद्‌भुतताका परिचय करानेवाले तारे तेजबिन्दु जैसे भले ही दिखाई देते हों उनके अस्तित्वकी कथा भी विस्मयजनक है। तारोंका जन्म किस प्रकार हुआ होगा और अपनी जीवनयात्रा समाप्त करनेके बाद तारोंका क्या होगा इस बारेमें निश्चयात्मक रूपसे हम कुछ नहीं जान पाये हैं। तारोंके जन्म-मरणका रहस्य आज भी अनुमानोंका ही विषय रहा है। तारे निहारिकाओंसे जन्म पाते हैं यह तो हम जानते हैं। मगर निहारिकाद्रव्य पूंजीभूत होकर तारेका रूप किस प्रकार धारण करता है यह अब भी कल्पनाका विषय बना हुआ है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि बिना किसी सुडौल आकार प्रकारका कोई एक वायुबादल एकबारगी सकुचाना शुरू करता है। सकुचन शुरू होनेके बाद वह चलता ही रहता है। सकुचनके कारण वायुबादल धीरे-धीरे गरम होता रहता है। गरम बना वायुबादल चमकना शुरू करता है और साथ साथ गोलाकार घाट प्राप्त करके और भी सकुचता रहता है। बादमें एक समय ऐसा आता है जब यह वायुबादल अति उत्तप्त होकर गरमी और प्रकाशके रूपमें ऊर्जाका विकिरण शुरू कर देता है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि ऐसे मौके पर उपर्युक्त वायुबादल समग्र श्रेणीवाला तारा बन जाता है। तारेका रूप पाते ही उसकी जिंदगीकी शुरुआत हो जाती है।

जिन्दगीके साथ जीवनक्रम जुड़ा हुआ ही है और जहाँ जीवनक्रम है वहाँ उम्रकी बात उठनेकी ही। अगर कोई पूछ बैठे कि तारोंकी उम्र कितनी तो यह प्रश्न अस्वाभाविक न लेखा जायगा। हाँ, उसका स्वाभाविक उत्तर खोजना मुश्किल है। मनुष्यकी जिंदगीके हिसाबसे तारे और ताराविश्वोंकी जिंदगी का अनुमान करना आसान बात नहीं है। सभी तारोंके जीवनक्रम एक-से नहीं होते हैं। इतना ही नहीं एक-से जीवाक्रमवाले तारोंकी जिन्दगीकी मियाद भी एक-सी नहीं होती है। तारोंकी जिंदगी की बात करनेसे पहले उनके अंतरालमें दृष्टिपात करना ठीक होगा। तारोंको जिंदगी बक्सनेवाली ऊर्जा कहां और कैसे पैदा होती है यह जानना भी लाभदायक होगा। सूर्य भी एक तारा है। पृथ्वीके हिसाबसे उसका द्रव्यसंचय सवा तीन लाख गुना है। ऐसा भारी पदार्थ अपने वजनके कारण टूट जाना चाहिये। मगर सूर्य अटूट रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि सूर्यके द्रव्यसंचयकी समतोल रखनेवाला कोई बल सूर्यमें मौजूद होना चाहिये। सूर्यके केन्द्रभाग पर होनेवाला द्रव्य-दबाव पृथ्वीके वातावरणके दबावकी तुलनामें अनेक करोड गुना है। इस दबावका मुकाबिला करनेवाला सूर्यकेन्द्रद्रव्य अत्यंत घन और अत्यंत उत्तप्त होना चाहिये। गरमीका भारी विकिरण द्रव्यसंचयके भारी दबावका सामना करता है। सूर्यसे गरमी और प्रकाश हमें निरंतर मिलते रहते हैं। जबतक

यह स्थिति चालू रहेगी तवतक हमें मानना होगा कि सूर्यके भीतर दवावका और गरमीका संतुलन हो रहा है।

सवाल होगा कि सूर्यमें उपर्युक्त ऊर्जा किस प्रकार पैदा होती होगी।

सूर्यसे मिलनेवाली ऊर्जा संकोचनजनित ऊर्जा होनेका संभव नहीं है। प्रतिवर्ष सूर्यका हजारवाँ भाग सकुचता जाये तो तारेके रूपकी उसकी भविष्यकी जिंदगी ज्यादासे ज्यादा ३ करोड़ वर्षकी हो सकती है। और उसी अनुपातसे उसकी पूर्व जिंदगी २ करोड वर्ष की ठहरेगी। पृथ्वीकी मौजूदा उम्र ४ से ५ अरव सालोंकी मानी जाती है। इस पृथ्वीको अनेक वर्षोंसे प्रकाश और गरमी देनेवाले सूर्यकी उम्र पृथ्वीकी उम्रसे कम किस कद्र हो सकती है ?

तात्पर्य यह है कि सूर्यसे उत्पन्न होनेवाली ऊर्जा सकुचनऊर्जा नहीं है मगर उसके अतरालमे परमाणु रूपांतरकी जो प्रक्रिया चल रही है उसके द्वारा प्रकट होनेवाली ऊर्जा है। नाभिकीय रूपांतर द्वारा ज्यादा ऊर्जा प्रकट करनेवाली प्रक्रियाके लिये दो वातोंका होना परम आवश्यक है। उस प्रक्रियामे काम आनेवाले परमाणु प्रचुर मात्रामे प्राप्त होने चाहिये और उनकी नाभियाँ एकदूसरीसे अल्पातिअल्प अपाकर्पण करनेवाली होनी चाहिये ताकि परमाणुओके टूटने पर वन-विद्युत भारवाली नाभियोंको वंधनमे जकड़े रखनेमे कोई तकलीफ उत्पन्न न हो। परमाणु रूपांतरकी उपर्युक्त आवश्यकताओंको हाइड्रोजन पूर्ण करता है।

हाइड्रोजन विश्वका सवसे हलका पदार्थ है। अन्य मूलतत्त्वोंकी तुलनामे उसकी नाभि अत्यत सरल है। परमाणुकी नाभियोंको जोड़नेका काम विद्युतवल नही करता है। वह काम होता है नाभिकीय वल से। परमाणुओंमे प्रवर्तित नाभिकीय वल विद्युतिक वलसे पाँच से छः लाख गुना शक्तिशाली है। फिर भी आश्चर्यकी वात यह है कि इस वलका नाभिके इर्दगिर्द घूमनेवाले इलेक्ट्रोन पर कोई असर नही पड़ता। असर न पड़नेका कारण नाभिकीय वलका परिमित क्षेत्र है। नाभिकीय वलका सामर्थ्य ३ सेन्टिमीटरके दस हजार अरववे भागके ($३^{-१३}$ से. मी.) अंतर तकका ही है।

हाइड्रोजनसे ऊर्जा प्रगटानेकी दो प्रतिक्रियाये हैं। इन दोनों प्रक्रियाओमे चार प्रोटेन (हाइ-ड्रोजन परमाणुकी नाभियाँ) हाथ वँटाते है। प्रतिक्रियाके दरमियान एक दूसरेसे जुड़नेवाले ये चारों प्रोटोन प्रक्रियाके पूरा होने पर हेलियम नाभिमे परिवर्तित हो जाते हैं। हेलियम नाभिका वजन चार प्रोटोनोंके कुल वजनसे कुछ कम है। यों, चारों प्रोटोनोंसे हेलियम नाभि वनते समय वजनमे थोड़ी कमी रहती है। यह कमी प्रकाश और गरमीके रूपमे प्रकट होनेवाली परमाणु-ऊर्जा है।

परमाणु ऊर्जाको प्रकट करनेवाली प्रक्रियाको समझ लेना भी ठीक होगा। हाइड्रोजन परमाणु के केन्द्रमे एक प्रोटोन होता है। इस प्रोटोनके इर्दगिर्द एक इलेक्ट्रोन चक्कर काटता है। प्रोटोन का विद्युतभार धन होता है मगर इलेक्ट्रोनका ऋण। धनभारवाला प्रोटोन कभी अपना विद्युत-भार गँवा देता है और तव वह विद्युतभार रहित न्यूट्रोन वन जाता है। दो प्रोटोनोंको मिलाना आसान नही है क्योंकि उनके धनभार एकदूसरेका अपाकर्पण करते हैं। मगर एक प्रोटेनको न्यूट्रोनके साथ जोड़नेमे कोई तकलीफ नहीं होती है। क्वचित् हाइड्रोजनके केन्द्रमे एक

प्रोटोनके उपरान एक न्युट्रान भी रहता है। इस प्रकारके हाइड्रोजनको ड्यूटेरोन या भारी हाइ-ड्रोजन कहते हैं। दो ड्यूटेरोन मिलकर हेलियम परमाणुकी रचना करते हैं।

बहुत ऊँचे तापमान पर हाइड्रोजनके अणु टूटते रहते हैं और यों ड्यूटेरोन और हेलियम उत्पन्न होनेकी प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इस प्रक्रियामें जो द्रव्य खर्च होता है वह ऊर्जा-के रूपमें प्रकट होता है। आइन्स्टीनके गणितके अनुसार एक ग्राम वजनका व्यय होने पर (२९४८×१०^१०)^२ अर्ग ऊर्जा पैदा होती है।

एक प्रोटोनका वजन १००८ इकाई है। हेलियमका परमाणु चार प्रोटोन वजनका–४०३२ इकाईका–होना चाहिये। मगर वह होता है ४००४ इकाई वजनका। मतलब कि ०२८ इकाईकी वजनमें कमी रहती है। एकाध हेलियम परमाणुके हिसाबसे यह वजनहानि अत्यन्त अल्प मानी जायगी मगर तारोंमें कि जहा लाखों टनोंके हिसाबसे हाइड्रोजनका हेलियममें रूपांतर होता है वहाँ इस कमीका शुमार कई टनोंका हो जायगा।

ऐसा हिसाब लगाया गया है कि अहमदाबाद शहर एक महीनेमें विद्युतशक्तिका जो खर्च करता है वह सारा खर्च आधा किलोग्राम कोयलेका ऊर्जामें परिवर्तन करनेसे प्राप्त हो सकता है।

चार प्रोटोनों या दो प्रोटोनों और दो न्यूट्रानोंसे चलनेवाली इस प्रक्रियाको प्रोटोन-प्रोटोन-चक्र-प्रक्रिया कहा जाता है। इसी प्रक्रियाकी सहायतासे वैज्ञानिक लोग हाइड्रोजन बम बना सके हैं।

तारोंमें एक दूसरे प्रकारसे भी परमाणु-ऊर्जा प्रकट होनेका मालूम हुआ है। इस प्रक्रियामें हाइड्रोजनके साथ कार्बन भी हाथ बँटाता है। सबसे पहले कार्बनका नाइट्रोजनमें परिवर्तन होता है। मगर यह नाइट्रोजन अस्थायी स्वरूप होनेसे वह अपनी थोड़ी ऊर्जा गँवाकर स्थायी हाइड्रोजन बननेका प्रयत्न करता है। मगर ऊँचा तापमान, भारी दबाव और न्यूट्रोनोंके लगातार प्रहार वगैरहके कारण वह अस्थायी ऑक्सिजनमें पलटता रहता है। मगर अस्थायी ऑक्सिजन ज्यादा टिकता नहीं है। वह टूट जाता है और कार्बन और हेलियमके परमाणुओंकी उत्पत्ति करता है। यह प्रक्रिया सब मिलाकर छ तबकोंमें पूरी होती है जिसके हरेक तबकेमें परमाणु-ऊर्जा प्रकट होती रहती है। तारोंमें चलनेवाली यह प्रक्रिया कार्बनचक्रके नामसे मशहूर हुई है। इस प्रक्रियामें प्रोटोन-प्रोटोन-चक्रवाली प्रक्रियाके हिसाबसे अनेक गुना ज्यादा ऊर्जा-उत्सर्ग होता है।

कई बार एक पदार्थके परमाणु टूट कर नये पदार्थोंकी रचना करते हैं तब नये पदार्थोंका कुल वजन मूल पदार्थोंके वजनसे कम होता है। कभी ऐसा भी होता है कि अलग-अलग परमाणुओंके मिलने पर नया परमाणु बनता है तब इस नये परमाणुका वजन जुड़नेवाले परमा-णुओंके कुल वजनसे कम होता है। उपर्युक्त दोनो प्रकारोंमें उत्पन्न होनेवाली वजनहानि ऊर्जाके स्वरूपमें प्रकट होती है। यह ऊर्जा गरमी, प्रकाश या विकिरणके रूपमें प्रकट होता है। अति अल्प समयमें उत्पन्न होनेवाली ऊर्जा धड़ाकेके साथ उत्पन्न होती है। तारो-द्रव्योंमें ऐसे धड़ाके अतिसामान्य होते रहते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रतिक्रियाओसे उत्पन्न होनेवाली ऊर्जाका दर (rate) तापमान-ऊर्जा नियमके रूपमें दर्शाया जाता है। प्रोटोन-प्रोटोन प्रक्रियामे ऊर्जा-विमोचन-दर तापमानके चतुर्घात अनुसार होता है मगर कार्बनचक्रमे १५ से २० घात अनुसार होता है। मतलव यह कि प्रोटोन प्रक्रियामें तापमान दुगुना होने पर ऊर्जानिर्गम १६ गुना होता है लेकिन कार्बन-चक्रमें वह सामान्यतः तीन लाख गुना होता है। यह जताता है कि कार्बन-चक्रवाली प्रक्रिया प्रोटोन-चक्रवाली प्रक्रियाकी अपेक्षा अत्यंत तापमान-हर्षी है। मतलव कि तापमान वहुत ऊँचा हो तभी वह काम आती है। दूसरे ढंगसे कहें तो यों कहा जायगा कि प्रोटोन-प्रोटोन-प्रक्रिया तारेके किसी भी हिस्सेमें चल सकती है मगर कार्बन-प्रक्रिया तारेके केन्द्रके नजदीकके हिस्सेमें ही चलेगी। सामान्यतया यह माना जाता है कि प्रोटोन-प्रक्रिया ३ करोड़ अंश तापमान तक ही काम करती है। उससे ऊँचे तापमानमे केवल कार्बन-प्रक्रिया काम करती है।

ऊर्जा-विमोचन करनेवाली उपर्युक्त दोनों प्रक्रियाये अत्यन्त धीमी गतिसे काम करती हैं। हमारे सूर्यके अंतरालमे प्रोटोन-प्रोटोन-प्रक्रिया चलती है जिसका एक चक्र पूरा होनेमे करीव दस लाख वर्षका समय लगता है।

कई तारोंके अभ्यंतरमे इन दोनों प्रक्रियाओंका साथ-साथ चलना भी संभव है। हाँ, उनके ऊर्जा-विमोचनके प्रमाण अलग-अलग होंगे। कल्पना कीजिये कि किसी एक तारेके अंतरालमे एक कार्बन नाभि और एक प्रोटोन दूसरे किसी प्रोटोनको हड़प कर जानेकी तैयारीमें है। कार्बन द्वारा यह काम शुरू हो गया तो वहाँ कार्बन-चक्र शुरू हो जायगा। मगर ऐसा न होकर ड्युटेरोनकी उत्पत्ति हो जाय तो वहाँ प्रोटोन-प्रक्रिया शुरू हो जायगी। हमने कहा कि अत्यंत ऊँचे तापमान पर केवल कार्बन-प्रक्रिया चलती है मगर सभी तारोंमे ऐसा नहीं होता है क्योंकि सारे तारोंके तापमान अत्यंत ऊँचे नहीं होते हैं। यों कम तापमानवाले तारोंमें प्रोटोन-प्रक्रिया ही काम करती है। ग, क और म

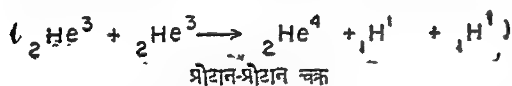












प्रोटान-प्रोटान चक्र

वर्णवर्गके तारोंका ऊर्जा-निर्गम आम तौर पर प्रोटोन-प्रक्रियाकी उपज है। अ, व और ओ वर्णवर्गके तारोंका ऊर्जा-निर्गम कार्बन चक्र पर आधार रखता है। फ वर्णवर्गके तारोंमें उपर्युक्त दोनों प्रक्रियायें समानरूपसे चलनेका माना गया है। फिर भी एक वात सही है कि कार्बन-प्रक्रिया किस किस्मके तारोंमे प्रोटोन प्रक्रियाकी अवगणना करके आगे वढ़ जाती है यह वात अन्वेषणोंके अभावमें निश्चित रूपसे अभी तक नहीं जानी गयी है।

विराट तारोंकी कथा द्विमुखी है।

उपर जो बात कही गई वह समक्रम तारोंके बारेमें थी। नीले विराट तारे इसी श्रेणीके सदस्य हैं। वे सभी अपनी हाइड्रोजन संपत्तिको बहुत तेजीसे खरचनेवाले तेजस्वी तारे हैं। उनकी सतहके और केन्द्रके तापमान बहुत ऊँचे होते हैं। इसके अलावा उनका विशिष्ट गुरुत्व भी ज्यादा होता है। इन कारणोंसे इन अति गरम नीले तारोंमें कार्बनचक्रकी प्रक्रिया चलती है।

लाल विराटोंकी बात अलग है।

लाल विराट तारे बड़े और तेजस्वी तारे हैं। इन तारोंमें किस विधि प्रतिक्रिया चलती होगी यह समझनेके लिये सूर्यसे सहायता लेंगे। कल्पना कीजिये कि सूर्यको लाल विराट तारेमें पलट देना है। ऐसा करते वक्त, हमें, सूर्यका द्रव्यसंचय पाँच गुना (विराटके लिये) या बीस गुना (अति-विराटके लिये) बढ़ा देना होगा। तारेका द्रव्यसंचय बढ़ता है मगर आयतन कायम रहता है और इस कारण तारेका केन्द्रीय तापमान अत्यंत ऊँचा हो जायगा। वह करोड़ों या अरबों अंशोंका हो जायगा। और उसके साथ साथ उसका ऊर्जा-दबाव भी बढ़ जायगा। अब मान लीजिये भारी द्रव्यसंपत्तिवाले इस तारेका आयतन एकदम बढ़ा दिया जाता है। और सो भी पाँच पचास गुना नहीं, लाखों गुना! क्या परिस्थिति पैदा होगी? स्पष्ट ही है कि तारेका केन्द्रीय तापमान एकदम कम हो जायगा और वह शायद कुछ एक लाख अंशका हो जायगा। इतने कम तापमान पर परमाणुओंके रूपान्तरोंकी प्रक्रिया चलना नामुमकिन है।



प्रश्न होगा कि लाल विराट तारे किस प्रकार शक्ति-निर्गम करते होंगे?

तेजाककी दृष्टिसे देखने पर लाल विराट तारोंमें कार्बनचक्र चलना चाहिये। मगर इस चक्रको चलानेके लिये तारेके केन्द्रका तापमान ३ से ४ करोड़ अंशका होना चाहिये। यह व्यवस्था किस प्रकार हो सकती है? काजलकी कोठड़ीमें जानेकी और बेदाग रहनेकी बात कैसे सम्भव है?

लाल विराटके दो विभाग हैं, एक बाहरका और दूसरा अंदरका। इन दोनों विभागोंकी रासायनिक संरचना अलग-अलग है। अंदरका विभाग समतापीय हेलियम गर्भभाग है। वह केवल हेलियमका बना हुआ है। हाइड्रोजनका हेलियममें रूपांतर होकर यह गर्भभाग बना है। इस भागमें वायुओंका रासायनिक संयोजन नहीं होता है। इस गर्भभागको चारों ओरसे एक पतले आवरणने घेर रखा है। यह आवरण हाइड्रोजनका है और वहाँ कार्बन प्रक्रिया चलती है। इस आवरणका हाइड्रोजन हेलियममें पलटता जाता है और हेलियम-गर्भका विस्तार धीरे-धीरे बढ़ता जाता है।

विस्तार बढ़ने पर कार्बन-चक्रवाला आवरण भी दूर सरकता जाता है। इसके साथ-साथ एक और बात भी घटती रहती है। हेलियम-गर्भ बड़ा होने पर उसका वजन बढ़ता है और वह अपने गुरुत्वाकर्पणके कारण सिकुड़ना शुरू कर देता है। उसका यह सकुचन एक समय इस हद तक पहुँचता है कि तारेके केन्द्रभागका तापमान २० करोड़ अंश हो जाता है। यह होते ही वहाँ एक और प्रकारकी परमाणु-रूपांतर-प्रक्रिया जन्म लेती है। तारेके अंतरालमे ३ हेलियम-नाभियाँ इकट्ठा होकर एक कार्बननाभिको जन्म देती है और तव लाल विराटका वाहरका भाग वहुत वड़ा हो जाता है जिसे पार करके तारेकी भारी आंतरिक ऊर्जा वाहर वहती है। यों दोनों प्रकारसे वह अपना विराट नाम सार्थक करता है।

वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि लाल विराटका अंतिम अवशेप श्वेत वामन है।

मगर इस अद्भुत वातको समझनेके लिये तारोंकी उम्रकी वात भी करनी होगी।

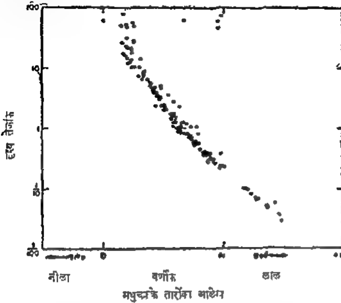
तारे एक-से तेजस्वी नहीं हैं उसी प्रकार वे सभी हम-उम्र भी नहीं हैं। कई तारे वृद्ध हैं तो कई युवा। कई तारे अभी जन्म ही पा रहे हैं!

हमने देखा कि तारेका द्रव्यसंचय ज्यादा होने पर वह ज्यादा चमकीला दिखता है। उसकी चमकका कारण हाइड्रोजन ही है। तारा अपने इंधन (हाइड्रोजन) को जिस वेगसे जलाता है उस हिसावसे वह ज्यादा प्रकाशित वनता जाता है। द्रव्य-तेजांक नियम यह जताता है कि द्रव्यसंचय दुगुना होने पर तारेका तेज १० से १२ गुना और तिगुना होने पर करीव ६० गुना हो जाता है। इसका मतलव यह है कि ज्यादा द्रव्यसंचयवाले और ज्यादा तेजस्वी तारे जो अपने द्रव्यको वेगसे खर्च कर रहे हैं वे कम तेजस्वी तारोंकी अपेक्षा कम आयुष्यमर्यादावाले होते हैं। एक उदाहरणसे इस वातको स्पष्ट करेंगे। अपना सूर्य हर सेकंड ५६४० लाख टन द्रव्य व्यय करता है। सूर्यकी उम्र करीव ७ अरव सालकी है और वह ५० अरव वर्ष और अपना अस्तित्व वनाये रखेगा ऐसी संभावना है। अव कल्पना कीजिये कि सूर्यसे दस हजार गुना तेजांकवाला एक तारा है। यह तारा प्रति सैकण्ड, सूर्यके हिसावसे १० हजार गुना द्रव्य खरचेगा और यों उसका द्रव्यसंचय वहुत ही जल्द खतम हो जानेका। आकाशके तारोंकी द्रव्यसंपत्ति अमर्यादित नहीं है। वहुत ही ज्यादा द्रव्यसंपत्तिवाले तारोंका द्रव्यसंचय सूर्यके हिसावसे करीव ४० गुना होता है। ऊपर जिस तारेकी वात कही उसकी द्रव्यसंपत्ति सूर्यके हिसावसे २० गुना माना जाय तो सूर्यकी भविप्यकी ५० अरव वर्पकी जिंदगीकी तुलनामें उस तारेकी जिंदगी केवल १० करोड़ वर्पकी ही होगी। मतलव कि पृथ्वीकी उम्रसे भी कम उम्रके और कम आयुष्यमर्यादावाले तारोंका होना असंभवित नहीं है। और यह भी संभव है कि उपर्युक्त प्रकारके प्रकाशित तारे वहुत समय पहले जन्म पाकर आजसे कुछ समय पहले ही खतम हो गये हों!

मगर युवा, प्रौढ़ और वृद्ध तारोंकी तलाश करनी भी किस तरह?

कुदरतने इसकी भी व्यवस्था की है। तारकगुच्छोंके अभ्याससे कुछ हकीकतें प्राप्त हुई हैं। आम तौर पर किसी भी तारकगुच्छके सारे तारे हमसे एकसरीखे अंतर पर हैं। उन

सभीकी उम्र भी एक-सी ही है क्योंकि उन सबोंका जन्म भी एक साथ ही हुआ है। ऐसा होते हुए भी हम देख पाते हैं कि एक ही तारागुच्छके सारे तारे एक-से तेजस्वी नहीं हैं। अलग-अलग तारागुच्छोंकी उम्र भी अलग-अलग होनेकी। इन सबकी तुलना करने पर ताराजीवनकी उत्क्रान्ति-परम्पराका ज्ञान होता है।

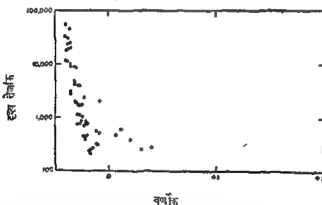


मधुचक्रके तारोंका आलेख

यहाँ पर दी गयीं आकृतियोंको देखिये।

एक आकृति मधुचक्र तारागुच्छके तारोंका आलेख दर्शाती है और दूसरी मे १६ तारागुच्छके तारोंका। मधुचक्रमें नीले तारे हैं ही नहीं। उसमें भारी द्रव्य-सम्पत्तिवाले (ज्यादा तेजांकवाले) जो तारे हैं वे सभी श्वेत वर्णवर्गके तारे हैं। उनका द्रव्यसंचय सूर्यद्रव्यसे दो या तीन गुना ही है। आकृतिसे मालूम होता है कि मधुचक्रमें लाल तारे हैं। इतना ही नहीं मगर चार लाल विराट तारे भी हैं। आकृतिमें उनको ऊपरकी ओर दिखाया गया है। नील तारोंकी गैरहाजिरी क्या जताती है?

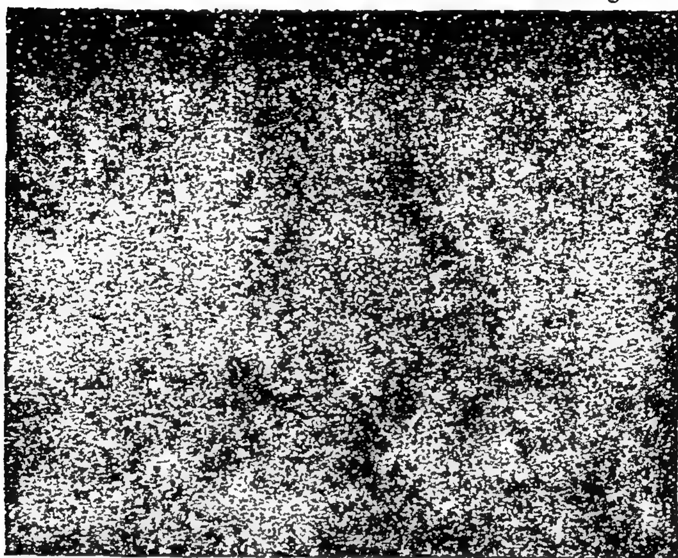
अब मे १६ की आकृतिको देखिये। उसके सारे तारे नीले तेजस्वी तारे हैं। मजेदार बात यह है कि इस तारागुच्छमें भूले भटके दो चार श्वेत तारोंके अलावा दूसरे नारंगी, पीले या लाल तारे नहीं हैं। इसका साफ अर्थ यह हुआ कि इस गुच्छके तारे अति वेगसे अपनी द्रव्यसम्पत्तिको खरच रहे हैं।



वर्णांक
मे १६के तारोंका आलेख

दोनों आलेखोंके आधार पर हम कह सकते हैं कि मधुचक्रके तारे मे १६ के तारोंसे ज्यादा उम्रवाले हैं। मे १६ के तारोंकी उम्र मुश्किलसे १ से २ करोड वर्षकी होगी। इस हिसाबसे वे सभी युवा तारे माने जायेंगे। मजेदार बात यह है कि आनेवाले ३ से ४ करोड वर्षोंमें इनमेंसे अधिकांश तारे वृद्धत्व प्राप्त करके नामशेष हो जायेंगे।

युवा तारोंका लगाव निहारिकाके साथ है। मे १६ मे वायुवादल है लेकिन मधुचक्रमे नही है। युगों पहले मधुचक्रमे नील तारोंका अस्तित्व होगा मगर ये तारे अपना हाइड्रोजन खर्च



मधुचक्र

करके खतम हो गये होंगे। साथ-साथ जिस धूल और वायुसे वे उत्पन्न हुए होंगे (या जिन्हें वे मृत्युके वाद अवशिप्ट छोड गये होंगे) उस द्रव्यके अस्तित्वका कोई नामनिशान भी नही रहा है। मधुचक्रमें आज जो तारे है वे सभी कम द्रव्यसंचयवाले और अपनी संपत्तिका धीरेसे खर्च करनेवाले लंबी आयुप्यमर्यादावाले प्रौढ़ तारे है।

विभिन्न प्रकारके तारागुच्छोंकी तुलना करने पर मालूम हुआ है कि मदाकिनी विश्वके तारागुच्छोंकी उम्र १ या २ करोड़से लेकर १० से २० अरव वर्षो तक की है। अरवों वर्षके हिसावसे देखे तो उस लंवी अवधिके भीतर, अपने ताराविम्वमे, कई नये तारागुच्छ जन्म लेगे और कइयोंका अस्तित्व मिट गया होगा। आज जो तारागुच्छ अस्तित्वमे है वे भी हमेशाके लिये थोड़े ही टिकेगे! ?

अव जो प्रश्न वाकी रहता है वह है तारेकी अंतिम अवस्थाका। मृत्युके किनारे पहुँचनेवाले तारेकी क्या दशा होती होगी?

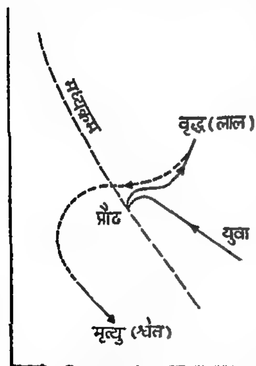
इस प्रश्नका उत्तर रूपविकारी तारोंसे प्राप्त होता है।

रूपविकारी तारोंकी संख्या ज्यादा नही है। इससे मालूम होता है कि तारा अपनी रूपविकार-अवस्था वहुत जल्द पार कर लेता है। तारेकी रूपविकार-अवधि तारेकी उत्क्रान्तिके हिसावसे वहुत ही कम समयकी है। निरीक्षणोंसे पता चला है कि रूपविकारी वनते ही तारा अपना समक्रम श्रेणीवाला स्थान छोड़ देता है और लाल विराट तारोंकी जमातमे भर्ती हो

जाता है। गुरुत्वाकर्षणसे वह कुछ समय तक अनिश्चित दशावाला रहता है और उस समय दरमियान वह अपना तेज बढ़ाता रहता है। बादमें वह लाल विराट तारेका स्वरूप धारण करके स्थिरत्व प्राप्त करता है और उसी स्थितिमें कई सालों तक रहता है। मगर उसके बाद वह विराटका बुरका फेंक देता है और बहुत जल्द श्वेत वामन तारेके रूपमें पलट जाता है। लाल विराट तारेकी मृत्युसे पहलेकी एक अवस्थाका-परम स्फोटक तारा बन जानेका-इन्कार नहीं किया जा सकता है। परम स्फोटक तारेका विस्फोट होता है तब उसका द्रव्य धीरे-धीरे अवकाशमें विलुप्त हो जाता है और स्फोटकके स्थानमें अवशेष रूपमें श्वेत वामन तारा बाकी बचता है। हो सकता है कि परम स्फोटक तारे लाल विराट और श्वेत वामनोंके बीचकी कड़ी भी हों। मगर इस रहस्यका भेद अभी तक नहीं पाया गया है।

तारोंके शक्तिस्रोत और साथ-साथ उनकी उम्रकी बात करनेके बाद उनकी जीवनयात्राकी झांकी कर लेना भी ठीक रहेगा।

अन्तर्तारकीय वायुबादल गुरुत्वाकर्षणसे सिकुड़ कर गरम होने लगता है। सकुचनकी क्रिया जैसे बढ़ती जाती है वैसे वह और भी गरम होता जाता है। बादमें उसका केन्द्रभाग बहुत ही उत्तप्त होने पर वायुबादलके हाइड्रोजनका हिलियममें रूपांतरित होना शुरू हो जाता है। परमाणु रूपांतरकी यह क्रिया प्रोटोन-प्रोटोन-प्रक्रिया हो या कार्बन-प्रक्रिया, वायुबादलसे जन्म लेनेवाले तारेको वह समक्रम प्रकारका तारा बना देती है। तारा अगर ज्यादा तेजस्वी या ज्यादा द्रव्यसंपत्तिवाला होगा तो समक्रम श्रेणीमें उसका स्थान सूर्यसे ऊपरकी ओरका होगा मगर निस्तेज या कम द्रव्यसंचयवाला होगा तो उसका स्थान सूर्यसे नीचेकी ओर वामन तारोंके साथ होगा।



तारक जीवनपथ

जन्म पाकर समक्रम श्रेणी पर पहुँचनेवाला तारा जब अरसे तक वहाँ ही रहता है। उसके वहाँ रहनेके समय दरमियान उसके तेज और तापमान करीब एक-से रहते हैं। अनेक वर्षोंके बाद (कई किस्सोंमें, अरबों वर्षोंके बाद) तारेकी जिंदगीमें विक्षेप पैदा होता है। उस समय तारेका हाइड्रोजन-संचय बहुत कुछ कम हो होता है। तारा तब समक्रम श्रेणी छोड़कर उसके दाहिनी ओरके ऊपरके भागकी ओर ऊँचे चढ़ना शुरू करता है। यह विभाग लाल

विराट तारोंका है। इस विभागमे पहुँचते ही तारेका तेज बढ़ने लगता है: खयालमें रहे कि उस वक्त उसकी हाइड्रोजनकी संपत्ति कम ही होती है, मगर उसका गर्भभाग हेलियमका हो गया होता है।

कुछ अरसा बीतने पर तारेका हेलियम भाग सिकुडने लगता है और उसमेंसे प्रकट होनेवाली शक्तिके कारण तारा ज्यादा तेजस्वी हो जाता है। साथ-साथ उसका आयतन (बाहर-के भागका) भी बढ़ने लगता है। तारा अब लाल विराट तारेमे पलट जाता है और इस स्थितिमे वह ठीक-ठीक समय स्थिर रहता है। बादमे वह रूपविकारी तारा बन जाता है और तेजमे और आयतनमें बहुत ही घटिया प्रकारका तारा होकर आखिरमे श्वेत वामन तारेके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। यह सारा खेल लाल तारेसे स्फोटक तारा बननेके और बादमे संपूर्णतः टूट जानेके रूपमे होता है। स्फोटक तारा अपने अवशिष्ट श्वेत वामन तारेके इर्द-गिर्द विराट वायुबादलोंका जमघट छा देता है। जमघटके वायुबादल, बादमे, धीरे-धीरे अवकाशमे सरकते जाते हैं। वायुबादलोंसे मुक्त होकर श्वेत वामन अपनी कम हाइड्रोजन-पूंजीके बल पर, कुछ समय तक आसमानमे चमकता रहता है। बादमें उसका चमकना भी बद हो जाता है और उस समय उसका स्वरूप काले तारेका हो जाता है, जिसे दूरबीनसे नही देखा जा सकता। यों कहिये कि वह प्रेत-तारा बन जाता है।

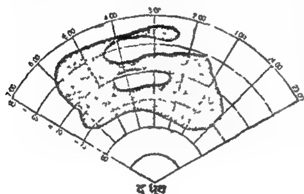
ऐसा नहीं है कि सभी तारे, अंतिम अवस्थामे स्फोटक बन जाते हैं। कुछ तारे श्वेत वामनमें पलटनेसे पहले अपने द्रव्यका 'बाष्पीभवन' शुरू कर देते हैं। मतलब कि वे अपना वायु गँवाते रहते हैं और यों अपनी हाइड्रोजन संपत्ति कम करते-करते वे आखिरमें श्वेत वामन तारे बन जाते हैं।

तारोंसे निकलकर जो द्रव्य अवकाशमे बिखर जाता है वह नये तारोंकी उत्पत्तिमे काम आता है। इस प्रकारसे जो नये तारे पैदा होते हैं उनके परमाणु वजनदार होते हैं। स्फोटक तारोंसे छटके हुए परमाणु नये भारी परमाणुओंको उत्पन्न करनेका मूलभूत कार्य करते हैं।

विनाश और सर्जनकी रचना कैसी अगम्य है?

९. नजदीकके ताराविश्व

मंदाकिनीविश्व अंतरिक्षका एकमात्र ताराविश्व नहीं है। उसीकी तरह तारे, तारामेघ, तारागुच्छ, निहारिकायें वगैरहको समाविष्ट करनेवाले दूसरे अनेक छोटे-बड़े ताराविश्व अंतरिक्षमें हैं। इन ताराविश्वोंमें से कई हमसे नजदीकके हैं तो अन्य अत्यन्त दूरके। बहुत नजदीकके ताराविश्वोंमें से केवल तीन ही ताराविश्वोंको नग्न आंखोंसे देखा जा सकता है। नग्न आंखोंसे दिखाई देनेवाले ये ताराविश्व हैं बड़ा मेगेलेन-विश्व, छोटा मेगलेनविश्व और देवयानीविश्व। इनमें देवयानीविश्व हमसे कुछ



मेगेलन विश्वोंका स्थान

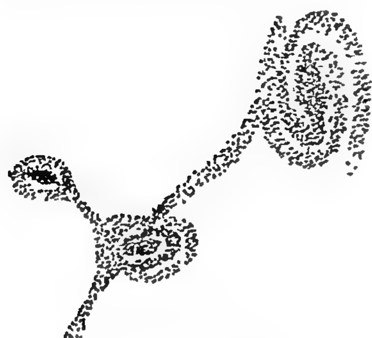
दूरका है। देवयानीविश्व हमसे २२ लाख प्रकाशवर्ष दूर है जबकि दोनों मेगेलेनविश्व करीब डेढ लाख प्रकाशवर्ष। मेगेलन ताराविश्वोंको, उनकी मंदाकिनीविश्वकी निकटताके कारण, करीब १९५० तक मंदाकिनी विश्वके उपविश्व माना जाता था। मेगेलेनविश्व जब पहले-पहल खोजे गये थे तब उनको आकाशगंगासे टूटकर अलग बने हुए तारावादलोंके टुकड़े माने जाते थे। इसी कारण आज भी उनको उनके पुराने नाम 'मेगेलेन तारामेघ' से पहचाना जाता है।

मेगेलेन ताराविश्वोंको नग्न आंखसे देखा जा सकता है ऐसा हमने कहा मगर भारतके उत्तरीय भागवाले उनको नहीं देख पाते हैं। ये दोनों ताराविश्व पृथ्वीके दक्षिणी गोलार्धमें आये हुए हैं। उन्हें देखनेके लिये हमें दक्षिण भारतकी यात्रा करनी होगी। नग्न आंखसे सभीको दिखाई पड़नेवाला केवल एक ही ताराविश्व-देवयानीविश्व है। देवयानी विश्वसे भी हमसे नजदीकके और ताराविश्व भी हैं मगर वे सभी नग्न आंखसे दिखाई दें वैसे बड़े नहीं हैं। मेगेलेन और देवयानीताराविश्वोंके अलावा दूसरे तेरह ताराविश्व हमारे निकटके विश्व हैं। मंदाकिनी विश्वके इनके साथ मिलाने पर १७ ताराविश्वोंका एक समूह बना मालूम हुआ है। इस विश्व-समूहको हम स्थानीय या मंदाकिनीविश्व-समूह कहेंगे। मंदाकिनीविश्वसमूहमें सबसे

बड़ा ताराविश्व देवयानीविश्व है। अब पता चला है कि मंदाकिनी विश्वसमूहमे १० वामन विश्व और शामिल हैं।

देवयानीविश्वकी बात करनेसे पहले हमसे बिलकुल निकटके मेगेलन ताराविश्वोंकी बात करना ठीक होगा।

मेगेलनविश्वोंमेसे एक बड़ा है और दूसरा छोटा। मदाकिनीविश्वकी तुलनामे वे दोनो एकदूसरेके ज्यादा निकट हैं। उन दोनोंके बीचका अतर ७५,००० प्रकाशवर्ष है। मेगेलनताराविश्वोंको हमने छोटे-बड़े कहा मगर वह उनकी आपसी तुलनाकी बात है। वास्तवमे ये ताराविश्व बिलकुल छोटे या वामन ताराविश्व नही हैं। छोटे मेगेलन विश्वका व्यास २२,५०० प्रकाशवर्ष और बड़े मेगेलन विश्वका व्यास ५०,००० प्रकाशवर्ष है। बड़े फैलाववाले इन ताराविश्वोंको युग्म ताराविश्व होनेका माना गया था मगर अब मालूम हुआ है कि वे दोनों विश्वद्वयके एवजमे विश्वत्रय रचते हैं। अपना मंदाकिनीविश्व इस त्रिकविश्वका सदस्य है। इस बातका सबूत मिला है कि इन विश्वोंके साथका पारस्परिक अनुसंधान रचनेवाले वायुबादलोंसे बड़ा मेगलनविश्व जिस वायुसेतुसे मंदाकिनीविश्वके साथ जुड़ा हुआ है उसकी लम्बाई पचास हजार वर्ष है! इस वायुसेतुमे तारोंके अलावा श्वेत निहारिकायें और धूलके बादल भी हैं। मदाकिनीविश्व सूर्यके नजदीकका विश्वबाहु उसके अन्य विश्वबाहुओंसे कुछ निरालापन दिखाता है। कई वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि इस विचित्रताका कारण बड़ा मेगेलनविश्व है। बड़े मेगेलनविश्वके वायुसेतुसे बिलकुल विपरीत दिशामे एक दूसरा प्रतिसेतु है। यह सेतु शायद समतुलाके लिये होगा!!



मंदाकिनी–मेगेलन सेतु

मेगेलन-विश्वका हमसे नजदीक होनेका एक बड़ा फायदा यह है कि उनका विस्तारपूर्वक अभ्यास किया जा सका है। नग्न आँखसे भी जिसके तारे नजर आयें ऐसे इन ताराविश्वोंको दूरबीनसे देखने पर बहुत जानकारी प्राप्त होती है। दुनियाकी सबसे बड़ी ५०० से. मी. वाली दूरबीनसे देवयानीविश्वको जिस कद्र स्पष्ट देखा जा सकता है छोटी दूरबीनोंसे मेगेलन विश्वोंको उसी प्रकार स्पष्ट देखा जाता है। दक्षिण गोलार्धकी सबसे बड़ी दूरबीन १८५ सें. मी. की है। इस दूरबीनसे मेगेलन विश्वको देखनेका अर्थ देवयानी विश्वको २,००० सें. मी. वाली दूरबीनसे देखनेके बराबर होता है। मेगेलन विश्वोंकी नाभि-संरचना और अन्य बातोंकी जानकारी प्राप्त होनेके मूलमे यही कारण है।

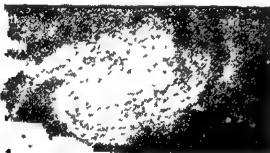
मेगेलन विश्वोंसे प्राप्त जानकारीके कारण तारोंकी और ताराविश्वोंकी उत्क्रान्ति-प्रक्रिया समझनेमे मदद मिली है। ताराविश्वोंके स्वरूपोंके समझनेके प्रयत्नोंमे जो प्रश्न ज्यादा पेचीदगी उत्पन्न करते हैं वे हैं ताराविश्वोंकी आंतरिक सरचना। ताराविश्व कब और किस प्रकार उत्पन्न हुए, वे किस तरह कायापलट करते हैं, उनका आखिरी अंजाम क्या है वगैरह प्रश्न खास महत्त्वके

हैं। इन प्रश्नोंको सुलझानेमें देवयानीविश्व काफी सहायभूत हुआ है मगर मेगेलनविश्वोंकी तुलनामें वह पन्द्रह गुना दूर होनेसे तुलनात्मक साधनके रूपमें उसका आसानीसे उपयोग नहीं किया जा सकता है। अतएव हिसाबसे और तारोंके उत्क्रान्तिक्रमको समझनेकी दृष्टिसे (विशिष्ट तारे और निहारिकाओंके कारण) मेगेलनविश्व बहुत ही महत्त्वके हैं।



मेगेलेन

उपर्युक्त अनुकूलता होते हुए भी मेगेलनविश्वोंका अभ्यास आसानीसे नहीं किया जा सकता है। इन दोनों ताराविश्वोंकी सतह हमारी नजरके बिल्कुल सामनेकी नहीं है। वह तिरछी है। तिरछेपनके हिसाबसे बड़ा मेगेलनविश्व छोटे विश्वसे कुछ कम तिरछा है। और इसी कारण उसीका ही ब्यौरेवार ज्यादा आस्थासिक निरीक्षण हो सका है। कुछ साल पहले यह माना जाता था कि ये दोनों ताराविश्व बिना किसी आकारके अरूप ताराविश्व हैं। मगर उनके आतर्बाह्य सूक्ष्म निरीक्षणोंसे अब पता चला है कि वे दोनों सर्पिल ताराविश्व हैं। और उनका आकार मदाकिनीविश्वके या देवयानीविश्वके प्रकारका न होकर दण्डीय प्रकारका है। छोटे मेगेलन विश्वके सर्पिल स्वरूपका पता अभी अभी लगा है। पता बहुत देरीसे लगनेका कारण उसकी तिरछी स्थिति है।



दण्डीय सर्पिल ताराविश्व

लेकिन यह कथा यहा पूरी नहीं होती है। दण्डीय सर्पिल ताराविश्वके मध्यदण्डके दोनों छोरसे विश्वके बाहु निकले होते हैं। बड़ा मेगेलनविश्व इस प्रकारका एक ही बाहुवाला है! अचरजकी बात यह है कि यह बाहु मदाकिनी विश्वकी ओरका नहीं है मानो वह हमारे विश्वकी मैत्रीका इन्कार करता हो। छोटा मेगेलन विश्व अपना स्वरूप प्रकट करनेमें आज भी नाराज है! इन नाराजगियोंका अर्थ क्या हो सकता है? वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि ये दोनों ताराविश्व दण्डीय ताराविश्वकी उत्क्रान्तिकी शुरुआतके सोपान-प्रतीक होंगे।

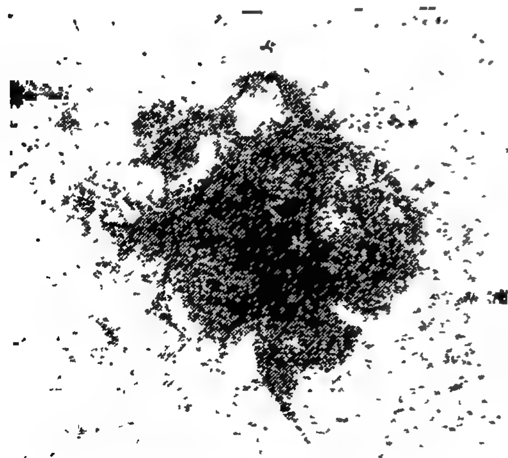
मेगेलनविश्वों और मदाकिनीविश्वके बीच वायुसेतुके रूपमें जो आतर्विश्विक द्रव्य है उसके अस्तित्वका मर्म क्या समझें? ताराविश्व एक दूसरेके द्रव्यको आकर्षित करते रहते हैं उस अर्थमें उनकी अवस्थिति समझना ठीक है क्या? गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तके अनुसार इसका मेल नहीं बैठता है। ब्रह्माडमें दूसरे स्थानोंमें भी ताराविश्वोंके बीच इस प्रकारके वायुसेतुओंके अस्तित्वका

पता चला है। संभव है कि उनका अस्तित्व चुंबकीय द्रव-गति-प्रक्रियाका परिणाम हो। मेगेलन विश्वोंके और मंदाकिनी विश्वके बीच और साथ-साथ उन दोनोंको परिव्याप्त करता चुंबकीय क्षेत्रके अस्तित्वका पता चला है।

मेगेलन ताराविश्वोंके स्वरूप सर्पिल प्रकारके होनेका निश्चित होनेके बाद उनके अपनी धुरीके इर्दगिर्द अक्षभ्रमण करनेकी बातका भी पता चला है और उसीके आधार पर उनकी द्रव्यसपत्तिका हिसाव लगाया गया है। बड़े विश्वकी तारासपत्ति पाँच अरव सूर्यकी और छोटे विश्वकी डेढ़ अरव सूर्यकी है। बड़े विश्वका व्यास मदाकिनी विश्वके व्यासका आधा होने पर भी उसकी द्रव्यसंपत्ति प्रमाणमे वहुत कम है। तारोंके अलावा, हमारे मदाकिनी विश्वकी तरह इन दोनों ताराविश्वोंमे उनकी तारासंपत्तिके वरावरका निहारिका द्रव्य भी मौजूद है। यह द्रव्य शिथिल हाइड्रोजन है।

अतर्तारकीय द्रव्यके अलावा, इन दोनों ताराविश्वोंमे अवकाशीय और गोलाकार तारकगुच्छ, वृषपर्वा और ग्रहणवर्गीय रूपविकारी तारे और स्फोटक तारे हैं। पिछले पचास वर्षोंके दरमियान वड़े विश्वमे ६ और छोटे विश्वमे ४ स्फोटक तारे दिखाई दिये हैं। हाँ, परम स्फोटक तारा एक भी नहीं दिखाई दिया है। दोनों ताराविश्व अभी उत्क्रान्तिकी शुरूआतकी सीढ़ी पर हैं इस कारण और साथ-साथ उनकी युवा तारासंपत्तिको देखते हम अनुमान कर सकते हैं कि जंभाई लेनेके साथ ही प्राणत्याग करनेकी वृत्ति दर्शानेवाले परम स्फोटक तारोंका इन ताराविश्वोंमे अस्तित्व ही नही है।

मेगेलन विश्वोंका वर्णन एक लेखकने यों किया है: 'अपने मंदाकिनी विश्वके तारोंके वड़प्पनकी किसी भी वातको इन साथीविश्वोंके संदर्भमे देखने पर मालूम होगा कि वैसी हरेक वातको परास्त करनेवाले तारे मेगेलन विश्वोंमे हैं। वड़े मेगेलन विश्वके नील विराट, लाल विराट और वृषपर्वा रूपविकारी तारोंकी होड करनेवाले तारे मदाकिनी विश्वमे शायद ही ढूंढे जा सकेंगे। तारकगुच्छों और निहारिकाओंके वारेमे भी वही दशा है। वड़े विश्वमे सव मिलाकर ३०१ तारागुच्छ और निहारिकायें हैं। इनमेसे मकड़ीके आकारकी सवसे वड़ी लूतिका निहारिका ८०० प्रकाशवर्ष लवी-चौड़ी है! छोटे विश्वमे डेढ़ सौके करीव निहारिकाओंका व्यास २५ प्रकाशवर्ष (अपनी मृगश्वेत निहारिकाके वरावरका) है।



लूतिका निहारिका

अपनी मृगरवेत निहारिकाकी द्रव्यसंपत्ति १०० सूर्यकी है मगर उपर्युक्त लूतिका निहारिकाकी द्रव्यसंपत्ति ५ लाख सूर्यकी है। मृग निहारिकाके स्थान पर लूतिका निहारिकाको रख दिया जाय तो वह सारे मृगमंडलको छा देनेवाले तेजस्वी पदार्थके रूपमें नजर आयगी। इसके अतिरिक्त वह अंधेरी रातोंमें परछाई उत्पन्न करनेवाला प्रकाश भी देगी। गरम, युवा और अति तेजस्वी तारोंके जो गुच्छ इस निहारिकामें हैं वैसे हमारे ताराविश्वमें कहीं भी न मिलेंगे।

मेगेलन ताराविश्वोंके कई तारकगुच्छोंके व्यास ३०० प्रकाशवर्षके हैं। और इन गुच्छोंमें नीले और लाल विराट तारोंके अलावा चमकती निहारिकायें भी हैं। मगर यह हुई खोखले तारकगुच्छोंकी बात। गोलाकार या सघन तारागुच्छोंकी भी यहां कमी नहीं है। बड़े विश्वमें ३१ और छोटे विश्वमें १४ गोलाकार तारकगुच्छ हैं। सघन तारागुच्छोंकी दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि मेगेलन ताराविश्वोंकी थोड़ी आबादी (Stellar population) तारा-उपनिवेश २ प्रकारकी भी है। आम तौर पर तारा-उपनिवेश १ की आबादीवाले इन ताराविश्वोंका एक विशिष्ट लक्षण नीले विराट तारोंके एवं सघन तारकगुच्छका है। इससे बड़े आश्चर्यकी दूसरी बात यह है कि बड़े मेगेलन ताराविश्वोंमें सघन नीले तारागुच्छ जन्म पा रहे हैं ऐसी वैज्ञानिकोंकी दृढ़ धारणा है। मंदाकिनी विश्व इस प्रकारकी कोई विशिष्टता दिखलानेका गर्व नहीं ले सकता है।

मेगेलन विश्वोंके धूपपर्ण प्रकारके रूपविकारी तारोंकी तरह उनके ग्रहणवर्गी रूपविकारी तारे भी महान हैं। इन महानोंमें भी एक महान तारा है जो रूपविकारी तारोंका सिरमौर है।

उपर्युक्त महान तारेका नाम है स असिमीन (S Doradus)। इस तारेका निरपेक्ष वर्ग १० से ११ है और इसी कारण उसे नग्न आँखसे देख पाना मुश्किल है। यह होते हुए भी आश्चर्यकी बात यह है कि आज तकके ज्ञात अत्यंत तेजस्वी तारोंमें वह सबसे ज्यादा तेजस्वी है। उसका तेजांक १० लाख है। सूर्यसे दस लाख गुना तेजस्वी यह तारा वास्तवमें अकेला तारा नहीं है। वह एक युग्म तारा है जिसके दोनों साथी-तारे करीब एकसे हैं। मगर एक-से दो तारोंका अर्थ दो छोटे-छोटे तारे समझनेकी जरूरत नहीं है। स असिमीनके एक तारेका व्यास सूर्यव्याससे १९०० गुना है और दूसरे तारेका २१०० गुना। उनके द्रव्यसंचयकी बात भी आश्चर्यजनक है। एक तारा सूर्यसे १४५ गुना भारी है तो दूसरा १६० गुना।

ऐसे अति सत्त्ववान, अति विराटोंमें भी अति विराट परम तेजस्वी तारेसे स्पर्धा करनेवाला कोई तारा मंदाकिनी विश्वमें है ही नहीं।

कुदरत छोटोंको बड़ाई बख्शनेके वक्त कोई कोर-कसर नहीं रखती है यह बात यहां प्रतिबिंबित होती नजर आती है।

अपने स्थानीय विश्व समूहके अत्यंत नजदीकके दो ताराविश्वोंकी बात कर लेने पर, इसी जूथके सबसे दूरके ताराविश्व—देवयानी विश्व—की अब बात करेंगे।

दूरबीनका आविष्कार हुआ उससे पहले, नग्न आंखसे दिखाई देनेवाले अत्यंत दूरके अवकाशीय पदार्थोंमेंसे देवयानी ताराविश्व एक है। एक ईरानी (Persian) खगोलशास्त्रीने इसे ९ वीं सदीमें देखा था। तारोंके हिसाबसे विशिष्ट स्पष्टतासे इस विश्वका तब किसीने

खास अभ्यास नहीं किया था और इस कारण उसकी गिनती आकाशगंगाके वायुवादलसे कुछ अलग चीजके रूपमें न हुई। परिणाम यह हुआ कि उसके वारेमे कोई अन्वेषण न हुआ और सारी वात विस्मृतिके गर्तमें चली गई।

देवयानीविश्वका पुनः दर्शन हुआ सन १६१२ मे और वह भी दूरवीनके कारण।

देवयानीविश्व ताराभुजाओंवाला सर्पिल ताराविश्व है। उसकी रूपछटा अनूठी है। प्रभावोत्पादक इस ताराविश्वने खगोलशास्त्रियोंका जितना ध्यान खींचा है उतना ही उसने खगोल-रसिकोंका और आम जनताका भी खींचा है। विज्ञापनकी भाषामे कहें तो यह ताराविश्व फोटोग्राफीका उत्तम पोझ (Pose) प्रस्तुत करता है। चमकते केन्द्रको चारों ओरसे लपेटनेवाले वायुवाहुओंके वीचवाला भाग कालापन लिये हुए है और वह देवयानीविश्वको अधिक शोभित करता है। दूरवीनवाले व्यक्तिने देवयानीविश्वके उपर्युक्त सौन्दर्यका पान न किया हो यह करीव करीव असंभवित वात है। देवयानीविश्वको देखनेका लोभ टाली जानेवाली चीज नहीं है।

देवयानी तारकमंडलमे दिखाई पड़ता यह विश्व अपने मंदाकिनी विश्व जैसा मगर इससे कुछ वड़ा ताराविश्व है। देवयानी ताराविश्वकी दूरी आधुनिक हिसावसे २२ लाख प्रकाशवर्प की है। अंतरिक्षीय पदार्थोंके दूरत्व उनके अन्दर अवस्थित विभिन्न प्रकारके तेजस्वी तारोंकी मददसे खोजे जाते हैं। इन तारोंमें वृपपर्वा प्रकारके रूपविकारी तारे विशेप महत्त्वके हैं। देवयानीविश्वकी सर्व प्रथम दूरी खोजनेका यश एडविन पी. हवलको मिला है। सन १९१९ मे सैनिककार्यसे निवृत्त होकर उन्होंने माउन्ट विल्सन वेवशालामे काम करना शुरू किया था। उनका खास काम था वेधशालाके नियामक हार्लो शेप्लीकी सूचनाके अनुसार नियमित रूपविकारवाले देवयानी विश्वके तारोंको खोजना। करीव १२ वृपपर्वा रूपविकारी तारोंके रूपविकारके समय और उनके दृश्यवर्गोके आधार पर हवलने उन तारोके निरपेक्षवर्ग निश्चित किये और प्राप्त सामग्रीकी सहायतासे देवयानी विश्वके दूरत्वका हिसाव लगाया तो वह साढ़े सात लाख प्रकाशवर्पका मालूम हुआ। उन दिनों इस प्रकारके वड़े अंतरोंकी कल्पना किसीने भी न की थी। और यों उसका प्रथम प्रत्याघात दुनियाको अचरजमें डालनेका हुआ। पर आज हम जानते हैं कि देवयानी विश्वका उपर्युक्त अतर उसके सच्चे दूरत्वका केवल तीसरे भागका ही है।



एडविन. पी. हवल

देवयानीविश्वका व्यास अपने ताराविश्व–मंदाकिनीविश्व से दुगुना (२ लाख प्रकाशवर्पका) है मगर उसका द्रव्यसंचय ३३० अरव सूर्यके वरावरका है। अपने ताराविश्वके हिसावसे यह द्रव्यसंचय प्रमाणमें कुछ कम है। निरीक्षणोंसे मालूम हुआ है कि देवयानीविश्वमें तारा

उपनिवेश १ प्रकारके तारोंकी संख्या कुल तारोंकी संख्याके २० प्रतिशत जितनी है मगर उनके द्वारा विकिरित होनेवाला प्रकाश समग्र ताराविश्वके प्रकाशनिर्गमके ९० प्रतिशत जितना है। देवयानीविश्वके निस्तेज तारोंको दूरबीनसे देख पाना संभव नहीं है। बहुत बड़ी दूरबीनसे केवल विराट तारोंकी छवि ली जा सकती है। हाँ, देवयानीविश्वके सघन गोलाकार तारकगुच्छोंको देखा गया है और यों देवयानीविश्वमें तारा-उपनिवेश २ प्रकारके तारे बड़ी संख्यामें होनेका पता चला है। देवयानीविश्वमें स्फोटक और परमस्फोटक तारे भी हैं। विशेष करके वे केन्द्रभागमें मालूम पड़े हैं। हर वर्ष वहाँ करीब २६ स्फोटक तारे दिखाई देते हैं। परम स्फोटक तारोंकी संख्या बहुत ही कम रहती है और उनके विस्फोट लंबे अरसेके बाद नजर आते हैं।

अतमें हम देवयानीविश्वके स्वरूपकी बात करेंगे।

देवयानीविश्वका मध्यभाग अंडाकार है और इसका विस्तार बहुत बड़ा नहीं है। केन्द्रसे ३००० प्रकाशवर्षकी दूरी पर इस विभागमेंसे भुजायें फूटती हैं। केन्द्रके समीपकी पहली भुजा एक चक्कर अंतर काटकर दो भागोंमें विभक्त हो जाती है। यह भुजा ज्यादातर वायु और धूलके बादलोंसे बनी है और उसका आरंभ जटिल प्रकारका है। देवयानी विश्वकी दूसरी भुजाका रूप ज्यादा स्पष्ट है। केन्द्रसे वह ३००० पार्सेक (या १०,००० प्रकाशवर्ष) दूर है और उसमें चमकती हाइड्रोजन वायुके अतिरिक्त नीले गरम तारे भी हैं। देवयानीविश्वकी तीसरी भुजा अतिविराट तारोंसे भी समृद्ध है तो चौथी भुजा विराट और अतिविराट तारोंके अलावा चमकते वायुबादलोंसे भी सघन है। यह माना जाता है कि इस भुजाका सारा द्रव्य उत्तप्त होकर तारोंमें पलट गया है। देवयानीविश्वकी और दो भुजायें भी हैं जो केन्द्रसे सबसे दूरकी हैं और जिनमें अनेक नीले, लाल अतिविराट तारोंके अलावा वृषपर्वा प्रकारके रूपविकारी तारोंकी मजलिस जमी है। इन वायुभुजाओंमें धूलका अस्तित्व नहीं है और इस कारण उनको भेदकर सुदूर अंतरिक्षमें हमारी दृष्टि पहुँच सकी है।

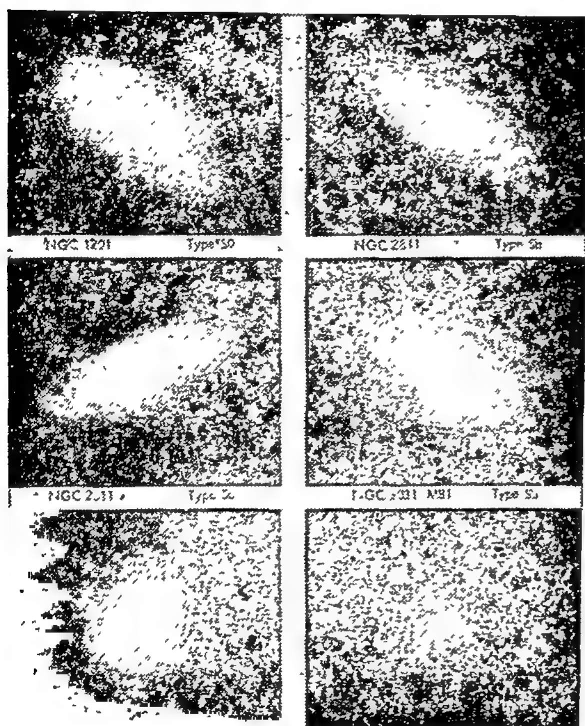
मगर यह हुई बाहुओंकी कथा। इन भुजाओंसे अलग देवयानीविश्वकेन्द्रसे करीब ५ लाख प्रकाशवर्ष दूर ब वर्णकके गरम तारे दिखाई पड़े हैं। अनुमान किया जाता है कि देवयानी विश्वकी कोई भुजा अलग बन बादमें अदृश्य होकर तारोंके रूपमें परिवर्तित हो गई हो।

अंतरिक्षमें देवयानीविश्व अकेला नहीं है। वह भी निकविश्वका एक सदस्य है। देवयानी विश्वके साथीविश्व एन जी सी २२१ (मे ३२) और एन जी सी २०५ हैं। इन दोनोंको देवयानीविश्वके उपविश्व कहना ठीक होगा। ये दोनों हमारे मेगेलन ताराविश्व जैसे भी नहीं हैं। सामान्य ताराविश्वोंके हिसाबसे वे अत्यंत छोटे या वामनविश्व हैं। न २०५ विश्वके तारोंको अलग अलग करके देखा जा सका है। मालूम हुआ है कि वे सभी तारा-उपनिवेश २ प्रकारके अवेड़ तारे हैं।

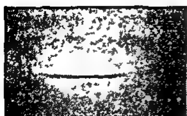
देवयानीविश्व हमसे कितना ही दूर क्यों न हो, ब्रह्माण्डको समझनेके मानवोंके प्रयत्नों और निरीक्षणोंके उत्तम क्षेत्रके रूपमें उसका ब्यौरेवार अभ्यास अत्यंत फलप्रद साबित हुआ है।

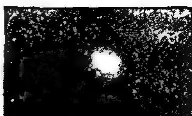
१०. ताराविश्व : प्रकार और द्रव्यसंचय

मंदाकिनी ताराविश्वकी वात हमने सुनी। हमने यह भी देखा कि हमारे ताराविश्वमे १०० अरव तारे हैं, और करीव उतने ही तारे पैदा करनेवाला ताराद्रव्य मौजूद है। मंदाकिनी विश्वके भीतरसे उसका सपूर्ण दर्शन करना संभवित नहीं है। आकाशगंगाके पाटवाला हमारे विश्वका हिस्सा ठोस तारा-वादलों और वायुवादलोंवाला है। इस कारण उस पाटके पार क्या है वह दूरवीनसे भी दिखाई पड़े जैसा नहीं है। फिर भी मंदाकिनी विश्वके अन्य हिस्सोंमे जहाँ तारे अलग-अलग हैं और जहाँ वायुवादल कम और विखरे हुए हैं वहाँसे अंतरिक्षके अंदर झाँका गया है। दूरवीनकी मददसे दूर-दूरके ताराविश्व देखे जा सके हैं। इन ताराविश्वोंको पहले मदाकिनी-विश्वके भाग या द्वीपविश्व समझा जाता था। वादमे मालूम हुआ कि यह अनुमान गलत था। ताराविश्वोंके अंतरोंको कम नापे जानेके कारण अनुमानमे भूल आती थी। शुरू शुरूमे, देवयानी विश्व हमसे एक लाख प्रकाशवर्ष दूर होनेका माना गया था लेकिन वादमे उसका ७½ लाख प्रकाशवर्ष दूर होना मालूम हुआ था। आधुनिक हिसाव उसे २२ लाख प्रकाशवर्ष दूर रखता है। इतना ही नहीं लेकिन उसे हमारे मंदाकिनीविश्वसे भी वड़ाविश्व मानता है।



विविध ताराविश्व



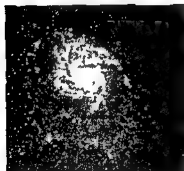


१





२





३

१. एन जी सी ४५९४		१ एन जी सी २८५९	
२	,, २८४१	२	,, ५८५०
३	,, ५४५७	३	,, ७४७९



१



२



३

१. एन जी सी ३३७९
२. ,, ४६२१
३. ,, ३०३४

१. एन जी सी २२१
२. ,, ३१२१
४. ,, ४४४९

छोटी दूरबीनोंसे देखने पर, प्रारंभमें, ताराविश्व थोड़े-बहुत धुंधले प्रकाशपुंज जैसे दिखाई दिये थे। इनकी शकल अंडे जैसी या गोल दिखाई दी थी। और उनका मध्यभाग और भागोंसे ज्यादा चमकीला दिखाई दिया था। मगर इस तरहके विश्वदर्शनसे ताराविश्वोंके आंतरिक स्वरूपों के बारेमें कोई खास जानकारी प्राप्त नहीं होती थी। विशेष जानकारी प्राप्त करनेके लिये बड़ी और ज्यादा शक्तिशाली दूरबीनें बनायी गयीं। ऐसी दूरबीनोंके द्वारा ताराविश्वोंके फोटो खींचे गये तो कई एक ताराविश्वोंकी शकल भँवर जैसी सर्पिलाकार जाहिर हुई। इतना ही नहीं मगर इनकी नाभियोंमें भी तारोंका अस्तित्व पाया गया। विविध ताराविश्वोंकी नाभियोंका छोटी-बड़ी होना भी जाना गया है। इसके अलावा कई एक ताराविश्वोंमें नाभिके अंतभागसे फूटकर उसके चारों ओर फंदेके रूपमें लिपटनेवाली तारों और वायुओंकी बनी विश्वभुजायें भी देखनेको मिली हैं। बहुत सी भुजायें नाभिको अत्यंत निकटसे लिपटती हुई मालूम हुई हैं तो कुछ एक अत्यंत दूरसे और वह भी स्पष्ट रूपमें।

दूरबीनों द्वारा प्राप्त जानकारीके कारण ही ताराविश्वोंके स्वरूपोंको समझना सरल हुआ है।

हम यह जानते हैं कि अंतरिक्षमें आये हुए सभी ताराविश्व एक-से नहीं हैं। आकार, प्रकार और तारासंपत्तिकी दृष्टिसे ये सब एक दूसरेसे अलग पड़ते हैं। कुछ ताराविश्व हमसे बहुत ही दूर अवस्थित हैं फिर भी वास्तवमें उनका छोटा और निस्तेज होना भी जाना गया है। इस कारण ताराविश्वोंका अभ्यास करते समय उनकी विभिन्नतामें समादिता खोजनी चाहिये। ताराविश्वोंकी प्रमुख समादिता उनके स्वरूपोंकी है। ताराविश्वोंके स्वरूपोंका विशिष्ट अभ्यास विख्यात खगोलवेत्ता हबल्ने किया था। दूरबीन एवं फोटोकी पद्धतिसे निरीक्षण करनेके बाद उसने घोषित किया कि स्वरूप भेदसे ताराविश्व अंडाकार या गोलाकार ताराविश्व, सर्पिल ताराविश्व और अरूप ताराविश्व ऐसे तीन प्रमुख प्रकारोंमें बँट जाते हैं।

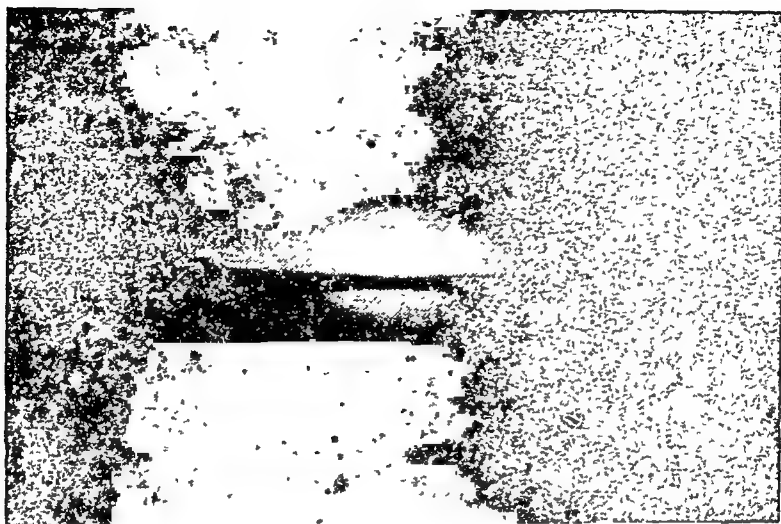
उपर्युक्त तीनों प्रकारके विषयमें हम थोड़ी चर्चा करेंगे।

सबसे पहले अंडाकार ताराविश्वकी बात करेंगे। इस प्रकारके ताराविश्वोंको खगोलशास्त्री ई (यानी Elliptical) संज्ञासे पहचानते हैं।

अंडाकार ताराविश्व गोलाकारसे लेकर मसूराकार तकके आकारोंकी विविधता दर्शाते हैं। ये आकार ई$_0$ से ई$_7$ तकके हैं। ई$_0$ संज्ञावाले ताराविश्व संपूर्ण गोलाकार हैं जबकि दूसरे आकार-वाले ज्यादा चिपटे। अंडाकार ताराविश्वोंका ई अंक १० (क—ख) —क पूर्णांक जवाबसे प्राप्त किया जाता है। यहाँ क और ख क्रमसे अंडाकृतिके गुरु और लघु अक्ष हैं। सामान्यतया क—ख का अंक ३ से ज्यादा नहीं होता है और इसलिये ई$_7$ संज्ञावाला ताराविश्व सबसे ज्यादा चिपटा या मसूराकार माना गया है।

अंडाकार ताराविश्व बीच भागमें चमकीले होते हैं, पर छोर तक पहुँचते वे धुंधले पड़ जाते हैं। इन ताराविश्वोंके कोई निश्चित सीमा नहीं होती है और इस कारण उनका स्वरूप भी स्पष्ट नहीं होता है। वायुके गाभे-गूदे जैसे इनके आकार इन विश्वोंकी आंतरिक संरचना सम-

ज्ञनमें विघ्नरूप बने हैं। ऊपर ऊपरकी दृष्टिसे ऐसा लगता है मानो अंडाकार ताराविश्व सघन तारागुच्छोंकी तरह तारोंसे ठूँस-ठूँसकर भरे गये छोटे ताराविश्व हैं। अत्यत शक्तिशाली दूरबीनोंसे इनके तारे देखे गये हैं। मालूम हुआ है कि बहुधा वे सभी लाल रंगके तारे हैं। इ ताराविश्वोंमें नीले और श्वेत तारे नहीं हैं। नीले और श्वेत तारे युवा तारे हैं। लाल तारे अधेड़ उम्रके हैं। प्रश्न होगा अंडाकार ताराविश्व अधेड़ ताराविश्व हैं क्या? उनके इ॰ से इ॰ के क्रमका क्या? क्या यह क्रम उत्क्रान्ति दिखानेवाला क्रम नहीं है?



कन्या राशिका सर्पिल ताराविश्व एन जी सी ४५९४

आधुनिक शोधोंके द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि इ प्रकारके कई एक ताराविश्व दूसरे ताराविश्वोंकी अपेक्षा कम गाढ़ापन लिये हुए हैं। इसके अलावा कुछ ताराविश्व कालापन धारण किये हुए भी मालूम पड़े हैं। उत्क्रान्तिके हिसाबसे इन बातोंका अर्थ क्या समझा जाय? ताराविश्वोंकी उत्क्रान्तिकी चर्चाको आगे पर छोड़कर, यहाँ हम ताराविश्वोंकी अन्य बातें करेंगे। आकाशमें अवस्थित ताराविश्वोंमें से ८० प्रतिशत ताराविश्व सर्पिल आकारके हैं। सर्पिल ताराविश्वोंको दो उपप्रकारोंमें बाँटा गया है: (१) सामान्य और (२) दंडीय। इन दोनोंका अनुपात ५० : ३० का है।

सर्पिल ताराविश्वोंकी विशेषता इन विश्वोंके नाभिप्रदेशको लिपटनेवाली विश्वभुजाओंकी है। सामान्य सर्पिलमें ये भुजायें नाभिके अंत भागसे फूटती मालूम होती ह मगर दंडीय ताराविश्वमे वे उसके मध्य भागमे अव्यवस्थित लंबे दंड जैसे आकारके सिरेसे फूटती मालूम होती हैं। सामान्य सर्पिलमें ये भुजायें दो या उससे ज्यादा होती हैं मगर दंडीय ताराविश्वोंमें वे दो से अधिक नहीं होती हैं।

नाभि और भुजाओंके कारण सामान्य एवं दंडीय सर्पिलके तीन और प्रकार हो जाते हैं। सरलताके लिये हम इन विश्वोंको क्रमसे स (S) और सद (SB) कहेंगे और उनके तीन प्रकारोंको क, ख और ग से पहचानेंगे।

सक ताराविश्वका केन्द्रभाग अत्यंत स्पष्ट और अन्य ताराविश्वोंकी अपेक्षा कुछ बड़ा होता है। विश्वभुजायें नाभि भागके बिलकुल पास लिपटी हुई रहती हैं।

सख तारविश्वोंमें नाभि छोटी होती है पर उसमेंसे फूटनेवाली विश्वभुजायें सककी तुलनामें ज्यादा खुली हुई होती हैं। देवयानी विश्व और मदाकिनीविश्व इस प्रकारके तारविश्व हैं। इस प्रकारके तारविश्वोंकी भुजायें अधिक विकसित मानी जाती हैं। इन विश्व बाहुओंमें अनेक विध वायुलच्छे और वायुपिंड देखनेको मिलते हैं। मे ८१ के चित्रको देखने पर मालूम होगा कि सख तारविश्वोंकी विश्वभुजायें अपनी नाभिके करीब वर्तुलाकारमें घेरती हुई दिखाई देती हैं।

सग तारविश्वोंका नाभिभाग बहुत छोटा होता है, मगर उसकी बाहुयें अत्यंत बड़ी और विकसित होती हैं। यद्यपि इनके स्वरूप ऊपर ऊपरसे अनियमित और अस्पष्ट आकारके होते हैं तथापि ये विश्वभुजायें नाजुक और घनी भी हो सकती हैं। इनकी लपेट निहायत पोली रहती है। ये भुजायें नाभिसे दूर हट जाना चाहती न हो ऐसी इनकी प्रकृति मालूम होती है।

सामान्य तौर पर स तारविश्व तेजस्वी वायुवादलोंकी और धूलके श्याम हिस्सोंवाली जटिल रचनायें हैं। तारविश्वोंमें आये हुए धूलके बादलोंके कारण सक तारविश्वोंके बिलकुल बीचमेंसे होकर पार होनेवाली श्याम रेखायें दिखाई देती हैं। इन रेखाओंके कारण सक तारविश्व दो भागोंमें विभक्त हो जानेका भास होता है।

दंडीय सर्पिल (सद) के भी क, ख और ग उपविभाग हैं। जैसे ऊपर बतला आये हैं, इन प्रकारके तारविश्वोंकी भुजायें नाभिमेंसे नहीं मगर तारविश्वके मध्यदंडके दोनों सिरोंसे फूटती और तारविश्वको लपेटती हुई मालूम होती हैं। सदक (SBa) में यह लपेट ज्यादा कसकर लगी हुई हैं जब कि सदग (SBc) में बिलकुल खुली।

सदक तारविश्वोंका नाभिभाग बहुत ही स्पष्ट है पर उसकी भुजायें उतनी स्पष्ट नहीं हैं। वे मुश्किलसे दिखाई दें उतनी ही तेजस्वी हैं। यह कहना ठीक होगा कि वे कम विकसित हैं। एक भुजा जहां से फूटती हो वहां दूसरी भुजा आकर समाप्त होनेके कारण सदक प्रकारके तारविश्वका स्वरूप θ (थीटा) आकारका दिखता है।

सदख का केन्द्रभाग अधिक स्पष्ट नहीं होता मगर उसकी विश्वभुजायें ज्यादा स्पष्ट हैं। ये भुजायें मध्यदंडके दोनों सिरोंसे लब रूपमें फूटकर तारविश्वको लपेटमें लेनेका प्रयास करती दिखाई देती हैं।

सदग तारविश्वोंकी नाभियाँ बिल्कुल छोटी होती हैं पर उनकी भुजायें एक दूसरीसे बहुत दूर और अस्पष्ट रूपकी होती हैं। इन तारविश्वोंका आकार S जैसा होता है।

दंडीय ताराविश्वोंके दो भुजायें होती हैं। कई ताराविश्वोंमें ये पूरी पूरी विकसित नहीं होतीं। इस कारण उन ताराविश्वोंको सामान्य सर्पिल ताराविश्व माने जाते थे। मेगेलन गुरु-मेघ दंडीय ताराविश्व है पर उसके केवल एक ही भुजा है। यह संभव है कि उसकी दूसरी भुजा अभी आकार ले रही हो या हो सकता है कि वह विलकुल विलुप्त हो गई हो।

सर्पिल ताराविश्व सामान्य प्रकारका है या दंडीय प्रकारका वह निश्चित करनेका काम वहुवा कठिन वन पड़ता है। नीले तारोंके तेजमें एक ताराविश्व (एन जी सी ५१९४) सामान्य सर्पिल ताराविश्व होनाका मालूम हुआ था, मगर पीले-नीले तारोंके तेजमें वही ताराविश्व दंडीय-सर्पिलका स्वरूप दिखाता हुआ मालूम हुआ। तात्पर्य यह है कि ताराविश्वोंके जिन प्रकारों की हम वातें करते हैं वे सिर्फ दार्शनिक ढंगके हैं। उनके अन्य तरहके विभाजन भी संभवित हो सकते हैं। ऐसी रिक्तताका कारण ताराविश्वों द्वारा होनेवाला हमारे नियमोंका अनादर है। हम जो नियम वनाये उनके अवीन वे कैसे रहें? और इसी कारण यों कहा गया कि ताराविश्वोंका मनुष्यनिर्मित वर्गीकरण अंतिम प्रकारका या अविकारी रूपका नहीं है।

अरूप ताराविश्वोंके वारेमें भी थोड़ी चर्चा करेंगे।

अरूप ताराविश्व वेढ़व, संमिति रहित, नाभिहीन ताराविश्व हैं। अन्य ताराविश्वोंके मुकावले मे ये ज्यादा धुंधले हैं। आज पर्यंत जिन ताराविश्वोंका अध्ययन किया जा सका है वे सभी हमसे ज्यादा नजदीक होनेके कारण थोड़े-वहुत चमकते दिखाई देते हैं। आयतनकी दृष्टिसे अरूप ताराविश्व सवसे छोटे हैं। आजकल इनसे भी और छोटे आयतनके अरूप ताराविश्वोंका पता चला है। वहुत छोटे होनेके कारण इन्हें वामन ताराविश्व कहते हैं। इनकी खोजके कारण ताराविश्वोंका उत्क्रांति-अंकुड़ा ज्यादा अर्थपूर्ण वन गया है।

हवलने ताराविश्वोंके अंडाकार, सर्पिल और अरूप ऐसे जो तीन प्रकार वताये थे उनमें अव एक और नया प्रकार जोड़ा गया है। यह है स$_{०}$। यह प्रकार अंडाकार और सर्पिल प्रकारोंके वीचका है। क्रमकी दृष्टिसे इ$_{७}$, स$_{०}$ और स$_{क}$ या सद$_{क}$ क्रम अथवा स$_{क}$ या सद$_{क}$, स$_{०}$ इ$_{७}$ क्रम अपनाया जा सकता है, मगर इसकी चर्चा हम वादमें करेंगे।

ताराविश्वोंमें प्रवर्तमान विषमताओंकी भी थोड़ी वात कर लें। सवसे पहले नजरमें आनेवाली वात आयतनकी है। ताराविश्वोंके प्रमुख तीन प्रकारोंमें से सर्पिल ताराविश्व सवसे वड़े हैं और उन सभीमें प्रचुर मात्रामें वायुवादल हैं। अंडाकार ताराविश्वोंकी अपेक्षा वे सव ज्यादा नीले हैं। इसका अर्थ इन ताराविश्वोंको युवा ताराविश्व माननेका हो सकता है क्या? विश्वसमूहके ताराविश्वोंके निरीक्षणोंसे मालूम हुआ है कि हमसे एक समान-अंतर पर आये हुए ताराविश्व आयतनमें छोटे-वड़े हैं, इतना ही नहीं पर तेजांककी दृष्टिसे विभिन्नतावाले भी हैं। एक ही विश्वसमूहके अत्यंत तेजस्वी ताराविश्वोंका उसी समूहके धुंधले ताराविश्वोंसे दस हजार गुना प्रकाशित होना मालूम हुआ है। विश्वसमूहके ताराविश्वोंके हमसे अंतर उस समूहके तेजस्वी ताराविश्वोंके आधार पर खोजे जाते हैं। इन तेजस्वी ताराविश्वोंको विराट ताराविश्व कहा जाता है। प्रत्येक विश्वसमूहमें दो-पाँच विराट

ताराविश्वोंका होना माना जाता है। विराट ताराविश्वका तेजाव १० लाख अरब सूर्यका है। इससे उलटा धुंधले ताराविश्व १० लाख सूर्य-तेजाववाले होते हैं।

ताराविश्वोंके प्रकारोंको जानने बाद अब इनके द्रव्य-सचय (Mass) की बात करेंगे।

मदाकिनी विश्वमें १०० अरब तारे हैं यह तो हम जानते ही हैं। प्रश्न होगा कि यह सख्या कैसे प्राप्त हुई होगी? इन सारे तारोंको गिननेको कोई थोड़े ही बैठा होगा? और गिनना सभव भी कैसे हुआ होगा। मदाकिनी विश्वके सभी तारोंको देखना मुमकिन नहीं है। और तो और इन सबके फोटो उतारना भी मुमकिन नहीं। हमारे विश्वमें आये हुए वायु और धूलके बादल जिस तरह दूरबीनकी दृष्टिको रोकते हैं उसी तरह वे तारोंके फोटोंमें भी अवरोध उत्पन्न करते हैं।

तो फिर १०० अरब तारोंके होनेका कैसे मालूम हुआ होगा?

गुरुत्वाकर्षण शक्तिकी बात हम जानते हैं। इसके कारण पदार्थ वजनदार बनता है। अपने वजनके कारण टूट पड़नेसे बचनेके लिये ताराविश्व अक्षभ्रमण करते रहते हैं। ताराविश्वोंके अक्ष-भ्रमणके वेगोंका पता लगाकर ताराविश्वोंके द्रव्यसचयका पता लगाया जाता है। यह हम जानते हैं कि सूर्य मदाकिनीविश्वके केन्द्रकी प्रदक्षिणा करता है। केन्द्रसे वह करीब ३०,००० प्रकाशवर्ष दूर है। उसकी प्रदक्षिणाका वेग प्रति सेकड करीब ३५० किलोमीटर है। मदाकिनीविश्व उसके आजके स्वरूपसे ज्यादा घना होता तो सूर्यको उसकी आजकी गतिकी अपेक्षा ज्यादा वेगसे केन्द्र परिक्रमा करनी पड़ती। सूर्यके इर्दगिर्दके सभी तारोंका हाल भी वही है। वे सब विश्वके इर्द-गिर्द भ्रमण करते हैं। ताराविश्वके अतिम छोर पर आये हुए तारोंका वेग जाननेके बाद समस्त ताराविश्वका द्रव्यसचय जाना जा सकता है। हमारे ताराविश्वका द्रव्य सचय २०० अरब सूर्यद्रव्य जितना है। इसमे १०० अरब सूर्यद्रव्य तारोंके रूपमें है और बाकीका अतर्तारकीय वायुरूपमें। देवयानीविश्वका द्रव्यसचय भी इस तरह खोजा गया है। अपनी धुरी पर घूमनेवाले किसी भी पदार्थका एक ओरका आधा हिस्सा हमारी ओर आता हुआ दिखाई देता है जब कि बाकीका आधा हिस्सा हमसे दूर जाता हुआ। देवयानीविश्वका हमसे अतर २२ लाख प्रकाशवर्ष है। देवयानीविश्व-केन्द्रसे उसके अतिम छोरका अतर, छोरके तारोंका भ्रमणवेग एव देवयानीविश्वकी अतरिक्षकी नत अवस्थिति आदिके आधार पर जाना गया है कि देवयानीताराविश्वका कुल द्रव्यसचय ३३० अरब सूर्य-द्रव्य जितना है। देवयानीविश्व मदाकिनीविश्वसे भी बड़ा विश्व है। अतरिक्षके सारे विश्व इतने बड़े नहीं हैं। ज्यादातर ताराविश्व कम द्रव्यसचयवाले हैं। कई एक ताराविश्व इतने छोटे हैं कि उनका समूचा द्रव्यसचय केवल एक अरब सूर्य-द्रव्यके बराबर है।

अतरिक्षस्थित सभी ताराविश्वोंका द्रव्यसचय इस तरह प्राप्त नहीं हो सकता। ऐसे मौके पर युग्मपद्धति काममें लायी जाती है। अतरिक्षमें अनेक विश्वयुग्म अवस्थित हैं। विश्वयुग्मके विश्व अगर अपने सामान्य गुरुत्वकेन्द्रके इर्दगिर्द घूमते न रहें तो वे एक दूसरेमें खिचे

जायँ। युग्म ताराविश्वोंका गुरुत्वकेन्द्रसे अंतर और केन्द्रके इर्दगिर्द घूमनेके वेगके हिसावसे ताराविश्वोंका द्रव्यसंचय खोजा जाता है। खगोलशास्त्री पेइजने, ताराविश्वोंका इस प्रकार द्रव्यसंचय खोजते समय एक हैरतभरे तथ्यका आविष्कार किया है। उसका कहना है कि अंडाकार ताराविश्वकी द्रव्यसंपत्ति सामान्य सर्पिल ताराविश्वकी या अरूप ताराविश्वकी द्रव्यसंपत्तिसे ५० से ६० गुना ज्यादा है। हम शायद यह कहें कि यह भी एक अच्छी मजेदार कहानी है। अंडाकार ताराविश्व अगर ठोस हो तो उत्क्रान्तिके हिसावसे उसे इ० तक पहुँचनेमें द्रव्यकी कमी न रहेगी: और वादमें वह स० ताराविश्व वनकर अपने द्रव्यको नष्ट करनेवाला कमवजनी सर्पिल ताराविश्व भी वन सकेगा। मगर यह वात सिर्फ कल्पना ही है। ताराविश्वोंकी उत्क्रान्ति-कथा कहना अभी शेष है।

ताराविश्वोंके द्रव्यसंचय खोजनेकी एक तीसरी पद्धति भी है। यह रीति विश्वसमूह पर आधारित है। विश्वसमूहमें अनेक ताराविश्व हैं। समूहमें होनेके कारण उन सवका स्थिर अस्तित्वमें होना माना जा सकता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि समूहका कोई विश्व विशेष वेग प्राप्त करके समस्त समूहके गुरुत्वाकर्षणकी पकड़से छटक नहीं सकता ऐसा अनुमान किया जा सकता है। विश्वसमूहके सारे विश्वोंके अंतरिक्ष-वेग समान नहीं होते। डोप्लर असरके द्वारा समूहके सारे ताराविश्वोंके वेगोंको नाप कर उनमेंसे जो वेग सवसे ज्यादा मालूम हो उसे ध्यानमें रखकर समग्र विश्वसमूहके द्रव्यसंचयका पता लगाया जाता है और वादमें प्रत्येक ताराविश्वके औसत द्रव्य संचयका अंदाजा किया जा सकता है।

उपर्युक्त पद्धति है तो विलकुल वैज्ञानिक, पर इस पद्धतिसे हिसाव लगाने जव वैज्ञानिक लोग वैठे तव उनको मालूम हुआ कि ताराविश्वोंका उनके द्वारा प्राप्त किया गया द्रव्यसंचय अन्य रीतियोंसे खोजे गये द्रव्यसंचयकी अपेक्षा १० से १०० गुना अधिक है!! ज्यादा अचंभेकी वात यह थी कि अलग-अलग वैज्ञानिकोंने जुदा-जुदा स्थानों पर इसी रीतिके अनुसार खोजे हुए द्रव्यसंचय भी १० से १०० गुना अधिक ही मालूम हुए हैं। इसे पद्धतिकी क्षतिका दोष माना गया। मगर पद्धतिका दोष ढूंढ़नेको जव वैज्ञानिक वैठे तो एक नवीन तथ्य उनके सामने प्रकट हुआ। विश्वसमूहके विश्वोंके वीचमें जो अंतर्विश्व अवकाश (Space) है वह सही अर्थोंमें खाली न होकर द्रव्य धारण करनेवाला है। विश्वसमूहका द्रव्यसंचय खोजते वक्त अंतरिक्षस्थित उस द्रव्यका भी द्रव्यसंचयमें समावेश हो जाता था। वैज्ञानिकोंने इस परसे दो निष्कर्ष निकाले हैं। (१) वायुओंका या नष्ट हुए तारोंका द्रव्य अंतर्विश्व द्रव्यके-रूपमें अंतरिक्षमें परिव्याप्त है। नग्न आँखसे वह नहीं दिखाई पड़ता है मगर अन्य तरीकोंसे अपना अस्तित्व जाहिर करनेवाला वह द्रव्यसंचय ताराविश्वोंके द्रव्यके हिसावसे १० से १०० गुना है। मतलव कि विश्वसमूहके ताराविश्वोंका समग्र द्रव्य अंतरिक्षके द्रव्यकी तुलनामें वहुत कम है! इस अंतर्विश्व-द्रव्य ही के कारण विश्वसमूहके विश्वोंका औसत द्रव्यसंचय उनके सही द्रव्यसंचयकी अपेक्षा अधिक मात्रामें होनेका मालूम हुआ है। (२) प्रचंड वेग धारण करनेके कारण कई विश्व अपने समूहसे अलग हो जाते हैं। यों विश्वसमूह टूटते रहते हैं और यही कारण है कि अंतर्विश्वके द्रव्यसंचयका अंक इतना वड़ा दिखाई देता है।

दलील करनेकी खातिर मान लीजिये कि ऊपर कही गई दूसरी हकीकत यथार्थ है। विश्वसमूह टूटते जायें तो क्या परिस्थिति हो ? हमारे मदाकिनी विश्वमें युवा, गरम, नील तारोंके तारागुच्छ टूटते रहते हैं। गुच्छोंके टूटनेके साथ नये तारागुच्छ बनते भी रहते हैं। इन गुच्छो-को जन्म देनेवाली आवश्यक सामग्री वायुवादलोंके रूपमें मदाकिनी विश्वमें बहुत जगह बिखरी हुई है। ठीक यही बात तारासमूहों पर भी लागू कर सकते हैं। विश्वसमूहके ताराविश्व टूटते जाते हों तो अतंविश्व-वायुके कारण वहाँ भी नये नये ताराविश्व जन्म लेते रहना चाहिये। इसका मतलब यह हुआ कि विश्वसमूहके ताराविश्वके बीचमें बहुत ही द्रव्य अवस्थित होना चाहिये। इस द्रव्यको हम नही देख पाते हैं फिर भी उसकी सर्जनक्षमता अद्‌भुत है। खाली अतरिक्ष आश्चर्योंसे समृद्ध है।





मे ८१

देवयानी ताराविश्व



नराश्च अ





म ८२

११. ताराविश्व : वितरण और वेग

ताराविश्वोंके आकार-प्रकार, अंतर और द्रव्यसंचयकी चर्चा हमने अभी की। समग्र ब्रह्मांडका कुछ थोड़ा-बहुत स्पष्ट चित्र हमारे सम्मुख स्थापित हो, इसलिये हम ताराविश्वोंके वितरण और वेगकी बात अब करेंगे।

आकाशगंगाका पाट उसके पीछे अवस्थित ताराविश्वोंको देखनेमें बाधक होता है। मंदाकिनी विश्वसे बाहर निकलकर अंतरिक्षमें झाँका जाय तो वहाँ, सब जगह, ताराविश्व फैले हुए दिखाई देंगे। अंतरिक्षकी गहराईमें गहरे उतरने पर, दूनी त्रिज्याके हिसाबसे आठ गुना अंतरिक्ष देखनेको मिलता है। हमसे बिलकुल करीबके ताराविश्वोंसे लेकर दो अरब प्रकाशवर्ष दूर अवस्थित ताराविश्वोंकी थाह लगाने पर मालूम हुआ है कि ब्रह्मांडमें सभी दिशाओंमें और सभी जगहोंमें ताराविश्व आये हुए हैं और वह भी करीब-करीब समान मात्रामें।

मगर इसका अर्थ यह नहीं है कि सब ताराविश्व एकदूसरेसे एक समान अंतर पर अवस्थित हैं। कई ताराविश्व एक दूसरेके नजदीक हैं तो कई दूर। कई ताराविश्व युग्म बनाते हैं तो कई छोटे-बड़े समूह। मंदाकिनीविश्वमें जैसे तारोंके गुच्छ हैं वैसे ब्रह्मांडमें विश्वोंके भी गुच्छ हैं। हमारा ताराविश्व अकेला नहीं है। वह भी एक विश्वसमूहका सदस्य है। इस समूहको हम स्थानीय विश्वसमूह कहते हैं।

ताराविश्वोंके सारे समूह भी एकसमान नहीं हैं। ताराविश्वोंकी संख्याके हिसाबसे वे विविध प्रकारके समूहोंकी रचना करते हैं। वैज्ञानिक इन विश्वसमूहोंको पांच विभागोंमें विभाजित करते हैं।

प्रथम विभाग विश्वसमूहका है। विश्वसमूहमें ज्यादासे ज्यादा १०० के करीब विश्व होते हैं।

दूसरा विभाग विश्वगुच्छका है। विश्वगुच्छमें हजारोंकी संख्यामें ताराविश्व होते हैं। इन विश्वगुच्छोंका केन्द्रीय भाग ज्यादा सघन होता है। कई विश्वगुच्छोंमें एकसे ज्यादा गुच्छ-केन्द्र होते हैं। ऐसे विश्वगुच्छ एकसे ज्यादा स्थानोंमें संकेन्द्रणता दिखाते हैं।

विश्वसमूह और विश्वगुच्छमें एक फर्क संकेन्द्रणताका है। विश्वसमूहके विश्व संकेन्द्रणता नहीं दिखाते हैं।

विश्वमेघ तीसरे प्रकारका विभाजन है। विश्वमेघमें सैकड़ों अथवा हजारों ताराविश्व होते हैं। बहुधा विश्वमेघ ऐसे विश्वोंके समूह होते हैं जो किसी भी प्रकारके विशिष्ट या दर्शनीय स्वरूपोंके नहीं होते।

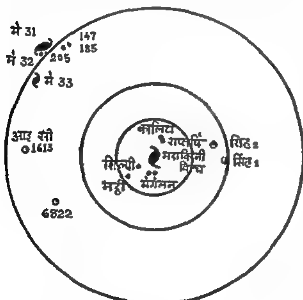
विश्वसमूह-मेघके चौथे प्रकारमें बिखरे हुए अनेक विश्वसमूहोंका सम्मेलन होता है।

विश्वगुच्छ-मेघमें विश्वगुच्छोंके समूह होते हैं। विश्वसमूहोंका यह प्रकार सबसे बड़ा है। सामान्यतया विश्वगुच्छ-मेघमें एक लाखके करीब ताराविश्व होते हैं।

यह सब होते हुए भी इन सारे समूहों या गुच्छोंके कारण अंतरिक्षमें कहीं भीड़ नहीं है। सारे विश्व एक दूसरेसे ठीक-ठीक दूर आये हुए हैं इतना ही नहीं वे सब अंतरिक्षमें करीब समान रूपसे फैले हुए भी हैं। यहाँ इन सबके विवरणकी बात करेंगे।

सबसे पहले स्थानीय विश्वसमूहका परिचय प्राप्त करेंगे।

स्थानीय विश्वसमूह कुंडलीके आकारका है। हमारा मदाकिनी विश्व उसका एक सदस्य है। स्थानीय विश्वसमूहमें छोटे-बड़े मिलकर १७ ताराविश्व हैं। हमारा ताराविश्व इस समूहके एक सिरे पर आया हुआ है। अनेक लाख प्रकाशवर्षोंके विस्तारवाला स्थानीय विश्वसमूह उसके जैसे दूसरे विश्वसमूहोंके मुकाबिलेमें अध्ययनके अनेक मौके हमारे लिये प्रस्तुत करता है। मेगेलन विश्व हमसे बहुत नजदीक है ऐसा कहा जायगा। हमसे २२ लाख प्रकाशवर्ष दूर अवस्थित देवयानी और त्रिकोण ताराविश्व उनके केन्द्रस्थ तारोंको अलग करके दिखाई देनेके कारण—खास करके बवणवर्णके तारों, वृषपर्वा प्रकारके रूपविकारी तारों, स्फटिक तारों और गोलाकार तारागुच्छोंके कारण इन विश्वोंके अंतर, उनकी द्रव्य-संपत्ति, और अन्य विशेषताओंके बारेमें बहुत कुछ जाना जा सका है। स्थानीय विश्वसमूहका विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जा सका है इस कारण उसका चित्र स्पष्ट रूपसे उभर आया है। और उसीके आधार पर अन्य विश्वसमूहोंको समझनेका कार्य सरल हुआ है।



स्थानीय विश्वसमूह

हमारे विश्वसमूहमें मदाकिनीविश्व और मेगेल्लनविश्वोंके एवं देवयानी विश्व और उसके साथी विश्वोंके दो त्रिविश्व-युग्म हैं। इन दोनों त्रिविश्वोंके प्रमुख सदस्य मदाकिनीविश्व और देवयानीविश्व हैं जो सारे विश्वसमूहके सदस्योंमें सबसे बड़े हैं। यों एक कल्पना यह की जा सकती है कि ब्रह्मांडमें बड़े ताराविश्वोंकी संख्या कम है जब कि छोटे ताराविश्वोंकी

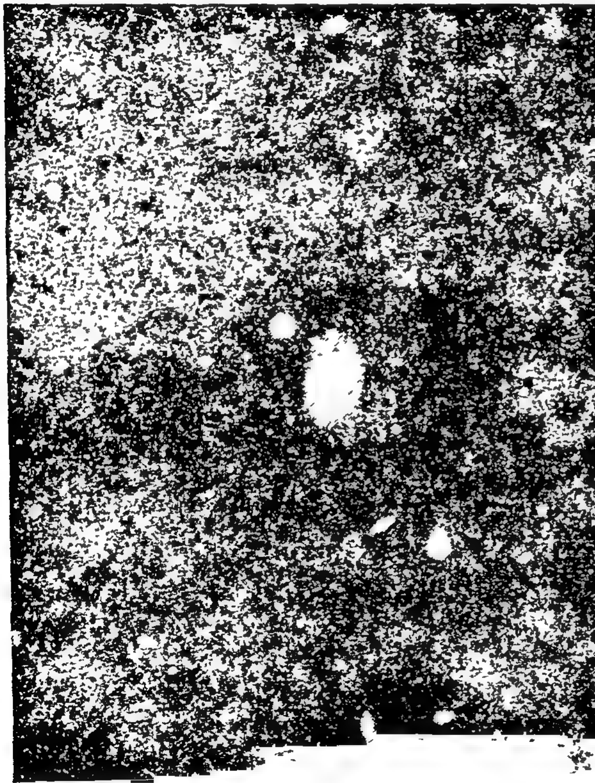
अधिक। हमारे विश्वसमूहमे १७ ताराविश्वोंके अलावा दूसरे १० वामन ताराविश्वोंकी उपस्थितिका पता चला है।

स्थानीय विश्वसमूहके सदस्योंकी कुछ बाते परिशिष्ट १ मे दी गई है।

१२० सेन्टिमीटरवाले श्मीट दूरबीनसे अन्य ताराविश्वोंको खोजनेका काम जारी है। संभव है कि मंदाकिनीविश्वके काले बादलोंके पीछेकी ओरके अन्य ताराविश्वोंका पता चले। आजकल इस खोजका काम रेडियो खगोलशास्त्रका विषय बन रहा है।

विश्वसमूहों और विश्वगुच्छोंकी खोजका काम विशेष करके बीसवीं शताब्दीमे ही हुआ है। इसका यश फोटोग्राफी टेकनिकको तथा श्मीट दूरबीनको मिलता है। उन्हींके कारण केशगुच्छ दस हजार ताराविश्वोंको समानेवाला महाविश्वगुच्छ होनेका पता चला है।

केश महाविश्वगुच्छके सघन केन्द्रभाग ही मे ताराविश्व आये हुए हैं। वे एक दूसरेसे बिलकुल सटकर बैठे हुए नही हैं। उनके आपसका सामान्य अंतर दो लाख प्रकाशवर्षका है। मंदाकिनीविश्वकी लम्बाई एक लाख प्रकाशवर्षकी है। केशगुच्छके केन्द्रभागमे हमारे विश्व जैसे या उससे बड़े दो चार ताराविश्वोंके अस्तित्व की कल्पना करें तो उनका मंदाकिनी और मेगेलन विश्वकी तरह बहुत नजदीक होनेका माना जा सके। इतना ही नहीं पर उनके बीचमें अंतर्वैश्विक वायुसेतु रचे जानेकी कल्पना भी की जा सके। एक अन्य कल्पना उनके परस्पर टकरानेकी भी है। केश विश्वसंघके ताराविश्वोंका सामान्य अंतरिक्षीय वेग प्रति सेकंड २००० किलोमीटर है। ऐसे अति वेगवान विश्वोंका कभी टकरा जाना असंभव नहीं है। पर उनके संघर्षका हिसाब लगाने पर मालूम हुआ है कि केश विश्वगुच्छमें ताराविश्वोंकी आपसी टक्करका प्रसंग तीन अरब वर्षोमें एक बार जितना ही है। वास्तविकता यह होने पर भी ब्रह्मांडमें कहीं कहीं

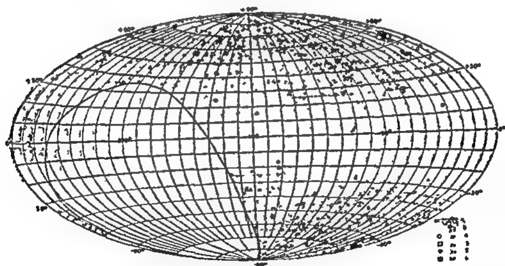


केश विश्वगुच्छ

होनेवाले विश्वसंघर्ष जाननेको मिले हैं। विश्व संघर्षमें ताराविश्वोंके तारे टकराते नहीं हैं, वायुओंके कण टकराते हैं ऐसा माना गया है। और इस कारण प्रचंड तापमान उत्पन्न होकर शक्तिशाली कंपनतरंगें उठती हैं जिन्हें हम रेडियो दूरबीनकी मददसे पकड सके हैं।

अंतरिक्षकी गहराई बडी गहन है। सूर्य और चन्द्र हमसे नजदीकके अवकाशीय पदार्थ हैं। उनके बिम्बका व्यास आधा अंश है। सूर्य या चंद्रसे आकाशका जो भाग ढक जाता है वह लगभग ¼ वर्गअंश है। सभाश्व-विश्वसमूह इससे चौगुनी जगह रोकता है और उसमें चार सौ ताराविश्व होनेका जाना गया है। गिननीके हिसाबसे एक वर्ग अंश जितनी जगहमें सामान्यतया १०० ताराविश्व होते हैं। फोटोग्राफीकी रीतिसे उतनी ही जगहमें ज्यादासे ज्यादा २५०० ताराविश्वोंके होनेका पता चला है। प्रति १०० वर्गअंशमें विश्वसमूहोंकी सामान्य संख्या औसतन एकसे दो जितनी मगर ज्यादासे ज्यादा संख्या १५० के करीब है। इसका अर्थ यह हुआ कि अंतरिक्षमें यत्र-तत्र-सर्वत्र ताराविश्व आये हुए हैं। यह होते हुए भी ब्रह्मांडके विशाल विस्तारके हिसाबसे ताराविश्वोंकी संख्या इतनी कम है कि अंतरिक्षका ९९.९ प्रतिशत भाग सचमुच खाली ही है।

अंतरिक्षमें विश्वगुच्छोंके भी गुच्छ आये हुए हैं। इस उच्चोच्च परंपराका संकेत क्या हो सकता है? न्यूटनके गुरुत्वाकर्षणके नियम दूर-दूरके विश्वसमूहोंको एक ही रूपमें लागू नहीं हो सकते हैं। इस कारण विश्वोत्पत्तिके सिद्धान्त उन्हींको ख्यालमें रखकर रचे जायें ऐसा नहीं है। विश्वसमूहोंका ब्रह्मांडीय विस्तरण कैसा है वह साथमें दिये गये चित्रसे समझा जा सकेगा।



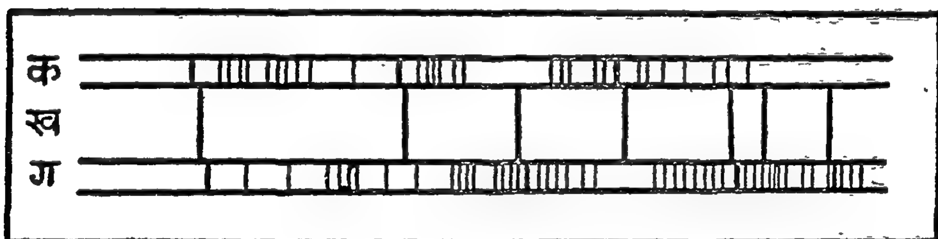
विश्व और जूथविस्तरण

चित्रका प्रत्येक बिन्दु अनेक ताराविश्व सूचित करता है। बिंदु या चिह्न जितना बडा ताराविश्व हमसे उतना ही ज्यादा नजदीक है ऐसा समझना चाहिये। चित्रका खाली मध्यभाग

वाला हिस्सा, आकाशगंगाके पाटके पीछेका हमें न दिखाई देनेवाले ब्रह्मांडका विभाग है। वैज्ञानिक इसे परिहार-प्रदेश कहते हैं। चित्रमें बाईं तरफ जो अंडाकार आकृति दिखाई देती है, पालोमर वेधशाला द्वारा लिया गया वह आकाशीय विभाग जिसका निरीक्षण नहीं हो सका है।

हमारा यह अनुभव है कि हमारी ओर आनेवाली ट्रेनकी सीटीका तारत्व, उस ट्रेनके हमसे दूर जाते समयके तारत्वसे ज्यादा है। इसी बातको डॉप्लर असरके नामसे पहचाना जाता है। विकिरक पदार्थ हमारे पास आता हो तब उसके द्वारा विकिरित की गई ज्यादा तरंगे हम पकड़ सकते हैं। इससे विपरीत जब वह हमसे दूर जाता है, तब कम पकड़ सकते हैं। प्रकाश वर्ण-पट रचता है यह तो हम जानते ही हैं। प्रकाशीय तरंगे पैदा करनेवाला कोई स्रोत हमारी ओर आता हो तो उसके वर्णपटकी रेखायें स्थिर प्रकाशके वर्णपटकी रेखाओंकी तुलनामें नीले भागकी ओर सरकती हुई मालूम होंगी। इससे उलटा, हमसे दूर जानेवाले प्रकाशस्रोतकी वर्णरेखायें वर्णपटके लाल भागकी ओर सरकती हुई दिखाई देंगी। वर्णपटकी रेखाओंके उपर्युक्त विचलनोंको हम क्रमसे नील विचलन और रक्त विचलन कहते हैं। वर्णपटकी रेखाओंके विचलनके आधार पर आकाशीय ज्योतियोंके अंतरिक्षीय वेग नापे जा सके हैं। किसी तारेकी वर्णपट रेखाओंकी स्थितिमें १.६७ अेंगस्ट्रोमका फर्क पड़ने पर उस तारेका सापेक्ष वेग एक सेकंडमें १०० किलोमीटर होना कहा जाता है।

तारोंके प्रकाशके वर्णपटकी तरह ताराविश्वोंके प्रकाशके भी वर्णपट बनते हैं। ताराविश्वोंमें तारोंके अलावा वायुबादल भी होते हैं। इस कारण ताराविश्वोंके वर्णपट ग प्रकारके (सूर्य जैसे) तारोंके वर्णपट जैसे दिखाई देते हैं। फर्क सिर्फ इतना ही होता है कि ताराविश्वोंके वर्णपटकी शोषक रेखायें सामान्य वर्णपटकी वैसी रेखाओंकी तुलनामें ज्यादा दूर सरकती हुई



वर्णपट–विचलन

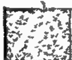
मालूम होती हैं। निरीक्षकके संदर्भमें ये रेखायें लाल भागकी ओर सरकती रहनेके कारण ताराविश्वोंके वर्णपट रक्त विचलनवाले वर्णपट हैं जो डॉप्लर असरके हिसाबसे ताराविश्वोंके दूर सरकते जानेका द्योतक हैं। ख्यातनाम खगोलशास्त्री हबलने ताराविश्वोंके वेगोंके बारेमें अपनी खोजोंके आधार पर सन् १९२९ में घोषित किया था कि सरकनेवाला ताराविश्व हमसे जितना ज्यादा दूरका हो उतना उसका हमसे अंतरिक्षमें दूर सरकनेका वेग ज्यादा होता है। तारा-विश्वोंके सरक-वेग हर ३० लाख प्रकाशवर्षके अंतरके हिसाबसे प्रति सेकंड ८० किलोमीटर बढ़ता

रहता है। ५० लाख प्रकाशवर्ष दूर अवस्थित ताराविश्व प्रति सेकंड १,२०० किलोमीटरका वेग दर्शाता है जबकि साढ़े ६ करोड प्रकाशवर्षकी दूरीवाला ताराविश्व १५,००० किलोमीटरका। वासुकि विश्वसमूह हमसे ढाई अरब प्रकाशवर्ष दूर है। उसका रक्त विचलन प्रति सेकंड ५३,००० किलोमीटरका दूरगमन वेग दिखलाता है। सबसे ज्यादा दूरगमनका ज्ञातवेग प्रति सेकंड १,२०,००० किलोमीटर (प्रकाशके वेगके हिसाबसे ⅖ गुना) है। कुछ ताराविश्व इससे भी ज्यादा वेगसे सरकते होनेकी संभावना है। मगर ये ताराविश्व हमसे अत्यंत दूर होनेके कारण उनके रक्त विचलनकी मात्रा स्पेक्ट्रोग्रामके द्वारा स्पष्ट रूपसे नहीं पायी गई है।

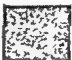
विश्व	रक्तविचलन दर सेकंड
चित्रा	१,२०० कि मी




विश्व	रक्तविचलन दर सेकंड
सप्तर्षि	१४,४८० कि मी



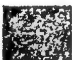
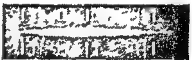

विश्व	रक्तविचलन दर सेकंड
किरीट	२१,४०० कि मी




विश्व	रक्तविचलन दर सेकंड
भूतेश	३९,०४० कि मी



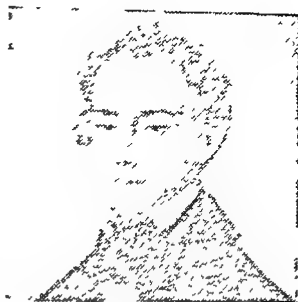

विश्व	रक्तविचलन दर सेकंड
वासुकि	५२,८०० कि मी

यह रक्त विचलन सच्चा है क्या? लंबा फासला तय करके हम तक पहुँचनेवाले प्रकाश पर अन्य प्रक्रियाओंका असर तो नहीं पड़ता होगा न? ताराओंके अंतरिक्षीय वेग प्रति सेकंड कुछ थोड़े किलोमीटरके हों यह तो समझमें आये जैसी बात है मगर ताराविश्वोंके प्रति सेकंडके हजारों किलोमीटरके वेग कल्पनासे परेकी बात है। खगोलशास्त्री यहाँ कोई गलती तो नहीं कर रहे हैं न?

खगोलशास्त्रियोंने डॉप्लर सिद्धान्तको प्रयोगशालामें पूरी छानबीन करके परखा है। उसे सूर्य मंडल एवं युग्म तारोंमें सदस्योंके संदर्भमें भी कम करके देखा है और वहाँ उसका पूर्ण रूपसे कामयाब होना प्रमाणित हुआ है। ताराविश्वोंके बारेमें खगोलशास्त्रियोंका मंतव्य है कि तारा-

विश्वोंके अति दूरके या विराट अंतरोंके कारण वे सब डॉप्लर सिद्धान्तके अनुसारका रक्त विचलन दिखलाते हैं। रक्त विचलनका और कोई कारण वे नहीं ढूंढ़ पाये हैं। कइयोंने सुझाया है कि प्रकाशकी थकान रक्त विचलनका कारण हो सकती है मगर इस तरहका कोई प्रभाव आज तक नहीं खोजा गया है। और तो और यह असर किस प्रकारका होगा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकी है। इतना ही नहीं यह असर सभी ताराविश्वोंके लिये एक-सा होनेका संभव है क्या? तात्पर्य यह कि रक्त विचलन-संस्कार खोजना मुश्किल होनके कारण खगोल शास्त्री रक्त विचलनको ही डॉप्लर असर समझकर हवलके नियमोंको मान्य समझकर चलते हैं; मगर हाँ, जो वेग अध्यारोपित होते हैं उन्हें जरूर ध्यानमें लिया जाता है। उदाहरणार्थ हमारे सूर्य मंडलका या मंदाकिनी विश्वका वेग रक्त विचलनमें सम्मिलित हो जाता हो तो उसे कम किया जाता है। इसी तरह युग्म-ताराविश्वोंके सापेक्ष वेगोंको ध्यानमें लिया जाता है। विश्व-समूहके व्यक्तिगत ताराविश्वोंके वेग उनके समूहके दूरगमनके वेगमें जोड़े जाते हैं या कम किये जाते हैं।


डॉप्लर

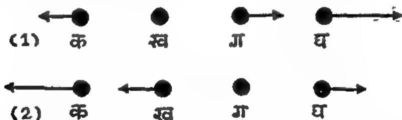
इस सारी बातका निष्कर्ष यह है कि अधिकांश खगोलशास्त्री यह मानते हैं कि रक्त विचलन पर आधारित ताराविश्वोंके दूरगमनके वेग उनके अंतरके हिसाबसे प्राप्त होते हैं। वेग इकाई-समयमें काटा गया अंतर है और इस हिसाबसे हमसे बहुत दूर अवस्थित आजके ताराविश्व, आजकी अपेक्षा भूतकालमें हमसे ज्यादा नजदीक होनेका हम सोच सकते हैं। करोड़ों वर्ष पहले वे अत्यंत नजदीक होने चाहिए: और एक जमाना ऐसा भी होगा कि जब उनकी एक-दूसरेके साथ बिलकुल सटे होनेकी या एक ही जगह अवस्थित होनेकी कल्पना की जा सके। १० करोड़ प्रकाशवर्ष दूरके ताराविश्वका पलायन-वेग प्रति सेकंड २,२५० किलोमीटर है। यह वेग प्रतिवर्ष ०.००८ प्रकाशवर्षका है। उपर्युक्त ताराविश्वको हमसे १० करोड़ प्रकाशवर्ष दूर सरकनेमें १० करोड़ ÷ ०.००८ = १२.५ अरब वर्ष लगे होंगे। मतलब कि करीब १३ अरब वर्ष पहले उपर्युक्त ताराविश्व और मंदाकिनी विश्व इकट्ठा होंगे। यों किसी तारा विश्वके दूर-गमनका वेग उपर्युक्त ताराविश्वके वेगसे दूना होने पर भी उनका एक साथ रहनेका समय १३ अरब वर्षका ही होगा। दूसरे शब्दोंमें कहें तो ऐसा कहा जाय कि हमसे दूर अंतरिक्षमें सरकते जानेवाले विश्व आजसे १३ अरब वर्ष पहले एक जगह इकट्ठे थे और बादमें किसी अज्ञात या अकल कारणसे वे एक दूसरेसे दूर सरकने लगे हैं। और जिन ताराविश्वोंका सरक-वेग ज्यादा था वे अन्य ताराविश्वोंकी अपेक्षा हमसे ज्यादा दूरके अवकाशमें सरक गये हैं।

ऊपरकी बातके संदर्भमें ताराविश्वोंकी आजकी सही स्थितिकी और साथ साथ ब्रह्मांड-केन्द्रकी स्पष्टता कर लेना ठीक होगा।

'कोई एक ताराविश्व १ अरब प्रकाशवर्ष दूर है।' कहनेका अर्थ यह है कि उस तारा-विश्वके प्रकाशको हम तक पहुँचनेमें १ अरब वर्ष बीत जाते हैं। यानी आकाशमें उस तारा-विश्वको जिस स्थितिमें हम देखते हैं वह उसकी आजकी सही स्थिति नहीं है। वह उसके अरब वर्ष पहलेकी स्थिति है। तारा‌विश्वके प्रकाशको हम तक पहुँचनेमें जो अरब वर्ष लगे इस बीच वह तारा‌विश्व खुद भी अंतरिक्षमें थोड़ा दूर और सरक गया है। इस हिसाबसे उसका सही अंतर एक अरब प्रकाशवर्षसे भी ज्यादा है। १ अरब प्रकाशवर्ष दूरके तारा‌विश्वका दूरगमनका वेग प्रति सेकंड २२,५०० किलोमीटर या प्रतिवर्ष ०.०८ प्रकाशवर्ष है। तारा‌विश्वका आजका अंतर खोजते समय इस वेगके कारण जो स्थलांतर हुआ हो उसे भी ध्यानमें लेना चाहिये। १ अरब वर्षमें उपर्युक्त तारा‌विश्व ८ करोड़ प्रकाशवर्ष दूर सरका होगा और इस तरह उसका आजका सही अंतर १.०८ अरब प्रकाशवर्ष होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि रक्त विचलन द्वारा प्राप्त होनेवाले अंतरमें थोड़ा फर्क पड़ेगा ही। वैज्ञानिक मानते हैं कि २ अरब प्रकाशवर्ष दूरके तारा‌विश्वों या विश्वसमूहोंके लिये ऐसा अंतर-संस्कार खास तकलीफ पैदा करनेवाला न होगा। और यों 'वेग अंतरके प्रमाणमें गति करता है' वाला हबलका सूत्र काम देगा। इससे ज्यादा दूरके तारा‌विश्वोंके लिये उस सूत्रको शुद्ध करना होगा।

अब ब्रह्मांड-केन्द्रकी बात करेंगे।

तारा‌विश्व हमसे दूर सरकते जाते हैं—इस संदर्भमें, हमारे विश्वको ब्रह्मांडके केन्द्रस्थानमें अवस्थित होनेकी कोई कल्पना करें तो वह अनुमान वास्तविक न कहा जायगा। हमारे तारा-विश्वको या अन्य किसी तारा‌विश्वको ऐसी प्रतिष्ठा मिलना संभव नहीं है। नीचेकी आकृतिमें यह बात स्पष्ट समझी जा सकेगी।



अनुमान कीजिये कि क, ख, ग और घ सीधी रेखा पर आये हुए चार तारा‌विश्व हैं और कख=खग=गघ अंतर दस करोड़ प्रकाशवर्षका है। अब मान लीजिये कि हम ख तारा-विश्व पर हैं। १० करोड़ प्रकाशवर्ष दूरके तारा‌विश्वका दूरगमन वेग प्रति सेकंड २२५० किलोमीटर है। इस हिसाबसे क तारा‌विश्व और ग तारा‌विश्वका दूरगमन-वेग प्रति सेकंड २२५० किलोमीटर होगा जब कि घ तारा‌विश्वका ४५०० किलोमीटर।

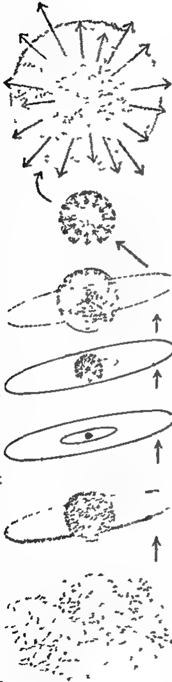
अब कल्पना कीजिये कि ग तारा‌विश्व पर कोई निरीक्षक बैठा हुआ है। उसे क्या दिखाई देगा? उसे ख और घ तारा‌विश्वोंका वेग प्रति सेकंड २२५० किलोमीटर मालूम होगा

जबकि क ताराविश्वका ४५०० किलोमीटर। इसका अर्थ यह हुआ कि निरीक्षक अपने इर्दगिर्द के विश्वोंके दूरगमन-वेग उनके अंतरके प्रमाणमे ही देखेगा। यह तथ्य प्रत्येक विश्वको लागू होता है और इस प्रकार प्रत्येक विश्वका ब्रह्मांडके केन्द्रमे होनेका भास वास्तवमे हकीकत नहीं है। किसी भी विश्वकी ऐसी खास अवस्थिति नहीं है।

उपर्युक्त बातका सीधासादा एक अर्थ यह भी किया जा सकता है कि ब्रह्मांडका कोई भी विश्व उसके किसी छोरका विश्व नहीं है।

तो क्या ब्रह्मांड अनंत है?

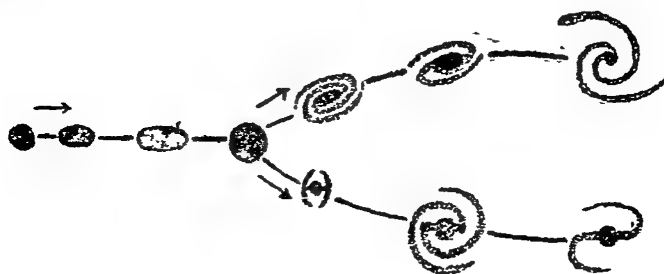
ब्रह्मांडके अनंत या सान्त होनेकी चर्चा बादके अध्यायों पर छोड़कर ताराविश्वके वितरण और वेगकी कथाको यहाँ समाप्त करना उचित होगा।



१२ ताराविश्वोंकी उत्क्रान्ति

ताराविश्वोंमेंसे तारे कैसे जन्म लेते हैं और जन्म लेनेके बाद उनकी उत्क्रान्ति कैसे होती है इस सबबमें हमने बात कर ली है। ताराविश्वोंके जन्म और उत्क्रान्तिके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ भी कहा नहीं जा सकता। अन्तरिक्षमें आये हुए सभी ताराविश्व एक-से आकार-प्रकारके नहीं हैं। ताराविश्वोंके स्वरूपोंका प्रथम अध्ययन करनेवाले प्रसिद्ध खगोलशास्त्री हबलने ताराविश्वोंको तीन प्रमुख वर्गों—अंडाकार, सर्पिल और अरूप—में विभाजित करनेके अलावा अंडाकार और सर्पिल ताराविश्वोंके विशिष्ट रूपोंको समझानेके लिये द्विशाख आकृतिकी योजना की थी। इस आकृतिमें या उसके स्पष्टीकरणमें ऐसा कोई इशारा न था कि वह आकृति ताराविश्वोंका किसी प्रकारका उत्क्रान्ति क्रम दिखाती हो। बादमें इस आकृतिको ताराविश्वोंकी उत्क्रान्तिसूचक माना गया और इ. से स. होकर स$_{\text{ग}}$ (Eo→So→Sc) तकका उत्क्रान्तिक्रम कल्पित किया गया। ताराकी उत्क्रान्तिका अध्ययन करनेवाले खगोलशास्त्रियोंने बादमें बताया कि ताराविश्वोंका उत्क्रान्तिक्रम अंडाकारसे सर्पिल या अरूप है, ऐसा मानना ठीक नहीं है। अपनी धुरी पर घूमनेवाले ताराविश्वोंमें भुजायें फूटें ऐसी उत्क्रान्तिकी कल्पना बिलकुल उपयुक्त न होनेका सिद्ध करनेमें ताराविश्वोंकी द्रव्यसंपत्तिने सबसे पहले मदद की। दूरबीनों द्वारा मालूम हुआ कि सर्पिल विश्वोंका वायुप्रमाण अंडाकार विश्वोंके वायुप्रमाणसे ज्यादा है मगर अरूप ताराविश्वोंमें वह सबसे ज्यादा है। अंडाकार विश्वमें अरूप ताराविश्व बनेंगे ही कैसे? अंडाकार विश्वोंकी द्रव्यसंपत्ति (बड़े हिस्सेमें तारे और अल्प मात्रामें वायु) सर्पिल या अरूप ताराविश्वोंकी द्रव्यसंपत्तिसे बहुत ज्यादा होनेका पता चला है। इसलिये प्रश्न

उठता है कि अंडाकार विश्वोंमेंसे अत्यंत कम द्रव्यवाले सर्पिल या अरूप ताराविश्व वन कैसे? हाँ, उलटी प्रक्रिया संभवित मानी जा सकती है। ज्यादासे ज्यादा द्रव्य प्राप्त कर अरूप या सर्पिल ताराविश्व अंडाकार वन सकता है मगर तव प्रश्न उठता है कि चिपटा ताराविश्व अंडाकार वनानेगा कैसे? और अंडाकार विश्व उसकी आखिरी स्थितिमें गोलाकार होगा कैसे? इन सव प्रश्नोंको हल करनेके लिये जो प्रयत्न किये गये उन्होंने ताराविश्वोंकी उत्क्रान्तिके प्रश्नको समझनेमें वहुत मदद पहुँचाई है।



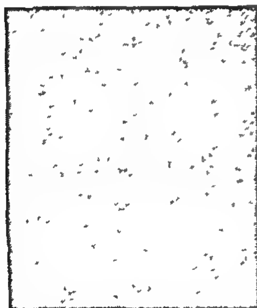
अंडाकारसे सर्पिल

ताराविश्वोंके वारेमें हमारा ज्ञान अभी अधूरा है। इसके मूलमें अनेक वाते कारणभूत है। प्रथम तो हम ताराविश्वोंके निश्चित अंतरोंको नहीं जानते हैं। दूसरी वात है दूर अंतरिक्षमें दिखाई देनेवाले ताराविश्वोंका अर्थघटन एकसा नहीं होता। दूर अंतरिक्षमें प्रवर्तमान भौतिक नियमों की पूरी जानकारी नहीं है, यह तीसरी वात है जवकि चौथी वात यह है कि ताराविश्व कैसे उत्पन्न हुए हैं, इस वारेमें निश्चित जानकारी हमारे पास नहीं है।

धूमवड़ाकावाद (Hypothesis) मानता है कि सारे विश्व एक साथ उत्पन्न हुए हैं। स्थिरस्थितिवाद पुराने ताराविश्वोंके खतम होते रहनेके साथ-साथ नये विश्व उत्पन्न होते रहनेकी वात मानता है। इन वादोंके वारेमें जरूरी चर्चा हम वादमें करेंगे। मगर एक वातके वारेमें ये दोनों मत सहमत हैं कि सारे विश्व हाइड्रोजन वायुसे उत्पन्न हुए हैं। दोनों वादोंके पक्षकर्ताओंने हाइड्रोजनको अंतरिक्षमें विस्तरित हुआ माना है। अंतरिक्षीय हाइड्रोजनमें गाँठें जमें यह उसकी प्रकृति समझी जाती है। थोड़ा-सा स्पंदित होने पर वायुका स्पंदित हिस्सा ठोस वनने लगेगा और गुरुत्वाकर्षण शक्तिसे गाढ़ा वनता जाता वह हिस्सा वादमें वहुत ही वड़ा वनकर अंतमें ताराविश्वका रूप धारण करेगा ऐसी कल्पना की जा सकती है। यह होगा हमारा आदि ताराविश्व। आदि ताराविश्वकी वायुमें छोटे-वड़े स्पंदन होते रहनसे उनमेंसे ताराओंकी उत्पत्ति होगी। ये प्रथम पीढ़ीके तारे होंगे। ये सारे तारे अत्यंत गरम नीले तारे होंगे। भारी किरणोत्सर्गी इन तारोंके कारण विश्वकी वायु चमकीली दिखाई देगी और इस तरह शायद अरूप ताराविश्व जन्म ले रहा हो ऐसी कल्पना की जाय। ऐसे ताराविश्वोंको युवा ताराविश्व कहा जा सकता है। तारेकी इस युवावस्थाके पहलेकी वायु अवस्था, वयप्राप्त ताराविश्वोंके वरावर होनेकी पूरी संभावना है।

ताराविश्वोंमें उत्पन्न होनेवाले प्रथम पीढ़ीके तारे बहुत कम समयमें (ताराविश्वोंकी उम्रके हिसाबसे) उत्क्रान्तिकी सीढ़ियाँ पार करके श्वेत वामन तारे बन जाते हैं। मगर ऐसा होते समय उन तारोंके द्वारा नष्ट किया गया द्रव्यसंभार भारी मूलतत्त्वोंको जन्म देकर क्रमशः दूसरी और तीसरी पीढ़ीके तारोंको जन्म देनेमें सहायभूत बनता है। तारोंके साथ धूल भी उत्पन्न होती है और इस प्रकार ताराविश्वोंके वायुके ठंडे बनने पर संकोचन प्रक्रिया शुरू हो जाती है। संकोचनके साथ साथ अक्षभ्रमण भी शुरू हो जाता है। अब अल्प निहारिकायें धुरीभ्रमण करनेके साथ साथ आकार धारण करना भी शुरू कर देती हैं। संकोचन और तारानिर्माणका काम इस बीच चलता ही रहता है। बड़े तारोंके साथ-साथ छोटे तारे (वजनदार मूलतत्त्वोंवाले) भी बनते जाते हैं। ये छोटे तारे दीर्घजीवी होते हैं। बड़े तारे खतम होने पर श्वेत वामन तारोंका रूप धारण करते हैं।

दीर्घजीवी तारोंवाले ताराविश्वोंको वयप्राप्त या वृद्ध ताराविश्व कह सकते हैं। शिशु ताराविश्वोंकी तुलनामें ये ताराविश्व लाल रंगके नजर आते हैं। शिशु ताराविश्वोंमें नीले तारोंका प्राधान्य होनेसे वे नीले रंगके दिखाई देते हैं। इस तरह रंगके आधार पर ताराविश्वकी उम्रका अंदाजा लगाया जा सकता है। लेकिन उसकी उत्क्रान्तिका खयाल नहीं आता है। सर्पिल ताराविश्वोंका वर्णपट पीले तारोंका सूचन करता है। इस हिसाबसे उन्हें अल्प ताराविश्वोंके बादकी स्थितिके ताराविश्व मान कर, अल्पमें से सर्पिल और उसमेंसे अंडाकार ताराविश्व बननेकी हम कल्पना करें यह स्वाभाविक ही है। मुश्किल है सिर्फ उनके द्रव्यसंचयकी। कम द्रव्यसंपत्तिवाले ये ताराविश्व अपनेसे तीस गुने द्रव्यसंचयवाले और वह भी केवल ताराओंसे बने अंडाकार या गोलाकार ताराविश्व कैसे बन सकें यह समझमें नहीं आता है।



एन जी सी २४४४

सभी सर्पिल ताराविश्व एक सरीखे द्रव्यमानवाले हैं ऐसा भी नहीं है। मंदाकिनी विश्वके नजदीकमें आये हुए मेगेलन विश्व बड़े विश्व नहीं हैं। उन्हें उपविश्व कहा जाय ऐसी बात भी नहीं है। वे स्वतन्त्र विश्व हैं। हमारे नजदीकके बाकीके विश्व छोटे और धुंधले हैं और

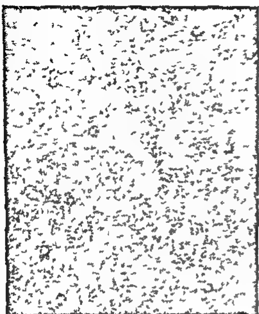
उनमेंसे कई एक तो बहुत छोटे हैं। केवल तारोंसे बने गोलाकार ताराविश्वोंका १०० प्रकाशवर्षके व्यासवाले एवं हमारे विश्वके गोलाकार तारकगुच्छोंसे भी कम द्रव्यसंपत्तिवाले होनेका पता चला है। ये ताराविश्व हमसे २ लाख प्रकाशवर्ष दूर स्थित हैं। इन ताराविश्वोंको उपतारा-विश्व माना जाय कि स्वतंत्र ताराविश्व? खगोलशास्त्रियोंका अनुमान है कि ऐसे अनेक वामन ताराविश्व अंतरिक्षमें स्थित हैं। ये सब कैसे बने होंगे? अरूपमेंसे वे सीधे बने होंगे या अरूपमेंसे सर्पिल बननेके बाद उनका निर्माण हुआ होगा? इन वामन ताराविश्वोंका विस्तृत अध्ययन अभी नहीं हुआ है। इसीलिए उनकी उम्रका प्रश्न भी उनकी उत्क्रान्तिके प्रश्नके समान अभी हल होना बाकी है।

ऊपरकी बात यह सूचित करती है कि सर्पिल ताराविश्वोंके आसपास स्थित ताराविश्वोंका विस्तृत अध्ययन किया जाना बहुत जरूरी है। उसी तरह अंडाकार ताराविश्वोंके इर्दगिर्द कौनसे ताराविश्वोंका बाहुल्य है और वह किन कारणोंसे है यह खोजना भी जरूरी है। आज तकका निरीक्षण-साक्ष्य सूचित करता है कि अंडाकारके इर्दगिर्द सर्पिल ताराविश्वोंको खास देखनेमें नहीं आया है। इससे उलटा सर्पिल ताराविश्वोंके नजदीकमें शिशु ताराविश्व देखनको मिले हैं। मे ८२ अरूप ताराविश्व है इस कारण उसे शिशु ताराविश्व समझ कर चलें तो एक नया ही प्रश्न पैदा होता है। उम्रकी दृष्टिसे मे ८१ ताराविश्व और मे ८२ ताराविश्वोंका समान होना प्रमाणित हुआ है। मे ८१ सर्पिल ताराविश्व है और सर्पिल ताराविश्वोंकी दृष्टिसे वह ज्यादा उम्रवाला ताराविश्व है। अब प्रश्न यह उठता है कि मे ८२ को सर्पिल होनेसे रोका किसने? बिलकुल पासपासके होते हुए भी इन ताराविश्वोंकी उत्क्रान्ति बिलकुल भिन्न प्रकारकी क्यों मालूम होती है?

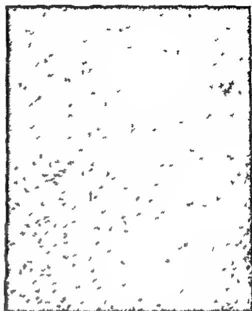
पृ० ८८ परका चित्र अंडाकार ताराविश्व (एन जी सी २४४४) की बगलमें जन्म लेते हुए एक शिशु ताराविश्वको दर्शित करता है। अंडाकार विश्वकी बाईं ओर दिखाई देनेवाले चमकीले धब्बे जन्म लेनेवाली नई तारासृष्टिके गरम नीले ताराओंके द्वारा प्रकाशित बने हुए वायुओंके जत्थे हैं। पृ० ९० पर दिये हुए **एन जी सी** ४६७६ के चित्रमें दो ताराविश्व युग्म ताराविश्व बनाते हुए दिखाई देते हैं। उनमेंके एक ताराविश्वके बहुत लंबी शिखा है। इनके वर्णपटसे मालूम हुआ है कि ये दोनों ताराविश्व भारी वेगसे अक्षभ्रमण करते रहते हैं और इसपर तुर्रा यह कि सर्पिल ताराविश्वकी यह शिखाभुजा सीधी रेखाका रूप दिखा रही है। इस सारी बातका अर्थ क्या हो सकता है? युग्म ताराविश्वमेंके उक्त शिखायुक्त ताराविश्वको शिशु ताराविश्व माना जा सकता है क्या? पर तब चोटी निकाले अन्य ताराविश्वोंके बारेमें क्या समझना होगा? क्या वे भी शिशु ताराविश्व होंगे?

लेकिन अब **एन जी सी** ६६२१–२२ के बारेमें क्या कल्पित किया जाय? उसका आकार हमारी पद्धतिके साथ मेल नहीं खाता है। यहाँ दो ताराविश्व वायुसेतुके द्वारा जुड़े हुए हैं। मगर उनका यह आकार स्थायी नहीं है। ताराविश्वोंके अक्षभ्रमणके कारण वह पलट जायगा और यों इन ताराविश्वोंको भी शिशु ताराविश्व होनेकी कल्पना की जा सकेगी। इस तरह उत्क्रान्तिका हमारा प्रश्न हल होनेके बजाय उलटा जटिल बनता चलता है।

आजकल इस प्रश्नको बिलकुल नये दृष्टिकोणसे देखना संभव हो सका है। इसके अनुसार सर्पिल ताराविश्व बाहुवाला ताराविश्व मालूम होता है। अक्षभ्रमण करता हुआ सर्पिल तारा-

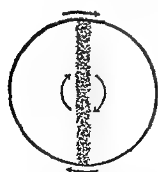


एन जी सी ६६२१ और ६६२२



एन जी सी ४६७६

विश्वका नाभिभाग उसके सिरेके भागोंसे ज्यादा वेगसे घूमता है। इस नाभि भागसे, बादमें भुजायें फूटती हैं। इन भुजाओंके घूमनेका वेग नाभिके भागके नजदीक ज्यादा होता है जब-कि सिरेकी ओर कम। और यह भी स्वाभाविक है कि बाहुओंके सिरे घसीटते हुए चलेंगे।



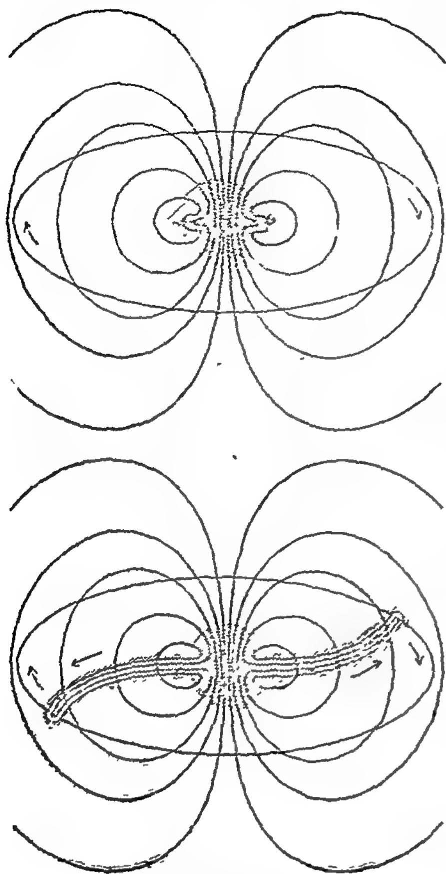




भ्रमणका असर

अक्षभ्रमण करता हुआ ताराविश्व धीरे-धीरे S रूपमें परिवर्तित होगा और करीब दो या तीन पूरी धुरीपरिक्रमाके बाद ताराविश्वकी नाभिमेंसे आमने सामने फूटी हुई दो बाहुयें

तारविश्वके इर्दगिर्द वलय बना देंगी। हमारा मंदाकिनी विश्व वाहुओंवाला सर्पिल ताराविश्व है। अपने अस्तित्वके दरमियान उसने करीव पचास अक्षभ्रमण पूरे किये हैं। इस समयके भीतर उसकी भुजाओंको वलयरूप धारण कर लेना चाहिये था। पर ऐसा नहीं वन पाया है। इसका अर्थ यह किया जाय कि उन वाहुओंको वलयमे परिवर्तित होनेसे रोकनेवाली कोई शक्ति है। यह शक्ति है चुवकीय क्षेत्रकी। मे ८२ तारा-विश्वको S ताराविश्व वननेसे रोकनेवाली जो शक्ति है वह भी यही चुंवकीय शक्ति है। प्रवल चुवकीय शक्ति तारों और ताराविश्वोंको आकार लेनेसे रोकती है और एकत्रित होनेवाली वायुको ठंडा वना देती है। इतना ही नही उसे घन पदार्थके गुणधर्म दिखानेवाला पदार्थ वना देती है। इसके अलावा गुरुत्वाकर्षण शक्तिका सामना करके तारों या ताराविश्वका अमुक आकार कायम रखनेमे भी वह कारणभूत वनती है। निर्वल चुंवकीय क्षेत्र भी भारी कार्य करता है। आयनित हाइड्रोजन-परमाणुओंको वह फँसाता है और उन्हें चुवकीय क्षेत्रकी अमुक रेखाओं पर गति करनेको वाध्य करता है। इस प्रकार एक तरहका चुंवकीय जाल वनता है, जिसकी पकड़से आयनित हाइड्रोजन-परमाणुओंके अलावा आयनित न वने हुए हाइड्रोजन-परमाणु भी नहीं छटक पाते हैं।



ताराविश्व और चुंवकीय वलरेखायें

हम जानते हैं कि सर्पिल ताराविश्वोंकी भुजाओंमे नये तारे जन्म पाते रहते हैं। ये तारे नीले गरम विराट तारे हैं जो अपना द्रव्यसंचय करोड़ेक वर्षके भीतर उड़ाकर वादमें श्वेत वामन तारे वन जाते हैं। विश्ववाहुओंका नष्ट होनेवाला द्रव्य अंतरिक्षमे विखर जाता है और यों विश्ववाहुओंकी द्रव्यसंपत्ति धीरे-धीरे कम होती जाती है। मगर दूसरी ओरसे उसकी भर-पाईका भी पता चला है। ताराविश्वके केन्द्रमे से वहता हुआ वायुप्रवाह इस क्षतिको पूर्ण करता है। मंदाकिनी विश्वके केन्द्रसे वाहर वहनेवाला द्रव्य प्रतिवर्ष एक सूर्यकी रचना कर सके इतना होता है। वहनेवाला यह द्रव्य विश्ववाहुओंमें पहुँचता रहता है। इस द्रव्यको ताराविश्वके दूरके हिस्सोंमें पहुँचानेवाली चुंवकीय वलरेखायें होती हैं।

सर्पिल ताराविश्वकी वाहु कैसे फूटती है उसकी एक कल्पना (आकृतिके रूपमें) पृष्ठ ९० पर दिये गये दूसरे चित्रमे दिखलाई गई है।

तारानिश्वका चुम्बकीय क्षेत्र शुरूमें कैसा होगा यह दूसरी आकृतिमें बताया गया है। नाभिभागके आयनित वायुकण चुम्बकीय रेखाओं पर गतिशील होंगे। ताराविश्व अक्षभ्रमण करता रहता है इस कारण ताराविश्वमेंसे थोड़ी वायु नाभिमें से बाहर फेंकी जायगी। इस तरह बाहर निकलनेवाली वायुका जत्था अपने साथ चुम्बकीय क्षेत्रको भी खींचता चलेगा। फलस्वरूप यह वायु उसी क्षेत्रकी चुम्बकीय रेखाओं पर गति करती रहेगी और या ताराविश्वमें बाहुओंका आविर्भाव होगा। यह सारी बात पहली आकृतिमें प्रस्तुत की गयी है। इन बाहुओंको वलयमें परिवर्तित होनेसे रोकनेकी गति भी प्राप्त होनी चाहिये। यह गति प्रदान करनेका काम वायु-वेगके जत्थोंको नाभिमें प्राप्त वेगका संघटक और चुम्बकीय क्षेत्र करते हैं।

मे ८१ और मे ८२ ताराविश्वोंके आधार पर ऐसा भी कहनेको जी ललचाता है कि हम-उम्र ताराविश्व एक समान रीतिसे वृद्धत्व प्राप्त नहीं करते हैं। उनके वृद्धत्वप्राप्तिके दरका भी एक-सा होना मालूम नहीं हुआ है। इस बातके मूलमें ताराविश्वके द्रव्यसंचयका कारणभूत होना माना जा सकता है। बड़ी भारी द्रव्यसंपत्तिवाले ताराविश्व अंडाकार ताराविश्व बन जायें ऐसा भी माना जा सकेगा पर कम द्रव्यसंपत्तिवाले ताराविश्वोंके संदर्भमें उन सबमें से वायु कम हो जानेकी उत्क्रान्तिको समझना आसान नहीं है। ऐसा भी क्यों न हुआ हो कि भिन्न भिन्न ताराविश्वोंकी उत्क्रान्ति भी भिन्न-भिन्न प्रकारकी हो, इतना ही नहीं एक-से ताराविश्वोंकी उत्क्रान्तिके दर भी भिन्न हों। ताराविश्वोंको एक से हैं ऐसा कहना भी मुश्किल है।

विभिन्न ताराविश्व

विभिन्न आकार-प्रकारवाले ताराविश्वोंके बारेमें जो जानकारी प्राप्त हुई है उसके आधार पर सारे विश्वोंको सिर्फ तीन प्रकारोंमें विभाजित किया जाना संभव नहीं है।

ताराविश्वोंकी उत्क्रान्तिमें द्रव्यसंचयके अलावा उनके कोणीय वेगमान भी महत्त्वका स्थान रखते हैं। अंडाकार या गोलाकार ताराविश्व सर्पिल ताराविश्वकी अपेक्षा तीस गुना या उससे

ज्यादा द्रव्यसंचयवाला ताराविश्व है। सर्पिल ताराविश्वमे उत्क्रान्ति पानेके लिये ऐसे वड़े ताराविश्वको अपने द्रव्यका वड़ा हिस्सा फेंक देना चाहिये। यह द्रव्य दो तरीकोंसे छोड़ा जा सकता है। (१) नये ताराविश्वोंको जन्म देकर या (२) शक्तिके रूपमें उसका परिवर्तन करके। निरीक्षणोंसे मालूम हुआ है कि अंडाकार या गोलाकार ताराविश्वोके नजदीकमे नये ताराविश्व नहीं हैं। इससे उलटा सर्पिल ताराविश्वोंके इर्दगिर्द छोटे ताराविश्व होनेका निश्चितरूपसे जाना जा सका है। रही अव शक्तिके वहावकी वात। विशाल ताराविश्वका द्रव्यशक्तिमें रूपांतर हो जाय और वह भी आकाशीय पैमाने पर या विराट मात्रामे हो ऐसा मानना अत्यंत मुश्किल है। कोणीय वेगमानकी वात भी ऐसी ही है। वैश्विक मात्रामे उसे वढ़ाना घटाना संभव नहीं है सिवाय इसके कि वाहरकी कोई शक्ति काम आये। इन वातोंकी अनुपस्थितिमे अंडाकार ताराविश्व सर्पिल ताराविश्वमे शायद ही पलट सकेगा।

इन सारी वातोंसे ऐसे अनुमान पर आया जा सकता है कि भिन्न-भिन्न प्रकारके ताराविश्व भिन्न-भिन्न वर्गोंकी रचना करते हैं जिनका आपसमें उत्क्रान्ति-विपयक कोई संवंध नहीं है। मतलव यह है कि प्रत्येक वर्ग अपने-आप अलग है और एक वर्गकी उत्क्रान्तिका दूसरे वर्गकी उत्क्रान्तिके साथ कोई संवंध नहीं है।

ताराविश्वोंके अलग वर्ग उत्पन्न हो जानेकी क्रिया मात्र अनुमान ही है। पर यह अनुमान कौन-सी कल्पना पर आधारित है यह वात भी समझनी चाहिये। ताराविश्वोंको रचनेके लिये अंतरिक्षमे फैली हुई हाइड्रोजन वायु काम आती है यह तो हम देख ही आये हैं। वायुमें कंपन पैदा होनेसे गाँठे उत्पन्न होकर ताराविश्व वनते हैं जो धीरे-धीरे संकुचित होकर अपनी अक्षभ्रमण गति वढ़ाते रहते है। मगर सारे ताराविश्व एक-सी रीतिसे संकुचित नहीं होते है। इस कारण कुछकी अक्षभ्रमण गति कम रही तो कुछकी अधिक। जिन विश्वोंका भ्रमण-वेग ज्यादा था वे निश्चित हदसे ज्यादा द्रव्यको अपनेमे न समा पाये: और यों उन्हें अपना अतिरिक्त द्रव्य छोड़ देना पड़ा। इससे उलटा धीरे-धीरे घूमनेवाले ताराविश्व वड़े हो गये। सर्पिल ताराविश्वोंका अक्षभ्रमणवेग वहुत ज्यादा है। मगर उनका द्रव्यसंचय अंडाकार ताराविश्वोंके द्रव्यसंचयके हिसावसे वहुत कमजोर है। इस प्रकार यह कल्पना उनके अनुकूल मालूम होती दिखाई पड़ती है।

अव सवाल यह होगा कि अति वेगसे घूमनेवाले सर्पिल ताराविश्वोंका द्रव्य आज भी वाहर फेंका जाना चाहिये न?! वह द्रव्य कहाँ गिरता होगा? उसमेंसे आजकी स्थितिमें नये ताराविश्वोंका आकार लेना (वामन ताराविश्व ही न?) संभव है क्या?

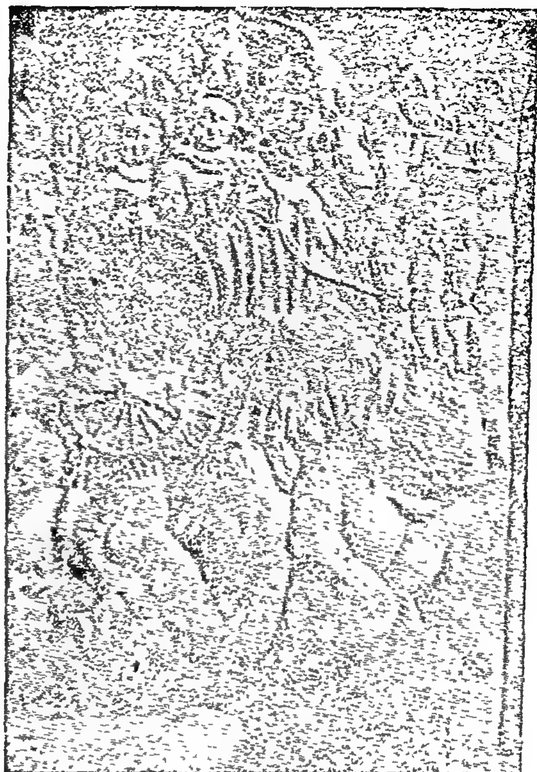
ताराविश्वोंके उत्पन्न होनेकी वात निरीक्षणोंके लिये नई संभावनाको जन्म देती है। इस वारेमे यथार्थ रूपमे जव जानकारी प्राप्त हो तव सही। हालके हिसावसे अन्य निरीक्षण जता रहे हैं कि सर्पिल ताराविश्वोंके केन्द्रोंमे से उत्पन्न होकर वाहुओंकी ओर वहनेवाला वायुप्रवाह देखनेमें आता है। यह वायु ताराविश्वोंके नाभिभागमे कैसे उत्पन्न होती है उसकी प्रक्रिया अभीतक समझनेमे नहीं आयी है। आर्प नामके खगोलशास्त्रीने इसे समझानेके लिए एक कल्पना पेश की है। उसका कहना है कि ताराविश्वोंकी वायुओंमेसे वाहर फेंका जानेवाला द्रव्य अंतरिक्ष

में तितर-बितर हो जानेके बजाय चुम्बकीय बलोंके कारण एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुवकी ओर खिंचता रहता है। इस तरह छोरका द्रव्य केन्द्रकी ओर और केन्द्रका द्रव्य छोरकी ओर बहता हुआ मालूम होता है। आप मानना है कि द्रव्यका यह हेरफेर चुम्बकीय क्षेत्रके कारण होता है।

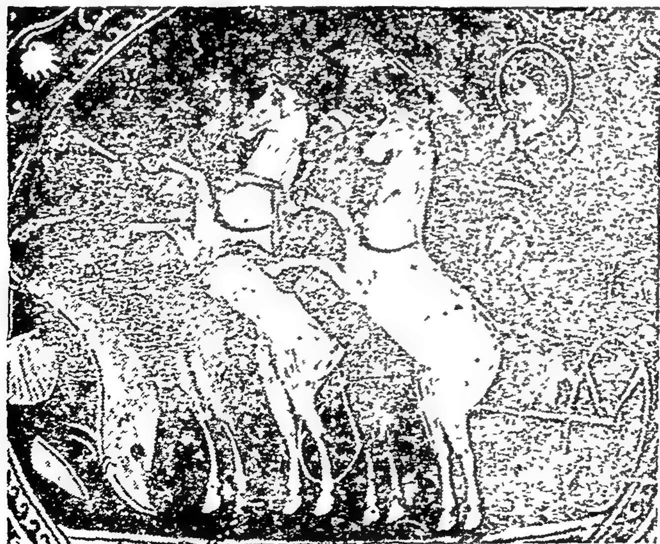
मगर यह सब सिद्ध करनेके लिए अवलोकनोंके सबूतोंकी जरूरत रहती है। सामान्यतया ताराविश्वोंका जोड़ोंमें या समूहमें होना समझा गया है। जो ताराविश्व-समूह बहुत गाढ़े हैं उन सबमें बहुधा अंडाकार और कुछेक सर्पिलरूपके ताराविश्व अवस्थित होनेका मालूम हुआ है। ताराविश्वसमूह जितना कम गाढ़ा उतना उसमें सर्पिल ताराविश्वोंको विशेष बढ़ते जानेका देखनेको मिला है। और वैदिक हिसाबसे, सामान्य घनतावाले विश्वसमूहोंमें केवल सर्पिल प्रकारके ही ताराविश्व देखनेको मिलते हैं।

ताराविश्वोंके जन्म और उत्क्रान्तिके प्रश्नोंके हल हो जानेपर कई तारा विश्व रेडियो-ताराविश्व क्यों हैं वगैरह समझनेमें सरलता होनेकी संभावना है। रूसी खगोलशास्त्री इवनोवस्की मानता है कि अंडाकार विश्वोंमें द्रव्य बढ़ता जाता है और इस कारण वे रेडियो-विश्व बने हैं। अगर यह अनुमान सत्य ठहरे तो विश्वोंमें होनेवाली द्रव्य-वृद्धि कहाँसे आती है उसकी खोज करनी चाहिये। और उसके साथ-साथ ताराविश्वोंका कोणीय वेगमान बढ़ता है या नहीं यह भी खोजना चाहिये। अकेली वृद्धि ही होती रहे मगर कोणीय वेगमान बढ़े नहीं ऐसी परिस्थिति भी मौजूद है या नहीं यह भी देखना चाहिये। कोणीय वेगमानके बढ़े बिना द्रव्य बढ़ता रहे तो सर्पिल ताराविश्व क्रमशः बढ़ता हुआ अंडाकार या गोलाकार ताराविश्व बन पड़ेगा।

द्रव्यसंचयके बढ़नेकी बातको स्वीकार कर लेने पर उत्क्रान्तिकी बातका खात्मा ही हो जायेगा। ताराविश्वोंकी यह बात उनकी उत्क्रान्तिको सूचित न करेगी, वह उनके बननेकी प्रक्रिया मात्रको सूचित करेगी।



सूर्यरथ [भाजा गुफा]
अंधकार राक्षसका नाश करनेको सूर्यदेव रथमें सवार होकर आते हैं। साथमें उनकी दो पत्नियाँ उषा और प्रत्युषा हैं।



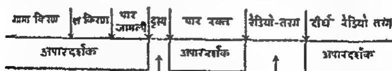
सूर्यरथ
खि. स. पू. का
सूर्यदेवका पाश्चिमात्य
दर्शन

१३. रेडियो खगोल

बीसवीं शताब्दीके शुरूआतके वर्षों तक विश्वको देखनेका और समझनेका एकमात्र माध्यम प्रकाश था। प्रकाश द्वारा प्रत्यक्ष होनेवाले आकाशीय पदार्थोंमें सूर्य, चंद्र और तारे मुख्य हैं। मगर ये सभी एक-से तेजस्वी नहीं हैं। वे सभी हमसे एक-से अंतर पर आये हुए भी नहीं हैं। अत्यंत दूरके पदार्थोंको देखनेके लिये दूरबीनकी सहायता लेनी पड़ती है। दूरबीनोंने हमारी दर्शन-शक्तिको अनेक गुना ज्यादा बढ़ा दिया है फिर भी मनुष्यदृष्टि अदृष्ट प्रकाशको देख पानेमें असमर्थ रही है। नीले रंगसे लाल रंग तकका वर्णपट रचनेवाले श्वेत प्रकाशको हम देख सकते हैं मगर अल्ट्रावायोलेट या इन्फ्रारेड प्रकाशको हम नहीं देख पाते हैं। हाँ, उसके असरोंको हम जरूर परख सकते हैं। इतना ही नहीं कैमेराकी सहायतासे उपर्युक्त प्रकाशमें स्पष्ट छवियाँ भी प्राप्त कर सकते हैं।

आकाश हमें नीला दीखता है उसका कारण पृथ्वीका वातावरण है। पृथ्वीके वायुमंडलसे बाहर जाकर आकाशका दर्शन करें तो वह काला दीखेगा। अंतरिक्षमेंसे पृथ्वी तक अनेक प्रकारकी तरंगें आती हैं जिनमें से अधिकांशको हमारा वातावरण हड़प जाता है। प्रकाशकी तरंगें वातावरणको पार करके हम तक पहुँचती रहती हैं और इस अवकाशीय खिड़की द्वारा हम आकाशका दर्शन कर सकते हैं। अंतरिक्षमें अकेली प्रकाशकी तरंगें ही चलती हैं ऐसा नहीं है। वहाँ अनेक प्रकारके विकिरण भी चलते रहते हैं। प्रश्न होगा कि इन विकिरणोंमें कोई एक विकिरण अंतरिक्षदर्शन करनेमें हमारी सहायता कर सकता है क्या?

अंतरिक्षमें होते रहते विभिन्न प्रकारके विकिरणोंमें गामा-किरणें, क्ष-किरणें, अल्ट्रावायोलेट-किरणें, इन्फ्रारेड किरणें और रेडियो-विकिरण मुख्य हैं। ये सभी विद्युत-चुंबकीय विकिरणोंके अलग-अलग स्वरूप हैं। इनमेंसे कम तरंग-मात्रावाली रेडियो-तरंगोंको छोड़कर शेष अन्य तरंगें पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाती हैं। पृथ्वीका वातावरण इन तरंगोंको या तो लौटा देता है

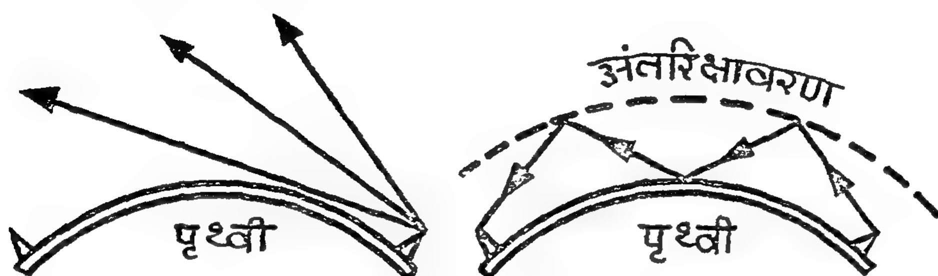


अवकाशी खिड़कियाँ ↑ से दर्शायी गयी हैं।

या उनको हड़पकर आत्मसात् कर लेता है। रेडियो-तरंगोंके द्वारा आकाशको देखने-समझनेका द्वार खुलनेकी शुरूआत सन् १९२० में हो गई थी मगर उस वक्त उसका मर्म हमारी पकड़में

नहीं आया था। अंतरिक्ष-निरीक्षण करनेवाले खगोलशास्त्री उस समय अत्यंत सूक्ष्म लंवाईकी प्रकाशतरंगोंसे परिचित थे। दीर्घ तरंगलंवाईकी रेडियो-तरंगोंके उपयोगकी वात उनके ध्यानमें आयी ही न थी।

अंतरिक्षीय ज्योतियाँ सूर्य, तारा वगैरह गर्म पदार्थ हैं। इन सभीका तापमान ऊँचा है और उनकी विकिरण-शक्तिको प्रकाश या गरमीके रूपमें दृश्य प्रकाशके वर्णपट द्वारा आसानीसे समझा जा सकता है। यही कारण है कि जिसकी वदौलत दीर्घ तरंगोंवाली रेडियो-तरंगोंको समझनेकी खगोलशास्त्रियोंने परवाह नहीं की थी।



रेडियो-तरंगोंका संचारण करनेका प्रयोग हर्ट्ज़ नामके विज्ञानशास्त्रीने सन् १८८७ मे किया था। धातुके वने दो गोलोंके वीच ७.५ मीटरकी दूरी रखकर एक गोलेसे दूसरे गोले तककी विद्युत-स्फुलिंगकी छलाँग वह लगवा सका था। इतना करने पर भी रेडियो-तरंगोंका व्यवहारमें उपयोग किया जा सकेगा या नहीं इस वातके वारेमे वह शंकाशील था। उसके प्रयोगोंके संवंधमें जव किसीने उससे पूछा कि रेडियो-तरंगोंका उपयोग संदेश भेजनेमे हो सकता है या नहीं तव उसने मजाकमें कहा, 'जरूर, मगर इन तरंगोंके परावर्तनके लिये पृथ्वीके किसी खंड जितने वड़े आईनेकी व्यवस्था करनी होगी।'

हर्ट्ज़की मृत्यु सन् १८९४ मे हुई। उसी साल मार्कोनी नामके युवान वैज्ञानिकने हर्ट्ज़के प्रयोगोंके वारेमें पढ़ा। उसे जान पड़ा कि रेडियो-तरंगोंका उपयोग संदेश भेजनेमें हो सकता है। अपनी कल्पनाकी सचाई जाँचनेको वह इंग्लैण्ड पहुँचा। अपनी श्रद्धाको वलवती सावित करने के लिये उसने अपने प्रयोगोंके क्षेत्रका अनेक रूपमे विकास किया और सन् १९०१ में जाहिर किया कि वह एटलाण्टिक महासागरके उस पार संदेश भेजनेकी तैयारीमे है। वैज्ञानिकोंने उसकी वातको हँसीमें उड़ा दिया और कहा कि उसकी कल्पना वेवुनियाद है और साथ-साथ यह भी कहा कि प्रकाशकी किरणें एटलांटिकको पार नहीं कर सकती हैं वहाँ आवाजको भेजनेकी वात करना निरी मूर्खता है। उन्होंने यह भी याद दिलाया कि पृथ्वी गोल है और प्रकाशकी किरणे सीधी रेखामे गति करती हैं। मगर मार्कोनी अटल रहा। उसने दृढ़तापूर्वक अपने प्रयोगकी पूरी तैयारी की और एक दिन सभीने आश्चर्यसे देखा कि कोर्नवाल शहरसे प्रसारित S–O–O–O संदेश एटलांटिकके उस पार न्यूफाउन्डलैंण्डमें ग्रहण किया गया है और वह भी भेजनेके वाद दूसरी सेकंडमें—सच्चे अर्थमें सेकंडके १०० वें भागके समयके वाद।

हट्सकी मजाक सही अर्थमें सिद्ध हुई थी।

मगर उसकी कही गई विशाल दर्पणकी बातका क्या?

वह था आकाशमें। आकाशमें आयनित (Ionised) हवाका आवरण है। मार्कोनीके तरंगोंको इस आवरणने रोका और पृथ्वीकी ओर लौटाया। यों एक स्थानसे दूसरी जगह तक संदेश पहुँचा। पृथ्वीके आयनावरणने रेडियो-दर्पणका काम किया।

कम लंबाईवाली रेडियो-तरंग आयनावरणको भेद कर पार निकल जाती है। लेकिन दीर्घ या बहुत ही कम लंबाईवाली तरंगें वैसे पार नहीं निकल पातीं। यों आयनावरणके द्वारा पृथ्वीकी ओरसे आनेवाली तरंगें पृथ्वीकी ओर, और अंतरिक्षकी ओरसे आनेवाली तरंगें वापस अंतरिक्षकी ओर लौटा दी जाती हैं। तरंगें अगर प्रबल नहीं हैं तो आयनावरण उनको हड़प भी जाता है—खास करके बहुत ही कम तरंगलंबाईवाली तरंगोंको। आयनावरण $\frac{1}{10}$ सेन्टिमीटरसे लेकर १० मीटर तककी तरंग लंबाईवाली रेडियो तरंगोंको अपने पार होने देता है।

यों प्रकाशकी किरणोंके अलावा रेडियो-तरंगोंके द्वारा ब्रह्मांडको देखने-समझनेकी एक और अवकाशीय खिड़की खुल गई थी मगर उसको किस तरह काममें लाया जाय इस बारेमें किसीको कोई स्पष्ट खयाल न था। उसकी कल्पना भी नहीं की गई थी।

सन् १९३० की बात है। अमरिकाकी बेल टेलिफोन कंपनीमें एच जी जान्स्की काम करता था। बेल टेलिफोन कंपनी सागर पार रेडियो-टेलिफोनसंदेश भेजनेका काम करती थी। टेलिफोन को भेजते समय या प्राप्त करते समय पार्थिव और अपार्थिव आवाजें संदेशके साथ मिलकर गड़बड़ी पैदा करती हैं। इन आवाजोंको टालना बहुत जरूरी है। बेल टेलिफोन कंपनीमें इस विषयका अन्वेषण कार्य चलता था और जान्स्की उस कामके लिये तैनात था।

साधन कैसा ही संपूर्ण क्यों न हो फिर भी उसमें उत्पन्न होनेवाली पार्श्वभू आवाजको बिलकुल मिटा देना मुश्किल है। वाल्व, रेसिस्टन्स, एरियल वगैरहके इलेक्ट्रोनोंके प्रक्षोभनोंके कारण अत्यंत सूक्ष्म आवाज उत्पन्न होती रहेगी। बाहरकी आवाजों—ट्राम, मोटर, ट्रेन, रेडियो, शोरगुल, विस्फोट, बिजलीकी गड़गड़ाहट, मिलोंकी व्हिसलें, सायरन, सीटियों—को दूर रखनेके लिये औद्योगिक केन्द्रोंसे दूर जाया जा सकता है लेकिन खुद साधनोंमें उत्पन्न होनेवाली आवाजका निरसन नहीं हो सकता है। साधनोंकी इस आवाजको सैद्धान्तिक शक्यताकी हद तक भी कम नहीं किया जा सकता है। साधनोंकी भी अपनी मर्यादायें हैं। जान्स्कीको जो काम सौंपा गया था वह पार्श्वभू आवाजकी दखलको हो सके उतनी कम करनेका था।

जान्स्कीने ३० मीटर व्यासका बड़ा एरियल बनाया और चक्करकी तरह वह घूम सके ऐसी व्यवस्था की। इस एरियलको किसी भी दिशामें घुमाया जा सकता था इस कारण वह पृथ्वी और अंतरिक्षकी आवाजें पकड़ पाता था। हम देख आये कि आवाजका स्तर अपनी मर्यादासे नीचा नहीं उतर सकता है। जान्स्कीने अनुभव किया कि बाहरकी आवाजोंकी गैर-हाजिरीमें उपर्युक्त लघुतम स्तर एक-सा नहीं रहता है। उसमें घटाबढ़ी होती है। पार्श्वभू आवाजका वह लाउडस्पीकरसे सुनता था तब उसे हमेशा अत्यंत मृदु फुसफुसाहट सुनाई देती थी।

यह मरमर आवाज कभी-कभी कुछ तेज भी होती थी और सारे दिन एक-सी नहीं रहती थी। यह मृदु ध्वनि सावनोंमे से उत्पन्न होनेवाले इलेक्ट्रोनिक आवाजसे विलकुल अलग प्रकारकी थी और फिर भी उसका संबंध पृथ्वी परके या अंतरिक्षमे होनेवाले तूफानोंके या शोरके साथ नही जोड़ा जा सकता था। इस आवाजको रेडियो-केवल या रेडियो-ट्रान्समीटरकी आवाज समझ कर जान्स्कीने उसे निर्मूल करनेकी वहुत कोशिश की लेकिन वह असफल रहा। नि:श्वास, घुड़कन और तड़ाकवड़ाककी आवाजोंके कारणोंको ढूँढ़नेवाला जान्स्की भारी दुविधाका अनुभव कर रहा था।

व्याकुल होने पर भी वह वेहिम्मत न वना। उसने कारणोंकी जाँच शुरू की। जैसे-जैसे जाँच सूक्ष्म होती गई वैसे-वैसे उलझन और भी वढ़ती गई। आवाजका कारण वह नहीं ढूँढ़ पाता था उसके साथ एक और मुश्किल वढी—आवाज करनेवाला पदार्थ सरक रहा था!

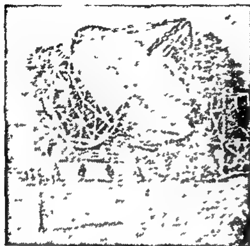
जान्स्कीके धैर्यकी पूरी कसौटी हुई। जैसे उसकी जाँच सूक्ष्म होती गई वैसे और भी नयी कठिनाइयाँ सामने आती गयी। शुरूमे उसने कल्पना की थी कि यह आवाज पार्थिव नहीं लेकिन अपार्थिव है—मगर प्रश्न था कि वह आती है कहाँसे? और अव गुल यह खिला कि आवाज करनेवाला पदार्थ सूरजके साथ उगता है और अस्त होता है। मगर सूरज आवाज नहीं करता है: तो फिर वह पदार्थ क्या होगा? जान्स्कीको यह भी पता लगा था कि मर्मर आवाजकी प्रवलता दिनमे एक दफा होती है मगर उसके आवर्तनोंका समय २४ घंटोंमे चार मिनट जितना कम है। यह नई समस्या थी। समस्या इस अर्थमे कि आवाजकी प्रवलताका समय धीरे-धीरे सरक कर रातका वननेके वाद वह आधी रात तक पहुँच गया था। परेशानीकी वड़ी वात यह थी कि आवाजको उत्पन्न करनेवाले स्रोतका कहीं पता नही लग रहा था।

उपर्युक्त चार मिनटका फर्क समझनेके लिए जान्स्कीने खगोलशास्त्रकी शरण ली। वह तव जान पाया कि तारोंका अंतरिक्षीय भ्रमणकाल सूर्यके अंतरिक्षीय भ्रमणकालसे ४ मिनट कम है। तारोंको ४ मिनट जल्दी उगते और अस्त होते उसने देखा था: और यों मर्मर आवाजका इस वातके साथ संवंध होनेका उसके दिमागमे स्पष्ट हो उठा। उसे अव खयालमें आया कि उसका एरियल आकाशगंगाको तकता है तव आवाज प्रवल होती है। अव वह तय कर पाया कि आवाजका कारण आकाशगंगा स्थित कोई तारा है। उसने घोषित किया कि रेडियो-टेलिफोनके सावनोंमे सुनाई पड़ती मर्मर आवाज सूर्यमंडलसे वाहरके अंतरिक्षसे—खास करके आकाशगंगाके पाटसे—आती है।

जान्स्की द्वारा खोजी गयी तारेकी आवाजको अमरिकन सरकारने ब्रोडकास्ट किया। मगर वादमे जान्स्कीकी यह खोज केवल रिकार्ड की ही वात वन गई। जनता और वैज्ञानिक उसे भूल गये—वह विस्मृतिकी चीज हो गई। जान्स्कीने अपनी कंपनीसे विनय की कि खोजका यह काम जारी रखनेमे वह सहायक हो मगर कंपनीने साफ ना कह दिया। उसे अपार्थिव वातोंमे रस न था। जान्स्कीके प्रयोग वहाँ ही थम गये। वाकी रही रेडियो-इंजीनियरों और खगोल-शास्त्रियोंकी वात! रेडियो-इंजीनियरोंके फुरसत न थी और फुरसत मिलने पर वे अपार्थिव आवाजके पचड़ेमे पड़नेवाले न थे क्योंकि उन्हें खगोलशास्त्रका ज्ञान न था। दूसरी ओर

खगोलशास्त्री अपने कामोंमें ऐसे फँसे थे कि छोटी-सी यह रेडियो-आवाज उनके कानों तक न पहुँच पाती थी। इस मामलेमें वह सभी उदासीन थे।

फिर भी एक आदमीने नये विज्ञानकी इस ज्योतको जलती रखा था। वह आदमी ग्रोटे रेबर था—जान्स्कीकी तरह रेडियो-इंजीनियर और अमेरिकाका नागरिक। उसने ९ मीटर व्यासके कड़ाहेके आकारके परवलय घाटकी रेडियो-दूरबीन बनायी और अपने घरके अहातेमें उसे खड़ा किया। उसके द्वारा आकाशके किसी भी भागको देखा जा सकता था। रेबरने इस दूरबीनकी सहायतासे रेडियो-आकाशका नक्शा बनाया। नक्शेसे रेडियो-आवाज करनेवाले उद्गमोंके स्थाननिर्देशोंके बारेमें जाना जाता था मगर उनके हमसे अन्तरोंके बारेमें नहीं। हाँ, चन्द्र जैसे अत्यंत निकटके आकाशीय पदार्थ पर रेडियो-तरंगें डालकर उन्हें वापस ग्रहण करनेमें आया है। और इस प्रकार चन्द्रकी दूरी मालूम की गई है मगर दूरके पदार्थोंके बारेमें यह पद्धति काम नहीं देती है।



रेबरका रेडियो-दूरबीन

रेडियो-दूरबीन आज तक भी ग्राही (Receiver)-दूरबीन रही है। और यों रेडियो-आकाशके नक्शे केवल प्लान (Plan)-नक्शे हैं, वे अंतर नहीं दर्शाते हैं। इस कारण, रेडियो-दूरबीनके द्वारा जो आवाज पकड़ी जाती है उसके अर्थघटनमें बहुत तकलीफ रहती है। आजकल रेडियो और चाक्षुप दूरबीनें एकदूसरीके सहकारसे काम करती हैं मगर रेबरके समय यह परिस्थिति न थी। उस वक्त चाक्षुप दूरबीनवाले रेडियो-दूरबीनके बारेमें कुछ नहीं जानते थे, विपरीत इसमें कभी-कभी उनकी अवहेलना करते थे।

रेबरने साबित किया है कि अन्तरिक्षसे आनेवाली और जान्स्की द्वारा पहचानी गई आवाज निश्चित हकीकत है। उसने यह भी कहा कि आकाशगंगामें जहाँ ज्यादा तारे हैं वहाँसे ऊँची आवाज आती है और जहाँ तारे कम हैं वहाँसे मृदु (हलकी) आवाज आती है। रेबरके कहनेका सीधा-सादा अर्थ यह था कि आकाशके तारे रेडियो-आवाजके प्रभवस्थान हैं। अपने इस अनुमानकी परीक्षा करनेके लिए रेबरने अपनी रेडियो-दूरबीनको व्याध और ब्रह्महृदय तारोंकी ओर विनिर्देशित किया। और तब उसे मालूम हुआ कि उसका तर्क सही न था। चमकते तारे आवाज नहीं करते हैं! बात भी कैसी बेतुकी?! तारायूथ आवाज करता है मगर अकेला तारा गूँगा है!

अपना सूरज अकेला तारा है। आज वह रेडियो-उद्गमके रूपमें प्रख्यात है। मगर रेबरने जब उसे जाँचा था तब वह बिलकुल चुप था। हमसे नजदीकका होनेके कारण वह और

तारोंके तेजको दवा देता है उसी प्रकार उनकी आवाजोंको भी उसे दवा देना चाहिये था : रेवरने वहुत सिरपच्ची की थी मगर सूर्यसे निकलनेवाली आवाजको वह पकड़ ही न पाया था। 'अंतरिक्षीय आवाज सूर्यसे या तारेसे न आती हो तो वह कहाँसे आती होगी?' यह प्रश्न रेवरको सताने लगा।

सूर्यमेंसे आवाज आती है यह हमने कहा है। ग्रोटे रेवरका उस आवाजको पकड़ न पानेका कारण सूर्यकी 'शांत' स्थिति थी। उस वक्त सूर्य पर सवसे कम सूर्य-कलंक थे। और इस कारण तूफानोंकी मात्रा अत्यंत कम हो गई थी। सूर्य पर वहुत कलंक होते हैं तव वह अशांत हो जाता है और उसकी आवाज रेडियो-दूरवीन द्वारा पकड़ी जाती है। यह आवाज सूर्य-विंवसे और सूर्यके अदृश्य किरीटावरणसे आती है। सूर्य शांत होता है तव सूर्यविंवसे आवाज नहीं आती है। हाँ, उसका किरीटावरण सतत आवाज उत्पन्न करता रहता है।

कुछ भी हो; प्रयोगोंके वाद भी रेवरको अंतरिक्षीय आवाजके उत्पादकोंकी पक्की टोह न मिली। सूर्य और तारे चुप मालूम हुए। रेवरने अनुमान लगाया कि अंतरिक्षमें से आनेवाली आवाज अंततारकीय वायु—खास करके आणविक हाइड्रोजन—से आनेवाली आवाज है। मगर उसकी इस वातको मान्यता न मिली। वादमें रेडियो-तारोंका जव पता लगा तव रेवरकी उपर्युक्त कल्पनाको निपट खोटी ठहरायी गयी। आवाज उत्पन्न करनेवाले पदार्थको तरंगें भेजनी चाहियें। गरम पदार्थ विभिन्न तरंग लम्वाईवाली विद्युच्चुंवकीय तरंगे विकिरित करते हैं। रेडियो तरंगे विद्युच्चुंवकीय तरंगें हैं। यों उनको उत्पन्न करनेवाला पदार्थ गरम होना चाहिये। आणविक हाइड्रोजन शिथिल पदार्थ है; वह गरम है ही नहीं इस कारण उसमें से तरंगें उत्पन्न होनेकी वात अर्थहीन है। (आज हम जानते हैं कि शिथिल हाइड्रोजन २१ से. मी. तरंगलम्वाईकी रेडियो-तरंगें उत्पन्न करता है। रेवरका अनुमान यों आधा ठीक था।)

रेवरने रेडियो-आकाशके जो नकशे वनाये थे वे सभी व्योरेवार थे। करीव १५ साल तक वे अपने क्षेत्रमें अद्वितीय रहे। उन नकशोंके द्वारा वैज्ञानिक लोगोंको पहले-पहल पता लगा कि दृश्य जगत और श्राव्य जगत कैसे भिन्न हैं। अलवत्ता रेडियो-आवाज उत्पन्न करनेवाले उद्गमोंको नहीं पहचाना गया था फिर भी आवाजकी उत्कटता दर्शानेवाले दर्जनों स्थानोंको नकशोंमें दिखाया गया था। मोटे तौर पर ये जगहें आकाशगंगावाले आकाशीय विभागमें थीं। ऐसे स्थानोंमें अति प्रसिद्ध शर्मिष्ठा, हंस और वृषभमंडलमें आये हुए रेडियो-उद्गम हैं। रेवर इन स्थानोंको आजकी तरह निश्चित रूपमें पहचान न सका था फिर भी उन सवके लिये उसने निरीक्षण-नोट तैयार किये थे और आशा प्रकट की थी कि अंतरिक्षीय रेडियो-अन्वेषण महत्त्वका स्थान पायेगा और उसके द्वारा खगोलशास्त्रकी एक नई शाखाकी नींव पड़ेगी।

रेवरके अन्वेषण सन् १९४०-४२ में प्रकट हुए थे। उस समय वैज्ञानिक लोग शुद्ध अन्वेषणोंके अलावा दूसरे कामोंमें लगे हुए थे। यह होते हुए भी रेवरके अन्वेषणोंको ताक पर नहीं रख दिये गये थे। उस समय दूसरे विश्वयुद्धके कारण राडारका काम शुरू हो गया था और रेवरकी खोजोंका आधारशिलाके रूपमें उपयोग किया जाता था। (रेवरकी दूरवीनको भी संभालकर सुरक्षित रखा गया है।) इंग्लैंडमें मान्चेस्टरके पासके जोड्रेल वैंक स्थानमें ७५

मीटर व्यासकी एक बडी रेडियो-परावर्तक दूरबीन स्थापित की गई है। यह दूरबीन रेबरकी दूरबीनकी बडी आवृत्ति जैसी है।

रेबरका काम जहां रुक गया वहांसे जे० एस० हीने उसे आगे चलाया। यह काम इंग्लैंड-में प्रारम्भ किया गया था। रेडियो-आवाज और रेडियो-दूरबीनकी खोज हुई अमेरिकामें, मगर उनका विकास हुआ इंग्लैंड और ऑस्ट्रेलियामें। रूस और अमेरिकाके बीच, आजकल, परवलय-घाटके दूसरे प्रकारकी बडी बडी रेडियो-दूरबीनें निर्माण करनेकी होड चल रही है।

ही लश्करी अफसर था। उसके जिम्मे राडार व्यवस्थाका काम था। राडार-साधन कभी-कभी स्वयं काम नहीं दे पाते थे। 'दुश्मन इस प्रकारकी तरकीबोंका आयोजन करते हैं और हमें उन्हें छकाना चाहिये' ऐसे खयालसे प्रेरित होकर ही और उसके साथी काम कर रहे थे। हुआ ऐसा कि दुश्मनोंके बिना आक्रमण किये ही और अपनी ओरसे किसी भी प्रकारकी रुका-वट उत्पन्न न करने पर भी राडार-व्यवस्थामें यकायक विक्षेप दिखाई पडा। निरीक्षणों और साधन-परीक्षणोंसे मालूम हुआ कि यह विक्षेप दुश्मनके हस्तक्षेपके कारण नहीं, सूर्यके दखलके कारण पैदा हुआ है। सूर्य पर बहुत बडा कलंक उमड आया था और इसकी बदौलत रेडियो-संदेशमें अडचन पैदा हुई थी। बगरट विभागसे आनेकी रेडियो-तरंगें सूर्य बहा रहा है–इस बातका तब ज्ञान हुआ। बादमें विभिन्न स्थानोंमें–खास करके सिडनी (ऑस्ट्रेलिया) और केम्ब्रिज (इंग्लैंड)में, सूर्यबिंबसे और उसके वातावरणसे विकिरित होनेवाली रेडियो-तरंगोंके अभ्यासका अन्वेषण-कार्य जोरशोरसे शुरू हो गया।

विश्वयुद्धके समय एक और खोज भी हुई थी। वह थी अंतरिक्षमें चुपचाप जलकर नामशेष हो जानेवाली उल्काओंके प्रतिघोषकी खोज। ही और उसके साथियोंने अनेक उल्काओंके तेजस्वका अभ्यास करके जाहिर किया कि जलकर भस्म हो जानेवाली हरेक उल्का अंतरिक्षमें अपनी किरणकी एक लकीर खींच देती है। यह अनुरेखा क्षणिक होती है मगर तत्कालके लिये वह धातुके तारकी तरह रेडियो-तरंगोंको परावर्तित करती है। उल्का प्रतिघोषकी इस खोजके द्वारा वातावरणके ऊपरके स्तरोंका अच्छा अभ्यास किया गया है और सघन उल्कास्रोतोंके अस्तित्वका पता भी पाया गया है।

हीका तीसरा कार्य जान्स्की और रेबरकी तरह रेडियो-तरंगोंके उद्गमस्थानों और उनकी प्रबलतादर्शक आकाशीय रेडियो-नक्शा बनानेका है। इस कामके लिये, अपने समयके उत्तम एरियलका उसने उपयोग किया था। नक्शा पूरा करने पर मालूम हुआ कि आकाशगंगाका पाट रेडियो-तरंगें उत्पन्न करनेवाला विशिष्ट क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त यह भी मालूम हुआ कि इस क्षेत्रके हंसमंडल विभागमें आया हुआ एक रेडियो-संकेत आंदोलित होता रहता है। हीने अनु-मान लगाया कि यह संकेत अत्यंत दूरका होना चाहिये। अवकाशमें उत्पन्न होकर हमारे वाता-वरणको पार करते समय वह वातावरणके संकेत पर आरोपित होकर हम तक पहुँचता रहा है और इस कारण उसका उद्गमस्थान अत्यंत प्रबल विकिरक होना चाहिये जिसकी अत्यंत सावधानीसे खोज करना आवश्यक है। मगर हुआ वही जो जान्स्की और रेबरके साथमें हुआ

था। हीके उपर्युक्त रेडियो-स्रोतका पता न चल सका और वह भी दुनियामें शक्तिशाली दूरबीनोंके मौजूद होने पर भी!!

मगर अब वह स्रोत ढूँढ़ा गया है। हंस अ नामसे परिचित यह रेडियो-स्रोत (पृ० ११३) ब्रह्मांडके सिवान पर आया है। दुनियाकी सबसे बड़ी चाक्षुप दूरबीनसे वह बहुत मुश्किलसे पकड़ा गया है!

कुदरतकी लीला कैसी अद्‌भुत है! अपने रहस्योंको वह बहुत धीरे-धीरे प्रकट करती है। मनुष्यके प्रयत्नोंकी कड़ी कसौटी होती है। ऐसे ही मौकों पर ज्ञानविज्ञानके सोते भी फूटते और बहते रहते हैं। रेडियो-खगोलका विकास इस बातका जीवंत उदाहरण है।

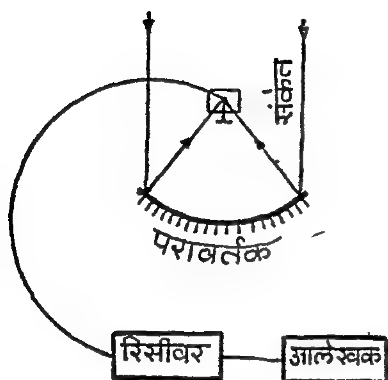


१४. रेडियो-संकेत और विश्व

खगोलशास्त्रका आधुनिक विकास दूरबीनोंके कारण है। दुनियाकी सबसे बडी चाक्षुप दूरबीन ५०० से मी व्यासवाली माउन्ट पालोमर वेधशालाकी हेल्ल दूरबीन है। इस दूरबीनका अस्तित्व न था तब २५० से मी व्यासवाली माउन्ट विल्सन वेधशालाकी दूरबीन दुनियाकी सबसे बडी दूरबीन थी। २५० से मी वाली दूरबीनसे अन्तरिक्षका बहुत-सा भाग देखा गया था और इस कारण सन् १९३० के अरसेमें खगोलशास्त्री मानने लगे थे कि अन्तरिक्षमें जो कुछ देखने योग्य है वह सब कुछ देख लिया गया है। वे कहते थे कि माउन्ट पालोमरवाली बडी दूरबीनसे अत्यन्त सुदूरके ताराविश्वोंका पता लगाकर ब्रह्माण्डकी गहराईकी केवल थाह लेना अब बाकी है। हेल्ल दूरबीनका उपयोग भी खास करके ताराविश्वोंके स्वरूपोंको प्रकट करनेमें हुआ। मगर तब पता चला कि खगोलशास्त्री जिसे देख लेनेका मानते थे वह बात सही नहीं है। आकाशीय पदार्थोंको, खास करके ताराविश्वोंको हमसे जितना नजदीक होनेका हम मानते थे उतने निकट वे नहीं थे। देवयानी ताराविश्वका हमसे अंतर, उसकी खोजके बाद, ७½ लाख प्रकाशवर्ष होनेका मालूम हुआ था। यह अकल्प्य अंतर था। अपने मंदाकिनी विश्वका ब्रह्माण्ड समझनेवाले लोग इस अंतरकी बात सुनकर आश्चर्यचकित हो गये थे। मगर जब उन्होंने यह जाना कि अन्तरिक्षमें एक नहीं लेकिन लाखों छोटे-बडे ताराविश्व हैं तब उनके विस्मयकी सीमा न रही। बडी दूरबीनके उपयोगका एक परिणाम यह भी हुआ कि 'जो कुछ देखनेका था वह सब कुछ देख लिया गया है' वाली बात झूठी मालूम हुई। देवयानी विश्वकी ७½ लाख प्रकाशवर्षकी दूरी अब २२ लाख प्रकाशवर्षकी दूरीमें पलट गई है और असंख्य ताराविश्वोंको अपनेमें समानेवाले ब्रह्माण्डकी गहराईमें ५ अरब प्रकाशवर्ष तक पहुँच पाने पर भी अन्तरिक्ष, उल्टा ज्यादा अज्ञात होनेका मालूम हुआ है। इस बातको अब समर्थन मिला है रेडियो-खगोल द्वारा। अब हमें मालूम हुआ है कि ब्रह्माण्डमें देखनेकी अपेक्षा अनदेखा ही ज्यादा है। आज तक ब्रह्माण्डको हम प्रकाशकी आँखोंसे देखते थे, उसे अब आवाजकी सहायतासे समझनेका मौका मिला। मगर तब एक नई समस्या खडी हुई। ब्रह्माण्डको जिस रूपमें हम देखते आये हैं वह उसका वास्तविक स्वरूप है कि कुछ और? हमारी आँखें और चाक्षुप दूरबीनें सूर्यबिंबको चमकते ज्योतिके रूपमें देखती हैं मगर रेडियो-दूरबीनें उसे काला समझती हैं। इतना ही नहीं रेडियो-दूरबीनें सूर्यको उसके चमकते व्याससे २० गुना व्यासवाले ज्योतिके रूपमें देखती हैं। प्रश्न है कि इन दोनों दर्शनोंमेंसे कौन-सा सच्चा माना जाय?

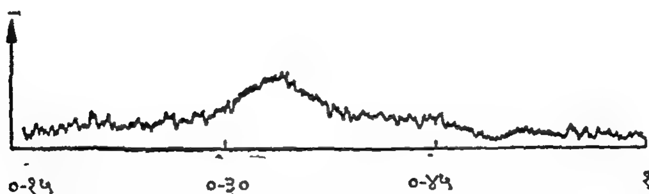
वैज्ञानिक कहते हैं कि दोनों दर्शनोंको मिलाने पर ब्रह्माण्डका जो दर्शन हो उसे सच्चा समझना चाहिये। रेडियो-खगोल चाक्षुप खगोलके साथ कदम मिलाकर चलता है। अपनी

विशिष्ट कार्यप्रणालीके लिये वह चाक्षुप-खगोल पर बहुत ज्यादा अवलंबित है—खास करके आकाशीय पदार्थोंके अंतरोंके बारेमे। दूरत्वके संदर्भ रहितका रेडियो खगोल गोले परके चित्र-लेखन जैसा है। रेडियो-खगोलका खास काम अदृश्य और पारदर्शक आकाशीय पदार्थोंके बारेमे नई जानकारी प्रदान करना है। प्राप्त जानकारीके आधार पर चाक्षुप दूरबीन द्वारा अदृश्य ज्योतियोंका पता पानेकी पूरी कोशिश करनेमे आती है। हमारा मंदाकिनी विश्व सर्पिल प्रकारका वायुभुजाओंवाला ताराविश्व है उसका खयाल भी रेडियो-दूरबीन द्वारा ही मिला था।



रेडियो-खगोल अन्वेषणके मुख्य विषय रेडियो-सूर्य, रेडियो-ताराविश्व और शिथिल हाइड्रोजन हैं। इनकी खोजके लिये विभिन्न तरंगलंबाईकी रेडियो-तरंगोंका उपयोग किया जाता है। विद्युत-चुंबकीय वर्णपटके रेडियो-तरंगोंके विभागवाले $\frac{१}{१०}$ से. मी. से १०० से. मी. तरंगलंबाईवाली तरंगें अन्वेपणके लिये ज्यादा अनुकूल मालूम हुई हैं। घरेलू रेडियोसेटमे अलग-अलग तरंगलंबाई पर आवाज सुनी जाती है उसी तरह रेडियो-दूरबीनमे भी होता है। अलबत्ता रेडियो-दूरबीन-की आवाजको सुना नहीं जाता है, उसे आलिखित किया जाता है। विभिन्न तरंगलंबाइयोंके कारण रेडियो-आवाजकी तुलना श्वेत प्रकाशसे उत्पन्न होनेवाले वर्णपटसे हो सकती है। वर्णपटमे विभिन्न तरंगलम्बाईकी प्रकाशरेखाये होती हैं वैसे ही यहाँ आवाजकी तरंगे हैं। वर्णपटकी रेखाओंकी तरह आवाजकी तरंगोंमे भी एक चमकती रेखा है। यह तरंग शिथिल हाइड्रोजन की है। ठंडे हाइड्रोजन परमाणु २१ से. मी. तरंगलंबाईकी रेडियो-तरंगें प्रसारित करते है।

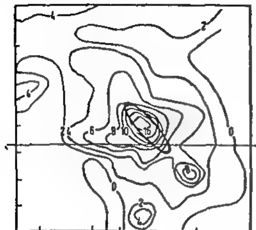
अब हम देखेंगे कि अवकाशसे आनेवाली रेडियो-तरंगोंको ग्रहण करके रेडियो-दूरबीन किस प्रकार काम करती है।



रेडियो-दूरबीनका सामान्य स्वरूप कडाहेके आकारके परावर्तकका है। यह परावर्तक अंतरिक्षसे आनेवाली रेडियो-तरंगोंका परावर्तन करके उनको एक स्थान पर केन्द्रित करती है। परावर्तित तरंगों द्वारा उत्पन्न होनेवाला प्रतिबिंब परावर्तककी नाभिमे रखे गये द्विध्रुव (Dipole) दंड पर ग्रहण किया जाता है। द्विध्रुव-दंडका संधान रेडियो-रिसीवरके और रेकॉर्डिंग साधन (या आलेखक) के साथ किया हुआ होता है।

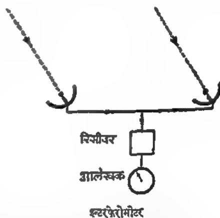
रेडियो-दूरवीन द्वारा प्राप्त एक आलेख पृ १०५ पर दिया गया है।

ऐसे आलेखको प्राप्त करनेके लिये रेडियो-दूरवीनको आकाशीय पदार्थकी ओर ताका जाता है और उस ज्योतिके आसपासके विस्तारमें उसे एक ओरसे दूसरी ओर तक घुमाया जाता है। यह काम अलग-अलग स्थानोंसे वारवार किया जाता है। दूरवीन घूमती रहती है तब आकाशीय ज्योतियोंमेंसे आनेवाली आवाज आलेख द्वारा नोट की जाती है। इस तरह सैंकडा आलेख प्राप्त करके, उनकी सहायतासे, आवाज करनेवाले अनरिक्षीय पदार्थकी अस्तित्वसीमा दिखानेवाला समोच्चरेखा (कन्टूर) नक्शा तैयार करनेमें आता है। वगलमें वैसा एक नक्शा दिया गया है। यह नक्शा हमारे परिचित देवयानी विश्वका है। नक्शेमें देवयानी विश्व गहरी लकीरवाले दीर्घवृत्तसे दर्शाया गया है। पतली रेखायें आवाजकी समोच्चरेखायें हैं। इन रेखाओंके परसे अब उन रेखाओंकी सापेक्ष प्रबलता दिखाते हैं। देवयानी विश्वका अनरिक्षीय स्थान ० घ ४० मि विषुवांश और +४१° क्रान्ति है। उस विश्वका रेडियो-चित्र तैयार करनेके लिये रेडियो दूरवीनको देवयानीविश्वके चारों ओर ० घ १५ मि विषुवांशसे



रेडियो आलेखनके आधार पर स्थाननिर्णय

१ घ विषुवांश तक और ३७° क्रान्तिसे ४५°५ क्रान्ति तकके अवकाशको ताका गया था। पिछले पृष्ठ पर दिया गया आलेख रेडियो-दूरवीन ४०° १५′ क्रान्ति पर घूमती थी उस वक्तका है। इस आलेखसे मालूम होता है कि रेडियो-संकेतोंकी प्रबलता विषुवांश ० घ ३० मि और ० घ ४५ मि के बीचकी है। मगर साथ-साथ यह भी समझा जाता है कि पकडी जानेवाली आवाज केवल देवयानी विश्वसे नहीं मगर उसके आसपासके विस्तारसे भी आती है। यह विस्तार अदृश्य देवयानी विश्व है।



इन्टरफेरोमीटर

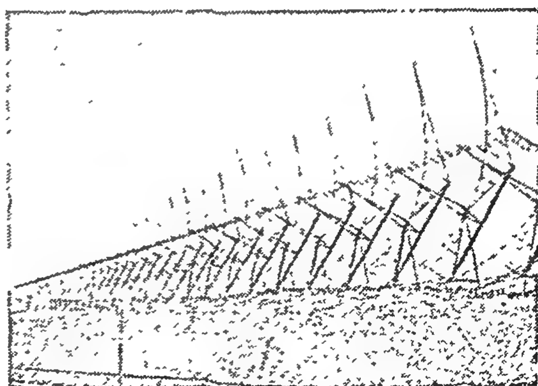
सभी रेडियो-दूरवीनें कडाहेके या कटोरेके आकारकी परावर्तक-दूरवीनें नहीं होती हैं। एक प्रकारकी दूरवीनमें परावर्तकके स्थान पर एकदूसरेसे जोडे गये अनेक द्विध्रुव-दंड होते हैं। ऐसी रेडियो-दूरवीनको तैयार करनेका खर्च कम लगता है मगर उसमें एक त्रुटि रह जाती

है। उसे आसानीसे घुमाया नहीं जा सकता है। वह अमुक निश्चित तरंग-लंबाई पर काम देनेवाली विशिष्ट रेडियो-दूरबीन बन जाती है। विशिष्ट प्रकारकी अन्य रेडियो-दूरबीनोंमें एक प्रकार इन्टरफेरोमीटर रेडियो-दूरबीनका है। सामान्य इटरफेरोमीटरमे दो रेडियो-दूरबीने होती हैं जिन्हें एक दूसरेके साथ एक ही रिसीवरसे और एक ही आलेखसे जोड़ा जाता है। अलबत्ता इन दूरबीनोंके बीच काफी अंतर रहता है, वे एकदूसरीके नजदीक नही होती।



स्ट्रानफोर्ड युनिवर्सिटीकी रेडियो-दूरबीन

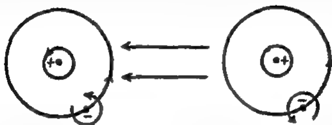
अन्य प्रकारकी एक रेडियो-दूरबीनका चित्र ऊपर दिया गया है। इस दूरबीनका संचालन स्ट्रानफोर्ड युनिवर्सिटी करती है। ३०० से. मी. व्यासके परवलय-घाटके कई परावर्तकोंको अत्यंत नाजुकतासे क्रमबद्ध करके इस दूरबीनकी रचना की गई है। दूरबीनोंकी विभेदनक्षमता उनके व्यासके प्रमाणमे होती है। छोटे-छोटे अनेक एरियलों द्वारा प्राप्त रेडियो सकेतोंको - सयोजित करनेवाली यह दूरबीन रेडियो-तारेकी आतरिक संरचनाको समझनेमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। अंतरिक्ष-स्थित रेडियो-उद्गमोंको खोजनेमे भी वह ज्यादा कामयाब साबित हुई है। १.५ कलाकी दूरीवाले एकदूसरेके अत्यंत नजदीके रेडियो-उद्गमों का, इस दूरबीन द्वारा, एकदूसरेसे अलग रूपमें अभ्यास किया जा सका है। इन सभी कारणोंसे उसकी विभेदनक्षमता (Power of Resolution) अत्यंत ऊँची कोटिकी मानी जाती है।



रेडियो-इन्टरफेरोमीटर

शिथिल हाइड्रोजन, गरम तारोंके नजदीकका आयनित हाइड्रोजन, तारा-विस्वोंके चुम्बकीय क्षेत्रमें भारी वेगसे घूमनेवाले इलेक्ट्रोन, गति और स्थान सीमित (या पृथक्) पहचाने गये रेडियो-उद्गम—ये चारों बातें अवकाशी रेडियो-उत्सर्जनके लिये जिम्मेदार हैं।

शिथिल हाइड्रोजनकी नाभि (प्रोटोन)के चारों ओर करीब वर्तुलाकार कक्षामें इलेक्ट्रोन घूमता रहता है। नाभिकी परकम्मा करनेके उपरान्त वह अपनी धुरा पर भी घूमता रहता है। घूमक्कड़ इलेक्ट्रोनकी अक्षभ्रमणदिशा कभी—करीब ११० लाख वर्षमें एक दफा—पलट जाती है। दिशा पलटने पर, इलेक्ट्रोनकी गतिके प्रमाणमें और दिशाफरकके अनुपातमें ऊर्जा प्रकट होती है। यह ऊर्जा २१ से मी तरंगलम्बाई द्वारा प्रकट होती है और उसे अन्य ऊर्जाओंसे अलग पहचाना जाता है। अन्य ऊर्जायें आम तौर पर उष्मीय उत्सर्गवाली हैं जबकि उपर्युक्त



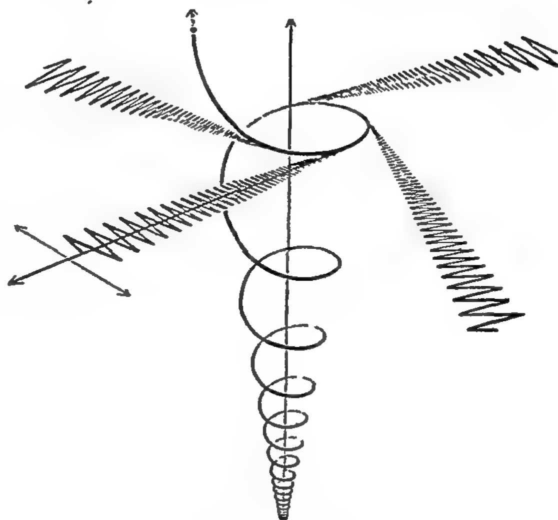
ऊर्जाका उद्गम शिथिल या ठंडा है। शिथिल हाइड्रोजन परमाणुका ऊर्जा-उत्सर्ग बहुत ही लंबा अरसा बीतने पर होता है। फिर भी उसके अस्तित्वका पता हमें चला है कारण है शिथिल हाइड्रोजनके परमाणुकी बहुलता। अपने मंदाकिनी विश्वके वायुवादलोंमें संख्यातीत हाइड्रोजन परमाणु मौजूद हैं और इस कारण हम उनके ऊर्जा-उत्सर्गको समझ पाये हैं।



मंदाकिनी विश्वमें अनेक अत्यंत गरम तारे हैं। इन तारोंमें से छूटनेवाली प्रबल किरणोंके कारण इन तारोंके इर्दगिर्दके अंतरिक्ष स्थित हाइड्रोजन परमाणुओंका विघटन होता है। आयनित स्थितिवाले ये हाइड्रोजन कण अवकाशमें अपने-आप घूमते रहते हैं। उनको प्राप्त गतिके कारण वे वेगयुक्त यात्रा भी करते हैं। यात्रा करते समय प्रोटोनोंको और इलेक्ट्रोनोंको एकदूसरेके निकट पहुँचनेके संयोग भी उत्पन्न होते हैं फिर भी वे एकदूसरेसे मिलकर हाइड्रोजन परमाणु नहीं बनाते हैं। उनकी गति इसमें बाधा डालती है। फल यह होता है कि प्रोटोनके नजदीक पहुँच पाता इलेक्ट्रोन अपनी गति और साथ-साथ प्रोटोनके खिंचावके कारण ज्यादा वेगयुक्त बनता है और प्रोटोनके इर्दगिर्द परवलय परिक्रमा कर अवकाशमें दूर सरक जाता है। मगर ऐसा करते समय वह ऊर्जा-उत्सर्ग करता है। यह ऊर्जा-प्राकट्य परवलयकक्षाके हिसाबसे

अलग-अलग तरंगलम्बाई पर (आम तौर पर वर्णपटके सेन्टिमीटर विभागमे) होता रहता है। इस प्रकार प्रकटनेवाली ऊर्जाको मुक्त-मुक्त-ऊर्जा-सचरण (Free Free energy Transmission) कहा जाता है। उसे मुक्त इसलिये कहा जाता है कि इस क्रियामें भाग लेनेवाला इलेक्ट्रोन बंधी स्थितिवाला न होकर मुक्त स्थितिवाला होता है।

प्रबल चुंबकीय क्षेत्रके कारण अनेक दफा, इलेक्ट्रोन अति भारी वेग धारण करता है। चुंबकीय क्षेत्रमे गति करनेवाला अति वेगयुक्त इलेक्ट्रोन सीधी रेखामे गति नही करता है। उसका गतिमार्ग सर्पिल होता है। इस मार्गमे चलते समय वह ऊर्जाका उत्सर्ग करता है। इस प्रकार का ऊर्जा-उत्सर्ग वर्णपटकी मीटर तरंगलंबाईवाले विभागमे प्रकट होता है। मंदाकिनी विश्वके पैंदेमें और उसके प्रभामंडलमे उपर्युक्त प्रकारसे ऊर्जा प्रकटती रहती है। इस ऊर्जा-उत्सर्गको वैज्ञानिक लोग सिन्क्रोट्रोन (Synchrotron) ऊर्जा-उत्सर्ग कहते हैं।

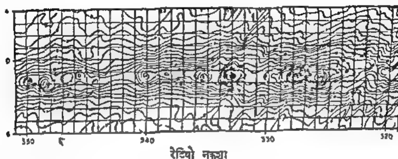


सिन्क्रोट्रोन शक्तिउत्सर्ग

रेडियो-उद्गमोसे होते रहते ऊर्जा-उत्सर्गोका पता बहुत पहले प्राप्त हो चुका है। मंदाकिनी विश्वमे ऊर्जाका विकिरण करनेवाले जो स्थान हैं उनमे कर्क निहारिकाका पता सबसे पहले लगा था। सन् १०५४ मे एक परम स्फोटक तारेका विस्फोट हुआ था। दर असल यह तारा अत्यत निस्तेज तारा था। मगर देखा गया कि उसका तेज बहुत जल्द बढ़ने लगा है। बादमें वह शुक्र जैसा तेजस्वी होकर फट पड़ा। उसका यह विस्फोट बहुत ही भारी था। फल यह हुआ कि तारा टूटकर श्वेत वामन तारा बन गया और विस्फोटके कारण उत्पन्न हुआ वायुगोल, तबसे आज तक बढ़ता जाता रहा और रेडियो-ऊर्जा उत्सर्ग करता रहा है।

सर्पिल ताराविश्व चिपटे आकारके हैं यह हम जानते ही हैं। प्रश्न होगा कि करीब लाख प्रकाशवर्षके व्यासवाले इन ताराविश्वोंके तारे जो एक दूसरेसे सामान्यतः पाँच से सात प्रकाश-वर्ष की दूरी पर हैं वे किस बंधनसे बधकर यों दूर बैठे होंगे? और तो और, वे इकट्ठा होकर चिपटे ताराविश्व क्यों रचते होंगे? आकाशमे गोलाकार ताराविश्व हैं मगर उनकी तुलनामे चिपटे ताराविश्वोंकी संख्या बहुत बड़ी है। उत्क्रान्तिके हिसाबसे कौन-से ताराविश्व बड़ी उम्रवाले माने जायँ? ये और दूसरे अनेक प्रश्नोंके निराकरणके लिये ताराविश्वोंके संबंधमे जो माहिती प्राप्त हो उसे एकत्रित करना चाहिए। चाक्षुष दूरबीनोंसे होनेवाले ताराविश्वोंके दर्शन इस हिसाबसे अधूरे या अपूर्ण हैं। चाक्षुष दूरबीनोंकी अपनी मर्यादायें भी हैं।

प्लेट ९ चाक्षुप-दूरबीनोंकी सहायतामें प्राप्त मदाकिनी विश्वका चित्र है। चित्रसे मालूम होता है कि अपने ताराविश्वके तारे सब जगह एक-से बिखरे हुए नहीं है। वे चित्रके मध्य भागको चिपटा बना रहे है। इस भागमे तारोंकी भारी भीड लगी है। हम इस प्रदेशको मदाकिनी विश्वका विषुववृतीय प्रदेश कहेंगे। यहा तारोंकी उजली भूमिकाके पासमें अनेक स्थानो पर काली जगह नजर आती है। ये सभी मदाकिनी विश्वकी श्याम निहारिकायें है। इनके कारण मदाकिनी विश्वका संपूर्ण दर्शन नही हो पाता है। ये निहारिकायें उनके पीछेके विश्वभागको हमसे ओझल रखती है। इन भागोंमें अस्तित्व धरानेवाले अवकाशीय पदार्थोंका पता लगानेको हमें रेडियो-दूरबीनकी सहायता लेनी पडती है। रेडियो-दूरबीन मदाकिनी विश्वके विषुववृत्तीय



रेडियो नक्शा

प्रदेशको किस प्रकार देखता है वह ऊपरके चित्रमे मालूम होगा। हम देख पाते हैं कि आकाश-गगाके पाटमे रेडियो-तरगोंका उत्कट उत्सर्ग होता है। ऐसा उत्सर्ग मदाकिनीविश्वके और भागोंमें से नही होता है। रेडियो-तरगोंकी उत्कटता आकाशगगाके मध्यभागमें सबसे ज्यादा है। रेडियो-तरगें अन्तरिक्षीय वायु और धूलके बादलोंको पार करके हम तक पहुँचती हैं और वो अपने उद्गमोंका रहस्य हमारे सामने प्रकट करती है। मगर रेडियो-उद्गम केवल आकाशगगाके पाट पर्यंत सीमित नही है वे मदाकिनी विश्वके चिपटे भागसे बाहरके विभागमें भी पाये गये है। सो चाक्षुप दूरबीनोंसे देखा गया मर्यादित मदाकिनी विश्व रेडियो दूरबीनोंके कारण बृहद् स्वरूपका मालूम होता है। इतना ही नही हमारे ताराविश्वका चिपटा स्वरूप सपुटाकारका होना भी जाना गया है।

मदाकिनीतारा विश्वके चिपटे ताराविभागमें वायुओंके जो बादल है उनमें शिथिल हाइड्रोजन वायु प्रचुर मात्रामें है। यह वायु २१ से मी तरग-लबाईकी तरगे प्रसारित करती है। इन तरगोंके अभ्याससे मालूम हुआ है कि वे भी प्रकाशकी तरगोंकी तरह विचलित होती दिखाई पडी है। अतर्तारकीय वायु गतिमें है उसका क्या अर्थ समझें? विशेष अन्वेषणोंने सिद्ध किया है कि अवकाशस्थित अन्य सर्पिल ताराविश्वोंकी तरह मदाकिनी ताराविश्वके भी वायुभुजायें है। हमारी दृष्टिमें अवरोध उत्पन्न करनेवाले श्याम वायुबादल इन भुजाओमें ही है। मदाकिनी विश्वके केन्द्रभागमें हाइड्रोजन वायु बहुत ही कम है। ६० प्रकाशवर्ष व्यासके केन्द्रीय विस्तारकी द्रव्यघनता सूर्यके नजदीकके विश्वबाहु-विस्तारकी द्रव्यघनताकी अपेक्षा २४,०००

वें भागकी है। हाइड्रोजनकी अधिकताके हिसावसे कहना चाहे तो यों कह सकते हैं–सूर्यके आसपासके विस्तारका हाइड्रोजन-संचय समग्र ताराविश्वके कुल संचयका $\frac{१}{५}$ है जबकि मंदाकिनी विश्वके केन्द्रका हाइड्रोजन संचय $\frac{१}{४००}$ भागका है। मगर इस अल्प संचयने जो रंगत दिखाई है उसकी थोड़ी वात यहाँ कर लेना अप्रासंगिक न माना जायगा।

मंदाकिनी विश्वके केन्द्रसे ६००० प्रकाशवर्षकी दूरी पर एक विश्वभुजा आकार लेती है। यह भुजा विश्वकेन्द्रके उपर्युक्त नाभिभागसे जहाँ जुडती है वह सविभाग सपत्तिके हिसावसे वहुत ही समृद्ध है। सघन भुजावाला यह भाग हर सेकड २०० किलोमीटरके वेगसे विश्वकेन्द्रकी परिक्रमा करता है। वेगसे घूमनेवाले इस वायुवाहुके हाइड्रोजन वायुका एक विशिष्ट लक्षण यह देखा गया है कि वह हर सेकड ५० किलोमीटरके वेगसे विश्वकेन्द्रसे दूर सरक रहा है! इसका एक साफ अर्थ यह हो सकता है कि अगले १–२ अरव सालोंमे मंदाकिनी विश्वके केन्द्रभागमे विद्यमान सारा हाइड्रोजन वहाँसे सरककर विश्वभुजाओंको जा पहुँचेगा। मतलव यह कि विश्वका केन्द्रभाग वायुरहित हो जायगा। मगर नये अन्वेपणोंके द्वारा मालूम हुआ है कि हमारा उपर्युक्त अनुमान (केन्द्रभाग वायुरहित हो जानेका) वेवुनियाद है। मदाकिनी विश्वके केन्द्र भागसे वाहरकी ओर वहते जाते हाइड्रोजन वायुकी स्थानपूर्ति विश्व-प्रभामंडलका वायु करता रहता है ऐसा कई खगोलशास्त्रियोंका अनुमान है। रशियाके एक खगोलविद् आम्वार्तसुमियन इस वातसे सहमत नही है। अपने अन्वेपणोके वल पर वह कहते हैं कि हाइड्रोजन वायुकी पूर्ति केन्द्रसे ही होती है, वाहरसे नही। अगर यह वात सही हो तो विश्व-केन्द्रमें हाइड्रोजनको उत्पन्न करनेवाली अगम्य पद्धति हम सवके लिये अत्यत महत्त्वकी मानी जायगी।

मंदाकिनी विश्वमे हाइड्रोजन है उसके अस्तित्वकी और उसकी गतिकी वात रेडियो-दूरवीनको १४२० मेगासाइकल (२१.२ से. मी.) पर समस्वरित करने पर जानी जाती है। ज्यादा रेडियो-निरीक्षणोंसे मालूम हुआ है कि हमारे ताराविश्वके विपुववृत्तीय विभागमे भी उपर्युक्त प्रकारके हाइड्रोजन वायुकी एक पतली सतह वनी है जिसका उपयोग अवकाशीय पदार्थोंके अंतर नापनेकी संदर्भसतहके रूपमे किया जाता है। अपने ताराविश्वके अलावा दूसरे ताराविश्वोंमे हाइड्रोजन कितने प्रमाणमे है उसकी जानकारी भी २१ से. मी. के रेडियो-निरीक्षणोंसे प्राप्त हुई है। और उसके आधार पर अरूप, सर्पिल और अंडाकार ताराविश्व एकदूसरेसे किस प्रकार अपनी भिन्नता प्रकट करते हैं, यह भी मालूम हो सका है।

'रेडियो-तारा'के अर्थमे जो आकाशीय पदार्थ सवसे पहले पहचाना गया था वह है कर्क निहारिका। रेडियो-उद्‌गमके रूपमे हमने उसका परिचय किया है। कर्क निहारिकासे उत्पन्न होनेवाली आवाज रेडियो-दूरवीन द्वारा पकड़ी गई थी तव सवाल पैदा हुआ था कि वह आवाज पैदा किस प्रकार हुई होगी? परम स्फोटक तारेके टूटने पर अवशेपमे श्वेत वामन तारा और वायुवादल रहते हैं। यह श्वेत वामन दूरवीनसे भी वड़ी मुश्किलसे दिखाई पड़ता है। और आश्चर्यकी वात यह है कि वह आवाज नहीं करता है। आवाज उत्पन्न होती है वायुवादलोंमे, और सो भी प्रचंड रूपमे। वायुकणोंके टकरानेसे ऊँची आवाज नहीं उत्पन्न होती। इसके









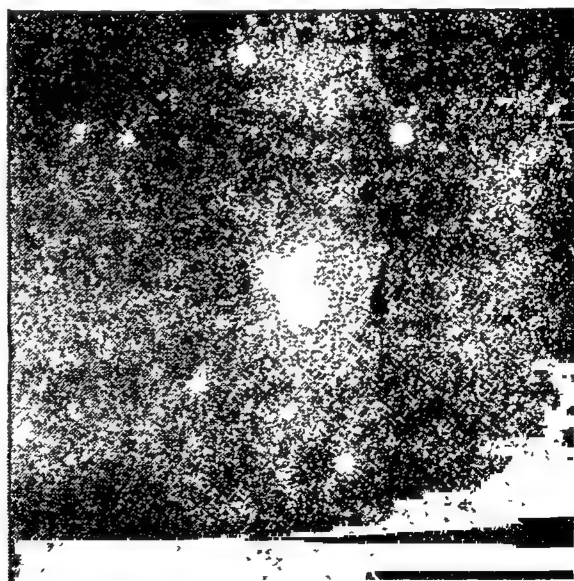
मे ८७ विभिन्न समयमें

खगोलशास्त्री श्क्लोवस्कीने सुझाया कि उच्च वेगयुक्त इलेक्ट्रोनोंके वायुवादलोंके चुम्बकीय क्षेत्रमें गति करनेके कारण यह आवाज उत्पन्न होती है। उपर्युक्त प्रकारके प्रयोग पृथ्वी पर किये गये तब मालूम हुआ कि इलेक्ट्रान ऊर्जाका उत्सर्ग करते हैं। साथ-साथ यह भी जाना गया कि उच्चवेगीय इलेक्ट्रोन चुम्बकीय क्षेत्रमें गति करते हैं तब ध्रुवित (Polarised) प्रकाशका भी वे उत्सर्ग करते रहते हैं। क्या कर्क निहारिकामें यह होता दिखाई पड़ता है? निरीक्षणों और परीक्षणोंसे पता चला है कि कर्क निहारिकामें ध्रुवित प्रकाशका उत्सर्ग होता है। यों श्क्लोवस्कीका सुझाव सिद्धान्तके रूपमें स्वीकृत हो गया है और उसके कारण अनेक रेडियो-तारे और उनके उद्गम-स्थान ढूंढे गये हैं।

प्रसिद्ध रेडियो-उद्गमोंमें से एक उद्गम कन्या अ (Virgo A) है। यह उद्गम कन्या राशिमें दिखाई देता मे ८७ नामका अण्डाकार ताराविश्व है। यह भुजाओंवाला सर्पिल तारा-विश्व नहीं है। इस विश्वकी आश्चर्यकारक एक बात उसमेंसे बाहर निकले हुए कर्णफूल या छूटा जैसे भागकी है। रेडियो-तरंगोंका उद्गमस्थान वही कर्णफूल होनेका वैज्ञानिकोंने माना मगर उसका भी सबूत चाहिये न? यहाँ भी कर्क निहारिकावाली रीतिका आसरा लिया गया। चार विभिन्न दिशाओंमेंसे, ध्रुवण विश्लेषक द्वारा मे ८७ के फोटो लिये गये। फोटोग्राफोंसे मालूम हुआ कि उपर्युक्त कर्णफूल सभी फोटोमें एक-सा प्रकाशित नहीं दिखाई देता है। मतलब यह कि मे ८७ का कर्णफूल प्रकाशका ध्रुवण करता है। और यों रेडियो-उद्गमके रूपमें मे ८७ प्रसिद्ध हुआ। आज यह उद्गम हमारे विश्वका सबसे शक्तिशाली रेडियो-उद्गम माना जाता है।

मे ८७ से अल्प दूरका एक प्रबल रेडियो-उद्गम नराश्व अ (Cygnus A) है। यह

विशिष्ट प्रकारका एक अंडाकार ताराविश्व है। इस ताराविश्वके ठीक बीचमें बहुत बड़ा एक श्याम पट है। अवकाशमें इस प्रकारके ताराविश्व नहीं हैं इसलिये उपर्युक्त तारा‌विश्वको हमारे दृष्टिपथमें आनेवाले दो तारा‌विश्वोंका संयुक्त स्वरूप माना गया है। वास्तवमें नराश्व अ दूरका तारा‌विश्व है और उसके आडे आनेवाला दूसरा तारा‌विश्व करीब का है (प्लेट ८) काले पटवाला तारा‌विश्व सर्पिल तारा‌विश्व है। नराश्व अ का व्यास $\frac{१}{१०}$ अंशका यानी चंद्र-बिंबके व्यासके पाँचवे भागका है। मगर रेडियो-दूरबीनसे जब नराश्व अ का व्यास नापा गया तो मालूम हुआ कि उसका सही विस्तार ६ अंशका, मतलब कि चंद्रबिंबसे १२ गुना बड़े व्यास का है। इन सभी बातोंका अर्थ यह हुआ कि नराश्व अ से जो रेडियो-संकेत आते हैं वे यथार्थमें बहुत बड़ी विशाल पृष्ठभूमिसे उद्भव पाते हैं। मंदाकिनीविश्वके प्रभामंडल है उसी तरहका मगर उससे अत्यंत बड़ा प्रभामंडल इस तारा‌विश्वके है। एक और बात भी नराश्व अ के बारेमें कहना चाहिये। उसका रेडियो-उद्गम संपूर्णतः अंडाकार स्वरूपका नहीं है मगर अंडाकारके आमने-सामने दो पर निकले हों ऐसे आकारका है। रेडियो-उद्गम दृश्य-विश्वके ठीक बीचमें है। उसका स्वरूप समझनेके प्रयत्नोंसे मालूम हुआ है कि नराश्व अ का रेडियो-उद्गम छोटा है। इतना ही नहीं वह एक दूसरेसे दूर बैठे हुए दो छोटे-छोटे रेडियो-उद्गमोंसे बना हुआ है। ये पर और दो रेडियो-उद्गम हमें यह माननेको बाध्य करते हैं कि नराश्व अ एक उद्भेदी (Emissive) तारा‌विश्व है जिसमेंसे द्रव्यको बाहर फेंके जानेकी क्रिया चालू है। तारा-विश्वसे फेंका जाता द्रव्य तारा‌विश्वकी बगलमें स्थिर होकर परका आकार धारण करता है। नराश्व अ के सच्चे रूपकी एक संभावना उसके विश्वयुग्म होनेकी है। कुछ भी हो, मगर यह तारा‌विश्व किस तरह रेडियो-उत्सर्ग करता है वह अभी तक नही समझा जा सका है। हाँ, आश्चर्यकी एक और बात भी है, यह तारा‌विश्व दो नये पर निकाल रहा है।



हंस अ

जिस रेडियो-उद्गमको सबसे ज्यादा प्रसिद्धि मिली है वह है हंस अ। अत्यंत प्रबल रेडियो-उद्गम होते हुए भी बहुत लंबे अरसे तक उसे नहीं देखा गया था। दुनियाके सबसे बड़ी दूरबीनसे भी उसका फोटो बहुत मुश्किलसे लिया गया है। हमसे अत्यंत दूरके जिस निस्तेज आकाशीय

पदार्थका अस्तित्व जाना गया है वह हंस अ रेडियो-उद्गम है। फोटो देखने पर यह उद्गम कोई सरल रूपका ताराविश्व होनेका नहीं दिखाई पड़ता। खगोलशास्त्री मिन्कोवस्की उसका अर्थ यों करता है—हंस अ दो ताराविश्वोंसे बना आकाशीय ज्योति है जिसके हरेक ताराविश्वमें १०० अरब तारे हैं। ये दोनों विश्व एक दूसरेके साथ टकरा गये हैं। उनके वायुओंकी टक्करोंके कारण उत्पन्न होनेवाली आवाज हम तक पहुँचती है।

मगर तब प्रश्न होता है कि ये ताराविश्व टक्कर खा गये हैं उस बातका सबूत क्या है। मिन्कोवस्कीका अनुमान है कि ज्वारकी प्रक्रियाके कारण दोनों विश्वोंके स्वरूप विकृत हो रहे हैं। मगर कई एक खगोलशास्त्री मिन्कोवस्कीके इस मतका समर्थन नहीं करते हैं। उनका अनुमान इससे विपरीत है। उनके मतानुसार हंस अ के दोनों ताराविश्व एक ही ताराविश्वके विभाजनका फल है। आद्य ताराविश्व विघटित हो रहा है। और इस कारण आवाजकी उत्पत्ति कर रहा है।

उपर्युक्त अनुमानोंमेंसे कौनसा मत सच्चा है उसकी बात भविष्य ही कहेगा। निरीक्षणोंके सबूतोंके आधार पर उसका फैसला होगा। ब्रह्मांडमें ताराविश्वका विभाजन होता अभी तक नहीं दिखाई पड़ा। द्रव्यको बाहर फेंककर ताराविश्व वर्णफूल या पर उत्पन्न करता है उसे विश्व-विभाजनकी क्रिया मानी जाय तो हंस अ में ऐसा होनेका कल्पा जाय। नरादव अ की पर उगानेकी प्रक्रियाका सिलसिलेवार अभ्यास हो रहा है। संभव है कि उसके द्वारा विश्व-उत्क्रांतिकी कड़ियां हाथ लगे।

रेडियो-दूरबीनों द्वारा सूर्यमंडल और ताराविश्वोंके बारेमें हम क्या जान पाये हैं उसकी बात अगले अध्यायोंमें करेंगे।

१५. सौरजगतका रेडियो-दर्शन

सूर्यका जो दर्शन हम करते हैं वह उसका सर्वांग संपूर्ण दर्शन नहीं है। मनुष्यकी चक्षु-शक्ति परिमित है। वह अमुक अंतर तक का ही और वर्णपटके रंगोंकी मर्यादामे ही देख सकता है। सूर्यके अल्ट्रावायोलेट और इन्फ्रोरेड किरणोंका दर्शन मनुष्य नहीं कर सकता है। रेडियो-दर्शन उसके बिसातकी बात नहीं है। फिर भी फोटोग्राफी और दूरबीनकी सहायतासे वह बहुत कुछ देख पाता है।

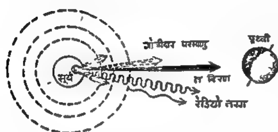
अदृश्य सूर्यका दर्शन खग्रास सूर्यग्रहणके समय होता है। उस समय सूर्यके वातावरणको उसके सही रूपमे देखा जाता है। मगर तब उसके लाखों किलोमीटरसे ज्यादा दूरके विस्तारको नहीं देखा जाता है। सूर्यके किरीटावरणका विस्तार कहाँ तकका है, उसकी टोह रेडियो-दूरबीन देता है। कई पंडितोंका कहना है कि सूर्यके किरीटावरणका फैलाव करीब पृथ्वी तकका है!

सूर्यकी सतहका तापमान करीब ६०००° से. है। मगर किरीटावरण इससे भी ज्यादा तापमान रखता है। सूर्यबिंबसे डेढ़ लाख किलोमीटरकी दूरी परका तापमान १० लाख अंश या उससे भी ज्यादा है। किरीटावरण पर सूर्यके गुरुत्वाकर्षणका असर पड़ता ही है: इस आवरणकी वायुएँ गरम और चंचल न होतीं तो वे खींचकर सूर्यमे समा गई होतीं।

सूर्यका किरीटावरण सूर्यबिंबकी तरह प्रकाश नहीं देता है। वायु उत्पन्न होती है तब वह वैद्युतिक तरंगे उत्पन्न करता है। सूर्य परकी वायु गरम है और वह रेडियो-तरंगें उत्पन्न करती है। वायुकी घनताके अनुसार इन तरंगोंकी लम्बाई कम या ज्यादा रहती है। कम तरंगलम्बाईवाली छोटी तरंगे सूर्यबिंबसे निकलती हैं। ज्यादा तरंगलम्बाईवाली रेडियो-तरंगें किरीटावरणसे निकलती हैं। ये तरंगें छोटी तरंगोकी अपेक्षा कमजोर हैं। फिर भी वे सदा-सर्वदा पैदा होती रहती हैं। छोटी तरंगोंका हाल वैसा नही है। सूर्यबिंब पर कलंक उभर आये या सूर्यका कोई हिस्सा अति उत्तप्त होकर अग्निमशालका रूप धारण करे तब छोटी तरंगे छूटती हैं। कलंक बड़ा हो तो तरंगोंकी प्रबलता बहुत बढ़ जाती है। ऐसे मौकों पर पृथ्वी परका रेडियो-व्यवहार अस्त-व्यस्त हो जाता है।

सूर्यका रेडियो-दर्शन चाक्षुप-दर्शनसे अलग प्रकारका है। सूर्यबिंबको हमारी आँखें चमकता हुआ देखती हैं जबकि रेडियो उसे काला समझता है। एक दर्शनभेद और भी है। नग्न आँखसे दिखाई देता सूर्यबिंब बीचमे तेजस्वी है मगर किनारेकी ओर कुछ निस्तेज होता है। रेडियो सूर्यबिंब वर्तुलाकार नही है। वह लंबवृत्ताकार दिखता है जिसका मध्य भाग नही किन्तु किनारा चमकीला है। रेडियो-सूर्यका व्यास चाक्षुप-सूर्यव्यास से २० से ३० गुना है।

सूर्य पर बड़ा कलंक उत्पन्न होता है तब हमारे रेडियो-व्यवहारमें दखल पहुँचती है। व्यवहार टूट जानेका कारण सूर्यकी अग्निमशालोंमें से निकलनेवाली प्रबल किरणें हैं। पृथ्वीको चारों ओरसे घेरनेवाले वातावरणका एक स्तर आयनावरण है। यह स्तर विद्युतित वायुओंसे बना हुआ है। इस स्तरको पृथ्वीका रेडियो-दर्पण कहा जाता है। पृथ्वीसे छूटनेवाली रेडियो-तरंगें इस स्तरसे टकराती हैं और परावर्तनके बाद पृथ्वीकी ओर लौटती हैं। जिस दिन सूर्य पर बड़ा कलंक उभरता है उस समय सूर्यकी अग्निमशालोंसे छूटनेवाली क्ष-किरणें आयनावरणको छिन्न भिन्न कर देती हैं। मिनटोंके भीतर ही इस आवरणका लोप हो जाता है और कभी-कभी लंबे अरसे तक वह विलुप्त ही रहता है।



सूर्य पर अग्निमशालें उत्पन्न होते ही सबसे छोटी रेडियो-तरंगें (क्ष-किरणें व०) छूटना शुरू हो जाती हैं। बादमें लंबी तरंगें भी छूटने लगती हैं। सूर्यका किरीटावरण सब जगह एक-सा नहीं है। सूर्यसे अंतर बढ़ने पर वह पतला होता जाता है। इस आवरणके भी विविध स्तर हैं और उनमें उत्पन्न होनेवाली रेडियो-तरंगें भिन्न-भिन्न तरंगलम्बाईकी रहती हैं। किरीटावरणका जो स्तर सूर्यसे अधिक दूर है उसमें उत्पन्न होनेवाली रेडियो-तरंगोंकी तरंगलंबाई भी अधिक ज्यादा रहती है।

अग्निमशालें विद्युतित वायुको फुफकारती हैं। यह फूत्कार सूर्यसे दूर सरकते समय उसके संसर्गमें आनेवाले किरीटावरणके विभिन्न स्तरोंको धक्का देता हुआ आगे बढ़ता है। और प्रबल भी इतना रहता है कि धक्के देनेके बाद भी वह विलुप्त नहीं हो जाता। किरीटावरणके पतले स्तरोंको पार करके जब वह अदृश्य सूर्यसे बाहर निकलता है तब उसका वेग बढ़ जाता है। हर सेकंड १६०० किलोमीटरके वेगसे वह अवकाशमें धँसता है और २४ से ३६ घंटेके समयमें पृथ्वी तक पहुँच जाता है। उसके पृथ्वी तक पहुँचते ही वहाँकी रेडियो-आवाजें बंद हो जाती हैं।

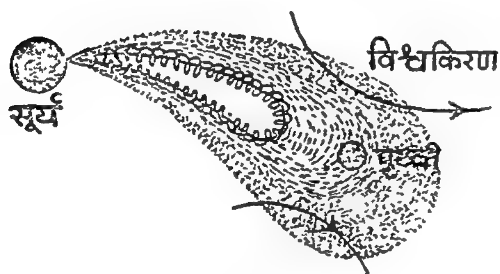
हमने देखा कि किरीटावरण की वायु स्थिर प्रकृतिकी नहीं है। वह हमेशा फूलती रहती है। इतना ही नहीं वह अंतरिक्षमें बहती भी रहती है। बहते हुए इस वायुप्रवाहको हमने सूर्यप्रवात नाम दिया है। सूर्यसे बहनेवाला यह प्रवात अपने साथ चुंबकीय क्षेत्रको भी घसीटता जाता है।

पृथ्वी पर विश्वकिरणोंकी वर्षा होती रहती है। ये किरणें किस प्रकार उत्पन्न होती हैं उसका रहस्य अभी तक नहीं जाना गया है। मगर उसे खोजनेके प्रयत्नोंमें एक नई बात ज्ञात हुई है। जब सूर्य पर कलंक और अग्निमशालें उत्पन्न होती हैं, तब पृथ्वी पर बरसनेवाली विश्वकिरणोंकी प्रबलता कम हो जाती है। पृथ्वी परके चुंबकीय तूफानोंका सूर्य परके तूफानोंसे

लगाव है इसलिये माना जाता था कि चुंवकीय तूफानोंके समय पृथ्वीका चुंवकीय क्षेत्र वलवान वनता है और विश्वकिरणोंको पृथ्वी तक पहुँचानेके वजाय वह उनको दूसरी दिशामें मोड़ देता है। मगर प्रयोगों और परीक्षणोंसे नये तथ्योंका अन्वेषण हुआ है। यह अन्वेषण प्लाझ्माके चुंवकीय क्षेत्रका है।

तूफानोंके समय सूर्यके वातावरणमें से वाहर फेंका जाता हाइड्रोजन पृथ्वीके चारों ओर २४ से ३६ घंटे तक अपना आवरण वनाए रखता है। यह आवरण प्लाझ्माका है। सूर्य-क्षेत्रकी चुंवकीय रेखाओंको अपने साथ वहा ले जानेवाला प्लाझ्माका यह आवरण अपना अलग चुंवकीय क्षेत्र पैदा करता है। यह क्षेत्र कैसा होता है उसका चित्र साथमें दिया गया है। सूर्यकी हाइड्रोजन वायुमेंसे अलग होनेवाले प्रोटोन चुंवकीय मार्ग पर सर्पिलाकारमें गति करते हैं। विश्व किरणें जव इन प्रोटोनोंसे टकराती हैं तो वे पृथ्वी तक पहुँचनेके वजाय पृथ्वीसे विमुख होकर अंतरिक्षमें चली जाती हैं।

अंतरिक्षके एक कोनेमें चुपचाप सरकनेवाला सूर्य वास्तवमें कैसी रहस्यमय ज्योति है इस वातका पता, हम उसके गहरे प्लाझ्मा-चुंवकीय क्षेत्रसे पा सके हैं। सूर्यके इस रहस्यके कारण आकाश और तारोंकी आंतरिक संरचना समझनेमें वहुत सहायता मिल रही है। सूर्यके प्लाझ्मा-अधिकारकी मर्यादा ज्यादासे ज्यादा प्लुटो तककी समझी जाय तो सूर्य-साम्राज्यकी मर्यादा १२ प्रकाश घंटेकी होगी। अंतरिक्षके कई एक तारे ऐसे हैं जिनकी प्लाझ्मा-अधिकार-मर्यादा ५ प्रकाशवर्षसे लेकर १५० प्रकाशवर्ष तककी है। इन तारोंके द्वारा उत्पन्न होनेवाले चुंवकीय क्षेत्रका और परमाणु-भंजनकी प्रक्रियाका अभ्यास सृष्टि-उत्पत्तिवादके प्रश्नको हल करनेमें सहायभूत होगा ऐसा माना जाता है।

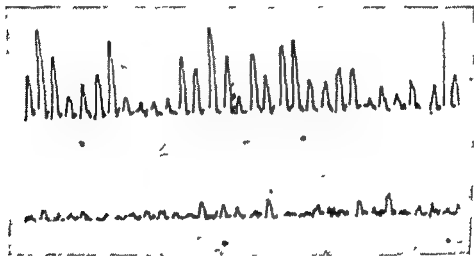


सूर्यका प्लाझ्मा-क्षेत्र

रूपहले प्रकाशवाला चन्द्र, सूर्यकी तरह गरम पदार्थ नहीं है। फिर भी अच्छा-भला दिखनेवाला यह चंद्र वास्तवमें अनेक समस्याओंका भंडार है। उत्पत्तिसे लेकर उसके आज तकके इतिहासको समझना अभी वाकी है। और इस कारण उसकी अनेक वातोंका —वातावरण, चुंवकीय क्षेत्र, सतहका स्वरूप, चंद्रभूमिकी संरचना, सतहके तापमान और उसमें वार-वार होनेवाले फर्क, सतहकी किरणोत्सर्गता, चंद्रके अभ्यंतरमें उत्पन्न होनेवाले कंपन वगैरहका —अभ्यास किया जा रहा है। इस अभ्याससे प्राप्त जानकारी हमें चंद्रके नये रूपका परिचय दे रही है। चंद्र पर वातावरण नहीं है और इस कारण चन्द्र पर हवाकी रगड़का कोई असर नहीं पड़ा है। हवाके कारण होनेवाले सतह-परिवर्तन नहींके वरावर हैं। और यों चंद्र-सतहका अभ्यास पृथ्वीकी चट्टानोंकी संरचना समझानेमें काफी सहायता पहुँचायेगा। चंद्र-कवच कितना मजवूत है और उसके नीचे कौन-से ठोस स्तर आये हुए हैं वगैरहके अभ्याससे चंद्र-उत्पत्तिके वारेमें नया प्रकाश मिलनेकी संभावना है।

चंद्रको हम ठंडा और जीवनरहित मानते हैं। मगर संपूर्ण ठंडी कोई चीज विश्वमें नहीं है। संपूर्ण ठंडे पदार्थका तापमान −२७३ सें होता है। जिसे हम ठंडा समझते हैं उस शिथिल हाइड्रोजनके कण भी किसी प्रकारसे स्पंदित होकर रेडियो-तरंगें उत्पन्न करते हैं।

चंद्र एक बड़ा पदार्थ है। और इसी कारण उसकी मंद रेडियो-तरंगोंको पकड़ना संभव बना है। हमें जो चंद्रका ज्योत्स्ना-प्रसाद प्राप्त होता है वह चंद्रकी बाहरी सतहकी उपज है। रेडियो-तरंगें चंद्रकी सतह परसे नहीं किन्तु सतहके नीचेके भागसे आती हैं। ये तरंगें पूर्णिमाके दिन नहीं उठती हैं। चंद्र परके रेडियो-संकेत पूर्णिमाके बाद चौथे दिन मिलते हैं। चंद्र-सतहको प्राप्त हुई गरमी इन चार दिनोंमें उसके नीचेके स्तरोंमें पहुँचती है और वहाँके पारमाणविक रेडियो-ट्रान्समीटरोंको वह विक्षुब्ध करती है। चंद्रसे हम तक पहुँचनेवाली रेडियो-तरंगोंके द्वारा चंद्रमाकी आन्तरिक संरचनाके बारेमें बहुत कुछ अच्छी जानकारी पानेकी उम्मीद रखी जाती है।



चंद्र-संकेत

मनुष्य निर्मित रेडियो-संकेतोंको चंद्र तक भेजकर, उनके परावर्तनोंकी सहायतासे चंद्र-अंतर प्राप्त करलेके उपरांत पृथ्वीके बारेमें भी थोड़ी जानकारी प्राप्त की गई है। चंद्र परसे परावर्तित होनेवाले रेडियो-संकेतोंकी तीव्रता एक-सी नहीं होती है। वे कभी प्रबल तो कभी निर्बल मालूम होते हैं। इसमें कारणभूत हमारी पृथ्वीका वातावरण है। वह कभी एक-सा नहीं रहता है। उसके स्तर बदलते रहते हैं। तारोंका प्रकाश हमें झिलमिलाता मालूम होता है उसी तरह उपर्युक्त रेडियो-संकेत भी थिरकते मालूम होते हैं।

चंद्र तक पहुँचकर रेडियो संकेतोंको पृथ्वी तक वापस आनेमें २½ सेकंडका समय लगता है। रेडियो-संकेतोंके आँकड़ों परसे यह भी मालूम हुआ है कि ये संकेत हर पंद्रह मिनटकी

अवधिमें महत्तम प्रवलता दिखाते हैं। इन सारी वातोंकी मददसे पृथ्वी और चंद्रके वीचवाले अवकाशमें वायुओंके कौनसे कण किन परिमाणमे अवस्थित हैं वह जाननेका और उसकी सहायतासे पृथ्वीसे दूरके वातावरणीय स्तरोंमें किस प्रकारका हवामान विद्यमान है उसकी जानकारी प्राप्त करनेका संभव हो सका है।

प्रकाशका परावर्तन चंद्रकी सारी सतह परसे होता है। रेडियो-संकेतोंकी वात वैसी नहीं है। रेडियो-संकेतों (अलवत्ता मनुष्यनिर्मित)का परावर्तन चंद्रकी सतहकी गोलाईके वीचले भागसे होता है। इस हकीकतका एक व्यवहार्य उपयोग चंद्र पर रेडियो-संदेश भेजकर उसे पृथ्वीके दूसरे भागमें प्रसारित करनेका हो रहा है। चंद्र संदेश-परावर्तकका काम देता है।

रेडियो-दूरवीनका खास काम आकाशीय पदार्थोंकी आवाजोंको पकड़कर उनके उद्गमोंका पता लगानेका और वहुत छोटे अंतरों तक रेडियो-संकेत भेजकर उनको वापस ग्रहण करनेका है। चंद्र तक रेडियो-संकेत भेजकर और उसके परावर्तित स्वरूपको वापस झेलकर चंद्रकी हमसे दूरी मालूम की गई है। ठीक उसी तरहके रेडियो-संकेतोंके द्वारा वुध, शुक्र, मंगल और गुरु ग्रहों के अंतर भी निश्चित किये गये हैं। ये अंतर अन्य पद्धतियों से भी प्राप्त किये गये थे। नई पद्धति द्वारा प्राप्त अंतरोंसे उनकी पुष्टि हुई है। और यों उपर्युक्त सारे अंतर निश्चित हो जानेसे सूर्यमंडलके सदस्योंके एकदूसरेसे अंतर अव स्पष्ट हो गये हैं। इतना ही नहीं अंतरिक्षीय इकाई (Astronomical Unit) भी अव निश्चित हो गयी है।

अंतर नापनेके साधनोंकी सूक्ष्मता उत्तम प्रकारकी रही है। एक दृष्टांतसे वह स्पष्ट हो जायेगा। चंद्र तक पहुँचकर वापस पृथ्वी तक लौटनेमें रेडियो-संकेतको २½ सैकंड, शुक्रके लिये ४ मिनट और गुरुके लिये ६६ मिनटका समय लगता है। शुक्रका समय चंद्र समयसे करीव १०० गुना और गुरुका समय करीव १६०० गुना है फिर भी रेडियो-संकेतोंने अपना काम किया है। ग्रहोंकी दूरीके अलावा उनके स्वरूपोंके वारेमे भी रेडियो-संकेतोंने जानकारी दी है। केवल २½ सेकंड के अति अल्प समयमें लौटनेवाले रेडियो-संकेतोंका पृथक्करण करनेवाले यंत्रोंकी सूक्ष्मता और उत्तमता प्रशंसाके योग्य है।

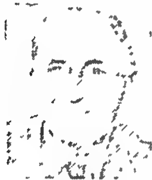
ग्रहोंके साथ सन् १९६३ में रेडियो-संवंध स्थापित हो सका है। प्राप्त जानकारीसे शुक्रकी सतहका और उसके निकटके शुक्र-वातावरणका तापमान मालूम करनेका प्रयत्न हुआ है। पता चला है कि शुक्रकी सतहका तापमान ठीक ठीक-ऊँचा है। यह दिखलाता है कि शुक्र-भूमि चट्टानोंसे वनी होनी चाहिये।

वुधके अक्षभ्रमण-कालकी भी छानवीन की गई है। शुक्र पर हमेशाके लिये वादलोंके आच्छादित रहनेके कारण उसका अक्षभ्रमण-काल नापनेका काम अत्यंत मुश्किल है। फिर भी नये साधनोंके आविष्कारसे सन् १९६६ में पता चला है कि शुक्रके अक्षभ्रमणके और सूर्य-परिक्रमाके समय एक-से नहीं हैं। शुक्रका अक्षभ्रमण-काल २४३ दिनका और परिक्रमण-काल २२५ दिनका है।

इसके अलावा शुक्रके ध्रुवोंकी अवस्थितिके और गतिके वारेमें भी संशोधन हुआ है।

जीवसृष्टिकी संभावनावाले मंगल ग्रह पर पानी है यह निश्चित रूपसे जाना गया है। मंगल पर पानीकी भापका क्या दबाव है वह भी खोजा गया है। मगर मंगल पर किस प्रकारकी जीवसृष्टि है उसके बारेमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, मंगलकी जीवसृष्टिके बारेमें जो छानबीन हो रही है उसमें एक नया शिगूफा खिला है। मंगल पर जो काले प्रदेश हैं उनको आज तक पानी और वनस्पतिवाली जगहें माना जाता था, मगर अब उनके उच्च प्रदेश होनेका पता चला है। मंगलकी चमकीली समतल भूमिका अब धूल या रेतीके रेगिस्तान होनेका पता चला है। इस भूमिसे १० से १५ किलोमीटर ऊँचाईके उपर्युक्त उच्च प्रदेश समतल चोटीवाली चट्टानें हैं। मंगलसृष्टिकी मनोहर मंगल कल्पना इन खोजोंमें हवा तो न हो जायगी न?!

गुरु स्वयं एक रेडियो-उद्गम है। वह प्रबल संकेतोंको जन्म देता है। गुरु पर अनेक किलोमीटरकी ऊँचाईका गहरा वायु-आवरण है। उपर्युक्त रेडियो-संकेत इस वातावरणमें उत्पन्न नहीं होते हैं। वे गुरुकी मुख्य भूमि पर पैदा होते हैं। ये संकेत अखंड रूपसे नहीं हैं, वे थोड़े-थोड़े समयके बाद विस्फुरित होते हैं और गुरुके वायुमंडलको पार करके पृथ्वी तक आ पहुँचते हैं। इसका एक मतलब यह हो सकता है कि गुरुकी भूमि पर ज्वालामुखी पर्वतके फटने जैसे या बिजलीके तूफानोंके प्रकारके तूफान चलते हैं। ये उत्पात बहुत भारी होनेका सबूत गुरुके आसपासके चुंबकीय क्षेत्रमें मिलता है। पृथ्वीके चारों ओर वान एलन पट है उसी तरह गुरुके आसपास भी एक पट है और उसमेंसे विकिरण होता रहता है। गुरुके उत्पातोंका कारण क्या है उसका ख्याल अभी तक नहीं आया है। गुरुकी आंतरिक संरचना ही इसका कारण हो सकती है। गुरु परका ज्वालामुखी पर्वतोंका अस्तित्व 'ठंडा चेतन विहीन' माने गये गुरु ग्रहका 'गुरुग्रह' पद नाबूद करके उसे उपसूर्यके पद पर आरूढ तो नहीं करेगा न?!


बर्नार्ड लोवेल

हमारी पृथ्वी पर दिन-रात विश्वकिरणोंकी वर्षा होती रहती है। भारी सामर्थ्यवाली ये किरणें कहाँ जन्म पाती हैं वह अभी तक खोजा नहीं जा सका है। बर्नार्ड लोवेलने विश्व- किरणोंको राडारसे पकड़नेकी और उनका अभ्यास करनेकी ठानी। उसने अपने प्रयोग शुरू किये। विश्व-कण विद्युतित हैं और प्रकाशके वेगमें गति करते हैं। लोवेलने सोचा कि भारी वेगवाले ये कण हवाको पार करें तब विद्युतित हवामार्गसे रेडियो-प्रतिध्वनि उठनी चाहिये और रेडियो-रिसीवरके द्वारा वह पकड़ी जानी चाहिये। लोवेलने कुछ प्रतिघोषोंका पता लगाया भी सही।

मगर बात कुछ और ही निकली। लोवेलने जिसका पता लगाया था वे प्रतिध्वनियाँ विश्वकणोंकी नहीं मगर अंतरिक्षमें जलकर खाक हो जानेवाली उल्काओंकी थी। दूसरे वैज्ञानिकोंने भी इस तरहके प्रतिघोषोंका पता लगाया था मगर उनके अभ्यासकी ओर किसीने ध्यान नहीं

दिया था। लोवेलने दिन-दहाड़े उल्काओंका अभ्यास शुरू किया। उसे मालूम हुआ कि कभी एकाध दो उल्कायें दिखाई पड़ती हैं तो कभी एक घंटेमें हजारों उल्कायें नजर आती हैं।

अब सवाल उठा कि उल्का सूर्यमंडलकी सदस्या है कि वह कहीं बाहरसे आ धमकती है? इस प्रश्नको हल करनेके लिये अनेक उल्काओंके वेगोंका और उल्कामार्गोंका निरीक्षण किया गया और बादमें तय किया गया कि उल्का सूर्यमंडलकी ही सभासद है।

आकाशमें जलती दिखाई देती उल्का और पृथ्वी पर आ गिरनेवाली उल्का (उल्का-पत्थर) एक ही है या अलग यह भी शोधका प्रश्न है। उल्काकी उत्पत्ति अकेले धूमकेतुओंसे ही होती है या अन्य तरीकोंसे भी यह भी एक प्रश्न है। प्रो. ऊरीने एक अनुमान किया है। वह कहते हैं कि अति प्राचीन कालमें चंद्र सरीखे अवकाशीय पदार्थ सूर्यके चारों ओर घूमते थे। वे सभी एकदूसरेसे ज्यादा निकट भी थे। और इस कारण उनके बीच मुठभेड़ होती रहती थी। फल यह हुआ कि उपर्युक्त अवकाशीय पदार्थ टूट गये और उल्काओंकी उत्पत्ति हुई। पृथ्वीके वातावरणमें प्रवेश करनेसे पहले उल्का गरम हो जाती है इस अनुमानके आधार पर प्रो. ऊरीने उपर्युक्त सूचन किया है।

उल्कासे पृथ्वीके वायु-आवरणका ऊपरका भाग विद्युतित होता है। उल्का जल जानेके बाद अवशिष्ट विद्युतित वायु किस प्रकार सरकती रहती है उसकी जानकारी प्राप्त करने पर पृथ्वीके ऊपरके वातावरणमें बहनेवाले पवनोंका अभ्यास किया गया है। आशा है कि यह अभ्यास हवामानकी गुत्थियाँ सुलझानेमें सहायक होगा।

चंद्र पर और पृथ्वी पर गिरे हुए उल्का-पत्थरोंकी तुलना करके, सूर्यमंडलकी उत्पत्ति और उत्क्रान्तिका रहस्य पानेका खगोलशास्त्री प्रयत्न कर रहे हैं। उसमें सफलता मिलने पर आजतककी संजोयी हुई हमारी अधूरी समझका उल्कापात हो जाना असंभव नहीं।

१६. आभासीन तारे और स्फोटक विश्व

रेडियो-उत्सर्गी ज्योतियोंकी खोज चल रही थी तब कुछ ऐसी ज्योतियां दिखाई दीं जो विपुल मात्रामें ऊर्जा-उत्सर्ग करती थीं। इन ज्योतियोंको दूसरे आकाशीय पदार्थोंसे अलग समझनेके लिये चाक्षुष-दूरबीनोंका उपयोग किया गया मगर अन्वेषण-स्थानमें निर्दोष ताराक्षेत्रके सिवा और कुछ नजर न आया। दूरबीनके साथ वर्णविश्लेषक लगाया गया तब मालूम हुआ कि भारी ऊर्जा-उत्सर्ग करनेवाला पदार्थ हमसे दूर अवकाशमें सरक रहा है और सो भी अत्यंत वेगसे। हमसे दूर-सुदूरके अनरिक्षीय पदार्थ ताराविश्वोंके सिवाय और कौन हो सकते हैं? मगर ताराविश्व दूरबीनसे पकडे जाने चाहिये थे। मुश्किल इस बातकी थी कि जिस पदार्थकी खोज चल रही थी वह ताराविश्व न था फिर भी वह रेडियो-उत्सर्गी पदार्थ था। यही नहीं, उसका ऊर्जा-उत्सर्ग किसी रेडियो विश्वके ऊर्जा-उत्सर्गसे बहुत ज्यादा था। हम अनुमान कर सकते हैं कि उपर्युक्त रेडियो-उत्सर्गक अगर ताराविश्व नहीं है तो वह ताराविश्व-समूह हो सकता है। मगर यह अनुमान ठीक न था। दिखाई देनेवाला पदार्थ वास्तवमें ताराविश्व नहीं मगर तारे जैसा ही था। आश्चर्यकी बात यह थी कि तारे जैसा होते हुए भी यह पदार्थ किसी भी ताराविश्वके हिसाबसे अनेक गुना ऊर्जा-उत्सर्ग कर रहा था। इतना ही नहीं वह बहुत दूर ब्रह्माण्डकी सिवान पर बैठा था। प्रचंड ऊर्जा-उत्सर्गवाले इन छोटे ज्योतियोंको खगोलशास्त्रियोंने आभासीन तारा-रेडियो-उद्गम (Quasi stellar radio source) कहा जो आम तौर पर क्वासार (Quasar) नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

क्वासारोंकी खोज शुरू हुई सन् १९६० में। ३ सी ४८ नामका आकाशीय पदार्थ तब क्वासार होनेका मालूम हुआ था। सन् १९६३ में दूसरे क्वासारका पता चला। यह ३ सी २७३ नामका अवकाशी पदार्थ था। मालूम हुआ कि यह क्वासार सामान्य ताराविश्वसे ८०० गुना तेजस्वी है। ब्रह्माण्डकी सिवान पर ऐसा तेजस्वी पदार्थ हो और वह भी अत्यंत छोटा तारा हो यह बात बहुत कुछ असंभवित सी मालूम होती है। दूरत्वके हिसाबसे वह ताराविश्व ही हो सकता है अन्यथा उसका दूरत्व गलत है या वह खुद गलत ज्योति है। मगर यह तय करना कैसे? वर्णविश्लेषक स्पष्ट बता रहा था कि क्वासार प्रचंड वेगसे हमसे दूर भाग रहा है। क्वासार क्या है उसे समझनेका अब एक ही रास्ता था उसके निरीक्षणोंसे उसकी तेजस्विता और उसमेंसे प्रकट होनेवाली ऊर्जाका अभ्यास करना। इस बीच दूसरे क्वासार भी खोजे गये और निरीक्षणकार्य सरल होता गया। बादमें मालूम हुआ कि क्वासारोंके तेज और ऊर्जा-उत्सर्ग एक से नहीं रहते हैं। उनमें ज्वार-भाटा आता है और यह फर्क महीनों, सप्ताहों या कभी थोडे दिनोंकी छोटी अवधिमें भी महसूस किया जाता है।

करोड़ों प्रकाशवर्षकी दूरीवाले अंतरिक्षीय पदार्थ उपर्युक्त प्रकारका विकार नहीं जता सकते हैं। यों एक सवाल पैदा हुआ—क्या क्वासार सचमुच अत्यंत दूरकी ज्योतियाँ हैं? आभासीन तारोंके रूपमें वे हमारे मनमें कोई गलत आभास उत्पन्न तो नही करते हैं? वर्णविश्लेपक कोई धोखा नहीं खा रहा है?

क्वासार दूरके अंतरिक्षीय पदार्थ हों या न हों एक वात निश्चित है कि वे सारे तारे जैसे दीखते हैं और भारी ऊर्जा-उत्सर्ग करनेवाले तेजस्वी पदार्थ हैं। अपने मंदाकिनी विश्वमे या दूसरे ताराविश्वोंमें ऐसे तारे नहीं हैं। हो सकता है कि वे किसी अदृप्ट ताराविश्वके सभासद हों।

कुछ भी हो, क्वासार क्या है, उसका अन्वेपण करना जरूरी था। और वर्णविश्लेपककी सहायता लेनेके सिवा दूसरा चारा भी क्या था?! वर्णविश्लेपक अंतरिक्षीय पदार्थोंके विचलनके अलावा उन पदार्थोंकी आंतरिक संचरचनाकी भी जानकारी देता है। क्वासारोंके वर्णपटोंको जाँचने पर मालूम हुआ कि वे तारोंके वर्णपट नही हैं, वे ताराविश्वोंके वर्णपट हैं!

मुसीवतमें आटा गीला। ताराविश्व मगर आयतन तारेका!!

सन् १९६३ से ६६ तक १२० क्वासार खोजे गये हैं। मगर वे सारे रेडियो-उद्गम नही हैं। विख्यात खगोलज्ञ सान्डेझने पता चलाया कि सभी क्वासार प्रवल अल्ट्रावायोलेट विकिरण करते हैं मगर उनमेसे अधिकांश शांत क्वासार हैं। आधुनिक अटकल यह है कि रेडियो-उद्गम क्वासारोंकी अपेक्षा शांत क्वासारोंकी संख्या करीव १०० गुना है। इसका सीधा-सादा अर्थ यह होता है कि ठेठ १८ वे वर्ग तकके क्वासारोंकी गणना की जाय तो समग्र व्रह्मांडके क्वासारोंकी कुल संख्या ४०,००० होगी।

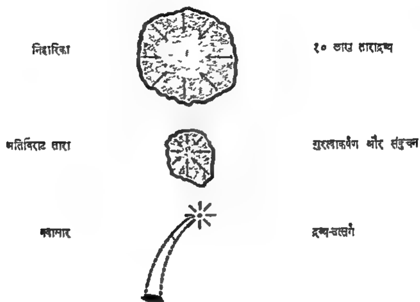
परिचित क्वासारोंका रक्तविचलन १६ प्रतिशत से २०० प्रतिशत तक है। सबसे तेज गतिवाले ताराविश्वका रक्तविचलन ४६ प्रतिशत हैं। इसका मतलव यह हुआ कि २०० प्रतिशतवाले क्वासार व्रह्मांडकी सिवानके वाहरके पदार्थ हैं। मगर यह वात वुद्धिगम्य नही है। क्वासारोंकी द्रव्य घनतासे कुछ निर्देश मिलना शक्य है क्या?

क्वासारोंका वर्णपट क्वासारोंमे हाइड्रोजन, हेलियम, कार्वन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, नियोन, मेग्नेशियम, सिलिकोन, आर्गन और गंधक होनेका निर्देश करता है। इन तत्त्वोंकी वर्णरेखाओंकी प्रवलताको देखकर क्वासारोंके तापमान और द्रव्यघनताका अंदाज लगाया जा सकता है। अंदाजोंसे मालूम हुआ है कि क्वासारका तापमान कुछेक दस हजार अंशका है और उनकी कणघनता हर घनसेन्टिमीटरमें $१०^{६}$ से $१०^{७}$ कणोंकी है। हमारे सूर्यकी कणघनता हर घनसेन्टिमीटरमें $१०^{२६}$ कणोंकी है। सूर्यका तापमान केवल ६०००° सें. ही है। यों हम देख पाते हैं कि क्वासारकी संरचना ताराविश्वकी नहीं मगर तारे (या निहारिका) की-सी है।

क्वासारके वारेमें एक अतर्कित लक्षणका अभी पता लगा है। कई एक क्वासारोंके वर्णपटमें शोपक रेखायें दिखाई पड़ी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उन क्वासारोंके चारों ओर कम तापमानवाला द्रव्य उपस्थित है और क्वासारोंमे से प्रकट होनेवाले प्रकाशको वह सोखता है।

उपर्युक्त सारी चर्चाका सार यह है कि बहुत ज्यादा रक्तविचलन दर्शानेवाले क्वासार अति वेगसे अवकाशमें गति करनेवाले विशिष्ट पदार्थ हैं या हमें अपरिचित किसी अत्यंत प्रबल चुंबकीय क्षेत्रको पार करके उनका प्रकाश हम तक पहुँच रहा है। इस दूसरी शक्यताके अनुसार चुंबकीय क्षेत्रको पार करनेके लिये क्वासारके किरणोत्सर्गका ऊर्जा-ह्रास होगा। ऐसा होने पर उसकी तरंगलंबाई बढ जायेगी। मतलब कि क्वासारके द्रव्यसंचयका अंतर्गमन (Implosion) होगा।

अंतर्गमन नीचे अनुसारका हो सकता है।



साधारणतः अनेक सूर्यद्रव्य धारण करनेवाली निहारिकाका द्रव्य संकुचता है तब वह अलग-अलग टुकडोंमें विभक्त हो जाता है। इन टुकडोंमें से तारोंकी उत्पत्ति होती है। कल्पना कीजिये कि किसी निहारिकाका द्रव्य संकुचनेके समय टुकडा टुकडा हो जानेके बजाय एक बडे ज्योतिके रूपमें छोटा होता है और उसके संकुचनेका काम प्रतिपल चलता रहता है। हो सकता है कि यह संकुचन अमुक हद तक चलकर निहारिकाको बहुत छोटी (अलबत्ता अति विराट तारे जैसी) बना देगा। ऐसी परिस्थितिमें निहारिका-द्रव्य प्रबल गुरुत्वाकर्षणको जन्म देगा और वह निहारिकाके दुःखका कारण बनेगा। उस समय निहारिकाका (अतिविराट तारेका) द्रव्य-रूप पलटने लगेगा। प्रचंड गुरुत्वाकर्षणके कारण निहारिकाका द्रव्य उसके केन्द्रभागकी ओर धँसना शुरू हो जायगा। द्रव्यके धँसनेका वेग भी प्रबल होनेका। परिणाम यह होगा कि निहारिकासे अतिविराट तारेका रूप प्राप्त करनेवाली ज्योति बहुत संकुचित हो जायगी और करीब सूर्यके आयतनका तारा बन जायगी। मगर उस वक्त वह केन्द्रकी ओर धँसते रहते सारे द्रव्यको अपनेमें नहीं समा सकेगी। और तब होगा यह कि धँसनेवाला वेगी द्रव्य केन्द्रको पार करके

आगे निकल जायगा! ताराद्रव्यके अंतर्शमनकी और बहिर्वहनकी क्रियाओंके कारण क्वासारो का रक्तविचलन बहुत ज्यादा होनेका समझा गया है।

मगर यह हुई कोरी सैद्धान्तिक बात।

क्वासारोंके लिये वह दो कारणोंसे अस्वीकार्य ठहरती है। (१) उपर्युक्त घटनाका समय बहुत ही कम होनेका और (२) निहारिकासे बने क्वासारकी कणघनता बहुत ज्यादा होनेकी। मगर क्वासारोंकी कणघनता सूर्यकी कणघनतासे भी कम है।

यों अंतर्शमनकी क्रिया क्वासारोंको लागू नहीं होती है।

छोटा पदार्थ, अति तेजस्विता, बहुत भारी रक्तविचलन वगैरह क्वासारी बातोंने खगोल-शास्त्रियोंके लिये मुश्किलें खड़ी कर दी हैं। अब यह अनुमान किया जाता है कि तारा-विश्वोंमेंसे बाहर फेंके गये द्रव्यसे क्वासार बने हैं। अवकाशमें कई स्थानों पर रेडियो-उत्सर्गी दो क्वासारोंके बीच निर्दोष ताराविश्व बैठा हुआ नजर आता है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि इसी ताराविश्वने द्रव्यका उत्सर्ग किया है और अब वह अपना स्थिरत्व सँभाल रहा है।

उपर्युक्त ऐसी और बातोंके आधार पर क्वासारोंको अब ब्रह्मांडकी सिवानकी ज्योति नहीं मानी जाती हैं। और इस कारण, आजतक माने गये स्थिर सिद्धान्तोंका भी परिशोधन करनेकी जरूरत पैदा हुई है। इन सिद्धान्तोंमें आंतर-वेगका नियम और हबलके स्थिरांक मुख्य हैं। क्वासारोंने आंतर-वेगके नियम-विभंगकी ओर अंगुलिनिर्देश किया है और ज्यादा रक्तविचलन दर्शानेवाले हबल-स्थिरांकको संस्कारनेकी भी चितावनी दी है।

मगर तब स्फोट करनेवाले ताराविश्वोंकी हालतका क्या? अपनेमेंसे बाहर द्रव्य फेंकने-वाले ताराविश्व गुरुत्वाकर्षणीय विपादसे दुःख न पाते होंगे क्या? समयके पक्षों और प्रकाशकी आँखोंके द्वारा दीख पड़नेवाली यह हकीकत अब किस प्रकारका आकर ले रही है? वगैरह प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

यहाँ हम स्फोटक ताराविश्वोंकी चर्चा करेंगे।

अवकाशमें ऊर्जाके विकिरण हुआ करते हैं। विश्वकिरणें उनमेंसे एक रहस्यमय विकिरण है। पिछले पचास वर्षोंसे खगोलशास्त्री और भौतिकशास्त्री उनका भेद पानेके प्रयत्न कर रहे हैं मगर विश्वकिरणोंके उद्भवके बारेमें, आजतक, निश्चित रूपसे कुछ नहीं जाना गया है। शुरू-शुरूमें माना जाता था कि विश्वकिरणें परम स्फोटक तारोंसे उत्पन्न होती हैं और अवकाशमें फैलती हैं। मगर यह साबित नहीं हो सका है। कुछ वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि सूर्य जैसे तारोंमेंसे उत्पन्न होनेवाले न्यून शक्तिकण धीरे-धीरे वेग बढ़ाते हैं और आकाशगंगाके बहुत स्थानोंमें, घात-आघातकी प्रक्रिया सहते हुए वे आखिरमें विश्वकण हो जाते हैं। मगर यह मत सर्वमान्य नहीं हो सका है। कई खगोलशास्त्री ताराविश्वोंके केन्द्रभागोंमें होनेवाले विस्फोटों-को विश्वकिरणोंका जन्मदाता मानते हैं तो दूसरे रेडियो-विश्वोंको इस बारेमें जवाबदेह समझते हैं। सिन्क्रोट्रोन-पद्धति द्वारा उत्पन्न होनेवाली रेडियो-तरंगोंको जन्म देनेवाले विद्युत-

कण रेडियो-विश्वके चुंबकीय क्षेत्रमें छटकते रहते हैं और अपने प्रकारके दूसरे कणोंके साथ मिलकर विश्वकिरणोंके रूपमें अवकाशमें यात्रा करते हैं ऐसा वे मानते हैं।

अवकाशमें अनेक रेडियो-विश्व मौजूद हैं। उनमेंसे बहुतसे विश्व सिन्कोट्रोन-पद्धतिसे ऊर्जा-विकिरण करते हैं। इन सभीको विश्वकिरणोंके जन्मदाता समझा जाय तो इन विश्वोंके केन्द्र-भागोंमें भारी विस्फोट होते रहनेका मानना होगा। बिना विस्फोटोंके विश्वकिरणोंका उत्पन्न होना और समग्र ब्रह्मांडमें फैल जाना असंभव है।

मगर क्या इस बातका कोई सबूत मिल सका है? कोई ताराविश्व विस्फोट करते मालूम हुआ है?

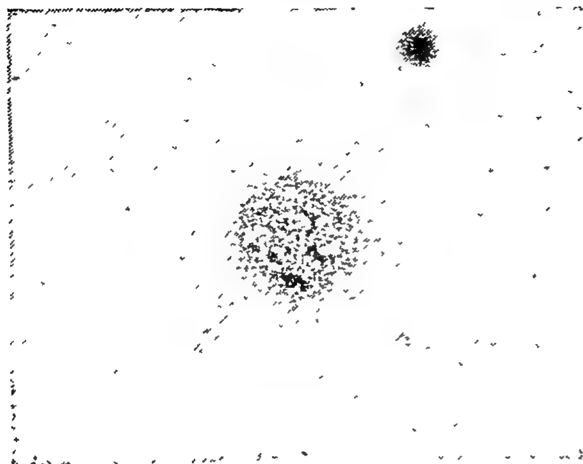
स्फोटक ताराविश्व रेडियो-विश्व होना चाहिये यह निश्चित करनेके बाद भी रेडियो-निरीक्षणोंसे किसी स्फोटक विश्वका पता न लग सका था। स्फोटक ताराविश्व खोजा गया सन् १९६१ में और वह भी आकस्मिक रूपमें। ३ सी २३१ नामका एक रेडियो उद्गम ताराविश्व मे ८१ के नजदीक है। इस रेडियो-उद्गमकी छानबीन हो रही थी। वह उद्गम जो रेडियो-उत्सर्ग करता है वह बहुत कमजोर है और इसी कारण उसका निश्चित स्थान तय नहीं हो पाता था। सन् १९६१ से पहले, मे ८१ ताराविश्व ही उपर्युक्त रेडियो-उद्गम होनेका माना जाता था मगर नये अन्वेषणामें स्पष्ट हो गया कि ३ सी २३१ का लगाव मे ८१ से नहीं मगर मे ८१ के अति निकट आये हुए छोटे और निस्तेज मे ८२ नामके ताराविश्वके साथ है।

मे ८२ ताराविश्वका गवेषणात्मक अभ्यास सन् १९१० में शुरू हुआ था। १५० से मी व्यासवाली दूरबीनसे लिये गये इस विश्वके फोटोमें उसका वायुस्वरूप ही नजर आता था, उसके तारोंको अलग नहीं देखा गया था। हां, एक और बात है। उपर्युक्त फोटो से ८१ की एक विशिष्टता बतलाते थे। वह थी उसकी धूल भरी वीथिकायें। तकुएके आकारके इस ताराविश्वके बीचके भागमें ये वीथिकायें दीखती थीं और उसके ऊपरका और नीचेका ताराविश्वका थोड़ा भाग तनुमय स्वरूपका दीखता था। मगर इसकी उस समय किसीने कोई चिंता न की थी। ५०० से मी वाली दूरबीन तैयार होनेके बाद मे ८२ के फोटो लिये गये थे मगर उस समय भी उसके स्वरूपके बारेमें किसीने कोई अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति न चलायी थी। यह हुई सन् १९४९ की बात। उसके बारह बर्षके बाद मे ८२ की पुरानी फोटो प्लेटोंके आधार पर उसका ज्यादा निरीक्षण करना तय हुआ। इस निश्चयके मूलमें मे ८१ रेडियो-विश्व जाहिर होनेकी बात थी।

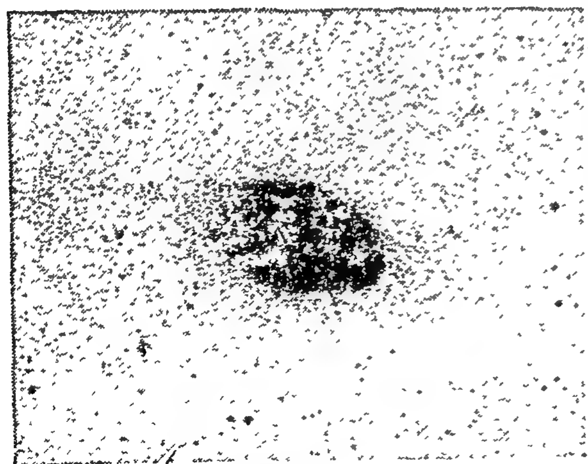
५०० से मी व्यासवाली हृदल दूरबीनसे सन् १९६२ में मे ८२ की छवियाँ ली गयी। विशिष्ट युक्ति-प्रयुक्तिसे प्राप्त की गई इन छवियोंसे मालूम हुआ कि मे ८२ के बाहरके भागका तनुमय स्वरूप जटिल प्रकारका है और वह मे ८२ के विश्वतलसे १४००० प्रकाशवर्ष तक दूर अवकाशमें फैला हुआ है (देखिये प्लेट ८)। करीब इसी समय ३०० से मी वाली लिक वेधशालाकी दूरबीनसे प्राप्त किये गये इसी ताराविश्वके वर्णपटसे मालूम हुआ कि मे ८२ के उपर्युक्त दो उपांगोंमेंसे एक हमारी ओरकी गति करता है और दूसरा हमसे

दूरकी। इसका अर्थ यह हुआ कि यह ताराविश्व या तो स्फोटक विश्व है या अंतर्गमनक विश्व है। वादके निरीक्षणोंसे और संशोधनोंसे मालूम हुआ कि ताराविश्वका द्रव्य उसके केन्द्रसे वाहरकी ओर वँसता है और यों वह एक स्फोटक ताराविश्व है।

मे ८२ को स्फोटक ताराविश्व करार देनेके वाद उसका विशेष अन्वेषण शुरू हुआ। इसी दौरानमे, उसके तंतुमय छोर हर सेकंडमे १००० कि. मी. के वेगसे अवकाशमे गति करते दिखाई पड़े। वैज्ञानिकोंने उनके वेगका हिसाव लगाकर उनकी गतिकी शुरुआत कव हुई होगी—मे ८२ का विस्फोट कव हुआ होगा—उसका अंदाजा भी लगाया है। मे ८२ का विस्फोट आजसे १५ लाख प्रकाशवर्ष पहले हुआ था यह अव निश्चित हुआ है। मे ८२ हमसे ११५ लाख प्रकाशवर्षकी दूरी पर है। ताराविश्वोंकी सामान्य उम्र १० अरव वर्षकी कूती जाय तो मे ८२ का विस्फोट कलकी ही वात मानी जायगी!



३ सी २७३



अेन जी सी ४६५१

मे ८२ का तंतुभाग आयनित हाइड्रोजनसे वना मालूम हुआ है। विश्वतलसे १४,००० प्रकाशवर्ष दूर आया हुआ वायु किस तरह आयनित हुआ होगा? वहाँ अति नीले गरम तारे है ही नहीं! मतलव कि वह किसी दूसरी प्रक्रियासे आयनित होता है। एक प्रक्रिया सिन्क्रोट्रोन है। मे ८२ के वायुओंको सिन्क्रोट्रोन प्रक्रियासे आयनित हुआ मान ले तो मे ८२ को प्रवल चुंवकीय क्षेत्रवाला ताराविश्व समझना होगा। अन्वेषणोंसे अव मालूम हुआ है कि मे ८२ के इर्दगिर्दका विश्वकिरणोंका अभिवाद पृथ्वीके उसी तरहके अभिवादसे १००० गुना प्रवल है।

मे ८२ के बाद दूसरे भी स्फोटक ताराविश्वोंका पता चला है। इनमेंसे एक ३ सी २७३ (क्वासार) है। इस ताराविश्वके एक ओर वायुधारा निकली है और अवकाशमें वह डेढ लाख प्रकाशवर्ष तक पहुँच गई है। दूसरा ताराविश्व एन जी सी ४६५१ है। इसके आमने-सामने दोनों ओर दो वायुधारायें निकली हैं जो अवकाशमें ५०,००० प्रकाशवर्ष तक पहुँचती हैं।

स्फोटक ताराविश्वोंके अभ्याससे नये सिद्धान्त प्रस्थापित हो सके हैं। उनमेंसे एक सिद्धान्त दर्शाता है कि तितर-बितर द्रव्य जब संकेन्द्रित होने लगता है तब गुरुत्वाकर्षीय संचयशक्तिका उत्सर्ग होता है। अवभ्रमण द्वारा द्रव्य की अवसन्नताका (Dejection) प्रतिकार न किया जा सके तो केन्द्रकी ओर धँसनेवाला द्रव्य अदृश्य हो जायगा। स्वार्त्सशिल्डका विशिष्टता-सिद्धान्त दर्शाता है कि अपने अत्यंत निकटमें अवस्थित द्रव्यसंचय पर आधार रखनेवाला अवकाशका स्थानीय मोड, निकटस्थ द्रव्यकी घनताके बहुत बढ जाने पर अपने-आपको बंद कर, अपनेमें समाविष्ट द्रव्यको बाकीके ब्रह्माडसे अलग कर देता है। धँसनेवाला द्रव्य तब अदृश्य होकर ऊर्जाके रूपमें प्रकट होता है। सामान्य द्रव्यका ऊर्जामें रूपांतर होते समय आइन्स्टीनके सूत्र अनुसार ऊर्जा = द्रव्यसंचय × प्रकाश-वेग² के हिसाबसे ऊर्जा प्रकट होती है। स्वार्त्सशिल्डके सूत्र अनुसार केन्द्रकी ओर धँसनेवाला क्वासारका द्रव्य, गुरुत्वाकर्षणके कारण, ऊर्जामें संपूर्णतः परिवर्तित होनेके बजाय अपनी आधी ऊर्जा विकिरित कर देता है।

हमारे लिये अगर महत्त्वकी कोई बात है तो वह है उपर्युक्त त्रिज्याके हिसाबसे अवसनता पानेवाले द्रव्यसे उत्पन्न होनेवाली ऊर्जा ही। यह ऊर्जा उत्सर्ग ½ द्रप्र² है। आइन्स्टीनके विख्यात सूत्र ऊर्जा = द्रप्र² का यह अर्धभाग है। ½ द्रप्र² से मिलनेवाला शक्ति-उत्सर्ग ताप-नाभिकीय प्रक्रिया (Nuclear Reaction) से १०० गुना प्रबल है। स्वार्त्सशिल्डकी त्रिज्या के हिसाबसे, दस करोड सूर्यद्रव्य अवसन्नता प्राप्त करे तभी वह इस अंश से विकिरित होनेवाले ऊर्जा-उत्सर्गके समान हो सकता है।

अभीतक उपर्युक्त बातके मिथ्या होनेका नहीं माना जाता है। फिर भी क्वासारोंने और स्फोटक ताराविश्वोंने समस्यामूलक जो प्रश्न उपस्थित किये हैं उनके मूलगत महत्त्वको और उनकी संकुलता (Complexity) को समझनेको वैज्ञानिकोंके द्वारा किये गये बुद्धिगम्य प्रयत्न हमारे सामने प्रस्तुत हो रहे हैं। आशा करें कि निकट भविष्यमें अंतरिक्षीय रहस्यके ज्यादा भेद प्रकट होंगे।

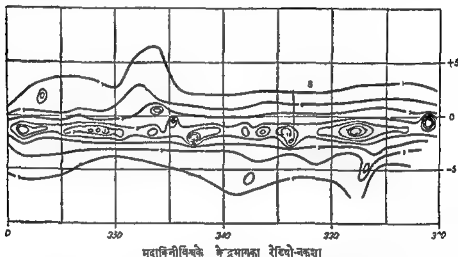
१७. ब्रह्मांडका विश्ववैचित्र्य

ब्रह्मांडका दर्शन चाक्षुप दूरवीनों और रेडियो-दूरवीनोंके द्वारा संभव हो पाया है। चाक्षुप दूरवीनसे आकाशीय पदार्थको सीधा देखा जाता है और उसका फोटो लिया जा सकता है। रेडियो-दूरवीनसे अंतरिक्षीय ज्योतिको नहीं देखा जा सकता है। उसके द्वारा हम जो देख पाते हैं वह है आकाशीय पदार्थके हम तक भेजा हुआ रेडियो-सदेशका आलेख। तारोंकी अवकाशीय अवस्थितियोंके आधार पर जिस प्रकार तारा-नकशे वनाये जाते हैं उसी प्रकार उन ज्योतियोंके रेडियो-संदेशोंके आलेखोंसे आकाशके रेडियो-नकशे वनाये जाते हैं। ये रेडियो-नकशे पृथ्वी परके स्थानोंके समोच्चरेखादर्शक नकशे जैसे होते हैं यह वात हम जानते ही हैं।

चाक्षुप दूरवीनसे अंतरिक्षीय पदार्थोंकी छवियाँ प्राप्त करते समय धूल और वायुके वादल हरकत रूप होते हैं। रेडियो-नकशे वनाते समय वैसी कोई मुसीवत नहीं आती। इसका यह अर्थ नहीं कि रेडियो-नकशेका काम आसान है। वास्तवमे वह वहुत मेहनतका काम है। किसी भी रेडियो-उद्गमके अनुशोधनका कार्य वास्तवमें वहुत लम्वा है। कई दफा वह महीनों तक चलता रहता है। एक तकलीफ और भी है। भिन्न-भिन्न रेडियो-तरंगलम्वाईके अलग-अलग रेडियो-नकशे वनते हैं। अंतरिक्षीय ज्योति तरंग-लम्वाइयोंके दो वर्ग अपने विशिष्ट स्व-रूपोंकी झाँकी कराते हैं। तरंग-लम्वाइयोंका एक वर्ग ३ मीटर या उससे ज्यादा लम्वाईका है और दूसरा वर्ग २५ से. मी. या उससे कम लम्वाईका है। हम इन दोनोंको वड़ी तरंगलम्वाई-वाला और छोटी तरंगलम्वाईवाला वर्ग कहकर पहचानेंगे। मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी वर्गके नकशे एक-से होंगे। वर्गकी विभिन्न तरंगलम्वाइयोंके कारण अलग-अलग रेडियो-नकशे हों और उनके द्वारा प्राप्त होनेवाली जानकारियाँ भी विचित्र प्रकारकी होंगी। मिसालके तौर पर २१ से. मी. तरंगलम्वाई ठंडे या शिथिल हाइड्रोजनका रेडियो-संकेत दर्शाती है जवकि २२ से. मी. तरंगलम्वाईसे प्राप्त होनेवाले रेडियो-संकेत गरम पदार्थोंका पता देते हैं, ठंडे पदार्थोंका नहीं।

वड़ी तरंगलम्वाईके रेडियो-नकशेमे आकाशगंगा चौड़े पाटके रूपमें नजर आती है और धनुराशिवाला उसका हिस्सा वहुत ही चमकीला मालूम होता है। छोटी तरंगलम्वाईवाले रेडियो-नकशेमें वह संकरी पट्टी जैसी मालूम होती है। हाँ, एक वात सही है कि इस नकशेका धनुराशिवाला हिस्सा वहुत चमकीला जरूर दीखता है मगर आगे चलकर मृगमंडल तक पहुँचनेसे पहले ही वह निस्तेज हो जाता है। अलवत्ता इन नकशोंमें रेडियो उद्गमोंको स्पष्ट-देखा जाता है मगर दोनों नकशोके उद्गम एक-से नहीं होते हैं। सामान्यतया वे एकदूसरेसे अलग ही होते हैं।

बडी तरगलम्बाईवाले रेडियो-सकेतोंसे करीब २००० रेडियो-उद्गमोंका पता चला है। इन उद्गमोंमें हस अ, शर्मिष्ठा अ और कर्क निहारिका विशिष्ट हैं। हस अ मदाकिनी विश्वसे बाहरका रेडियो-उद्गम है जब कि शर्मिष्ठा अ और कर्क निहारिका अपने ही ताराविश्वमें आये हुए रेडियो-उद्गम हैं। शर्मिष्ठा क और कर्क निहारिका दोनो परम स्फोटक तारोंकी अवशेषलीलाके स्थान हैं। हस [illegible] एक दूसरेसे भिडे हुए हमसे दूरके दो ताराविश्व हैं। ये दोनो विश्व वास्तवमें भिडे हुए हैं कि एक ही विश्वके टूटनेसे बन हुए दो विश्व हैं इस बारेमें हमारी निश्चित जानकारी बहुत ही कम है। फिर भी बडी तरगलम्बाईके रेडियो-उद्गम-वाले ताराविश्वको स्फोटक या सघर्षीय-विश्व होनेका माना जाता है।

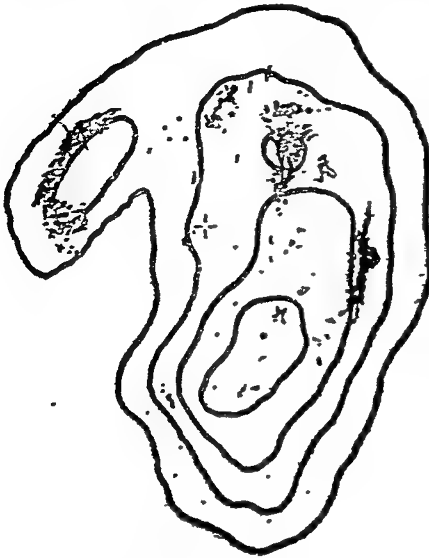


मदाकिनीविश्वके केन्द्रभागका रेडियो-नकशा

उपर्युक्त सारी बातोंका एक अर्थ यह है कि आकाशकी सपूर्ण रेडियो-नकशापोथी तैयार करनेमें अनेक तरगलम्बाईवाले अनेक रेडियो-नकशोंकी मदद लेनी पडेगी। दुनियाके विभिन्न देशोंमें इस प्रकारका काम चल ही रहा है। आस्ट्रेलियाकी रेडियो दूरबीन ३५ मीटरसे १५ मीटर पर काम करती है। ब्रिटनमें १ मीटरसे १० मीटर पर सशोधन चलता है। अमेरिका और रूसमें २१ से मी, ७५ से मी और १ से मी से कम तरगलम्बाईके रेडियो-सकेतोंके आधार पर रेडियो-नकशे बनानेका काम चल रहा है। यहाँ दो रेडियो-नकशे (१) मदाकिनी विश्वके केन्द्रकी ओरका और (२) हसमडलकी ततुमय निहारिकाका देनेमें आये हैं। *हस ब और हस क के रेडियो-उद्गम हमसे नजदीकके हैं। मगर हस अ अत्यत दूरका है।* नजदीक के ये दोनो उद्गम हमारे अपने ही ताराविश्वके हैं।

रेडियो-उद्गम और रेडियो-नकशोंके बारेमें थोडी जानकारी प्राप्त करनेके बाद अब हम दोनो प्रकारकी दूरबीनों—चाक्षुष और रेडियो—के सहकारसे ब्रह्माडका जो स्वरूप समझ पाये हैं उसकी झाँकी कुछ उदाहरणोंके द्वारा देखेंगे। सबसे पहले हम मदाकिनी विश्वकी चर्चा करेंगे।

मंदाकिनीविश्वमें अनेक उत्सर्गी निहारिकायें हैं। इनमेंसे जो रेडियो-उद्‌गमवाली हैं वे सभी उष्मीय रेडियो-संकेतवाली हैं। अपने-आपको वे सभी छोटी तरंगलम्बाई पर स्पष्ट रूपसे व्यक्त करती हैं। उत्सर्गी निहारिकाये आयनित हाइड्रोजन वायुके लंबे-चौड़े पिंड हैं। इन सभीकी अंतरिक्षीय स्थितियोंसे मालूम हुआ है कि आयनित हाइड्रोजन वायुका एक लंबा पाट मंदाकिनी विश्वमे है। शिथिल हाइड्रोजन और ताराओंके साथ मेल-मिलाप रखनेवाले इस पाटकी मोटाई ६०० प्रकाशवर्षकी है और उसका विस्तार ६००० प्रकाशवर्ष व्यासका है। २१ से. मी. और २२ से. मी. रेडियो-तरंगोंके द्वारा मालूम हुआ है कि मंदाकिनीविश्वकी आयनित हाइड्रोजन वायु-संपत्ति उसकी समग्र हाइड्रोजन वायुकी संपत्तिका केवल वीसवाँ भाग है।



हंसका रेडियो-नकशा

मगर इससे भी विशेष अद्‌भुत वात मंदाकिनी विश्वके केन्द्रकी है। हमारा सूर्य मंदाकिनी विश्व-केन्द्र से ३३,००० प्रकाशवर्षकी दूरी पर है। विश्वकेन्द्र और सूर्यके ठीक बीचमे जो भाग है वहाँके आयनित हाइड्रोजन वायुका घनत्व और जगहोंकी अपेक्षा कुछ ज्यादा है। ज्यादा घनत्व-वाला यह विभाग सूर्यसे १४,००० प्रकाशवर्ष और विश्वकेन्द्रसे १२,००० प्रकाशवर्ष दूर है। उसका पाट या वलय करीव ५ से ७ हजार प्रकाशवर्षकी चौड़ाईवाला है। इस पाटमे अनेक शिशु तारे हैं जो अपने इर्दगिर्दके हाइड्रोजन वायुको आयनित करते रहते हैं और इसी कारण यह विभाग आयनित हाइड्रोजनके हिसाबसे वहुत समृद्ध है। इस पाटसे केन्द्रकी ओरके या सूर्यकी ओरके भागोंमें अवस्थित आयनित हाइड्रोजनका घनत्व कम होता जाता है।

उपर्युक्त आयनित हाइड्रोजन–वलयके वीचवाले भागमें शिथिल हाइड्रोजनवाला एक अतापीय-उद्‌गम है। इस उद्‌गमके मध्य भागमे, करीव मंदाकिनी विश्वके केन्द्रमें आयनित हाइड्रोजन वायुके कुछ गाढे वादल हैं। इन वादलोंके इस प्रकारके अस्तित्वका कारण क्या है और उनका वायु वहाँ किस करामतसे आयनित होता है उसका पता अव तक भी मालूम नहीं हो सका है। विश्वकेन्द्रके नजदीकके भागोंकी भ्रमणगतिके आधार पर और अतापीय रेडियो-उत्सर्गोंसे यह ज्ञात हुआ है कि मंदाकिनीविश्वकेन्द्रके करीव २०० प्रकाशवर्ष व्यासके विस्तारमें जो तारे और वायु हैं उनका कुल द्रव्यमान ५० लाख सूर्य-द्रव्यमानके वरावर है। संभव है कि यह तथ्य नई वातोंको प्रकाशमें लायेगा।

एक दूसरी आश्चर्यजनक घटना शिथिल हाइड्रोजन द्वारा होते रहते केन्द्रत्यागकी है। शिथिल हाइड्रोजन विश्वकेन्द्रसे सरक कर विश्वके दूरके हिस्सोंकी ओर गति करता है।

केन्द्रसे १०,००० प्रकाशवर्ष दूर पहुँचने पर उपर्युक्त वायु आयनित हो जाती है। वायुके आयनित होनेका कारण वहाँ आये हुए अति गरम तारोंका प्रचंड विकिरण है। मतलब कि विश्व-केन्द्रसे दूर सरकनेवाला हाइड्रोजन केन्द्रसे १२,००० प्रकाशवर्ष या उससे भी कुछ आगे पहुँचकर अपनी उत्तेजना गँवा देता है। जिस जगह यह सब होता है वहां शिशु तारे आकार धारण करते दिखाई पड़ते हैं। ये तारे अपने आसपासके वायुको आयनित करके अपने जन्म-विस्तारके आयनित हाइड्रोजन वायुको अति उज्ज्वल वलयका रूप प्रदान करते हैं।

शिशु तारोंका जन्म देनेवाला शिथिल हाइड्रोजन सतत बहता रहेगा कि एक दिन वह शून्यशेष हो जायगा इस बारेमें किसी प्रकारकी निश्चित जानकारी अब तक प्राप्त न हो सकी है। हाइड्रोजनके बहावके निरीक्षणोंसे मालूम हुआ है कि मंदाकिनी विश्वका नाभिभाग ३ करोड़ वर्षोंमें खाली हो जायगा। इतने कम वर्षोंमें विश्वकेन्द्र-भागके खाली होनेका एक स्पष्ट अर्थ यह है कि अपना मंदाकिनी विश्व विस्फोटक प्रकारका ताराविश्व है। मगर मंदाकिनी विश्वके विस्फोटक होनेके अन्य लक्षण नहीं दिखाई पड़ते हैं इस कारण वैज्ञानिक लोग मानते हैं कि हमारे विश्वकेन्द्रमें शिथिल हाइड्रोजनकी कमीकी पूर्ति हुआ करती है। यह पूर्ति विश्व-प्रभामंडलके द्वारा होती है कि विश्वकेन्द्र अवस्थित चुंबकीय बलके कारण इसका अध्ययन होना अभी बाकी है। आशा करें कि इस रहस्यका उद्घाटन हमारी और समस्याओंको हल करनेमें सहायभूत होगा।

सभी ताराविश्व एक-से हैं क्या?

ताराविश्वोंकी खोजके प्रारम्भिक वर्षोंमें और उसके बाद भी बहुत लंबे अरसे तक ताराविश्वोंको बहिर्विश्व निहारिकायें माना जाता था। अन्वेषकोंका खयाल था कि सभी ताराविश्व एक-से हैं। मतलब कि उन सभीके आयतन, द्रव्यमान और तेजांक एक सरीखे होनेका उनका खयाल था। मगर बादके अन्वेषणोंने उस खयालको गलत ठहराया। सन् १९२० के अरसेमें मालूम हुआ था कि त्रिकोण ताराविश्व छोटा है और देवयानी ताराविश्व बहुत बड़ा। देवयानी ताराविश्वकी बगलमें दो और छोटे ताराविश्व भी दिखाई पड़े थे। फिर भी ये सारे ताराविश्व करीब एक-से होनेका माना जाता था और उनकी हमसे दूरी मालूम करते समय उन सभीके तेजांक भी एक-से माने जाते थे।

मगर यह चित्र कायम न रहा, वह धीरे-धीरे पलटने लगा। सन् १९३० में भट्ठी और शिल्पी मंडलोंमें दो ताराविश्वोंका अस्तित्व मालूम हुआ। ये दोनों अपने-आप स्वतन्त्र ताराविश्व थे और उनके तेजांक मंदाकिनी विश्वके हिसाबसे केवल हजारवें भागके थे। अचरज भरी दूसरी बात यह थी कि इन दोनों ताराविश्वोंकी तारासंपत्ति बहुत ही कम थी। मंदाकिनी विश्वमें आये हुए बड़े गोलाकार तारकगुच्छमें जितने तारे हैं उतने ही तारे इन विश्वोंमें हैं। तिस पर तुर्रा यह कि ये दोनों ताराविश्व हैं—बड़े ताराविश्वोंसे एकदम भिन्न और स्वतन्त्र रूपके। और चक्करमें डालनेवाली बात यह थी कि ये दोनों हमसे बहुत नजदीकके ताराविश्व हैं।

कम तारासंपत्तिवाले इन ताराविश्वोंके तारे एकदूसरेसे अत्यधिक दूर हैं। तारोंके इस दूरत्वके कारण ये दोनों ताराविश्व न दिखाई पड़नेवाले आकाशीय पदार्थ वन वैठे थे। मगर शक्तिशाली दूरवीनोंसे उनका पता लगने पर 'सारे तारविश्व एक-से हैं'—वाली वातका भंडा फूट गया। और तव भट्ठी और शिल्पी ताराविश्व अपवाद-रूप छोटे ताराविश्व होनेकी कल्पना की गई। वादके अन्वेषणोंने वताया है कि अंतरिक्षमें अनेक वामन ताराविश्व अवस्थित हैं। इतना ही नहीं शायद उनकी संख्या ही सबसे ज्यादा है। दूसरे शब्दोंमें कहे तो यों कहा जाय कि ब्रह्मांडमे जो ताराविश्व हैं उनमे सर्वसामान्य प्रकार वामन ताराविश्वोंका ही है।

सभी वामन ताराविश्व एक-से नहीं हैं। कई एक अंडाकार हैं तो कई एक अरूप। इन सभी की तारासंपत्ति भी एक-सी नहीं है। भट्ठी विश्व और शिल्पी विश्व चिकनी सतहवाले अंडाकृति ताराविश्व हैं और उनके तारे वयप्राप्त तारे हैं। मतलव कि इन ताराविश्वोंकी उम्र वहुत ही वड़ी है। अरूप वामन ताराविश्वोंमें तेजस्वी नीले तारे हैं। इन तारोंका युवा तारे होनेका मालूम हुआ है। अरूप वामन विश्वोंमें युवा तारोंके उपरांत दूसरे प्रकारके तारे भी मौजूद हैं और इस तरह ये विश्व अंडाकार वामन विश्वोंसे अपनी अलगता दिखाते हैं।

शिल्पी विश्व और भट्ठी विश्व हमसे क्रमशः ४,६०,००० और ९,२०,००० प्रकाशवर्ष दूर हैं। ये दोनों स्थानीय विश्वसमूहके सदस्य हैं। स्थानीय विश्वसमूहमें मंदाकिनी विश्व और देवयानी विश्वके सिवा अन्य २५ ताराविश्व हैं जिनमेंसे अधिकांश वामन ताराविश्व हैं। अलवत्ता इनमेंसे वहुतसे ताराविश्व हमसे नजदीकके होने पर भी वहुत ही निस्तेज हैं और इसी कारण उनके फोटो प्राप्त करनेका काम वहुत ही मुश्किल हो जाता है। शिल्पी विश्व प्रकारके चार अन्य ताराविश्व सिंह विश्व १, सिंह विश्व २, कालिय विश्व और ध्रुवमत्स्य विश्व हैं। इनमेंसे पहले दो हमसे ७,५०,००० प्रकाशवर्षकी दूरी पर और अन्य दो ३,३०,००० प्रकाशवर्षकी दूरी पर हैं।

स्थानीय विश्वसमूहमें जिस तरह वामन विश्वोंकी संख्या ज्यादा है क्या उसी तरह अन्य विश्ववर्गोकी भी हालत होगी? हमसे नजदीकका ताराविश्व समूह कन्या विश्वसमूह है जिसमें वामन विश्वोंकी वहुतायत है। भट्ठी विश्वसमूह (भट्ठी ताराविश्व नहीं) में करीव ८० प्रतिशत ताराविश्व वामन विश्व हैं। अन्य विश्वसमूहोंमें भी वामन विश्वोंका आधिक्य है और यों समस्त ब्रह्मांडमे वामन विश्व प्रचुर मात्रामें होनेका अव माना जाता है।

वामन ताराविश्वोंकी तारासंपत्ति वहुत कम है। अपने विश्वोंके आयतनके हिसावसे ये तारे एकदूसरेसे वहुत दूर हैं। तारोंकी इस विशिष्टताके और उनके गत्यात्मक गुणधर्मोके अभ्यासके कारण वामन ताराविश्व ब्रह्मांडकी उत्क्रान्तिको समझनेमें वहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। दो उदाहरणोंसे यह वात स्पष्ट करनेका प्रयत्न करेंगे। ध्रुवमत्स्य विश्व शिल्पी विश्वके प्रकारका है। उसके तारोंका घनत्व केन्द्रभागकी ओर ज्यादा है मगर वाहरकी ओर क्रमशः कम होता जाता है। यह होते हुए भी केन्द्रभागका घनत्व अन्य ताराविश्वोंकी तुलनामें वहुत कम है—दस लाख घन-प्रकाशवर्षके आयतनमें १ तारेकी औसत है। मंदाकिनी विश्वके सूर्यकी अवस्थितिवाले विस्तारकी तुलनामें यह तारा-घनत्व हजारवें भागका है। फिर भी इस ताराविश्वके तारोंकी

एक विशिष्टता है—वे सभी एक ही प्रकारके तारे हैं। इतना ही नहीं उन सभीकी उम्र भी करीब-करीब एक समान है। इन तारोंकी उम्रका अंदाजा १० अरब वर्षका है। इसका यह मतलब हुआ कि ध्रुवमत्स्य विश्व वयप्राप्त ताराविश्व है।

आई सी १६१३ ताराविश्व ध्रुवमत्स्य विश्वसे कुछ अलग है। इस ताराविश्वमें विभिन्न उम्रके विविध तारे हैं। उनमेंसे कई तारोंकी उम्र १० लाख वर्षकी भी है। तात्पर्य यह कि इस ताराविश्वमें युवा नीले तारे हैं। और उनके साथ-साथ १० अरब वर्षकी उम्रवाले वय-प्राप्त तारे भी यहाँ मौजूद हैं। या इस ताराविश्वकी उम्र १० अरब वर्षकी लेखी जा सकती है फिर भी यह ध्रुवमत्स्य विश्वके प्रकारका उत्क्रान्तिवाला नहीं है। ध्रुवमत्स्य विश्वके धूल और वायु किस तरह विलुप्त हो गये होंगे? आई सी १६१३ को इस स्थितिमें पहुँचनेमें कितना और समय लगेगा? इस ताराविश्वके हिसाबसे ध्रुवमत्स्य ताराविश्वकी और ब्रह्माण्डकी उम्रका अंदाजा क्या होगा? वगैरह प्रश्न हल होनेकी संभावना ज्यादा है।

पारस्परिक क्रियाके संदर्भमें भी वामन विश्वोंका ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। ताराविश्वोंके द्रव्यसंचयके बारेमें खगोलशास्त्रियोंने जो सिद्धान्त स्वीकृत किया है वह निम्न लिखित है। कम द्रव्यसंचयवाले ताराविश्व अगर किसी बड़े ताराविश्वके नजदीकमें हैं तो इन कम द्रव्यसंचयवाले ताराविश्वोंके आयतन ज्यादा द्रव्यसंचयवाले ताराविश्वोंके गुरुत्वाकर्षणके कारण मर्यादित स्वरूपके रहेंगे। मंदाकिनी ताराविश्वके नजदीक भट्ठी, शिल्पी, सिंह, ध्रुवमत्स्य, कालिय वगैरह ताराविश्व अवस्थित हैं। इन सभीके आयतन मर्यादित हैं। ब्रह्माण्डमें और जगह भी ऐसा ही होनेका दिखाई दिया है। इस बातको आधार मानकर नजदीकके दो ताराविश्वोंकी पारस्परिक क्रियाका उनके गठन या संरचना पर क्या असर होता है यह समझनेका प्रयत्न किया गया है। और उसके लिये ताराविश्वोंकी कथित त्रिज्याकी उनकी निरीक्षित त्रिज्याके साथ तुलना की जाती है। इन दोनोंमें कहाँ तक मेल है उसका अध्ययन करके न्यूटनके गुरुत्वाकर्षणके नियम किस हद तक लागू होते हैं वह खोजा जाता है। न्यूटनके नियम कारगर न हो वहाँ कौन-से और बल लागू होते हैं और वे किस प्रकार काम आते हैं वगैरहका लेखा होता है। खगोलज्ञोंकी राय है कि हमसे अत्यंत दूर आये हुए ताराविश्वों और विश्वसमूहोंके कुछ गुणधर्मोंसे मालूम होता है कि वहाँ न्यूटनके गुरुत्वाकर्षण बलके सिवाय और भी कई बल काम करते हैं। नजदीकके ताराविश्वोंके अभ्याससे न्यूटनके नियम कहाँ तक कारगर हैं वह खोजा जाता है। इतना ही नहीं मगर वे कहाँ और कैसे नाकामयाब रहते हैं या पलट जाते हैं वह भी जाना जाता है। यह सब समझनेके लिये जिन बातोंकी खास आवश्यकता रहती है वे हैं मंदाकिनी विश्वका द्रव्यसंचय, वामन विश्वका द्रव्यसंचय, वामन विश्वके छोर परके तारोंका स्थितिलन और वामनविश्वकी सापेक्ष गति। ये सारी बातें पूर्णतया निश्चित होती नहीं हैं, फिर भी मंदाकिनी विश्वके नजदीकमें आये हुए छ वामन विश्वोंके अभ्याससे मालूम हुआ है कि न्यूटनके नियम साढ़े सात लाख प्रकाशवर्षके अंतर तक कामयाब रहते हैं।

उपर्युक्त ढंगकी दूसरी अनिश्चितता मंदाकिनी विश्वके द्रव्यसंचयकी है। मंदाकिनी विश्वके नजदीकके वामन ताराविश्वोंकी निरीक्षित त्रिज्याके आधार पर उसका द्रव्यसंचय मालूम करोंका

प्रयत्न किया गया है। इस प्रयत्नके फलस्वरूप यह पता चला है कि मंदाकिनी ताराविश्वका द्रव्यसंचय ४०० अरब सूर्यके द्रव्यसंचयके बराबर है। यह आँकड़े मंदाकिनी विश्वके द्रव्यसंचयके मान्य आँकड़ोंसे दुगुना है। अपने ताराविश्वका द्रव्यसंचय २०० अरब सूर्योंके द्रव्यमान जितना माना गया है। द्रव्यसंचयका दुगुना अंक ताराविश्वोंके द्रव्यमान निश्चित रूपमे ज्ञात न होनेके कारण भी हो सकता है। यह भी कल्पित किया जाता है कि भविष्यमे यह आंक सच्चा भी साबित हो। बलिहारी अनिश्चितताके सिद्धान्तकी!!

इनके अलावा ताराविश्वोंके बीचके गत्यात्मक प्रतिक्रिया काल (Dynamic Reaction Time) के बारेमें जानकारी पानेके प्रयत्न जारी हैं। इसकी मददसे ताराविश्वोंकी भूतकालीन अनुस्थितिका पता चलेगा।

वामन ताराविश्वोंकी खोज नया अन्वेषण है। फिर भी उनके अल्प समयके निरीक्षणोंने ब्रह्मांडके स्वरूपको समझनेमें काफी मदद पहुँचाई है।



नासिरुद्दीन

१८. ब्रह्मांड और उसकी उत्पत्ति

ब्रह्माडकी अन्य बातोंकी अपेक्षा उसकी उत्पत्तिके बारेमें तत्वज्ञानियों, वैज्ञानिकों और अन्य विद्वानोंने बहुत चर्चा की है। और फिर भी आश्चर्यकी बात यह है कि ब्रह्माडका बुद्धि-ग्राह्य स्वरूप आज तक भी स्पष्ट नहीं हो सका है।

तत्ववेत्ता प्लेटोकी ही बात लें। उसके मतानुसार जगद्व्याप्त आत्मा सत् है और ब्रह्माड उसमें से प्रकट हुआ है। समग्र ब्रह्माडमें जो कुछ गति मालूम होती है वह आत्मा की है। आत्माके सिवाय और सभीको गति प्रदान करनी पड़ती है। आत्मा स्वयं गतिशील है। ब्रह्माड के इस खयालको एरिस्टोटलने और भी विकसित किया। उसने कहा कि दुनियामें ऊँची, नीची और वर्तुलाकार यों तीन प्रकारकी गतियोंका अस्तित्व है। वायु और अग्निकी गति ऊर्ध्व है, मिट्टी, पृथ्वी या पानीकी गति अध है और आकाशीय ज्योतियोंकी गति वृत्ताकार है। आकाश आदि है लेकिन और सारी चीजें परिवर्तनशील हैं। प्लेटोकी कल्पनाके अनुसार अतरिक्षके सभी पदार्थ अपरिवर्तनशील होने चाहियें और उनकी गति वृत्ताकार होनी चाहिये। तो क्या ग्रह उनमें अपवाद हैं? ग्रहोंकी गति पूर्णरूपसे वृत्ताकार नहीं है। जब यह गुत्थी सुलझना मुश्किल मालूम हुआ तब ग्रहोंको ठीठ अतरिक्षके पदार्थ समझकर बातका निर्वाह किया गया, और इस कारण पृथ्वी, जल, वायु, और आकाशके गोलक एकके आसपास दूसरा अवस्थित है ऐसा मत प्रचलित हुआ। पृथ्वीका गोलक ठीक बीचमें है और उसके इर्दगिर्द क्रमानुसार जलका, वायुका और आखिरमें आकाशका गोलक है। इन चारों गोलकोंसे दूर बाहरके भागमें ५५ ज्योतियाँ पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर रही हैं और इससे आगे स्थिर अन-रिक्षीय तारे हैं। ये ५५ ज्योतियाँ और स्थिर अतरिक्षके तारे अनादि, अनत और अपरिवर्तनशील हैं और ईश्वरके नियमोंके अधीन रहते हैं।

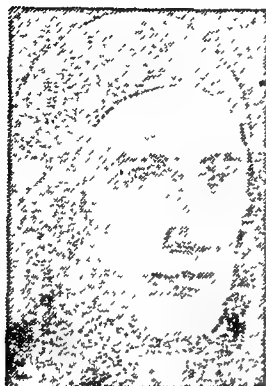
ईस्वी सन् पूर्व चौथी सदीमें एरिस्टार्चसने ब्रह्माडकी कल्पना स्थिर सूर्य और तारोंवाले ब्रह्माडकी की थी। उसने कहा था कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर वृत्ताकार प्रदक्षिणा करती है और स्थिर तारोंके गोलकका और सूर्यगोलकका केन्द्र एक ही है। तारोंके गोलकका व्यास इतना बडा है कि उसके सामने पृथ्वी-कक्षाका व्यास नगण्य-सा है।

मगर ग्रहोंकी बात एरिस्टार्चस भी न समझा सका था।

हिपार्कस (मृत्यु ई॰ स॰ पू॰ १२५) भी ग्रहगतिकी उलझनको सुलझा न सका मगर उसके साथ ग्रह अविनयी अतरिक्षीय पदार्थ हैं यह बात भी उसे मजूर नहीं थी। इस कारण एरिस्टार्चससे एक कदम वह पीछे हटा। उसने पृथ्वीको विश्वका केन्द्र माना और आकाशीय

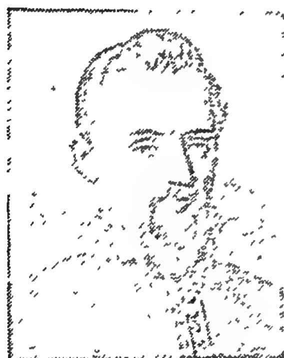
ज्योतियाँ उसकी प्रदक्षिणा करती है ऐसा घोषित किया। ग्रहगति समझानेके लिये उसने वृत्त प्रति वृत्तकी परिकल्पनाका आविष्कार किया और उसके द्वारा ग्रहगतिकी वातको वुद्धिगम्य वनाया।

निरीक्षण-पद्धति ज्यों-ज्यों ज्यादा चौकस होती गई, ब्रह्मांडका स्वरूप भी पलटता हुआ नजर आने लगा। कोपरनिकस, टायकोब्राहे और केप्लरने पूरी सावधानीसे अंतरिक्षके पदार्थोंके गाणितिक कोष्ठक वनाये और उच्च प्रकारकी गणित-गणना द्वारा वृत्त प्रतिवृत्तकी कल्पनाको रुखसत किया। केप्लरने विल्कुल स्पष्ट कर दिया कि ग्रहोंकी कक्षा दीर्घवृत्त होती है और इस दीर्घवृत्तकी एक नाभिमे सूर्य रहता है।



कोपरनिकस

दूरवीन वनानेवाला गैलिलियो केप्लरका समकालीन था। दूरवीनसे सर्व प्रथम आकाशकी ओर देखनेवाला वही था। टिमटिमाते तारे और प्रकाशित ग्रहोंके भव्य रूपोंको सर्वप्रथम उसने ही देखा। न्यूटनने परावर्तक दूरवीन वनायी जिसके कारण आकाशीय पदार्थोंको और भी अच्छी तरहसे देखा गया। वादमे विज्ञान तेजीसे विकसित हो गया। दूरवीनों और वर्णविश्लेषक द्वारा प्राप्त वर्णपट रेखाओंकी मददसे सुदूर अवस्थित ज्योतियोंके वातावरणको रचनेवाले मूलतत्त्वोंकी पहचान होनेके साथ डोप्लर-असरके कारण दूरके अंतरिक्षके पदार्थोंके दूरगमनके वेग निश्चित करनेकी पद्धति वगैरहका भी विकास हो गया।



केप्लर

केप्लरने ग्रहोंके वारेमे महत्त्वके नियम वनाये। उसने दिखाया कि ग्रहवर्षोका वर्ग ग्रहोंके सूर्यसे अंतरोंके घनके सम प्रमाणमे है। उसने यह भी वतलाया कि ग्रह और सूर्यको जोड़नेवाली रेखा ग्रहपथ द्वारा उत्पन्न होनेवाली दीर्घवृत्ताकार आकृतिमे, समान समयमे एक-सा क्षेत्रफल घेरती है। केप्लरके नियमोंके आधार पर गुरुत्वाकर्षणका नियम आसानीसे साधा जा सकता है मगर केप्लरका ध्यान उस ओर न गया। वादमे यह काम हुआ न्यूटनके द्वारा। न्यूटनने गुरुत्वाकर्षणका नियम खोजा और कहा कि सृष्टिके पदार्थ एकदूसरेको आकर्षित करते रहते हैं। दो पदार्थोंके वीचका आकर्षण उन पदार्थोंके द्रव्यमानके सम प्रमाण और उनके वीचकी दूरीके वर्गके व्यस्त प्रमाणमें है। किस वलके आधार पर अवकाशमें ग्रह अपनी जगह टिकते हैं यह भी स्पष्ट हो गया। ग्रह गतिमें दिखाई पड़ती च्युति अन्य ग्रहोंके आकर्षणके कारण मानी गई।। यों खगोल-गणनामे क्षम गणितने प्रवेश किया। न्यूटनके नियमोंके सहारे नये ग्रहोंके स्थान निश्चित किये जा सके उतना ही नहीं उन

ग्रहोको दूरबीनसे प्रत्यक्ष भी किया गया। जो काम नग्न आंखोंसे या केवल दूरबीन दर्शनसे न हो पाता था वह न्यूटनके नियमोंके द्वारा गणितने कर बताया।

यह सब होते हुए भी बादमें मालूम हुआ कि ग्रहगतियोंमें सूक्ष्म फर्क दिखाई पडता है। न्यूटनके नियमोंके द्वारा उसका निरसन न हो सका। वह काम किया आल्बर्ट आइन्स्टीनने। उसने समझाया कि ब्रह्मांडमें निरपेक्ष गतिका अस्तित्व नहीं है। सारी गतियाँ सापेक्ष हैं। ब्रह्मांड त्रिविमितीय (Three dimensional) नहीं है वह चतुर्विमितीय है । उसकी तीन विमितियां अवकाशकी हैं और चौथी विमिति समय की है। होनेवाली घटना निश्चित समय पर और निश्चित स्थानमें होती है। स्थल और समयवाले चतुर्विमितीय ब्रह्मांडमें भूत, भविष्य या वर्तमान नहीं हैं। सारी घटनायें हमेशाके लिये अंकित रहती हैं।

उपर्युक्त चतुर्विमितीय ब्रह्मांडमें जहां कहीं भी थोडा द्रव्यसंचय या अंतरिक्षीय पदार्थ है वहां ब्रह्मांड थोडा दबा हुआ रहता है। गुरुत्वाकर्षणका क्षेत्र इसी प्रकारके दबावका गुण है। द्रव्यमानके बिना गुरुत्वाकर्षणका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। आइन्स्टीनने क्षेत्र समीकरण दिये। इन समीकरणोंके कारण गणित पहलेकी अपेक्षा और भी सूक्ष्म हुआ। आइन्स्टीनने कहा कि किसी भी तारेकी किरण अगर सूर्यके पास होकर गुजरती है तो गुरुत्वाकर्षणके कारण वह सूर्यकी ओर मुडती है। सूर्यग्रहणके समय तारोंके प्रकाशका अभ्यास करते समय आइन्स्टीनकी यह बात कसौटी पर खरी उतरी और तब वह बादमें स्वीकृत सिद्धान्त बन गई। आइन्स्टीनके बाद उसकी गणित-गणनामें कुछ हेरफेर करके हॉईल और नारलीकरने आइन्स्टीनके गणितको और भी सूक्ष्म बनाया है।

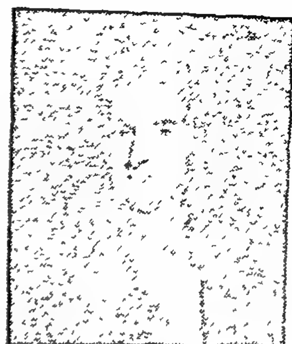


गेलिलियो

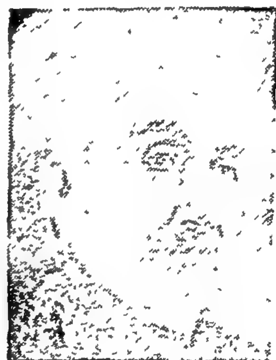
सूक्ष्म गणित, इलेक्ट्रोनिक्स और रेडियो-उद्गमोंका अध्ययन, क्षेत्र-समीकरण, ज्यादा अच्छी दूरबीनें वगैरहकी सहायतासे ब्रह्मांडका पसराव बहुत बडा होनेका मालूम हुआ है। क्षेत्र समीकरणोंसे अनेक विमितीय विश्वके अनेकविध रूप कल्पित किये जा सके हैं। फिर भी एक बात साफ है कि ब्रह्मांडकी बात अब केवल गाणितिक कल्पनाका

विषय नहीं रही है। इस कारण गणित और निरीक्षण इन दोनोंकी सहायतासे जिस ब्रह्मांड-वादका विकास हुआ है उसकी थोड़ी चर्चा यहाँ करेंगे।

प्रकाशकी मददसे ब्रह्मांडका अध्ययन करते समय एक विचित्र घटना नजर आयी। सुदूरके ताराविश्वोंके वर्णपटोंमे रक्त प्रकाशका डॉप्लर-असरवाला विशिष्ट विचलन दिखाई दिया जिसका सीधा अर्थ यह था कि ब्रह्माडके विभिन्न घटक (Units) एकदूसरेसे अलग सरक रहे हैं। उनके दूरगमनका वेग दूरत्वके हिसाबसे बढ़ता जाता है। बहुत दूरके और प्रचड वेगसे अंतरिक्षमे गति करनेवाले ब्रह्माडके इन घटकोंको देखकर एक प्रश्न हमारे दिलमे उठेगा कि ब्रह्माडका यह विकास किस हद तकका रहेगा? उसकी कोई आखिरी मंजिल होगी? ब्रह्मांडके घटकोंकी इस दौड़ादौड़ीका क्षेत्र अगर गोलाईवाला हो तो उसके आदि-अंतका पता न चलेगा मगर उस क्षेत्रके मर्यादित होनेकी कल्पना की जा सकती है—नारंगी पर घूमनेवाली चींटीको नारंगीकी सतहका आदि-अंत नही मालूम होता है उसी प्रकार।

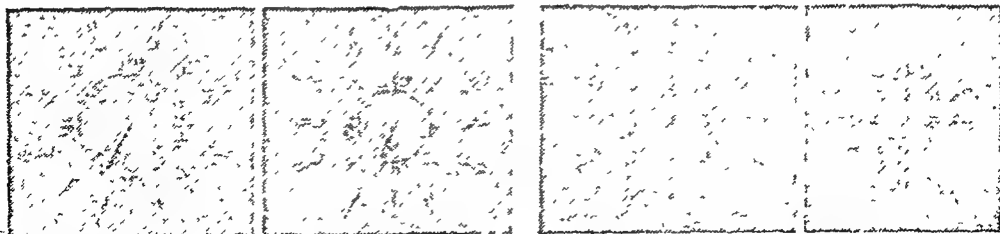


न्यूटन



आइनस्टीन

एक दूसरा प्रश्न भी उठना स्वाभाविक है। ब्रह्मांडके घटक जो आज एकदूसरेसे दूर सरकते नजर आते है वे सभी अति सुदूरके भूतकालमें एकदूसरेके निकट ही होंगे न?! संभवित है कि वे सभी किसी एक समय, एक ही जगह पर एकत्रित थे। ब्रह्माडके घटकोंके आजके वेगोंका और वेगवृद्धियोंका हिसाब लगाने पर मालूम हुआ है कि करीब पंद्रह अरब साल पहले इन सभी घटकोंका एकत्रित बारह प्रकाश-घंटे व्यासवाला एक ब्रह्मांड-संपुट या गोला रहा होगा। इस गोलेमें अवस्थित इलेक्ट्रोनों, प्रोटोनों और न्यूट्रोनोंमे अनेक प्रकारकी आंतरिक प्रक्रियायें अपना काम करती होंगी। उन प्रक्रियाओंके कारण आजसे पंद्रह अरब साल



धूमधडाकावाद स्थिरस्थितिवाद

पहले उसमें परम विस्फोट हुआ होगा और गोलेके टूटने समय हाइड्रोजन, हेलियम वगैरह तत्वोंकी उत्पत्ति हुई होगी और आदि द्रव्यसंचयके अनेक छोटे छोटे टुकडे अवकाशमें बिखर पडे होंगे। ये छोटे टुकडे बादमें तारोंको जन्म देकर छोटे बडे ताराविश्व बने होंगे। ब्रह्मांडकी उत्पत्ति और उत्क्रान्ति समझानेवाला यह वाद 'धूमधडाकावाद' (Big Bang Theory) के नामसे मशहूर है। इस वादका पुरस्कर्ता ख्यातनाम ज्योतिषी ज्योर्ज गेमोव है।

ब्रह्मांडकी उत्पत्तिके बारेमें एक दूसरा वाद भी प्रचलित है। उसे सतत सर्जनवाद कहनेमें आता है। उसके मतानुसार ब्रह्मांड सर्वसमय सापेक्षित उत्क्रान्तिमें एक-सा रहता है। अरबों साल पहले वह जैसा था वैसा ही आज भी है। वह अनादि और अनंत है। ऐसे ब्रह्मांडमें ताराविश्व दूर दूर अवश्य सरकते रहते हैं मगर उनके दूर हटनेके कारण उनके बीचका अवकाश खाली नहीं होता है, वहां सतत नये द्रव्यका निर्माण होता रहता है। और यों ब्रह्मांडरूपमें हेरफेरकी गुंजाइश नहीं है। ताराविश्वोंका जन्म पाना, उनका विकास होना और कालांतरमें विलीन होना वगैरह घटनाएँ ही घटती रहेंगी।

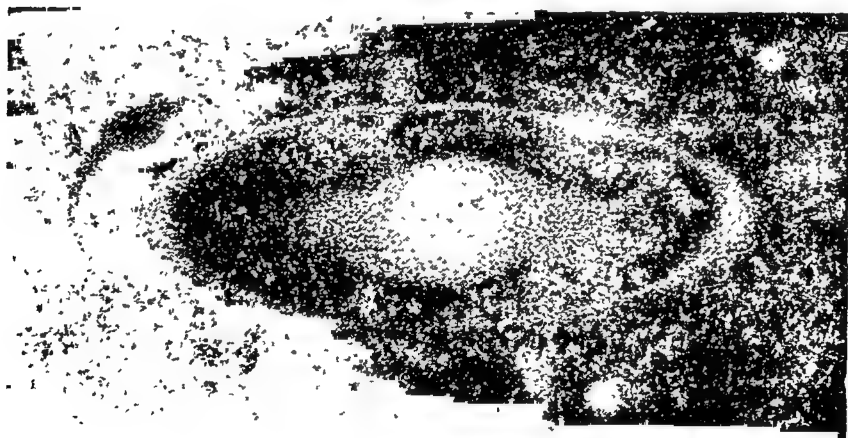
विश्वउत्पत्तिका एक तीसरा वाद भी है। वह होईल्वादके नामसे प्रसिद्ध है। उसकी मुख्य बातें नीचे अनुसार हैं। गुरुत्वाकर्षणके कारण अत्यंत महीन वायुमाध्यम संकुचित होता है। संकुचनेके कारण माध्यमके वायुबादलके छोटे-छोटे अलग खंडोंकी उत्पत्ति होती है जिनमेंसे ताराविश्वोंके धूमकोंका उद्भव होता है। वायुके संकुचनेसे गुरुत्वबल फाजिल बनता है। वायु-बादल अपारदर्शक रहे तो गुरुत्वबल गरमीके स्वरूपमें परिवर्तित होकर उनको अति तप्त बना देता है। विकसित होते रहते तारेमें भी ऐसी ही प्रक्रिया देखी जाती है लेकिन अत्यंत पतले वायुबादलोंमें ऐसा नहीं होता है। इन बादलोंमेंसे विकिरण पार हो जानेके कारण वे अपारदर्शक नहीं रहते हैं और यों उनका तापमान बढता नहीं है। ऐसी परिस्थितिमें गुरुत्व-शक्तिका रूपांतर गरमीशक्तिमें होनेके बजाय गतिशक्तिमें होता है। वायुबादलके अलग-अलग हिस्से गतिशक्तिके कारण और भी छोटे हिस्सोंमें विभक्त हो जाते हैं। विभक्त होनेवाले ये उपविभाग ताराविश्वोंका रूप धारण करते हैं। बादमें हरेक बादलविभाग या ताराविश्व संकुचना शुरू करता है। संकुचनेके कारण उसका घनत्व जब बहुत बढ जाता है तब इस ताराविश्वके भी टुकडे हो जाते हैं। ये टुकडे उनको प्राप्त गतिशक्तिके कारण भीमवेगसे गति करते रहते हैं। इन टुकडोंके भी फिर और विभाग और उन विभागोंके भी फिर उपविभाग बनते हैं जिनमेंसे तारा-धूमकोंका और अलग तारोंका निर्माण होना शुरू होता है। इस परिस्थिति तक पहुँचे हुए उपर्युक्त तारावायुओंके वेग बहुत ही प्रबल होते हैं। परिणाम यह होता है कि तारोंके आकार गोलाईवाले हो जाते हैं। ताराविश्वोंके पुराने या वृद्ध तारे इसी स्वरूपके होते हैं।

विशेष उत्क्रान्ति पानेवाले तारे वजनदार तारे हो जाते हैं। उनमें भारी परमाणु-द्रव्यके मूलतत्त्व उत्पन्न होना शुरू हो जाता है। इस कारण उनका घनत्व कम हो जाता है जिसके फलस्वरूप उनके वायु अपना प्रबल वेग गँवा देते हैं। ये तारे विश्वकी सतह पर स्थि-रता प्राप्त करना शुरू करते हैं उस वक्त उनकी गतिशक्ति प्राय विलुप्त हो गई होती है।

गोलाकारमें घूमनेकी गतिके कारण तारोंका सारा द्रव्य केन्द्रस्थानमे जमा नहीं हो सकता है। करोड़ों वर्ष वीतनेके वाद, ताराविश्वोंके केन्द्रस्थानमे जमा वायुवादलोंके वेग कम होते हैं और उनका तारोंमें रूपांतर होना शुरू होता है। गतिमें कभी होने पर इन तारोंमेंसे फिर, वायुवादलोंकी उत्पत्ति होती है और यों यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

ब्रह्मांड सकुचाता और स्पंदनशील है ऐसा भी एक वाद प्रचलित है। ब्रह्मांडका आकार घोड़ेके जीन जैसा है ऐसी भी एक कल्पना है। आकाशस्थित स्पंदनशील रूपविकारी तारोंके आधार पर डॉ० सान्डेझने ब्रह्मांडको स्पंदनशील होनेका दर्शाया है। उनका कहना है कि दृश्य-ब्रह्मांडकी सिवान पर जो ताराविश्व अवस्थित हैं उन सभीके अवकाशमें दूरगमनके वेग एक-से नहीं है। इस परसे डॉ. सान्डेझ यह निष्कर्ष निकालते हैं कि दूरके ताराविश्वोंके दूरगमनके वेग अव कम होते चले हैं: मतलव कि ब्रह्मांड विकसित नहीं होता है मगर सकुचाता है। डॉ. सान्डेझका मत है कि यह सकुचन वढ़ता जायगा और एक समय ऐसा भी आयगा कि ब्रह्मांडका दायरा तव वहुत छोटा हो जायगा और वादमें उसी छोटे ब्रह्मांडका फिरसे विकसित होना शुरू हो जायगा। ब्रह्मांडके स्पंदनशील गुण पर आधारित सकुचने और विकसनेका यह वाद भी ध्यान देने योग्य है।

ब्रह्मांडकी कल्पनाकी वातें भी आश्चर्यजनक हैं। जव तत्त्वज्ञानकी पकड़से ब्रह्माड छटका तव निरीक्षण और गणितका सहारा लेकर विज्ञानने उसका आकार निश्चित करनेका प्रयत्न किया। मगर वह मतलव भी पूरा सिद्ध नहीं हुआ है। उत्तम और फलदायी निरीक्षणोंके द्वारा ब्रह्मांडका किस प्रकारका स्वरूप हमारे सामने आयगा यह वात भावीके हाथोंमें ही है।



लाप्लासकी विश्वउत्पत्तिकी कल्पना

१९. ब्रह्मांड और जीवसृष्टि

पृथ्वी पर जीवन लहराता है। भौगोलिक संयोगोंके अनुसार कहीं वह ज्यादा विकसित है तो कहीं कम। किसी जगह वह विपुल प्रमाणमें है तो दूसरी जगह कम प्रमाणमें। कुछ भी हो, पृथ्वीकी सतह पर ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ एक या दूसरे प्रकारका कोई जीवन-चैतन्य-न हो। रेतीके या बर्फके रणोंमें भी मनुष्यसे लेकर सूक्ष्म बैक्टेरिया तककी सृष्टि है।

पृथ्वीकी जीवसृष्टिके अस्तित्वको सामान्य मनुष्य सहज मानता है। और इसी कारण दूसरे ग्रहों और उनके उपग्रहों पर जीवसृष्टि है या नहीं यह जाननेकी उसे स्वाभाविक उत्कंठा रहती है। कुदरत रहस्यमय है यह भी वह जानता है और उसीके अनुसंधानमें अन्य जगहोंकी जीवसृष्टि (अगर वहाँ है) हमारी पृथ्वीकी जीवसृष्टिसे बिलकुल भिन्न प्रकारकी होनेकी संभावनाको भी वह स्वीकार करता है। पृथ्वी और सूर्यमंडलके सिवाय ब्रह्मांडके दूसरे स्थानोंमें जीवसृष्टिके आविर्भावकी वह कल्पना करता है और यों जीवसृष्टिके हकदार और कौन कौन हैं इसे जाननेकी उसकी भारी उत्कंठा है। ब्रह्मांडकी रचना या उसकी उत्क्रान्तिकी चर्चाकी अपेक्षा ब्रह्मांडकी जीवसृष्टिकी बातोंमें मनुष्य ज्यादा दिलचस्पी दिखाता है।

पृथ्वी सूर्यमंडलका एक ग्रह है। दूसरे तारोंके भी ग्रह हो सकते हैं। इन ग्रहों पर जीवसृष्टिकी संभावना है या नहीं इस दृष्टिसे जीवसृष्टिके प्रश्नकी हम चर्चा करेंगे। मगर इसके साथ एक बातका हमें खास खयाल रखना होगा कि तारेकी उत्क्रान्ति और जीवसृष्टिकी उत्क्रान्ति एक ही प्रकारकी प्रक्रियायें नहीं हैं। वे दोनों एकदूसरीसे भिन्न बिलकुल अलग क्रियायें हैं। इन प्रक्रियाओंके बीच जो फर्क है उसे, द्रव्यकण एकदूसरेके साथ कैसे जुटते हैं और उनके बीच ऊर्जाका आदान-प्रदान किस तरह होता है वगैरहसे समझा जाता है। हाँ, जीवसृष्टिकी उत्क्रान्तिको तारा-उत्क्रान्तिका एक फल अवश्य माना जा सकता है। बुद्धिके आविर्भाववाला पृथ्वीका जीवन सूर्यसे बहकर पृथ्वीको मिलती रहती ऊर्जा पर निर्भर है। गत चार पांच अरब वर्षोंके सतत प्रवाहके कारण ही पृथ्वी पर जीवन पनप सका है।

कुछ साल पहले माना जाता था कि पृथ्वीका जीवन अद्वितीय है। इतना ही नहीं और सौरमंडलकी रचनाको भी अद्वितीय माना जाता था। मगर अब मालूम हुआ है कि हकीकत कुछ और है। जीवनप्राकट्यके लिये आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न होते ही जीवसृष्टिका उद्‌गम हो सकता है और उसी तरह बुद्धिका भी आविर्भाव हो सकता है। जीवन और बुद्धिके प्रकटीकरणको अब असाधारण या विरल घटना नहीं माना जाता है।

जीवन प्रकट होनेके बाद वह सतत रूपमें चालू रहे इसलिये कुछ परिस्थितियोंका मौजूद होना जरूरी है। उदाहरणार्थ किसी ग्रह पर जीवन प्रकटनेवाला हो तो उस ग्रहको

प्रकाश देनेवाला तारा दीर्घजीवी होना चाहिये और साथ-साथ उसका शक्ति-निर्गम एक-सा होना चाहिये। कुछ बातें और भी जरूरी हैं। ग्रहकी कक्षा तारेके आसपासके वस्तीक्षम प्रदेशमें होनी चाहिये ताकि तारेकी ऊर्जाका लाभ ग्रह पा सकें। तारेकी गरमीमें उपर्युक्त प्रदेशको आवश्यक गर्म करनेकी ताकत होनी चाहिये। जरूरतसे ज्यादा गर्मी या बहुत कम गर्मी जीवनके प्रकटीकरणके कामकी नहीं है। एक और बात भी है। ग्रहकी कक्षाका स्थिर ढंगकी होना जरूरी है।

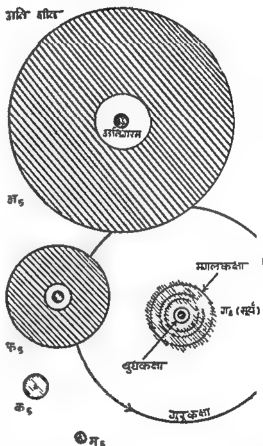
अब हम उपर्युक्त बातोंके आधार पर तारोंके ग्रहों परके जीवनके बारेमें चर्चा करेंगे।

प्रथम सवाल यह होगा — क्या दूसरे तारोंके ग्रह हैं ? तारोंके ग्रह हों तो भी उन्हें देख पाना संभव नहीं है। बड़ी दूरबीनें युग्म या बहुल तारोंके साथीदारोंको अलग जरूर दिखलाती हैं फिर भी अनेक युग्म (या बहुल) तारे ऐसे हैं कि उनके साथी तारोंका पता वर्णपट द्वारा ही मिलता है। तारोंके ग्रह हों तो उनकी टोह इस प्रकार ही लगानी रही। मगर यह काम आसान नहीं है। तारे अपने तेजकी छाप वर्णपट पर अंकित करते हैं मगर ग्रह वैसा नहीं कर सकते। ग्रह स्वयं प्रकाशित नहीं हैं, उनका तेज तारेसे प्राप्त तेज है। तारेके धुँधले साथीदारका पता तारेकी कक्षा-स्थितिके अवलोकनसे मिलता है। आजके समय, जिन दो तारोंके ग्रह होनेका मालूम हुआ है वे तारे **६१ हंस** और **७० सर्पधर** हैं। ये दोनों युग्मतारे हैं और हरेकके एक तीसरा निस्तेज छोटा साथीदार है जिसे खगोलशास्त्री ग्रह मानते हैं। **६१ हंसके** ग्रहकी द्रव्यसंपत्ति अपने गुरुग्रहसे १६ गुना है जबकि **७० सर्पधरके** ग्रहकी ११ गुना।

दूसरे तारोंके भी इसी प्रकार छोटे-बड़े ग्रह होनेका माना जा सकता है। हाँ, उन सभीको आजकल देख पाना संभव नहीं है। फिर भी उनके अस्तित्वको स्वीकार करके ग्रहोंके जीवनकी संभावनाका हम विचार करेंगे।

हमने देखा कि जीवन और विकासकी प्रक्रियाको संभव बनानेवाला तारा दीर्घजीवी होना चाहिये। जीवनकी उत्क्रान्ति कितने समयमें होती है यह कहना मुश्किल है। पृथ्वी पर जिस प्रकारका जीवन है वैसा जीवन अगर दूसरे ग्रहों पर होनेका मान लें तो उसका उत्क्रान्ति समय १ से ३ अरब सालका हो सकता है। पृथ्वी पर पिछले ३ अरब वर्षोंसे जीवसृष्टि लहलहा रही है। यह सत्य है कि जैविक उत्क्रान्ति यदृच्छा परिवर्तनोंके अधीन है: फिर भी पृथ्वी पर जो संभव हो सका है उसे कुछ परिवर्तनोंके साथ दूसरे ग्रहों पर होना मान लें तो जीवनकी उत्क्रान्तिका समय १ से ३ अरब सालका कल्पित किया जा सकता है। जैविक उत्क्रान्तिकी दर सब जगह एक-सी नहीं होनेकी। वह दूसरी बातों पर निर्भर रहेगी। इन बातोंमें से एक ग्रहका चुंबकीय क्षेत्र है और दूसरी उसका वातावरण। हमने देखा कि परिवर्तन यदृच्छा प्रक्रिया है और इस कारण उपर्युक्त बाबतोंसे हमारी गिनतीमें बहुत बड़ा फर्क आनेकी संभावना नहीं है। एक कारण यह भी है कि परिवर्तनकी ऊँची दर उत्क्रान्तिको हमेशा वेगवान नहीं बनाती है। हकीकत यह है कि ज्यादा परिवर्तन नुकसानकारक है। कुदरती क्रमको अनुकूल होनेके लिये कम परिवर्तन होना जरूरी है।

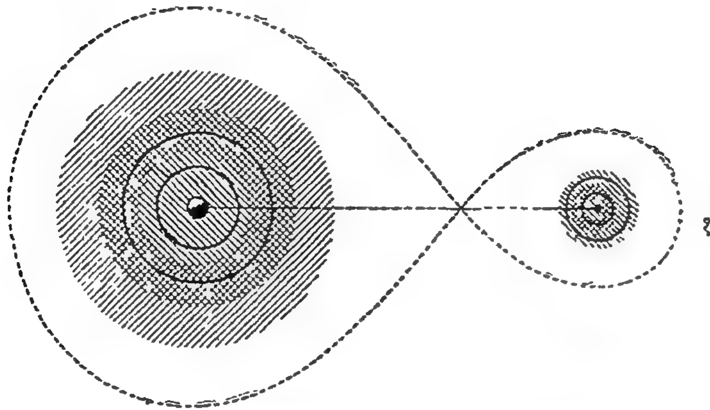
हमने देखा कि जैविक उत्क्रान्ति नियमबद्ध नहीं है। ताराकी उत्क्रान्ति नियमबद्ध है। इन बातोंको खयालमें रखकर हम देखेंगे कि ग्रह और जीवनके लिये कौनसे तारे अनुकूल हैं। ग्रहोंकी जीवसृष्टिको पालने पोसनेवाला तारा दीर्घजीवी होना चाहिये यह हम देख आये हैं। वर्णवर्गके ओ (O), ब (B) और अ (A) वर्गके तारे गरम तारे हैं। दीर्घ जीवनके लिये उनका मध्य क्रम (Main sequence) पर अनेक करोड वर्ष तक टिकना चाहिये। मगर ये तारे मुश्किलसे करोड वर्ष टिकते हैं। और इसी कारण ग्रहों परके जीवनके लिये वे अनुकूल नहीं हैं। मध्य क्रम पर टिकनेवाले तारोंमें म प्रकारके तारे सुदीर्घजीवी हैं। अदाजा यह है कि छोटे लाल तारोंकी आयुष्य-मर्यादा १०० अरब वर्षकी है। मगर यहाँ अकेले समयका महत्त्व नहीं है, तारोंकी एक-सी उष्मा देनेकी शक्ति भी महत्त्वकी है। इस दृष्टिसे म वर्गके छोटे तारे जो निस्तेज और ठण्डे हैं वे उपयोगी नहीं हैं। तेजस्वी तारोंकी उष्मा दूर-दूर तक पहुँचती है और इस कारण उसका समष्टिक्षम प्रदेश (Population) भी बहुत बड़े विस्तारवाला होता है। और यों गरम म तारोंके और क, ग और फ वर्गके तारोंके जीवसृष्टिवाले ग्रह होनेकी ज्यादा संभावना है। मगर हाँ, ये सारे तारे मध्य क्रम श्रेणीवाले तारे होना जरूरी है। मध्य क्रम श्रेणीसे अलग होनेवाले तारे लाल विराट तारे हो जाते हैं और विराट बननेकी प्रक्रियामें अपने ही ग्रहोंका नाश करते हैं।

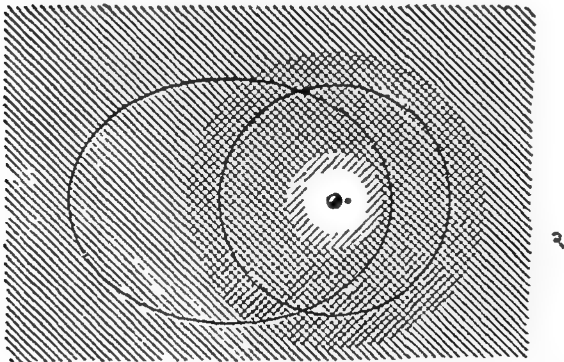


क, ग और फ वर्गके तारे जीवसृष्टिको धारण करनेवाले तारे हैं यह हमने देखा मगर ये सभी तारे एक से दीर्घजीवी नहीं हैं। आम तौर पर ग वर्गके (सूर्य प्रकारके) तारोंको दीर्घजीवी तारे माना जाता है। लेकिन क और फ वर्गके सभी तारोंको दीर्घजीवी नहीं माना जाता। इन वर्गों और दूसरे वर्गोंके तारोंके दो विभाग हैं —एक विभागके तारोंने पहले जन्म लिया है और दूसरे विभागवालोंने बादमें। इनमें से क वर्गके पहले (जन्मे हुए) तारे और फ वर्गके बादके तारे जीवनकी परिस्थितिके अनुकूल तारे माने गये हैं। उष्माकी दृष्टिसे तारोंके समष्टिक्षम प्रदेशका विस्तार कितना है वह ऊपर दी गयी आकृतिमें दिखाया गया है।

अपने मंदाकिनी विश्वमें १०० अरब तारे हैं। ग्रहोंकी संभावनावाले तारे अगर १ प्रतिशत माने जायें तो एक अरब तारोंको जीवनकी संभावनावाले तारे मानना पड़ेगा!

मगर यह हुई उष्माकी दृष्टिसे बात। जीवनकी संभावनाके लिये एक और पहलू भी है। वह है ग्रहकी अविचल कक्षा। पृथ्वीकी कक्षासे हम परिचित हैं। वह अविचल ढंगकी कक्षा है। युरेनसकी कक्षामें नेपच्युनके कारण थोड़ा विक्षेप उत्पन्न होता रहता है फिर भी वह अविचल कक्षा है। सूर्यमंडलके सभी ग्रहोंकी कक्षाये करीब अविचल प्रकारकी हैं। मगर युग्म तारोंकी कक्षायें वैसी नहीं हैं। वे थोड़ी बहुत पलटती रहती हैं। फिर भी इस बातका यह





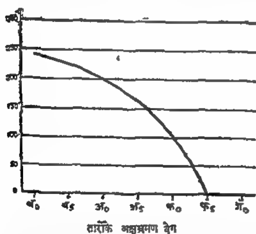
[आकृति १ के तारे एकदूसरेसे दूर अवस्थित साथी तारे हैं। मगर आकृति २ के तारे अत्यंत निकटके साथी तारे हैं। आकृति १ में बायीं ओरके तारेका अंदरूनी ग्रह, दायीं ओरके तारेका बाहरी ग्रह और आकृति २ का लंबवृत्त कक्षा-वाला ग्रह जीवनकी शक्यता धारण करनेवाले ग्रह नहीं हैं।

अर्थ नहीं है कि सभी युग्म तारोंके सभी ग्रहोंकी कक्षायें अविचल नहीं हैं। निरीक्षणोंसे जो पता चला है वह यों है–ग्रहोंके समष्टिक्षम प्रदेशमें ग्रहोंकी कक्षायें अविचल स्वरूपकी हों

इस वास्ते युग्मतारेके साथी तारे सूय-प्रकारके होने चाहियें और उनके बीचका अंतर ० ०५ आकाशीय इकाईसे कम या १० आकाशीय इकाईसे ज्यादा होना चाहिये। जिन युग्म तारोंके साथी तारोंके बीचकी दूरी ० ०५ आकाशीय इकाई से २ आकाशीय इकाई की है वहाँ जीवनकी क्षमतावाले ग्रहोंका अस्तित्व नहीं है।

अंतरिक्ष-स्थित बहुतसे तारे युग्म तारे या बहुल तारे हैं। हमने अब तक जो चर्चा की उसके संदर्भमें अब यह कह सकते हैं कि इन तारोंमेंसे १ या २ प्रतिशत तारे ही जीवनकी *संभावनावाले ग्रहोंको धारण करते हैं। अलबत्ता इन ग्रहोंको दूरबीनसे देख पाना सम्भव नहीं है।* फिर भी आज यह कल्पना जोरों पर है कि जो तारे अकेले-से मालूम होते हैं वे शायद ग्रहोंवाले तारे हैं।

तारोंके ग्रह हो सकते हैं उसका एक सूचन तारोंके कोणीय वेगमान परसे मालूम किया गया है। वर्णपटके हिसाबसे मालूम हुआ है कि फ. प्रकारके तारोंसे ज्यादा गरम तारे (अ, ब, ओ वगैरे) अपनी धुरी पर अत्यंत तेजीसे भ्रमण करते हैं। फ. से म वगैरे तारोंकी बात *उल्टी है। उनका अक्षभ्रमण अत्यंत मंद है। इसका अर्थ यह है कि तारोंका कोणीय* वेगमान (=द्रव्यमान×भ्रमणवेग) फ. प्रकारसे आगेके (ग वगैरह) प्रकारके तारोंमें बिल्कुल कम हो जाता है और सो भी यकायक। इसका क्या अर्थ घटाया जाय? सूर्य ग प्रकारका तारा है। उसका कोणीय वेगमान २ प्रतिशत है। समग्र सूर्यमंडलका कोणीय वेगमान सौ प्रतिशत मान लें तो ९८ प्रतिशत कोणीय वेगमान सूर्यमंडलके ग्रहोंमें है। बड़े ग्रह गुरु, शनि, युरेनस वगैरह अपनी धुरी पर बहुत ही कम घंटोंमें चक्कर काट लेते हैं मगर सूर्यको एक अक्षभ्रमण पूरा करनेमें २४ से ३१ दिवस लग जाते हैं। इन बातोंसे यह सोचा जा सकता है कि फ से म प्रकारके तारोंका अल्प कोणीय वेगमान उन तारोंके ग्रह होनेका निर्देश करता है और यों इन-ग्रहोंमें से कई एक ग्रहों पर जीवनके पनपने की कल्पना की जा सकती है। हाँ, एक बात सही है कि इस जीवनके पृथ्वीके जीवन जैसे होनेकी कोई संभावना नहीं है। कुछ भी



तारोंके अक्षभ्रमण वेग

हो, एक बात निश्चित है कि जहाँ कहीं जीवन पनपा होगा वहाँ बुद्धिका प्रादुर्भाव होगा ही और यों अपने ताराविश्वमें और ब्रह्मांडमें बुद्धिमान जीवोंके अस्तित्वका इन्कार नहीं किया जा सकता है। इन बुद्धिमान प्राणियोंके साथ हमारा संपर्क हो सकेगा या नहीं वह एक बड़ी बात है। मौजूदा हालत यह है कि हम गुरु तक अमानव-यान नहीं भेज सके हैं, उस परिस्थितिमें दूरके ग्रहोंसे समानव-यानसंपर्क स्थापित करनेकी बात करीब करीब असंभवित

है। उसे संभव होना मान ले तो भी हमसे नजदीकके तारेके ग्रह तक हो आनेमें इतना समय लग जायगा कि उस संपर्कका कोई अर्थ निकलेगा ही नहीं। हमारे अंतरिक्षयान १/१० प्रकाशवेगसे अंतरिक्षमे भ्रमण करें तो भी हमसे अत्यंत नजदीकके तारे तक पहुँचनेमें ४३ वर्षका समय वीत जायगा।

एक अन्य कल्पना रेडियो सन्देशकी है। अगर हम २१ से. मी. की तरंगलम्बाईका रेडियो-संकेत प्रसारित करें तो वहुत संभवित है कि जिन ग्रहोंमें विकसित वुद्धिशाली तत्त्व है वहाँ वह ग्रहण किया जाय और शायद उसका उत्तर भी हम पाये। सवसे वडी १८० मीटर व्यासवाली रेडियो-दूरवीनके द्वारा प्रवल रेडियो-सदेश भेजे जा सकते हैं। मगर प्रश्न होगा कि उस सदेशका रूप किस प्रकारका हो? जिस ग्रह तक हम संदेश पहुचाना चाहते हैं उसकी संस्कृतिके अनुरूप वह होना चाहिये। मगर इस सस्कृतिकी टोह कैसे पायी जाय? एक कल्पना आसान है—किसी भी ग्रहकी वुद्धिशाली प्रजा गणितशास्त्रमे पारंगत होनेकी ही और इस कारण अगर हम गाणितिक सदेश भेजे तो संभव है कि वह प्रत्युत्तरित भी हो। मगर संदेश के प्रकार खोजनेका काम भी उतना ही मुश्किल है। ज्यादातर वैज्ञानिकोंकी राय है कि रेडियो-संकेतकी विभिन्न चमकोंके द्वारा १–२–३ की संज्ञाओंका सदेश भेजना। दूरके ग्रहों परके वुद्धिमान जीव इन सकेतोंका अर्थ तुरन्त ताड़ लेगे और उसका प्रत्युत्तर भी हमे उसी प्रकार ही देंगे।

उपर्युक्त वातका हँसी-मजाक माना जाना भी स्वाभाविक है। कारण यह है कि आंत-तारिकीय सदेश दूरकी ही वात होगी। नजदीककी आंतर्ग्रहीय सदेश-व्यवस्थाके वारेमें भी अभी तक किसी पद्धतिका हम निर्माण नहीं कर सके हैं। वहुत संभव है कि पद्धतिको खोज लेनेके वाद हम सूर्यमंडलसे दूरके ग्रहोंके वारेमे उत्साह न दिखायेगे: हमसे अत्यंत नजदीकके तारे तक पहुँच कर हम तक वापस आनेमे रेडियो संकेत को ८ से ९ वर्ष का समय लगेगा।

तारोंके ग्रहों पर वुद्धिमान तत्त्व मौजूद है या नहीं इस चर्चाको यहाँ ही समाप्त करके आइये अव हम अपने सूर्यमडलके ग्रहोंकी और उनकी जीवसृष्टिकी वात करें।

पृथ्वीके मानव चंद्र, शुक्र और मंगलको पहुँचनेवाले अंतरिक्षयान छोड़ चुके हैं। दूसरे ग्रहोंको पहुँचनेवाले अंतरिक्षयान नजदीकके भविष्यमे छोड़े जायेंगे। चंद्र पर स-मानव अंतरिक्षयान उतारनेकी तैयारियाँ चल रही हैं। आदमीको चंद्र तक भेजनेकी कल्पना करना एक वात है मगर उसको चंद्र पर या दूसरे कोई ग्रह पर सहीसलामत उतारनेकी और वहाँसे फिर वापस पृथ्वी तक ले आनेकी वात और है। मनुष्यके चंद्र पर या ग्रह पर उतरनेसे पहले उस आकाशीय ज्योतिके वारेमें पूरी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। जिस परिस्थितिमें मनुष्य पृथ्वी पर जिन्दा रह सका है वैसी परिस्थिति चंद्र पर या ग्रह पर न भी हो और इस कारण नई परिस्थितिके अनुकूल होनेके लिये क्या व्यवस्था करना आवश्यक है वगैरहके वारेमे खोजवीन हो रही है।

चंद्र और ग्रहोंके वारेमे प्राप्त जानकारियाँ भौतिक रासायनिक और जैविक प्रकारकी हैं। इन सवमे सवसे ज्यादा महत्त्वकी जानकारी जीवसृष्टिकी है। ग्रहों पर जीवसृष्टि है या नहीं

इस प्रश्नने अनेकोंका ध्यान खींचा है। ग्रहोंकी जीवसृष्टि आजकल विशेष अभ्यासका विषय हो गयी है।

मगर ग्रहोंकी जीवसृष्टिके अभ्यासका आधार क्या मानना उचित होगा—अपनी पृथ्वी पर है वैसी प्रोटीन और न्युक्लिक एसिड आधारित जीवसृष्टि या अन्य प्रकारकी जीवसृष्टि? ग्रहोंकी जीवसृष्टि हमारी जीवसृष्टि जैसी न हो तो वह कौनसे पदार्थों पर आधारित होना सभव है इसकी खोज जीवसृष्टिके उद्गमके बारेमें हमें नई रोशनी प्रदान करेगी।

जीवन अमुक आणविक सयोजनोंकी अभिव्यक्ति है यह हम जानते हैं। साथ ही साथ हम यह भी जानते हैं कि ऐसे आणविक सयोजन हमेशाके लिये अपना अस्तित्व प्रकट नहीं करते हैं। ब्रह्माड शास्त्रियोका कहना है कि उपर्युक्त सयोजनोंके अस्तित्वको सभव बनानेवाले तत्त्व और अणु भी आदि-अनादि नहीं हैं। द्रव्य भी आदि-अनादि नहीं हैं और यो न्युक्लिक एसिड वगैरह भी आदि-अनादि नहीं हैं। मतलब यह कि उनका और जीवनका आविर्भाव अणुओंकी यादृच्छिक रासायनिक प्रक्रियाके अधीन है।

और पृथ्वीको भी आदि-अनादि कहाँ माना जाता है? जिन तत्त्वोंसे पृथ्वीका पिंड बना है उन तत्त्वोंको विश्वके अन्य पदार्थोंका भी उपादान माना गया है। विश्वोत्पत्तिकी चर्चा यहाँ अनावश्यक है। एक बात अब बिलकुल स्पष्ट हो गई है कि ब्रह्माडमें जो तत्त्व सबसे ज्यादा प्रमाणमें मौजूद है वह है हाइड्रोजन। हाइड्रोजनसे कम विपुल तत्त्वोंका अनुक्रम हेलियम, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन वगैरहका है। सृष्टिकी उत्पत्तिके ये सभी कारणभूत अग हैं। मगर इसका अर्थ यह नहीं है कि पृथ्वीकी उत्पत्तिके समय ऑक्सीजन स्वतत्र रूपमें मौजूद था। उस समय ऑक्सीजन और दूसरे तत्त्व अलग रूपके न होकर हाइड्रोजन के साथ मिलकर स्थिर वायुओंके रूपमें प्रकट हुए थे। यो पृथ्वीका आदि वातावरण मीथेन, एमोनिया और पानीकी बाष्पसे बना हुआ मान सकते हैं। आज पृथ्वीके वातावरणमें मीथेन और एमोनिया नहीं हैं। इसके अलावा उसने अपना हाइड्रोजनका आच्छादन भी गँवा दिया है। हाँ, मीथेनके थोडे भावन और एमोनियाके नाइट्रोजनका पकड रखनेमें पृथ्वी सफल हुई है।

कार्बनवाले सेन्द्रिय सयोजनोंके मिश्रणोको जीवनतत्त्व माना जाता है। ये मिश्रण किस प्रकार उत्पन्न होते हैं यह स्पष्ट अरसे तक मालूम न हो सका था। आज उन्हें हम जीवन प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होते देख पाते हैं। फिर भी पुरातन कालमें वे किस प्रकार उत्पन्न हुए होंगे इसकी कोई कल्पना न की जा सकी थी। प्रोफेसर हेरोल्ड ऊरी और उनके शिष्य डॉ स्टेनली मिलरने एक प्रयोग हाथमें लिया। उन्होंने कल्पना की कि पृथ्वीके आदिकालमें भी पृथ्वीके वातावरणमें बिजली कौंधती होगी। उन्होंने मीथेन, एमोनिया और पानीकी भापवाला पृथ्वीका आदि वातावरण प्रस्तुत करके उस पर बिजलीको डाला। वायुओंके उपर्युक्त मिश्रणमेंसे बिजली जब गुजरी तब अनेक प्रकारके कार्बनिक द्रव्योंकी उत्पत्ति हुई जिनमें महत्त्वके एमिनो एसिड भी थे। एमिनो एसिड प्रोटीन बनानेवाले पदार्थ हैं। प्रो ऊरीने इस प्रयोगसे साबित कर दिखाया कि जिनका विकास सजीव तत्त्वोंमें हो सकता है वैसे सेन्द्रिय मिश्रण पृथ्वीके आदि कालमें पृथ्वी पर कुदरती रूपमें उत्पन्न हुए होंगे।

और यों, जो बात पृथ्वी पर संभवित बनी वह अन्य जगहोंमें—अन्य ग्रहों, उपग्रहों वगैरह पर—भी बन सकती है। हो सकता है कि उसका प्रकार पृथ्वीसे कुछ अलग हो। चंद्र और ग्रहों तक संदेश पहुँचाना अभी संभव नहीं हुआ है और इस कारण उनकी भूमिकी संरचनाके बारेमे निश्चयात्मक रूपसे कुछ कहना बहुत मुश्किल है। फिर भी उल्काओंके आधार पर कुछ कल्पना हम कर सकते हैं। वैज्ञानिकोंको टूटते तारोंमे सेन्द्रिय मिश्रण हाथ लगे हैं। ये मिश्रण बिना विद्युतकी किसी दूसरी प्रक्रिया द्वारा हाइड्रोजन, ऑक्सीजन और कार्बनसे उत्पन्न होनेका हम मान सकते हैं। और यों सेन्द्रिय मिश्रण सारे ब्रह्मांडमे उत्पन्न होते हैं ऐसा मान ले तो दूसरे ग्रहों और अन्य तारोंके ग्रहों पर ऐसे मिश्रणोंका होना माना जा सकता है। इतना ही नहीं उनका किसी भी प्रकारकी जीवसृष्टिके रूपमे उत्क्रान्त होनेका भी माना जा सकेगा। एक अर्थ यह भी घटा सकते हैं कि पृथ्वी पर जिस प्रकारकी अनुकूलतायें हैं वैसी अनुकूलतायें अगर दूसरे ग्रहों पर भी मौजूद हों तो वहाँ जीवनके प्रादुर्भाव होनेकी पूरी संभावना है।

जीवन और उसके प्रादुर्भावके बारेमें जरा विस्तारसे सोचेंगे।

जीवन अस्तित्वमें कैसे आया होगा, इसका कोई स्पष्ट खयाल हमको नही है। साथ-साथ कौनसी शक्तिके मृदु स्फुल्लिगोंके कारण अक्रिय पदार्थोमेंसे चेतनाका स्रोत बहना शुरू हुआ होगा उसका पता लगाना भी मुश्किल है। फिर भी पृथ्वी पर फैले हुए जीवनकी परिस्थितियोंकी दूसरे ग्रहोंके जीवनके संदर्भमें विवेचना करना ठीक होगा।

पृथ्वी परका जीवन प्रोटोप्लाझ्मिक, कार्बन आधारित और श्वासमें ऑक्सीजनका उपयोग करनेवाला है। ऐसे जीवनके प्राकट्य और सातत्यके लिये निम्न लिखित परिस्थितियोंका मौजूद होना अनिवार्य लेखा जाता है।

(१) जीवसृष्टिके निर्माणके लिये आवश्यक आधारभूत पदार्थ अस्तित्वमें होने चाहिये। वे पदार्थ प्रचुर मात्रामें और साथ-साथ आसानीसे और तुरन्त प्राप्त हों ऐसा होना चाहिये। और वे पदार्थ स्थिरतावाले तथा अनेक प्रकारकी संकुलतावाले, यौगिक पदार्थोंको उत्पन्न करनेकी क्षमतावाले, रासायनिक गुणधर्मोवाले होने चाहियें। और उत्पन्न होनेवाले पदार्थ आसानीसे मूलभूत तत्त्वोंमें बदल न जायँ उस प्रकारके पदार्थोंकी उत्पत्ति होनी चाहिये।

(२) आधारभूत पदार्थ और उसके यौगिक पदार्थोंको टिकानेवाला और उनकी रासायनिक प्रक्रियाओंको मदद रूप होनेवाला कोई द्रावक होना चाहिये।

(३) ऊर्जा प्रकट करनेवाली किसी भी प्रकारकी रासायनिक प्रक्रिया मौजूद होनी चाहिये। इस प्रक्रियाके द्वारा उष्मा, प्रकाश, विद्युत या अन्य किसी प्रकारका विकिरण पैदा होना चाहिये। और यों यह प्रक्रिया जीव-रासायनिक (ऑक्सीजन पूरक-हारक) प्रकारकी या ताप-नाभिकीय (संघटन, संगलन, क्षय) प्रकारकी होनी चाहिये।

(४) प्रतिक्रियक पदार्थ प्रचुर मात्रामें उपलब्ध होने चाहियें ताकि रासायनिक या नाभिकीय प्रतिक्रियाओंका सातत्य, खंडित न हो।

उपर्युक्त बातोंके हिसाबसे पृथ्वी परकी परिस्थितियां सानुकूल हैं। वहाँ आधारभूत पदार्थ कार्बन है, द्रावक पानी है, पैदा होता विकिरण जैव-रासायनिक प्रकारका है और प्रतिक्रियक ऑक्सीजन है।

कार्बन आधारित जीवसृष्टिको वातावरणमें ही ऑक्सीजन प्राप्त होना चाहिये ऐसा भी नहीं है (बेक्टेरिया अपने लिये यौगिक पदार्थोंमेंसे ऑक्सीजन प्राप्त करता है)। जीवन-सातत्यके लिये–जीवनकी प्रक्रियाओंको चालू रखनेको और वेगवान बनानेको–प्रकिण्वों (Enzymes)की आवश्यकता रहती है। प्रकिण्व जटिल प्रकारके उद्दीपक हैं। वे अपना काम उत्तम प्रकारसे करते रहें इसलिये निश्चित तापमानका सातत्य आवश्यक है। तापमान कम होने पर प्रकिण्वोंकी प्रवृत्तियाँ बन्द हो जाती हैं और ज्यादा होने पर प्रकिण्वोंका नाश हो जाता है।

पृथ्वी परका जीवन १००° सें ग्रे से – ७५° सें ग्रे तककी मर्यादावाला है।

बुध ग्रह पर पृथ्वीके जैसा जीवन नहीं है।

बुध या अन्य ग्रहों परकी जीवसृष्टि हमारी जीवसृष्टिके प्रकारकी ही हो यह जरूरी नहीं है। वह अन्य प्रकारकी भी हो सकती है। प्रोटोप्लाज्मिक होनेके स्थानमें वह रवादार या स्फटिकीय प्रकारकी हो सकती है जहाँ सिलिकोन उसका आधारभूत पदार्थ बन सकता है। द्रावक पदार्थोंके रूपमें एमोनिया, प्रवाही मीथेन, हाइड्रोजन सल्फाइड या कार्बन डायसल्फाइड काम आ सकते हैं और प्रतिक्रियकके रूपमें गंधकका उपयोग हो सकता है। रही प्रकिण्वोंकी बात। अनुकूल तापमान सहनेवाले अन्य प्रकारके प्रकिण्वोंकी मौजूदगीका इन्कार करना असभव है।

उपर्युक्त सारी बातोंका एक अर्थ यह है कि जीवन केवल किस्मतकी या आकस्मिक सपानोंकी बात नहीं है। अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न होते ही उसका उद्गम होनेका ही–चाहे वह एक प्रकारकी या अन्य प्रकारकी जटिलतावाला हो। जीवनके उद्गमके बाद बुद्धि-शाली तत्त्वका भी उद्गम होगा ही। हाँ, उसका प्रकार पृथ्वी परकी जीवसृष्टिके ढंगका शायद न भी हो।

बुध अत्यंत छोटा ग्रह है। वह वातावरण रहित ग्रह है। सूर्यसे ज्यादा निकट होनेसे उसे ज्यादा गर्मी मिलती है। बुध सूर्यको हमेशा अपनी एक ही ओर रखकर उसकी परिक्रमा करता है। इसीलिए बुधका एक भाग अत्यंत गर्म है तो दूसरी ओर का भाग अत्यंत ठंडा। बुधकी धरतीके महत्तम और लघुतम तापमान अनुक्रम से ४०० सें ग्रे और –२७० सें ग्रे हैं। इन तापमानोंको बरदाश्त करनेवाली जीवसृष्टि बुध पर होनेकी संभावनाका वैज्ञानिक लोग इन्कार करते हैं।

फिर भी एक प्रश्न कई दफा पूछा गया है कि बुधके अतिशय उष्ण और अतिशय शीत प्रदेशोंके ठीक बीचमें जो संधिप्रदेश है वहां जीवसृष्टिके पनपनेमें कौनसी बाधा है?

उपर्युक्त संधिप्रदेशकी जीवसृष्टिकी बात पृथ्वीके संध्यासमयको खयालमें रखकर की जाती है। पृथ्वी पर वातावरण है इस कारण संध्या समयका तापमान आह्लादक मालूम होता

है। वुव पर यह स्थिति नहीं है। वहाँ गरमीका मतलव गरमी और उसके अभावका अर्थ कड़ाकेकी सर्दी ही होता है। इस तथ्य तथा अन्य कई तथ्योंको ध्यानमे रखकर वैज्ञानिकोंने जाहिर किया है कि आजकी स्थितिमें वुध पर किसी भी प्रकारकी जीवसृष्टिके अस्तित्वका संभव नहीं है।

शुक्र हमारे पड़ोसका ग्रह है। वह सदैव वादलोंकी घटासे आच्छादित रहता है और इस कारण उसकी धरतीको हम कभी देख नहीं पाये हैं। शुक्रके वारेमे हमें जो जानकारी प्राप्त हुई है वह खास करके उसके वातावरणमे प्रचुर मात्रामें कार्वन डायोक्साइड होनेकी है। हम यह भी कल्पना कर सकते हैं कि यह वायु शुक्रके वातावरणके वाहरी हिस्सेमे है। हो सकता है कि कार्वन डायोक्साइडके वादलोंके नीचे शुक्र भूमिकी ओरके वातावरणमें ऑक्सीजन हो। अव अगर यह माना जाय कि शुक्र पर पानी है तो हमे वहाँ, कार्वन-आधारित जीवसृष्टि होनेकी संभावनाका स्वीकार करना पड़ेगा। और अगर ऐसी जीवसृष्टि वुद्धिमान तत्त्ववाली हो तो अपने (शुक्र) से वाहरके जगतके वारेमें वह संपूर्णतः अज्ञात होगी। वह ग्रहमंडूक सृष्टि होनेकी।

हम सभीका अनुभव है कि सर्द ऋतुके वादलोंके दिनोंमें हम कम ठंडी महसूस करते हैं। गरमीके दिनोंमें वादलोंके कारण उमस होती है। वादल हटते ही धाम और गरमीका जोर भी कम हो जाता है। शुक्र पर हमेशा वादल रहते हैं इस कारण उसकी भूमि सदैव उमस महसूस करती होगी। शुक्रभूमिका तापमान ३०० से. ग्रे. हो तो वहाँकी कार्वन आधारित जीवसृष्टि अस्थिर प्रकारकी होगी—वहाँ पदार्थोंका विघटन हो जायगा। आधुनिक संशोधनों से मालूम हुआ है कि शुक्र-भूमि पर सव जगह एक-सा तापमान है। वहाँ रातकी सर्दी नहीं है। नये अन्वेपण शुक्रभूमिके वातावरणका तापमान २८० सें. ग्रे. होनेका इशारा करते हैं। इस तापमानको वरदाश्त करनेवाली जीवसृष्टिकी कल्पना करना मुश्किल है।

मंगलका नाम लेते ही उसकी नहरें और जीवसृष्टिकी वातें हमारे दिमागमें चक्कर काटना शुरू करती हैं। मंगल अकेला ही एक ग्रह है जिसका अच्छा निरीक्षण किया जा सके। वहुत से लोगोंने इस निरीक्षणका कुछ खास अर्थ मान रखा है। वे समझते हैं कि सिनेमाके पर्दे पर दिखाई देनेवाली तस्वीरोंकी तरह मंगलकी भूमि दूरवीनोंसे दिखाई देती है। मगर हकीकत यह नहीं है। मंगलको वहुत वड़ा करके नहीं देखा जा सकता। प्रतिविवको वड़ा करने पर वह धुँधला हो जाता है और तव मंगलकी भूमिका स्पष्ट दर्शन नहीं हो सकता है। 'मंगल पर नहरें हैं या नहीं' वाले विवादने खगोलशास्त्रियोंको दो समूहोंमे वाँट दिया था। एक समूहका कहना था कि मंगल पर नहरें हैं और जवकि दूसरा समूह उस वातको आँखोंका भ्रम समझता था। यह मतभेद वहुत उग्र रूपका था। फिर भी वह ऐसी समस्या थी कि जिसका निराकरण आसान नहीं था। मंगल पर नहरोंका होना माननेवाले उन नहरोंको वनानेवाले वुद्धिमान जीवोंका मंगलपर अस्तित्व होना मानते थे। मंगलका तापमान २५ सें. ग्रे. से ५० सें. ग्रे. तकका है, उसका वातावरण वहुत पतला है और उसमें ऑक्सीजन और पानीकी भाप वहुत कम मात्रामे हैं वगैरह वातोंका हवाला देकर अन्य खगोलशास्त्री कहते थे कि मंगल पर नहरें नहीं हैं और वुद्धिशाली जीवसृष्टिके अस्तित्वकी वात कोरी कल्पना है।

आम आदमी इन दो समूहोंके अलग मतोंके कारणोंको जानना चाहें यह स्वाभाविक है। वे पूछेंगे कि क्या इन लोगोंको मंगल-भूमिके अलग दर्शन होते होंगे? क्या छोटी-बड़ी दूरबीनें अलग-अलग बातें दिखाती होंगी? क्या दूसरे यन्त्रोंके भी यही हाल होते होंगे?

इन बातोंको स्पष्ट करना जरूरी है। दूरबीनोंके चित्रोंमें कोई फर्क नहीं आता है। सभीमें एक-से चित्र रहते हैं। दूरबीन अगर बड़ी है तो आकाशीय ज्योतिका दर्शन और भी स्पष्ट होता है। फर्ककी बात दर्शनकी नहीं, उस परसे किये जानेवाले अनुमानोंकी है। दूसरे यन्त्रोंकी भी यही बात है। ये अनुमान कभी-कभी हमारा मजाक उड़ानेवाले भी हो जाते हैं। माउन्ट पालोमर वेधशालाके ख्यातनाम खगोलशास्त्री डॉ० एडिसन पेटिटने अनेक वर्ष तक मंगलका सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उन्होंने अपना दृढ़ मत जाहिर किया था कि मंगल पर की तथाकथित नहरोंको वह कभी नहीं देख पाये हैं। मंगलकी नहरोंको वह दिमागी उपज कहते थे। मगर एक दिन उन्हें मंगल पर नहरोंकी-सी रेखा-रचना दिखाई दी। वह उसे ताकते ही रह गये। सौभाग्यसे आसमान साफ था और पृथ्वीका वातावरण स्थिर था। उन्होंने घंटों तक उन रेखाओंका निरीक्षण किया और बादमें जाहिर किया कि मंगल पर एकदूसरीको काटनेवाली रेखाओंका जाल है!!

वर्णविश्लेषकसे शुक्रके बारेमें कैसी भ्रान्ति उत्पन्न होती है उसकी बात अब करेंगे।

शुक्र पर अगर पानी है तो वह उसके वातावरणमें भापके रूपमें हो सकता है। अब यह भाप शुक्रके बाहरी भागवाले कार्बन डायोक्साइडके बादलोंके नीचे हो तो वर्णविश्लेषकसे उसका पता नहीं चलनेका। और शुक्रके वातावरणको कार्बन डायोक्साइडसे ही बना हम मानेंगे!

मतलब यह कि सिर्फ दिखाई पड़नेवाली बातोंके आधार पर सही अनुमान करना आसान नहीं है। इस तकलीफको दूर करनेके लिये अन्य और प्रयोग काममें लाये जाते हैं। विभिन्न रंगोंके फिल्टरोंका उपयोग करके दूरबीनसे छवियाँ प्राप्त की जाती हैं। तापमानका पता लगानेके लिए अलग तरहके साधनोंका इस्तेमाल किया जाता है वगैरह। पृथ्वीका वातावरण भी अपनी टाँग अड़ाता है इस कारण आकाशीय पदार्थोंके निरीक्षणका काम वातावरणके ऊपरके पतले स्तरोंमेंसे करनेके प्रयोग चल रहे हैं। बलूनके नीचे लगी दूरबीनको छ से सात हजार मीटर ऊँचे भेजकर उसके द्वारा अंतरिक्षीय ज्योतियोंके फोटो लिये जाते हैं। इसके अलावा अंतरिक्षयानोंके द्वारा चंद्र, मंगल और शुक्रके बारेमें विभिन्न प्रकारकी जानकारियाँ प्राप्त की जाती हैं। जिनमें मुख्य वातावरणकी और सतहकी जानकारियाँ हैं। आकाशीय पदार्थके वातावरणमें कौन-सी गैसें हैं, उस ज्योति पर गिरनेवाला अल्ट्रावायोलेट प्रकाश कैसा प्रबल है व० समझनेके प्रयत्न किये जाते हैं और इन सबोंके आधार पर, ग्रहों परके जैव पदार्थोंके अस्तित्वके और वहाँकी जीवसृष्टिकी संभावनाके बारेमें अनुमान किये जाते हैं।

इनके अलावा ग्रहोंके वातावरण और ग्रहभूमिके रासायनिक स्वरूपोंके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेके प्रयत्न किये जाते हैं। मंगल पर की जीवसृष्टि सूक्ष्म प्रकारकी है या किसी अन्य प्रकारकी यह खोजका विषय बना है। अगर वह पृथ्वीकी जीवसृष्टिके ढंगकी हो तो उसे न्यूक्लिक एसिड और प्रोटीन धारण करनेवाली होना आवश्यक है। इन सारी बातोंकी जान-

कारी प्राप्त करनेके लिये मंगलभूमिकी मिट्टीका अभ्यास करना जरूरी है। नजदीकके भविष्यमें, स-मानव अवकाशयान मंगल पर उतारा जाय उससे पहले मंगल की मिट्टी प्राप्त की जायगी और उसीके गवेषणात्मक परीक्षणके वाद आदमीको मंगल पर भेजनेकी और उतारनेकी वाते सोची जायेंगी।

मंगल परके सूक्ष्म जीवोंके अस्तित्वकी वातसे कुछ धक्का सा लगेगा। मंगल परके वुद्धिमान प्राणीके अस्तित्वमें विश्वास करनेवालोंको अपनी धारणा गलत होनेका दुःख होगा। मगर विज्ञानका ढंग उसका अपना है। वह हमेशा सत्यकी खोजमें प्रयत्नशील है। साधनोंकी और निरीक्षणोंकी कमी या त्रुटियोंके कारण किये गये अनुमानोंके झूठे सावित होते ही उन्हें अमान्य करनेमें विज्ञान नहीं झिझकता है। 'मंगल पर वुद्धिमान जीवोंका अस्तित्व है' इस वातको लेकर नहरोंकी वातने जड़ पकड़ी थी। जव नहरोंका ही अस्तित्व खटाईमें हो तो उनको वनानेवालोंके अस्तित्वकी वात भी मिट जाती है।

मंगल पर अनेक स्थानों पर काली साया लिये प्रदेश हैं। ये जगहें सभी ऋतुओंमें एक-सी नहीं दिखाई देतीं। उनके रंगों और आकारोंमें फर्क पड़ता है। इन वातोंको लेकर कल्पना की गई कि मंगल पर वनस्पतिका अस्तित्व है। मंगलकी ध्रुवटोपियोंको पानीके वर्फसे वना माना जाय तो वहाँका वर्फ पिघलकर पानीके रूपमें विषुववृत्तकी ओर वहता माना जा सकता है। उपर्युक्त प्रदेशोंके कालेपनकी गहराई ध्रुवसे विषुववृत्त तककी है और प्रदेशोंके सूखने पर वह विषुववृत्तसे ध्रुवोंकी ओर सरकती मालूम हुई है। मंगलकी ध्रुवटोपियोंको यदि महासागर माना जाय तो यह वात दुविधाजनक होगी। पृथ्वी परका पानी विषुववृत्तसे ध्रुवोंकी ओर वहता है मंगलमें वह क्रम क्यों उलट गया होगा?

वर्णविश्लेषक यंत्रों द्वारा भी उपर्युक्त काले प्रदेशोंको वनस्पतियुक्त माना गया है। इस धारणाके मूलमें मंगलके काले और उजले प्रदेशोंसे आनेवाले प्रकाश गवाह हैं। वर्णपटमें दिखाई देनेवाली शोषक रेखायें कार्वनिक पदार्थके अस्तित्वका संकेत देती हैं। कार्वन जीवन का प्रधान तत्त्व है यह हम जानते हैं और यों मंगल परके काले प्रदेशोंको वनस्पतिवाले प्रदेश होनेका मान सकते हैं।

एक अन्य दलील भी दी जा सकती है। धूलके आंधी-तूफान मंगल पर हमेशा चलते रहते हैं। धूलके वादल मंगलके वायुमंडलमें अनेक दिन तक छाये रहते हैं। इन वादलोंके मिटने पर उनकी धूलका काले प्रदेशों पर छा जाने और यों उनको दृष्टिसे ओझल करनेका वन पड़ना स्वाभाविक लेखा जायगा। मगर यह होता नहीं दिखाई दिया है इसलिये माना गया कि धूलकी परतोंके पार जो दिखाई देता है वह वनस्पति सृष्टि होनी चाहिये।

मगर ये सारे अनुमान ही हैं। इन वातोंकी छानवीन दूरवीनयुक्त वलूनोंके द्वारा और अवकाशयानोंके द्वारा अव की जा रही है और उम्मीद है कि उनकी सच्चाई परखी जायगी।

इस सिलसिलेमें एक नये आविष्कारका उल्लेख करना ठीक रहेगा।

ऊपर जो बातें कही गयी उनमें मगलको बगैर समतल भूमिवाला ग्रह माना गया है। मगर आजका अन्वेषण इस चित्रको बदल रहा है। २५ मीटरके रेडियो-दूरबीन से डा कार्ल सागन और डॉ जेम्स पोलाकने मगलभूमिका निरीक्षण करनेके बाद जाहिर किया है कि मगल परके उजले प्रदेश मगलकी नीची जमीन है और काले प्रदेश समतल सतहवाले उच्च प्रदेश हैं। ये उच्च प्रदेश उनके निकट के नीचे, उजले और धूलसे आच्छादित रण प्रदेशोंसे १० से १४ किलोमीटर ऊँचे हैं। ऊँचाईके फर्कके कारण इन दोनो प्रदेशोंके वायुदाबमें भी फर्क पड गया है।

जिसकी ज्यादातर प्राणवायु खतम हो चुकी है उस लाल मगलको अब पृथ्वी जैसा ऊँचा-नीचा भूपृष्ठवाला ग्रह मानना पडेगा!

मगल पर नहरें न हो तो न सही, वनस्पतिवाले उसके प्रदेश उच्च प्रदेशमें पलट जायें या कुछ और करतब दिखावें, मगलकी ओरके हमारे आकर्षणमें कमी नही आनेकी। मगलने हम पर ऐसी मोहिनी डाली है कि मगल पर जीवसृष्टि नही होनेका फैसला सुनने पर भी हम अपनी लगनको न छोडेंगे। हम कहेंगे, कि मगल परकी जीवसृष्टि नष्ट हो गई हो तो कोई हर्ज नही, पुराने जमानेमें वह वहाँ थी ही और नष्ट होनेसे पहले अपने अस्तित्वको बनाये रखनेका उसने प्रयत्न किया ही होगा। मगल पर हम जब उतरेंगे तब इस प्रयत्नकी निशानिया अवश्य देख पायेंगे।

अगर यह दलील काम कर गई तो हम कहेंगे, 'कि पृथ्वी पर भी एक दिन ऐसा आयगा जब उसकी सारी जीवसृष्टि नष्ट हो जायगी। इस दुर्दैवका पहला भोग आदमजात बनेगी। अगर वह नष्ट नही होना चाहती है तो उसे सर्वनाशसे बचनेका उपाय सोच लेना ही चाहिये। इस मामलेमें मगल हमें बहुत कुछ सिखा सकता है   वगैरह'

मगलकी बातको यहाँ छोडकर गुरुकी कुछ बात अब करेंगे।

गुरुका वातावरण गाढा है। उसके मुख्य घटक मीथेन, एमोनिया और कार्बन डायोक्साइड वायु हैं। वातावरणके नीचे गुरुकी भूमि है जिस पर बर्फ छाया हुआ है। इस बर्फके पूर्णतया पानीका होनेकी कोई सभावना नही है। फिर भी यह सभव है कि जीवसृष्टिके उद्गमके बारेमें आधारभूत पदार्थ कार्बन, द्रावक एमोनिया, थोडा पानी (जिसमेंसे ऑक्सीजन प्राप्त हो सके) और हाइड्रोजन गुरु पर होनेके कारण वहा जीवसृष्टिके पनपनेकी कल्पना की जाय। मगर गुरुका तापमान इतना कम है कि उसकी जीवसृष्टि पृथ्वीकी जीवसृष्टिके प्रकारकी होना असभव है। गुरुकी जीवसृष्टि अन्य प्रकारकी—स्फटिकमय स्वरूपकी और अत्यत दबावको सहन करनेवाली हो सकती है। सभव है कि ऐसी जीवसृष्टिकी देहरचना पृथ्वी परकी देहरचना से बिलकुल विपरीत हो—बाहरसे कठिन मगर भीतरसे मुलायम, हड्डियाँ बाहर मगर मास भीतर!!

मगर यह कल्पना कोरी कल्पना ही है।

गुरुसे ज्यादा ठडे शनि, युरेनस वगैरह ग्रहा की जीवसृष्टिकी बात करना अब बेकार है। उन सबके जीवसृष्टिका न होना मुबारिक!

यह सब होते हुए भी ग्रहोंकी उपेक्षा करना ठीक न होगा। साथ साथ केवल पृथ्वी पर ही जीवन पनप रहा है इस बातका गरूर न करना चाहिए। मंगलकी दुर्दशा हम देख ही आये हैं और वह हमारे लिये चेतावनी रूप है। संभव है कि दूसरे ग्रह कार्बनिक पदार्थोंके अत्यंत पुराने भंडार साबित हों। उनकी अवशिष्ट कार्बनसृष्टि पृथ्वीकी उत्क्रान्तिकी मंजिलोंको समझानेमे सहायभूत हो सकती है। ग्रहोंके उपग्रह और विशेष करके हमारा चंद्र इस बारेमे बहुत-सी जानकारी दे सकेगा।

इस अध्यायमे ब्रह्मांडकी जीवसृष्टिकी हमने काफी चर्चा की है फिर भी सूर्य मंडलके और दूसरे तारोंके बुद्धिमान जीवोंके बीचके विशिष्ट फर्ककी कोई बात हमने नहीं की है। वैसा करना आज संभव भी नहीं है। बाकी रही अब आंतरग्रहीय जीवसृष्टिके बुद्धिमान तत्त्वको पहचाननेकी बात। उड़न-रकाबियोंके संदर्भमे बहुत सी बाते सुननेको मिलती हैं मगर उनकी यथार्थता अब तक साबित न हो सकी है। चंद्र और मंगल पर स-मानव अवकाशयान उतरने तक हमे राह देखनी होगी।

सब मिलाकर, आखिरमे, हमे यह कबूल करना होगा कि ब्रह्मांडीय जीवन कैसा है उसकी झाँकी हमे नही हुई है। पृथ्वी परके जीवनको दार्शनिक और अमूर्त (Abstract) रूपमे हम समझते आये हैं। हमारा यह खयाल अवकाशमे कितना कामयाब होगा उसका सबूत समयके बीतने पर ही मिलेगा।

२०. खगोलकी प्राचीन विरासत

खगोलशास्त्रका प्रारंभ किस देशमें और किस कालमें हुआ होगा उस विषयमें निश्चयपूर्वक कुछ कहना बहुत मुश्किल है। मगर इतना तो सही है कि यह शास्त्र कमसे कम पाँच हजार वर्ष पुराना है ही। प्रारंभमें वह केवल निरीक्षणात्मक रहा होगा लेकिन क्रमशः वैज्ञानिक स्वरूप पाकर वह वर्तमानका खगोलविज्ञान बन गया है। पुराने ग्रंथोंके वाक्यों परसे या आकाशीय ज्योतियों अथवा आकाशीय घटनाओंके उल्लेखोंसे खगोलशास्त्रके विकासक्रमकी कड़ियाँ मिल सकी हैं। फिर भी उन उल्लेखोंके आधार पर वह कोई खास देशमें विकसित होकर शास्त्र बन गया है ऐसा निश्चयपूर्वक कहना मुश्किल है। फिर भी यह संभवित है कि बहुत पुराने जमानेका खगोलविज्ञान किसी एक खास स्थल पर उद्भवित होकर भिन्न भिन्न देशोंमें फैल गया हो और वहाँ भिन्न-भिन्न प्रकारसे उसका विकास हुआ हो।

खगोलशास्त्रके विकासके लिये आकाशके निरीक्षण और अध्ययन अनिवार्य हैं। हमारे दैनिक जीवनमें दिन और रात, तारीख, तिथि, मास, पर्व, ग्रहण, सूर्योदय और सूर्यास्त, छोटे-बड़े दिवस, ऋतु-आरंभ, वर्षारंभ, मध्याह्न, मध्यरात्रि, ग्रहोंके दर्शन एवं लोप, संक्रान्तियाँ, मुहूर्त आदि ऐसा महत्त्वपूर्ण स्थान पाये हुए हैं कि उनकी वास्तविकताके लिये आकाशीय ज्योतियोंके निरीक्षण और अध्ययन अनिवार्य बने रहते हैं। भारतमें ठेठ वेदकालमें भी इनकी महत्ताका स्वीकार कर लिया गया था। यजुर्वेदमें नक्षत्रदर्शनका उल्लेख है जबकि छांदोग्य उपनिषदमें नक्षत्रविद्याका[1] मनुष्य जातियाँ जंगली हो या संस्कृत, प्रत्येकके अपनी अपनी रीतिके पंचांग थे। अलबत्ता बहुत पुराने कालमें पंचांगका ज्ञान केवल ऋत्विजों या देव-पुजारियोंको ही था और इसी कारण उन लोगोंका आम प्रजा पर गहरा प्रभाव था।

नदियोंमें बाढ़ कब आयेगी, वर्षाका मौसम आरंभ होकर कब समाप्त होगा, बोआई और कटनीके लिये कौनसे दिन अनुकूल होंगे इत्यादि की जितनी आवश्यकता प्राचीन कालके किसानों को थी उतनी ही उस जमानेके पुजारियोंको भी थी। समय या काल नापनेके लिये ऋत्विज लोग यज्ञ करते थे या अन्य प्रकारकी वैसी ही विधियों द्वारा ऋतु और वर्षके आरंभकी या उनकी समाप्तिकी वे घोषणा करते थे। आज भी पूजारी लोग इसी प्रकारका कार्य करते रहते हैं, किन्तु प्राचीन कालका वह कार्य वर्तमानकी भाँति सरल व सहज न था। किसी एक खास बातकी चौकसीके लिये ऋत्विजोंको अनेक वर्षों तक निरीक्षणकार्य करना पड़ता था। नील नदीमें आनेवाली बाढ़का सबंध व्याध-उदयके साथ और एकसमान दिन-रातका सबंध सूर्यके ठीक पूर्वमें उदित होनेके साथ जोड़ा जा सका था ये इस बातके उदाहरण हैं। फिर भी निरीक्षणोंमें जो क्षतियाँ रह जाती थीं उनको दूर करनेका कार्य भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता ही आया

है। हम भारतीय पिछले दशक तक उत्तरायणको और मकरसंक्रान्तिको एक ही घटना मानते थे यह उसका उत्तम उदाहरण है। विज्ञानकी प्रगतिके साथ-साथ वहुत-सी वातोंको उनके मूल स्वरूपमें समझना आज शक्य वना है, फिर भी हालके स्पुतनिक-युगमे कई लोग ऐसे हैं जो पृथ्वीको ग्रह माननेसे इन्कार करते हैं।

सूर्य और चंद्रके कारण हमे दो स्वाभाविक काल-इकाइयाँ प्राप्त हुई हैं। वे हैं दिवस और मास। दिवसके जैसे दिन और रात्रियो दो विभाग हैं वैसे मासके भी कृष्णपक्ष और शुक्ल-पक्ष ऐसे दो स्वाभाविक विभाग हैं। काल-नापनकी तीसरी इकाई वर्ष है। एक ऋतुके प्रारंभसे उसी ऋतुके दूसरी दफा प्रारंभ होने तकका समय-काल एक वर्ष है। वर्ष कितना लंवा है उसका हिसाव अमुक दिवस या अमुक मासके द्वारा दर्शाया जा सकता है: किन्तु मुश्किल यह है कि उस प्रकार निर्देशित आंकड़े पूर्णांक नहीं हैं। सूर्य और चंद्रकी आकाशीय गतियाँ सरल नहीं हैं: फलतः उनके द्वारा निर्मित होनेवाली काल-इकाइयोंका आपसमे मेल विठाना कठिन कार्य वन गया है। सूर्योदयके साथ दिनका आरंभ होता है और सूर्यास्तके साथ वह पूर्ण होता है यह जानते हुए भी सारे दिन एकसमान न होनेका भी हम जानते हैं। हम यह भी जानते हैं कि पूर्णिमा या अमावस्याके दिन मास पूरा होने पर भी सभी मास एक-से लंवे नहीं होते हैं। वर्षकी वात भी ठीक उसी तरहकी है। चंद्रके वारह महीनोंसे वने वर्षका मेल ऋतुवर्षके साथ नहीं वैठता है। यह सव होते हुए भी एक वात स्पष्ट नजर आयी है कि भिन्न-भिन्न जातियोंने अपने-अपने जो पंचांग निर्माण किये थे या आकाशीय ज्योतियोंके वारेमें उन्होंने जो नोट किया था उन सभीमें ऋतुवर्षको प्रावान्य मिला है। क्षितिज परके अमुक एक विंदु पर सूर्यके दिखाई देनेके वाद पुनः उसी विंदुके पासके उसके दर्शनके आवार पर वर्ष निश्चित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त होता वर्ष उत्तरायणसे उत्तरायण तकका या वसंतसंपातसे वसंतसंपात तकका ऋतुवर्ष है।

पृथ्वीके देशोंमे संवत्सरात्मक गणना कहाँ और कव प्रारंभ हुई उसकी सही जानकारी प्राप्त नहीं हुई है, किन्तु जो कुछ मालूम हो सका है उससे पता चला है कि ईसा मसीहके २८०० वर्ष पहले मिश्र देशमे तीन ऋतुओंका एवं वारह महीनोंका प्रचलन था।

ऐसा भी माना जाता है कि सर्वप्रथम संवत्सर गणना ई. स. पूर्व २६३० मे चीनने प्रारंभ की थी। उस समयकी प्राचीन जातियोंने विभिन्न प्रकारकी पंचांगोपयोगी टिप्पणियाँ तैयार की थीं, उनमे ई. स. पूर्व २२८३ के मई मासकी आठवीं तारीखका सूर्यग्रहण विशिष्ट है। वेवी-लोन-वासियों द्वारा की गईं सूर्यग्रहणकी टिप्पणियाँ ग्रहणोके सरोज (ग्रहणचक्र) के आवर्तनोंका हिसाव मिलानेमें अत्यंत उपयोगी सावित हुई हैं। इतना ही नहीं उनके आवार पर अन्य एति-हासिक घटनाओंकी छानवीन करनेका भी संभव वना है। वादके जमानेके राजा-महाराजाओंके नामोंसे प्रचलित संवतों तथा उनसे संवंवित आकाशीय घटनाओंके उल्लेखोंसे इन संवतोंकी तथा राजाओंके राजत्वकालकी जानकारी भी प्राप्त की जा सकी है।

विशिष्ट आकाशीय घटनाओंमे ग्रहण, संपति और अयन प्रमुख हैं। भारतमें चैत्रादि मास गणना ई. स. पू. २००० मे प्रारंभ हुई थी। पुराने मंत्रों और ऋचाओंके आधारसे मालूम

होता है कि ई स पू ८००० में मृगशीर्षमें और ई स पू ३००० में कृत्तिकामें वसंतसंपात हुआ था और आर्योंने रविमार्गके भागोंकी कल्पना करके उन्हें नक्षत्र नाम दिया था। तारोंकी गतियाँ—विशेषत ध्रुवतारेकी स्थिति—दर्शानेके लिये मिस्रवासियोंने पीरामिड बनाये थे वह बात अब सुविदित है। चीनके इतिहाससे पता चलता है कि पंचग्रहयुति—गणितका और संपात तथा अयनोंके आकाशीय स्थानकी खोज करनेका काम राजाज्ञाके रूपमें सम्राट यु ए मी ने अपने राजज्योतिषियोंको दिया था। वेधकार्यको राजा लोग कितना महत्त्व देते थे उस बातका प्रमाण, यु ए मीके ४५० वर्ष बाद जो ग्रहण हुआ था उसकी आगाहीमें लापरवाही बरतनेवाले दो दरबारी ज्योतिषियोंको चीनी सम्राट द्वारा दिये गये मृत्युदंडसे मिलता है। वर्तमान और ग्रहणोंकी आगाहियोंके अलावा खगोलके विषयमें जो अन्य खोजें हुई थीं उनमें प्रमुख रविमार्गका राशियों और नक्षत्रोंमें किया गया विभाजन है। उस समय तारीख या तिथिगणनाके साथ-साथ वारगणना भी शुरू हो चुकी थी। वारोंके नाम बेबीलोनवासियोंकी ईजाद है। बादमें वे सारे नाम समस्त संसारमें फैल गये। विभिन्न जातियोंकी तारीखों या तिथियोंमें समानता या एकवाक्यता नहीं है किन्तु वार सारे संसारमें एक-से ही हैं।

रविमार्गके राशियों और नक्षत्रोंमें विभाजित होनेकी बात हमने की, किन्तु विभाजनकी ये दोनों बातें एकसाथ एक ही जगह नहीं घटी हैं। सदियोंका कहना है कि राशिविभाग बेबीलोनकी ईजाद है और नक्षत्रविभाग भारतकी। अपनी ज्योतिष-गणनाके लिये जिन जातियोंने सूर्यका आधार लिया उन्होंने रविमार्गको बारह विभागोंमें विभक्त करके राशिचक्रका निर्माण किया, परन्तु जिन्होंने चंद्रका आधार लिया उन लोगोंने (भारतीयोंने) रविमार्गको २७ विभागों में विभाजित करके नक्षत्रचक्रकी स्थापना की। नक्षत्र विभाग भारतकी अपनी खोज है। ज्ञात हुआ है कि प्राचीन कालमें चीनमें २७ या २८ नक्षत्र प्रचलित थे परन्तु भारतीय नक्षत्रोंकी तरहका लोगोंके साथका उनका सांस्कृतिक लगाव या तानाबाना नहीं था। भारतीय महीनोंके नाम नक्षत्रोंके आधार पर बने हैं। संसारके अन्य किसी भी देशमें महीनोंका इसी तरहका नामकरण नहीं हुआ है। इस सारी बातका एक अर्थ यह हुआ कि महीनोंके नामोंकी अपेक्षा नक्षत्र पुराने हैं।

भारतके लोग नक्षत्रोंकी तरह राशियोंसे भी परिचित हैं। अपने ज्योतिष-गणितके लिये चंद्रका आधार लेने पर भी वर्षगणनाके लिये ऋतुवर्षका और मासससंक्रांतिके लिये सूर्यका आधार भी उन्होंने लिया है। संक्रांतियोंके बारह विभागोंके लिये रविमार्गको बारह विभागोंमें बाटा गया था सही किन्तु उन भागोंको राशि नाम देनेकी बात ई स ४०० के आरंभमें बन पायी थी। तब मजेदार बात यह बनी कि भारतीयोंने राशिचक्र एवं नक्षत्रचक्रका आरंभ रविमार्गके जिस स्थान पर किया था वह आरंभबिन्दु दोनों चक्रोंके लिये एक ही था। और आजतक वह वैसे ही रहा है। यह आरंभस्थान उस समयका वसंतसंपात है। आजकल वसंतसंपात वहाँ नहीं होता है इसलिये भारतीय पंचांगकार अपने मेषारंभ या अश्विन्यारंभसे वर्तमान वसंतसंपातकी दूरी अयनांश द्वारा दिखाते हैं। मतलब कि ई स ४०० के वसंतसंपातके हिसाबसे वर्तमान वसंतसंपात आजके अयनांश जितना दूर (रविमार्ग पर पीछे खिसक

कर) होता है। वसंतसंपातके प्राचीन उल्लेखोंके आधार पर वेदकालकी अवधि ई. स. पू. ६००० से ई. स. पू. ४००० तककी मानी जाती है।

ई. स. पू. १६०० के बादका चीन, मिश्र, और बेबीलोनका खगोल-इतिहास स्पष्ट रूपमे ज्ञात नहीं हो सका है। विज्ञानके रूपमे भारतीय खगोलशास्त्रकी बुनियाद ई. स. पू. १४०० से ई. स. पू. ११०० के अरसेकी है। खगोलशास्त्रका विकास करनेवाले अन्य देशोंमें ग्रीस और अरब प्रमुख हैं। इन देशोंकी खगोलशास्त्रीय प्रगति क्रमसे ई. स. पू. ६०० और ई. स. ७०० के अरसेकी है। और इस कारण ई. स. पू. ४००० से ई. स. पू. ६०० तकके कालमे भारतमे खगोल विषयक जो प्रगति हुई थी उसकी बात हम प्रथम करेंगे।

भारतीय खगोलशास्त्रका इतिहास छः युगोंमे विभाजित हुआ है: ई. स. पू. ४००० से ई. स. पू. ११०० तकका वेदयुग; ई. स. पू. ११०० से ई. स. पू.० तकका वेदांतयुग; ई. स. ० से ई. स. ५०० तकका प्राचीन सिद्धान्त-ग्रन्थोंका काल; ई. स. ५०० से ई. स. १५०० तकका नये सिद्धान्त-ग्रन्थोंका काल; ई. स. १५०० से ई. स. १८०० तकका मध्य-कालीन युग और ई. स. १८०० से आज तकका अर्वाचीन युग।

वैदिक ऋचाओंमे मृगशीर्षमे वसंतसंपात होनेके स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। यह घटना ई. स. पू. ४००० के कालकी है। इससे कहा जा सकता है कि अमुक वेदमंत्र ई. स. पू. ४००० में रचे गये होने चाहियें। कई विद्वान वैदिक कालको ई. स. पू. ६००० से भी पुराना मानते हैं, मगर ऐसा कहनेके प्रमाणोंका उल्लेख बहुत स्पष्ट नही है।

वैदिक कालमें वर्षका आरंभ वसंतऋतुके प्रारंभसे होता था। वसंतको वर्षका मुख कहा गया है। वेदोंमे माघ मासको अग्रहायन अर्थात् हायन (वर्ष) का अग्र (पहला) मास माना है। यों वसंत ऋतु वर्षकी पहली ऋतु गिनी जाती थी। गीतावाक्य **मासानाम मार्गशीर्षोऽहम्** (मासोंमे मैं माघ हूँ) इस बातका द्योतक है। इस सारी बातका अर्थ यह हुआ कि भार-तीयोंको नक्षत्रों एवं मासोंका ज्ञान ई. स. पू. ४००० वर्ष पहले हो चुका था। उस समयके उनके मास चांद्रमास थे और इस कारण भारतवासियोंको अधिमासोंका भी ज्ञान था। अधि-मासका उल्लेख ठेठ ऋग्वेदमें भी मिलता है। **यत् संवत्सरः तस्य त्रयोदशो मासो विष्टपम्। यथा वा ऋषभस्य विष्टपम्** (संवत्सरका तेरहवाँ मास अधिक मास है। बैलके कूबड़की तरह यह तेरहवाँ मास वर्षका कूबड़ है) वेदोंमें तिथि शब्द आता है मगर उसका अर्थ उन दिनों दिवस किया गया है।

वैदिक वाङ्मयमे गुरु और शुक्रके भी उल्लेख मिलते हैं। शुक्रको वेन कहा जाता था। वैदिक भारतीयोंका नक्षत्र-विषयक ज्ञान तारात्मक ही था, विभागात्मक न था। चन्द्र एक महीनेमें २७ नक्षत्रोंमें घूमता है यानी वह प्रतिदिन एक नक्षत्र बदलता है। 'इस तथ्यका ज्ञान वैदिक आर्योंको था ही फिर भी ग्रहोंका गणित वे नहीं जानते थे। ऋक्संहिताके **चकाणासं परीणहं पृथिव्याः** जैसे वाक्य और ब्राह्मणग्रंथों एवं उपनिषदोंके अन्य श्लोकोंसे मालूम हुआ है कि पृथ्वीके गोल होनेका ज्ञान भी वैदिक भारतीयोंको था।

संक्षेपमें कहें तो वेदकालीन आर्योंका वर्ष, मास, अधिमास, अयन, संपात, ऋतु आदिका ज्ञान सूक्ष्मरूपका न था फिर भी वह काफी अच्छा अवश्य था। भारतीयोंको ग्रहोंका ज्ञान था मगर ग्रह-गणितका ज्ञान न था। तात्पर्य यह है कि ताराओंमेंकी ग्रहोंकी गतियोंका वे निरीक्षण करते थे, मगर उनकी भविष्यकालीन स्थिति कैसी होगी उसकी आगाही वे नहीं कर पाते थे।

गणितकी बात वेदांग-ज्योतिषमें आती है, गो कि विभागात्मक नक्षत्रोंकी व्यवस्था वेदांग-ज्योतिषसे भी १००० वर्ष प्राचीन होनेकी मानी गयी है। वेदांग-ज्योतिषमें केवल सूर्य और चन्द्रके गणितकी बात आती है, ग्रहोंके गणितकी बात वहां नहीं है। ग्रहगणित देनेका यश खाल्डियाके लोगोंको मिला है।

वेदांग-ज्योतिषका रचनाकाल ई स पू ११०० से १५०० तकका माना जाता है। उस समय वर्षारंभ उत्तरायणसे होता था। तब धनिष्ठाके आरंभमें उत्तरायण होता था।

वेदांग ज्योतिषमें दिया गया सूर्यचन्द्रका गणित मध्यम अर्थात् औसत है। वह स्पष्ट गणित नहीं है। सूर्य और चन्द्रकी गतियां सदा एक-सी नहीं रहतीं। उनमें घट-बढ होती रहती है। घट-बढका गणित जिसमें दिया जाय वह स्पष्ट गणित है। स्पष्ट गणितके अनुसार सूर्यचन्द्र आकाशमें प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। स्पष्ट गतिस्थितिका गणित वेदांग-ज्योतिषमें न होनेके कारण उसे वैज्ञानिक ग्रंथ नहीं कहा जायगा। यह होते हुए भी भारतीय खगोलशास्त्रके स्वरूप और उसके इतिहासको समझनेके लिये वेदांग-ज्योतिष अत्यंत महत्त्वका ग्रंथ है। उस ग्रंथमें दी गई बातें नीचे अनुसार हैं —

(१) पांच वर्षकी समयावधिको युग कहा जाता था।

(२) एक युगमें कुल ३६६ दिवस ×५=१८३० सायन (सूर्य) दिवस बनते थे। एक युगमें कुल ३० तिथियां ×६२=१८६० तिथियां होती थीं।

(३) एक युगमें ६० सौर मास और ६२ चान्द्रमास होते थे। अर्थात् युगकालके दरमियान (पांच वर्षमें) दो अधिक मास आते थे।

(४) युगकालके दरमियान १८६०−१८३०=३० क्षयतिथियां आती थीं।

(५) युगारंभ माघ सुदी १ से शुरू होता था और महीने अमान्त (अमावस्याको पूरे होनेवाले) थे।

(६) युगारंभ उत्तरायणसे होता था और सूर्य धनिष्ठा नक्षत्रमें रहता था।

(७) युगकालके दरमियान ६७ नक्षत्र मास होते थे (२७$\frac{१}{३}$ दिवस×६७=१८३१ दिवस)।

इनके अतिरिक्त दो और बातें नीचे अनुसार हैं —

(१) वेदांग-ज्योतिषमें दिवसकी लम्बाई को ६० घडियोंमें विभाजित किया गया था।

(२) सबसे लंबे दिवस या रात्रिकी लम्बाईका सबसे छोटे दिवस या रात्रिकी लम्बाईके साथका गुणोत्तर ३:२ था। इसका अर्थ यह हुआ कि वेदांग-ज्योतिषकी रचना जिस जगह हुई थी, उस स्थानका सबसे लम्बा दिवस ३६ घडियों (१४ घंटे, २४ मिनिट) का और सबसे छोटा

दिवस २४ घड़ियों (९ घंटे, ३६ मिनिट) का था। इस उल्लेखके आधार पर वेदांग-ज्योतिपका रचनास्थल ३५ उत्तर अक्षांश होनेका जाना गया है। मतलव कि आर्योने वेदांग-ज्योतिप की रचना कश्मीरमें की थी।

गर्गसंहिता, भारतीयोंका दूसरा ज्योतिपग्रंथ है, जिसका निर्माणकाल वेदांग-ज्योतिपके वादका है। इस संहिताका रचनाकाल ई. स. पू. ९०० से ७०० का है। इस ग्रंथमें वेदांग-ज्योतिपवाले समान नक्षत्रविभागोंकी रचनाके वदलेमे असमान नक्षत्रविभाग की योजना स्वीकारी गयी है। यह योजना अयनोंका मेल वैठानेके लिये या धनिष्ठारंभमे उत्तरायण लानेके लिये की गई थी जिसे वादके जैन विद्वानोंने भी अपनाया था। मगर अयनोंके सरकते रहनेके कारण वादके खगोलशास्त्रियोंने उसे छोड़ दिया था।

गर्गसंहिता आज उपलव्ध नही है। उसके वाद रचे गये ग्रथोंमे प्रमुख सूर्यप्रज्ञप्ति, चंद्र प्रज्ञप्ति, अथर्वज्योतिप और पांच सिद्धांत (पितामह, वसिष्ठ, पौलिश, सौर, और रोमक) हैं। मगर ये सारे ग्रंथ अप्राप्य होनेके कारण कौनसा ग्रथ किस कालमे रचा गया था यह निश्चित रूपसे कहना कठिन है। इतना ही नहीं मगर किन ग्रंथोंकी रचनाके वाद वे नष्ट हुए होंगे उसकी जानकारी प्राप्त होना भी कठिन है। फिर भी वराहमिहिर-कृत 'पंच सिद्धांतिका' उपर्युक्त पाँचों सिद्धान्तोंमें दी गई महत्त्वकी वातोंका सार देती है। मजेदार वात यह है कि यह पुस्तक भी अप्राप्य है। जो पंच सिद्धान्तिका हमे विरासतमें मिली है वह पुरानी दो पांडुलिपियोंके आधार पर तैयार की गई है। आजपर्यंत उसकी कोई अन्य पांडुलिपि नही मिली है।

प्राच्य खगोलग्रन्थ उपलव्व न होनेके कारण ई. स. पू. ११०० से ई. स. ४७६ तकका भारतीय ज्योतिपशास्त्रका सिलसिलेवार इतिहास उपलव्व नहीं हो सका है। इस समयका इतिहास देनेका एक प्रयास डॉ. दिनकर शुक्लने अपने 'वेदांग-ज्योतिष और आर्यभटीय के वीच काल की खगोलीय स्थिति' नामक ग्रंथमे किया है। हाँ, ई. स. ४७६ के वादका आजतकका संपूर्ण खगोलीय इतिहास मिल सका है: किन्तु उसकी वात करनेसे पहले उपर्युक्त समय दरमियान ग्रीकों द्वारा साधी गई खगोलशास्त्रकी प्रगतिकी वात करना उपयुक्त होगा।

वेवीलोन और मिस्रमे खगोलशास्त्रियोंके शोध-कार्यमे भाटा आना शुरू हुआ था तव ग्रीसमे उसका उदय होने लगा था। वेवीलोन और मिस्रके खगोलज्ञानकी सारी विरासत ग्रीसको मिली थी जिसमे वेवीलोन द्वारा सजोकर रखी हुई अनेक वर्षोके ग्रहणोंकी और अन्य टिप्पणियाँ मुख्य थीं। ये सारी वातें ग्रीकोंके लिये अत्यंत उपयोगी साबित हुई। अनेक देशोंको जीतकर ग्रीक साम्राज्य फैलानेवाले ग्रीकोंकी एक वड़ी सेवा पंचागनिर्माण की है और दूसरी सेवा खगोलशास्त्रीय घटनाओंके कारणोंको ढूंढ़नेकी है।

ग्रीक खगोलशास्त्र ई. स. पू. ७ वीं सदी जितना पुराना है। उसका पहला खगोलविद् थेल्स है। थेल्सका जन्म ई. स. पू. ६३६ मे मिलेटसमे हुआ था। वह भूमितिका मर्मज्ञ माना गया है, किन्तु उसका ज्ञान तत्कालीन मिस्रवासी भूमितिविदोंसे ज्यादा न था। पृथ्वीको उसने जलसागरमे तैरती एक वर्तुलाकार वस्तु माना था। उसके इस मंतव्यसे उसके भूमितिज्ञान का पता चल सकता है। उसके वारेमें यह भी कहा जाता है कि उसने मई ५८५ ई. स.

पू के सूर्यग्रहणकी भविष्यवाणी की थी। वस्तुतः उस समयके अपने बबीलोनवासी गुरुओंसे वह जरा भी आगे बढ़ा हुआ नहीं था। उपर्युक्त ग्रहण किस जगह और कौन तारीखको होगा उसकी आगाही उसने की ही नहीं थी। फिर भी वह एक अच्छा खगोलविद् था और उसने चंद्रकी कलाओंके होनेके कारण बताये थे, इतना ही नहीं किन्तु सूर्यका कोणीय व्यास भी उसने नापा था।

थेलसके बाद दूसरा खगोलविद् पायथागोरस हुआ। उसे विश्व-संरचनाके विषयमें विशेष रुचि थी। पायथागोरसको हम भूमितिज्ञ के रूपमें (पायथागोरस-प्रमेय देनेवाला) जानते हैं। उसने ग्रहोंका अध्ययन किया था, इतना ही नहीं किन्तु पृथ्वीके गोल होनेकी बातका वह समर्थक और पुरस्कर्ता भी था। उसने ग्रहगति-सिद्धान्तका इशारा किया था मगर वह सिद्धांत सोलहवीं सदीमें कोपरनिकसके द्वारा ही आविष्कृत हो सका था।

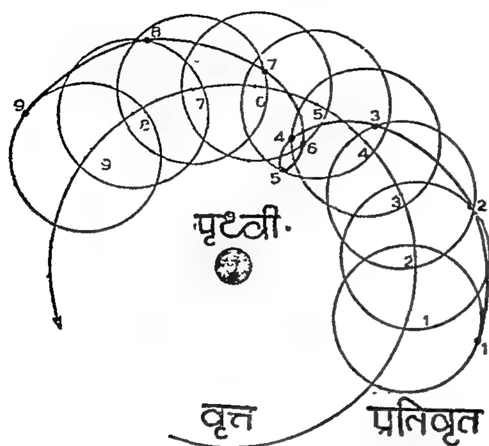
ई स पू ५ वी सदीका एक विख्यात खगोलज्ञ ऐनेक्सागोरास था। उसने ग्रहणोंका सच्चा स्वरूप क्या है वह समझाया था। इतना ही नहीं किन्तु चंद्रका तेज उसका निजका तेज नहीं है यह बात भी उसने समझाई थी। सूर्यसे प्रकाश प्राप्त करके चंद्र प्रकाशमान होता है यह कहनेवाला वह प्रथम व्यक्ति था। ५ वी सदीके अन्य खगोलविदोंमें डेमोक्रिटस, मेटन और हेराक्लिटस मुख्य हैं। डेमोक्रिटस विश्वके सामान्य स्वरूपका खयाल रजू करनेवालेके रूपमें, मेटन अपने पंचांगीय सुधारों (ईस्टरकी तिथि वगैरह) के लिये और हेराक्लिटस पृथ्वीका अक्षभ्रमण सिद्धांत पेश करनेके लिये ख्यातनाम बने खगोलज्ञ हैं।

अरस्तु खगोलविद्की बनिस्बत तत्त्वचिंतक अधिक था। उसकी खगोलविषयक देन निम्न कक्षाकी है। इतना ही नहीं किन्तु अनेक सदियों तक वह अवरोधक साबित हुई है। सूर्यचंद्र की नापें जो उसने ली थी वे बिल्कुल अर्थहीन हैं। वर्तुल ही संपूर्ण आकृति है ऐसे उसके विधानने खगोलके विकासको सदियों पर्यंत अवरुद्ध किया है। इस भ्रमका निरसन ठेठ सोलहवीं सदीमें केप्लरके हाथों हुआ था।

एरिस्टार्कस अत्यन्त शक्तिशाली खगोलविद् था। आकाशीय पदार्थोंके वेध लेनेमें वह बहुत दक्ष था। उसने सूर्य और चंद्रके अन्तरोंको नाप कर घोषित किया था कि चंद्रके अंतरके हिसाबसे सूर्य हमसे अठारह या उन्नीस गुना दूर है। अंतर ढूंढनेके लिये उसने जो पद्धति अपनायी थी वह बिलकुल वैज्ञानिक थी। उसने कहा कि चंद्र और सूर्यके कोणीय व्यास समान हैं, जो उनके अनरके प्रमाणमें होने चाहियें। एरिस्टार्कसके हिसाबमें गलती रह जानेका कारण सही अर्धचंद्रको ठीक रूपमें नहीं नापा जानेका है। सूर्यचंद्रके अंतरोंके अतिरिक्त उसने चंद्रका व्यास भी नापा था और वह पृथ्वीके व्यासमें $\frac{1}{3}$ गुना है ऐसा उसने घोषित किया था। उसके जमानेके हिसाबमें यह खोज बहुत बड़ी समझी जाती है। मगर इस खोजसे भी एक बड़ी बात उसने बताई थी कि पृथ्वी अपनी धुरी पर एवं सूर्यके इर्दगिर्द घूमती है। यह बात अरस्तुके सिद्धांतसे विपरीत थी अतः लोगोंने एरिस्टार्कसकी इस बातका समर्थन नहीं किया।

ई स पू तीसरी सदीमें इरेस्टोस्थिनीसने पृथ्वीका आयतन नापा था, इतना ही नहीं किन्तु विषुववृत्तके साथका रविमार्गका तिर्यक्त्व भी उसने नापा था। इस तिर्यक्त्वकी नापमें केवल

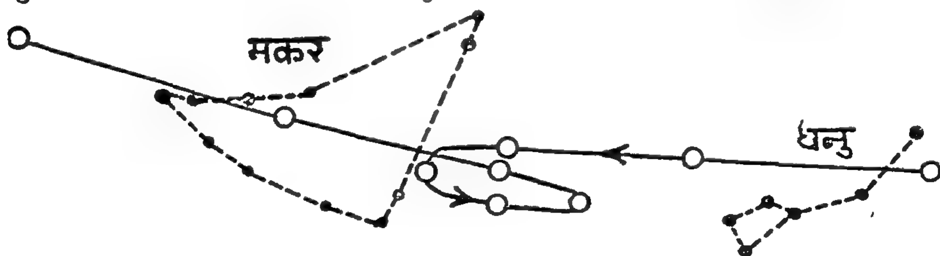
सात कलाकी गलती थी। मगर इन सारी गलतियोंको हिपार्कसने ठीक कर दिया था। हिपार्कसको ग्रीक खगोलशास्त्रका पिता (स्थापक) कहा जाता है। और वह था भी सचमुच अद्‌भुत आदमी। उसने सर्वप्रथम तारापत्रक बनाया जिसमें नग्न आँखोंसे दिखाई देनेवाले १०८० तारोंकी सूची थी। इन तारोंको उसने ४८ तारामडलोंमें बाँट दिया था।



तारोंके स्थानोंकी चौकसी करते समय उसे ज्ञात हुआ कि अुनके आकाशीय स्थानोंमें फर्क पड़ा है। उसने खोज निकाला कि विपुवायन इसका कारण है। हिपार्कसने पृथ्वीको विश्वका केन्द्र माना था। ग्रहगति समझानेके लिये उसने वृत्त-प्रतिवृत्तकी परिकल्पना की थी और उसके आधार पर ग्रहगणितकी बुनियाद डाली थी।

इसके अतिरिक्त उसने सायनवर्षकी लम्बाई नापी थी। इतना ही नहीं लेकिन रविमार्गके तिर्यकत्वको फिरसे नाप कर उसकी चौकसी की थी। पृथ्वीकी त्रिज्यासे चंद्रका अंतर ६७ से ७८ गुना है ऐसा घोषित करके उसने विज्ञानकी भारी सेवा की है। पृथ्वीस्थ स्थानोंके अक्षांश और रेखातर दिखानेके लिये उसने चंद्रकी सारणियाँ बनाई थी। इतना ही नहीं किन्तु तारोंकी चमक दर्शानेके लिये तारोंके वर्ग निश्चित करनेवाली तालिकायें भी उसने रची थीं। इन सबके अतिरिक्त स्फोटक तारेको सर्व प्रथम देखनेवालेके रूपमें और उस तारेको उसी प्रकार समझनेवाले-के रूपमें वह सर्वप्रथम वैज्ञानिक माना गया है।

हिपार्कसके बाद उसकी बराबरीका दूसरा समर्थ खगोलज्ञ क्लोडियस टोलेमी हुआ। अपनी पुस्तक 'सिन्टेक्सिस' और उसके अरबी अनुवाद 'अल-माजेस्ट' के कारण वह अत्यंत प्रसिद्ध है।

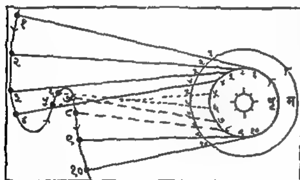


मंगल्का वक्रीमार्ग

अल-माजेस्ट एक विशाल ग्रंथ है। खगोलविज्ञान पर इतने बड़े और विद्वतायुक्त ग्रंथका प्रकाशन होना सचमुच आश्चर्यजनक है। टोलेमीने अपने पहलेके सभी खगोलविदोंके सिद्धान्तोंको

इस ग्रंथमें समाविष्ट किया है। इतना ही नहीं किन्तु उनकी विशद चर्चायें की हैं और उप-पत्तियां भी दी हैं। वैसे तो उसकी निजी खगोलीय देन बहुत कम है लेकिन उसने जो संकलन कार्य किया है वह अत्यंत उच्च प्रतिभा दिखानेवाला है। फिर भी एक विशिष्ट बातका उल्लेख करना उचित होगा। यह है वृत्त-प्रतिवृत्तकी कल्पना। आकाशमें अपने-अपने मार्गों पर विचरते वाले ग्रह कभी-कभी, पूर्वकी ओर अग्रसर होनेके बजाय कुछ समय तक स्थिर रहकर बादमें पश्चिमकी ओरकी वक्री गति दिखाते मालूम होते हैं। सूर्य, चंद्र और तारे ऐसी गति नहीं दिखाते हैं तो फिर ग्रह ऐसा रुख क्यों धारण करते हैं उसका कोई कारण होना ही चाहिये। हिपार्कसके बाद उसके अनुगामी टॉलेमीने सुझाया कि पृथ्वीके इर्दगिर्द घूमनेवाले ग्रह सूर्यचंद्रकी तरह नहीं घूमते हैं वे अपने-अपने वृत्तोंमें घूमते हैं और इन वृत्तोंके केन्द्र पृथ्वीके इर्दगिर्द वर्तुलाकारमें घूमते हैं।

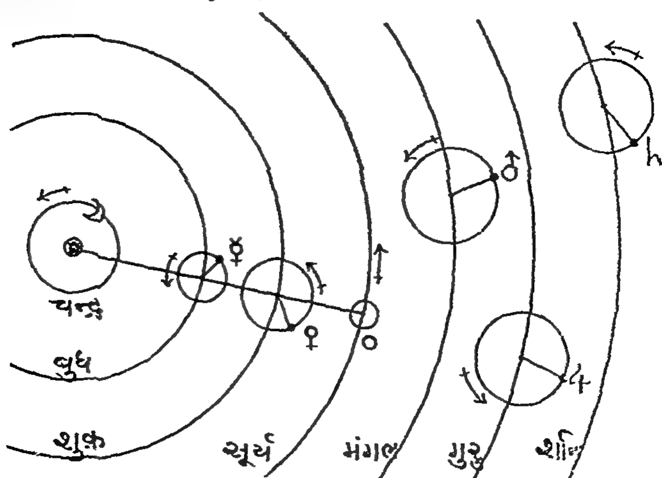
पृष्ठ १६३ पर के चित्रमें उपर्युक्त वृत्त-प्रतिवृत्त बताये गये हैं। और साथ-साथ ग्रहका आकाशीय मार्ग कैसा होगा यह भी दर्शाया है। टॉलेमीकी यह पद्धति सही कारणवाली नहीं थी अतः ग्रहोंके स्थानोंमें बादमें दिखाई पड़नेवाले फर्कको समझानेके लिये प्रतिवृत्तके भी प्रतिवृत्त देने पड़े और यों समग्र पद्धति अत्यंत जटिल बन गई। इस जटिलतासे छुटकारा दिलाया निकोलस कोपरनिकसने। उसने कहा कि ग्रह पृथ्वीके इर्दगिर्द नहीं परन्तु सूर्यके आसपास घूमते हैं। अतः पृथ्वीसे उनको देखने पर वे मार्गी और वक्री बनते दिखाई देते हैं।



ऊपर दी गई आकृतिसे यह बात अच्छी तरह समझी जायगी। सूर्यके इर्दगिर्द घूमनेवाले पृथ्वी और मंगल ग्रह अलग-अलग समय पर अपनी कक्षाओंमें कहाँ होंगे यह १, २, ३ में दर्शाया गया है। पृथ्वी और मंगलको जोड़नेवाली रेखा मंगलका आकाशीय स्थान दिखाती है। पाठक देख सकेंगे कि मंगलका आकाशीय पथ कभी-कभी पूर्वसे पश्चिमका (वक्री) बनता दिखाई देता है।

टॉलेमीके बादके किसी ग्रीक खगोलविद्के बारेमें कुछ ज्ञान नहीं हुआ है। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक टॉलेमी जैसा प्रतिभाशाली कोई खगोलशास्त्री पैदा ही न हुआ हो, और यों सामान्य खगोलज्ञोंको प्राधान्य न मिला हो। दूसरा टॉलेमी निर्मित ग्रंथ सर्वग्राही होनेसे और सब लोगोंका उसे मान्य रखनेसे खगोलशास्त्रमें नया संशोधन रुक गया हो। इतिहासविद् इस संदर्भमें एक अन्य कारण दर्शाते हैं। उनका कहना है कि ग्रीकोंके बाद राज्यसत्ताके रूपमें

रोमन लोग उन्नतिके शिखर पर थे और उनको खगोलशास्त्रमे रस न था। यों राज्याश्रयके बिना खगोलशास्त्रके अध्ययनमे बहुत ही जल्द कमी आ गई।



ग्रह और वृत्त-प्रतिवृत्त

रोमनोंको खगोलशास्त्रमें रुचि नहीं थी ऐसा कहना कुछ अखरनेवाला जरूर है। संभव है कि ईसाकी पहली सदीका इतिहास उज्ज्वल हो। उस समय रोमन सम्राट जूलियस सीझर राज करता था। ई. स. पू. ४६ में उसने देखा कि अपने राज्यका पंचांग व्यवस्थित नहीं है। उसे व्यवस्थित करनेके लिये उसने अलेकझान्ड्रियाके ज्योतिषी सोसिजिनिसकी सहाय ली और अनेक वर्षोंसे दुरुस्त होना चाहता रोमन कैलेन्डर उसके प्रयत्नसे व्यवस्थित बन गया। बादमें वह पंचांग जुलियन कैलेन्डर या क्रिश्चियन कैलेन्डरके नामसे प्रख्यात हुआ।

जुलियस सीझरके जमाने तक, रोमन साम्राज्यके पंचांगोंमे वर्षकी निश्चित लम्बाईके बारेमें अनिश्चितता प्रवर्तती थी। उस समय वर्षके दस मास (पहला, दूसरा . . . दसवाँ) थे और उसके कुल दिवस ३०४ होते थे। बादमे उनमें ५१ दिवस जोड़कर वर्षके ३५५ दिवस बनाये गये। उसके साथ-साथ जनवरी एवं फरवरी ऐसे दो मास-नाम जारी किये गये। पुरानी पद्धतिके अनुसार वर्षका पहला महीना प्रारंभका या मार्च महीना गिना जाता था। अब जनवरीको पहला मास कहा गया। हमारे सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर और दिसम्बर प्राचीनोंके ७ वाँ, ८ वाँ, ९ वाँ और १० वाँ मास-नाम हैं। सोसिजिनिसकी सहायतासे सीझरने वर्षकी लम्बाई ३६५ दिवसोंकी कर देनेके अलावा प्रत्येक चौथे वर्षमे प्लुत दिन जोड़नेकी योजना का भी नियम बना दिया। इतना ही नहीं किन्तु सभी मासोंके दिवसोंकी संख्या भी निश्चित कर दी और वर्षारंभका प्रचलन पहली जनवरीसे करवाया। इन सब कारणोंसे ई. स. पू. ४६ का वर्षारंभ निश्चित समयसे (पहलेके हिसाबसे) ९० दिवस पहले शुरू हुआ। इस कारण फरवरी मासके अंतमे २३ अधिक दिन जोड़े जानेके अलावा नवम्बर और दिसम्बर के बीचमे ६७ दिन जोड़नेकी व्यवस्था करनी पड़ी। फलतः वह वर्ष ४४५ दिनोंका बन गया और 'उलझनका वर्ष' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

जुलियस सीज़रकी इच्छा पचांगको पूर्णतया शुद्ध बनानेकी थी। इस कारण वर्षारंभकी तारीख २५ दिसम्बर रखना वह चाहता था। किन्तु वैसा नहीं बन पाया। ई स पू ४५ के जनवरीकी पहली तारीखको सुदी पडवा होना था और नैसर्गिक रीतिसे मास शुरू होना था। अत लोगोंने उस तिथिको सगुनवती समझकर उसी दिनसे वर्षारंभ मनानेको जुलियसको बाध्य किया। इतिहास गवाही देता है कि जुलियस सीज़रने प्रजाकी इच्छाका आदर करके अपना आग्रह छोड दिया।

वर्तमान ईसाई पचांगकी यह संक्षिप्त कहानी है।

टोलेमीके बाद ग्रीकोंकी खगोलशास्त्रीय आराधना मंद होकर रुक गई थी मगर उस वक्त भी भारतमें खगोलज्ञानकी ज्योत जलती रही थी। ई स की पांचवी सदीमें आर्यभट्ट कृत आर्यभटीय, छठी सदीमें वराहमिहिर द्वारा संपादित पंचसिद्धान्तिका और सातवी सदीमें ब्रह्मगुप्तकृत ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त एव खडखाद्यक रचनाओंके प्राकट्यके बाद भी लंबे अरसे तक यह ज्ञानज्योत भारतमें प्रज्वलित रही थी।

आर्यभट्टके 'आर्यभटीय' ग्रंथको आर्यसिद्धांत भी कहा जाता है। 'आर्यभटीय' से पहलेके जो खगोलग्रन्थ थे वे सारे अपूर्ण या खंडित थे। इन सभीके ग्रहगणितकी सैद्धान्तिक बुनियाद कच्ची थी। आर्यभट्टने अपने जमानेके पहलेके खगोलशास्त्रके सभी उत्तम अंगोंको आत्मसात कर लिया था और फिर अपनी ओरसे बहुत-सी नई बातें जोडकर भारतीय खगोलशास्त्रको सैद्धान्तिक रूप देनेवाले 'आर्यभटीय' ग्रंथकी रचना की थी। उस ग्रंथके अनुसार उस समयके युगारंभ अर्धरात्रिसे अथवा सूर्योदयसे शुरू करनेकी दो पद्धतियाँ—क्रमसे अर्धरात्रिक अथवा औदयिक गणनायें—प्रचलित होनेका ज्ञान हुआ है।

आर्यभटीयसे ही भारतीय वैज्ञानिक खगोलशास्त्रका आरंभ होना माना जा सकता है। वैसे तो यह ग्रंथ बहुत बडा नहीं है फिर भी उसके १२१ श्लोकोंमें बहुत-सी बातोंका समावेश किया गया है। सूत्रबद्ध सापाके कारण ही यह संभव हो सका है। आर्यभटीयके चार विभाग हैं। (१) गीतिका पाद, (२) गणित पाद, (३) कालक्रिया पाद और (४) गोल पाद। गीतिका पादमें केवल ११ श्लोक हैं, पर उनमें बहुत सामग्री ठूस ठूस कर भर दी गई है। अक्षरों द्वारा संक्षिप्तिकरणके कारण वैसा किया जा सका है। निम्न उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। एक महायुगमें पृथ्वीके इर्दगिर्दके सूर्यके ४३, २०, ००० भगण (चक्कर) होते हैं यह बात 'ख्यु घृ' द्वारा, चद्रके पृथ्वीके आसपासके ५७७, ५३,३३६ भ्रमण 'चयगियिङुशुछ्लृ' द्वारा और अपनी धुरी परके पृथ्वीके १,५८,२२,३७,५०० चक्कर 'ङिशिबुणलृख्यृ द्वारा दर्शाया गया है और उस जमानेके हिसाबसे वह बिलकुल नई बात थी।

गीतिकापादकी तरह आर्यभटीयके अन्य अध्याय भी माहिती सभर हैं। गणित पादकी एक बात आज भी आश्चर्यमें डाल दे उतने सूक्ष्म प्रकारकी है। व्यास और परिधिका संबंध π द्वारा दर्शाते हैं। π का सामान्य मूल्य $\frac{22}{7}$ लिया जाता है मगर वह अत्यंत स्थूल है। π का सूक्ष्म मूल्य ३.१४१५९२९ है। आर्किमिडिस द्वारा दी गई $\frac{22}{7}$ = ३.१४२८ वाली कीमत दशांशके तीसरे स्थान पर टूट जाती है। आर्यभट्टने π की कीमत यों दी है—वर्तुलका व्यास

यदि २०,००० हो तो उसकी परिधि ६२८३२ होगा। इस प्रकार π = ३.१४१६ होता है जो π की आधुनिक सूक्ष्म कीमतके बहुत ही निकट है। इस परसे आर्यभट्टकी गाणितिक शक्तिका हमें परिचय हो सकता है। आर्यभट्टका जन्म ई. स. ४७६ मे हुआ था और उसने आर्यभटीयकी रचना ई. स. ४९९ मे की थी। मतलब कि आर्यभट्ट केवल २३ वर्षकी छोटी उम्रमें ही खगोलविद् बन गया था! असामान्य मेधावी आर्यभट्टने अपना जन्मस्थान कुसुमपुर (बिहारका वर्तमान पटना) होनेका भी लिखा है।



वराहमिहिर

आर्यभटीयके अतिरिक्त दूसरा एक ग्रथ भी आर्यभट्टके द्वारा लिखा गया माना जाता है। उस ग्रंथमे तिथि, नक्षत्र वगैरहकी गिनती की बाते हैं किन्तु वह आज उपलब्ध नहीं है।

प्राचीन भारतका दूसरा समर्थ खगोलविद् वराहमिहिर है। खगोलशास्त्रका प्रकांड पंडित होते हुए भी उसने अपना कोई खगोलग्रथ नहीं रचा है। उलटे उसने अपने जमानेके पहलेके प्रसिद्ध पाँच सिद्धांतोंका संपादन किया है। वराहमिहिरकी कोई खगोलरचना न होनेका हमें दुःख है किन्तु 'पंचसिध्दान्तिका'का जो संपादन उसने किया है वह इस दुःखको मिटा देनेवाली वस्तु है। इस संपादनकार्यके कारण ही हमे अपने प्राचीन मीरासका पता चला है। इतना ही नही किन्तु इसके जरिये खगोलशास्त्रकी कड़ियाँ भी प्राप्त की जा सकी हैं। वराहमिहिरने भले ही स्वतंत्र खगोलग्रन्थ न लिखा हो, उसका विद्यासामर्थ्य उसके संपादकीय कौशल्य और भाषाके द्वारा प्रकट हो जाता है। देशी-विदेशी अनेक विद्वानोंने सत्यनिष्ठ पंडितके रूपमे वराहमिहिरकी प्रशंसा की है। वराहमिहिरके द्वारा संपादित पाँच सिद्धान्तोंमे एक सिद्धान्त रोमक नामका है जो विदेशी ज्योतिष पर आधारित ग्रन्थरचना है।

वराहमिहिर उज्जयिनीका रहनेवाला था और उसने 'पंचसिद्धान्तका' मे ग्रहगणितके आरंभका वर्ष ई. स. ५०५ दिया है। इस वर्षको ग्रंथरचना-काल मान लें तो वराहमिहिर आर्यभट्टका समकालीन सिद्ध होता है। वराहमिहिरने आर्यभट्टका भी खगोलविद् के नाते उल्लेख किया है जो इस बातको पुष्ट करता है।

वराहमिहिरने अन्य ग्रंथ भी लिखे हैं जिनमें 'बृहत् संहिता' मुख्य है। ज्ञानकोष तरहके इस ग्रंथमें उसने अनेक विद्याओंके विषयमें लिखा है। फलज्योतिष विभागके कारण यह ग्रंथ ज्योतिषियोंमें अति प्रसिद्ध है।

आर्यभट्ट और वराहमिहिरके बादका प्रसिद्ध खगोलशास्त्री ब्रह्मगुप्त है। ब्रह्मगुप्तका जन्म उत्तर गुजरातकी प्राचीन राजनगरी भीनमाल (या श्रीमाल) में ई स ५९८ में हुआ था। उसने खगोलशास्त्र पर दो ग्रन्थ रचे हैं। (१) ब्रह्मस्फुट सिद्धांत और (२) खंडखाद्य। ये दोनों ग्रन्थ बादमें अरबीमें अनुवादित होकर अल-सिंदहिंद और अल-अर्कंद नामसे प्रसिद्ध हुए थे। उन ग्रंथोंके कारण भारतीय खगोल और गणितशास्त्र अरबों द्वारा सम्मानित हुआ था। इतना ही नहीं किन्तु दूर तुर्कस्तान तक उसकी प्रतिष्ठा फैली थी। ब्रह्मगुप्तने अपना प्रथम ग्रंथ ३२ वर्षकी आयुमें और द्वितीय ग्रंथ ६९ वर्षकी आयुमें लिखा था।

ब्रह्मगुप्त खगोलशास्त्रका प्रकांड पंडित था, किन्तु उसने देखा कि उससे पहले आर्यभट्टने करीब सारा शास्त्र आर्यभटीयमें रख लिया है। शायद इस कारणसे ही या अन्य कारण (तीव्र वेधबुद्धि और शोधवृत्तिके कारण) से ब्रह्मगुप्तने आर्यभट्टकी बहुत स्थलों पर कटु आलोचना की है। पृथ्वीके अक्षभ्रमणकी बात का उसने खूब मजाक उडाया है। फिर भी खंड-खाद्यकमें उसकी यह वृत्ति आर्यभट्टके प्रति आदर दिखाती मालूम हुई है। संभव है उसे अपना दृष्टि-दोष अवगत हुआ हो।


भास्कराचार्य-रोग

ब्रह्मगुप्तकी विशेष देन वर्षमान-शुद्धिकी है। हमारे महान ज्योतिषी भास्कराचार्यने ब्रह्म-गुप्तको गणकचक्र-चूडामणि कहा है। ब्रह्मगुप्त कितना बडा गणित-ज्योतिषी आचार्य होगा उसका खयाल इस बातसे आ सकता है।

ब्रह्मगुप्तके बादके भारतीय महान सिद्धान्तकारोंमें प्रमुख भास्कराचार्य (१२ वी सदी), गणेश दैवज्ञ (१६ वी सदी) और जयसिंह (१८ वीं सदी) हैं। उनके बारेमें लिखनेसे पहले अरबी खगोल-विकासके इतिहासका परिचय पा लेना ठीक होगा।

यह तो हम देख चुके हैं कि पश्चिमके देशोंमें, टॉलेमीके बाद खगोलशास्त्रका विकास रुक गया था। हमने यह भी देखा कि उस कालमें खगोलकी ज्योति भारतमें जलती रही थी

और ई. स. की ७ वीं सदीमे महान खगोलशास्त्री ब्रह्मगुप्त द्वारा हमे दो ग्रन्थ प्राप्त हुए थे। ब्रह्मगुप्तके कालमे ही अरबस्तानमें इस्लामका उदय हुआ था और मुस्लिम धर्म पड़ोसके देशोंमें प्रसरित होने लगा था। मुसलमानोंने सीरिया, मिस्र, उत्तरी अफ्रिका, स्पेन, सिसिली, तुर्कस्तान, ईरान और हिंद तकके प्रदेशोंको जीतकर उन सब स्थानोंमे इस्लामको फैलाया था। धर्मप्रचारके साथ-साथ उन्होंने संस्कारका एवं संस्कृति-प्रचारका भी ध्यान रखा था। फलतः ज्ञानविज्ञानकी शाखाओंके अध्ययनके लिये उनके द्वारा प्रयत्न किये गये थे। अन्य देशोंमें खगोलकी दृष्टिसे जो उत्तम था, उसे प्राप्त करनेकी और उसे संस्कारनेकी मुस्लिम राजकर्ताओंकी दृष्टिने खगोल-विज्ञानके कार्यको बहुत आगे बढ़ा दिया। ई. स. ७७३ मे खलीफ अल-मन्सूरने ब्रह्मगुप्तके दोनों ग्रन्थोंका अरबीमें अनुवाद करवाया था। इतना ही नहीं किन्तु उन ग्रन्थोंके हिसाबसे आकाशीय ज्योतियोंके गणितमें संस्कार करनेकी जरूरत दिखाई देने पर नये सिरेसे उचित वेध लेनेका उसने अपने पंडितोंको हुक्म दिया था।

मिस्र पर की इस्लामी सत्ता मजबूत होनेके बाद टोलेमीके ग्रन्थकी जानकारी प्राप्त हुई। उस समय मुस्लिम साम्राज्यकी राजधानी बगदाद थी। खलीफ अल-मामूनने अनुवाद विभागके पंडितोंको टोलेमीके ग्रंथ सिन्टेक्सिसका अनुवाद करनेका आदेश दिया। ई. स. ८२७ में वह अल-माजेस्ट नामसे प्रकाशित हुआ। सिन्टेक्सिसका अनुवाद करनेवालोंमे प्रमुख विद्वान दार्शनिक इब्न इशाक और उसके शिष्य थे। टोलेमीके ग्रन्थके अतिरिक्त उन्होंने अरस्तुके ग्रंथका भी भाषांतर किया था।

खलीफ अल-मामून खगोलशास्त्रका मर्मज्ञ था। उसने ई. स. ८२९ मे वेधशाला स्थापित की और उसे अनेक प्रकारके यंत्रों और साधनोंसे सज्ज किया। फल यह हुआ कि उस जमानेके खगोलविदोंने सूर्यकी परमक्रांतिको नापा और उसकी नाप २३° ३४′ होनेका घोषित किया। रवि-परमक्रान्तिके हिसाबसे यह नाप उस समयकी सही नापसे सिर्फ डेढ़ कला कम थी।

वेधोंका कार्य चलता ही रहा था। ई. स. ८३६ मे खगोलशास्त्री थेबितने वेधोंके आधार पर नक्षत्रवर्षकी नाप ३६५ दि. ६ घंटे ९ मि. ११ सेकन्ड घोषित किया। उसकी इस नापमें सिर्फ १.४ सेकन्डकी कसर रहने पायी थी। साधनोंकी कमी हों और सूक्ष्म साधनोंका अभाव हो ऐसे समय थेबितने उपर्युक्त सूक्ष्म नाप कैसे नापा होगा यह अत्यंत आश्चर्यजनक घटना है। सही बात यह है कि इस्लामी खलीफाओंने डेढ़ सौ वर्षोंकी कम अवधिमे ही खगोलकी विरासतको इतना विकसित किया था कि उस समय वेधकलामे प्रवीण अनेक वेधकार प्राप्त हो सकते थे। थेबित उन सबमें शिरोमणि था।

इस अरसेमें एक और बात बनी। खगोलशास्त्र गणित पर आधार रखता है। रोमन आँकड़े गणितके ज्यादा अनुकूल न थे। और उनमें शून्य (०) की संज्ञा न थी। इस कारण खगोल-शास्त्र आँकड़ोंमें उलझा हुआ रहता था। आरबोंने देखा कि इस कामके लिये भारतीय अंकगणना बहुत उपयोगी है। उन्होंने सिंदहिंदमें एवं और ग्रन्थोंके भाषांतरोंमें भारतीय अंकपद्धतिको अपनाया। इतना ही नहीं मगर उसका अन्य देशोंमें प्रचार भी किया। नतीजा यह हुआ कि बड़े-बड़े गणितशास्त्रियोंके नाकों दम करनेवाले गाणितिक हिसाब बहुत सरल बन गये और बीजगणित और त्रिकोणमितिका विकास जोरोंसे बढ़ने लगा।

वेधशालाका क्षेत्र सिर्फ बगदाद तक ही सीमित न था। और स्थानोंमें भी वेधशालायें स्थापित की गई थीं और वहां प्रसिद्ध खगोलविद् वेधकार्य करते थे। टॉलेमीके कोष्ठकों और वेध-सिद्ध ग्रहस्थितियोंमें फर्क दिखाई देने लगा था इस कारण नये वेधोंके द्वारा कोष्ठकोंको सुधारनेकी आवश्यकता मालूम हुई थी। अल्-बतानी बड़ा वेधकार एवं खगोलशास्त्री था। अनेक वेधोंके आधार पर उसने कोष्ठकोंमें सुधार किये। इतना ही नहीं किन्तु रविमार्गके तिर्यक्त्वको भी उसने फिरसे नापा। उसके द्वारा नापा गया तिर्यक्त्व लगभग शुद्ध था। ग्रहोंके कोष्टक तैयार करनेके अलावा उसने वसन्तसंपातका स्थान निश्चित करके अयनगतिको नये सिरेसे खोजा था। सिदहिंद और अल्-अर्कंदके पुराने अनुवाद संतोषप्रद नहीं दिखाई देने पर उसने उनके अनुवाद फिरसे किये। इतना ही नहीं किन्तु त्रिकोणमितिके लिये ग्रीकोंकी जीवाका त्याग करके भारतीय अर्धजीवा (ज्या) को उसने पसन्द किया। इतना कर चुकनेके अलावा उसने खगोलीय वेधोंके ब्योरे भी प्रकाशित किये थे। अन्य शब्दोंमें कहें तो अल-बतानीने उसके जमानेके हिसाब से बहुत ही अच्छा काम किया था।

८ वीं सदीमें मुसल्मानोंने स्पेन विजित किया था। बादमें १० वीं सदीमें (ई स ९७०) में) कोरदोवा नगरमें उन्होंने वेधशाला स्थापित की थी। यह वेधशाला बगदादके विद्याकेन्द्रकी प्रतिस्पर्धी संस्था बन गई थी। इसी तरह राका और टॉलेडो नगरोंमें वेधशालायें स्थापित की गई थी और वहां अनेक प्रकारके संशोधन-कार्य चलते थे। इनके अलावा तारा-सूचियों और तारा-नकशोंका काम भी वहां चलता था। ताराओंके नाम अरबीमें दिये गये थे जो आज भी जन-साधारणके उपयोगमें हैं।

उस समयके उत्तम वेधकारोंमें प्रमुख अबु अल-वेफा, अबु महम्मद अल्-खोजदी, अल-हसन, अल-बिरुनी, अल-सूफी, थियोनियद, नासिरुद्दीन और उलुघबेग हैं। अल हसनने पृथ्वीकी परिधि नापकर घोषित किया था कि वह ४१,००० किलोमीटर है। प्रकाशके वक्रीभवनके बारेमें भी उसने संशोधन किया था जो बादमें केप्लरके बहुत काम आया। अल्-सूफी द्वारा तैयार किये गये तारापत्रकोंमें तारामंडलोंकी आकृतियोंके साथ उनके रंग भी बनाये गये थे। ये सारी बातें उलुघबेगको बहुत उपकारक साबित हुई थी। थियोनियदने ईरानियोंसे ज्ञान हासिल किया था। उसका खोजा हुआ सायन वर्षमान ३६५ दिवस ५ घंटे ४९ मिनट ३५ सेकंडका है जो सही वर्षमानसे सिर्फ १७.५ सेकंड अधिक है। थियोनियद द्वारा प्राप्त यह वर्षमान उसकी उत्तम वेध-शक्ति दर्शाता है। उसके जमानेके हिसाबसे यह अत्युत्तम वर्षमान-लंबाई मानी जायगी। स्थूल साधनोंके जमानेमें इस प्रकारकी सिद्धि प्राप्त करना वेधकारकी सूझ-बूझका ही परिणाम समझा जायगा। अल-बिरुनीकी प्रसिद्धि खगोल विषयक पाठ्यपुस्तक लिखनेवाले लेखकके नाते है।

उमर खैयामका नाम रुबाईयोंके लेखकके रूपमें हम सबको विदित है। बहुत कम लोग यह जानते होंगे कि वह भी एक समर्थ खगोलशास्त्री था। सल्जुक सुल्तान जलालुद्दीनके दरबारका वह माननीय गणितज्ञ था। सुल्तानकी इच्छा अपने राज्यमें प्रवर्तमान पंचांगको दुरुस्त करनेकी थी। उमर खैयामने वह काम सुचारु ढंगसे किया। उसके द्वारा सस्कारा गया पंचांग ग्रेगरी पंचांगसे भी उच्च कोटिका बना था। खेदकी बात है कि आज वह पंचांग अप्राप्य है और

इस कारण खगोलशास्त्रीके रूपमे उमर खैयामके बारेमे विशेष जानकारी नही मिल पायी है। हाँ, एक बात और जरूर मानप्रद है। बीजगणितकी रचनाके कारण उमर खैयामकी ख्याति विद्वानोंमे फैली हुई है। उमर खैयामके बाद ५०० सालके पीछे पश्चिमी संसारने जो संशोधन किये थे वैसे कई एक सिद्धान्तोंका उमर खैयामने ई. स. की ११वी सदीमे प्रतिपादन किया था। उसके रचे हुए बीजगणितका पाँचवाँ खण्ड हाल हीमे (ई. स. १९३१ मे) प्राप्त हुआ है। इस खण्डको उसके पहलेके चार खण्डों जैसी ही मूल्यवान रचना माना जाता है। गणितज्ञ उमर खैयामकी मृत्यु ई. स. ११२३ में हुई थी।



उलुघबेग

बारहवी सदीके बाद मुस्लिमोंकी खगोल-साधनामे भाटा आना शुरू हो गया। तेरहवी सदीमे बहुत ही कम कार्य हुआ था। मगर १४वी सदीमे वह और ज्यादा विकसित बना। फिर भी यह विकास ज्यादा न टिकने पाया। उसके विकासकर्ताकी मृत्युके साथ ही वह भी रुक गया।

उलुघबेग राज्यकर्ता होने पर भी एक बड़ा खगोलविद् था। प्रसिद्ध तैमूर लंगका वह पौत्र था। उसकी राजधानी समरकंदमे थी। वेधशाला और वेधोंमे उसे बहुत दिलचस्पी थी। उसने वेधशालाका तंत्र अत्यत व्यवस्थित बनाया इतना ही नही परंतु वेधोंकी सूक्ष्मताके लिये उसने ५० मीटर ऊँचा शंकु स्थापित किया और उसकी सहायसे अयनगति और रविपरममंदफल नापे। उलुघबेगके हिसाबसे अयनगति ७० वर्षोंमे १ अंश थी। उसने तारापत्रक और ग्रहकोष्ठक भी नये सिरेसे बनाये थे। परम दु:खकी बात यह है कि ऐसे विद्याव्यासंगी राजाका उसके पुत्र और संबंधियोंने राज्यलोभके कारण ई. स. १४४९ मे वध कर दिया।

उलुघबेगके बाद अरबोंकी खगोलविषयक प्रवृत्ति मंद हो गई और समयके बीतनेके साथ वह बिल्कुल रुक गई।

ई. स. की पंद्रहवी सदीके बाद पश्चिमके देशोंमे—खासकर यूरोपमे—खगोलका पुनरुत्थान होने लगा। खगोलकी यह आराधना इसके पहलेकी उपासना की अपेक्षा अलग प्रकारकी थी और ऐसा होनेका कारण भी था। उस समयके खगोलविदोंने सदियोंसे चला आता अरस्तु और टोलेमीके शास्त्र-प्रामाण्यका खात्मा करके बुद्धि-प्रमाणकी स्थापना की थी। उस जमानेका

सबसे पहला शक्तिशाली खगोलज्ञ निकोलस कोपरनिकस था। अपने समय तक चली आती 'पृथ्वी विश्वका केन्द्र है' वाली मान्यताको उसने काट डाला था। कोपरनिकसके बाद गेलिलियो, केप्लर और न्यूटन जैसे समर्थ खगोलशास्त्री पैदा हुए जिन्होंने समग्र विश्वके चित्रको आधुनिक स्वरूपमें पेश किया। हम गेलिलियोका गुरुके चंद्रोंके शोधकके रूपमें, केप्लरका उसके तीन नियमों के लिये और न्यूटनका गुरुत्वाकर्षण सिद्धांतके लिये आदर करते हैं। इन तीनोंमें सबसे ज्यादा यातना गेलिलियोको भुगतनी पडी है। धर्मगुरुओंकी धाक होने हुए भी—खास करके ब्रूनो जैसे खगोलशास्त्रीको धर्मगुरुओंने जिंदा जला देने पर भी—खगोलविदोंने निर्भयतासे अपना कार्य जारी रखा था।

नूतन युगके खगोलशास्त्रियोंकी बात करनेसे पहले उसी युगके भारतीय खगोलशास्त्रियोंकी थोडी बात कर लेना उपयुक्त होगा। उपयुक्त इस अर्थमें कि अरबोंकी खगोलोपासना बंद हो गई थी उस वक्त भी भारतमें खगोलका अध्ययन सक्रिय रहा था। इतना ही नहीं खगोलके पश्चिमी नूतन युगके बाद भी यह थोडे-बहुत अंशोंमें आज पर्यंत चल रहा है।

ई स की दसवी सदीसे १७ वी सदी तकके भारतीय खगोलशास्त्रियोंमें प्रमुख आर्यभट्ट द्वितीय, भास्कराचार्य, मकरंद, गणेश दैवज्ञ और जयसिंह हैं।

आर्यभट्ट द्वितीय विद्वान आचार्य था। आर्यभट्ट प्रथमकी जिन बातोंका ब्रह्मगुप्तने अपने ग्रंथमें खंडन किया था उन सब बातोंको उसने सुधारकर अपना महासिद्धांत ग्रन्थ रचा था। उसने आर्यभट्ट प्रथमसे अलग प्रकारकी मगर बहुत ही सरल ढंगकी संख्यालेखन पद्धति गढी थी जो कटपयादि पद्धतिके नामसे मशहूर है। अयनचलनके बारेमें सर्वप्रथम बात उसने ही कही है।

भारतके ख्यातनाम पुराने खगोलशास्त्रियोंमें भास्कराचार्य अत्यंत प्रसिद्ध हैं। ई स १११४ में जन्मे इस विद्वानने ३६ सालकी आयुमें सिद्धांत शिरोमणि और ६९ की आयुमें करणकुतूहल नामक ग्रंथ रचे थे। सिद्धान्त शिरोमणिमें ज्योतिष सिद्धांतके सारे तथ्योंको विस्तारसे एवं उपपत्तिके साथ दिया गया है। खगोलशास्त्रियों द्वारा सिद्धांत शिरोमणिकी गणना उत्तम ग्रंथके रूपमें की जाती है। करणकुतूहल पंचांग बनानेके लिये उपयोगी ग्रन्थ है।

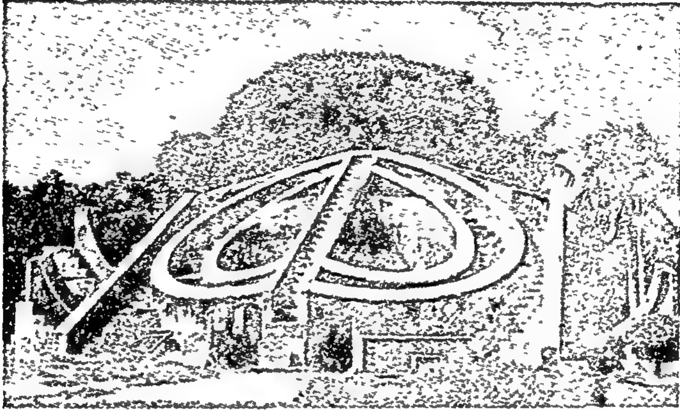
भास्कराचार्यने आकाशके प्रत्यक्ष वेध बहुत कम लिये हैं। फिर भी उसके द्वारा आविष्कृत चंद्रगणितका तिथिसंस्कार महत्त्वका खगोलप्रदान समझा जाता है।

खगोलशास्त्रियोंमें भास्कराचार्य सचमुच ही भास्कर या सूर्य था। उसके बाद उसके जैसा समर्थ शास्त्री कोई नहीं हुआ है। यह होते हुए भी भारतीय परंपरागत खगोल-संशोधन चलता ही रहा है। गणेश दैवज्ञने ग्रहलाघव ग्रंथकी रचना की है जिसमें उसने ज्या और कोज्याको छोडकर हिसाबोंको खूब सरलता कर दी है। ग्रहोंके वेधोंका वह पक्षपाती था। उसका ग्रंथ आज भी काममें लिया जाता है, जो कि वह अब स्थूलतावाचक बन गया है।

वेधपरंपराके पुराने वेधकारों और खगोलशास्त्रियोंमें जयसिंहका अंतिम गिनना चाहिये। कारण यह है कि उसके बाद समग्र दुनियामें नूतन खगोलपद्धतिका प्रसार हो गया था। सवाई जयसिंह दूसरेके नामसे प्रख्यात इस खगोलज्ञ जयसिंहका जन्म ई स १६८६ में हुआ था।

१३ सालकी उम्रमें आमेरकी गद्दी पर बैठनेवाले उस राजाने ही जयपुर बसाया था। इतना ही नहीं किन्तु उसे विद्याका केन्द्र और वेधशाला-धाम बनाया था। जनता आज 'वेधशाला' शब्दसे परिचित है उसका श्रेय जयसिंहको ही है।

जयसिंह विद्वान राजा था। उसने अपने समयकी तमाम खगोल पुस्तकोंका एवं पंचांगोंका गहरा अध्ययन किया था। ईसाई और अरब देशोंके खगोलविषयक ग्रंथोंका संस्कृतमें भाषांतर करनेका काम उसने निष्णात खगोलविद् जगन्नाथको सौंपा था। जयसिंहने मुस्लिम और क्रिश्चियन विद्वानोंसे भी बहुत महत्त्वपूर्ण शोधकार्य करवाया था।

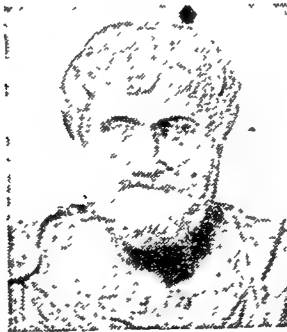


जयपुरकी वेधशालाका अेक हिस्सा

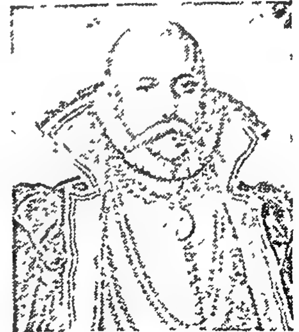
जयसिंहकी खास देन खगोलविषयक साधनोंमें सुधार करके वेधशालायें स्थापित करनेकी है। नाडीयंत्र, गोलयंत्र, दक्षिणोदिग्भित, सम्राटयंत्र, जयप्रकाश, वृत्तषष्ठांशक आदि साधन उसकी



आर्किमिडिझ



एरिस्टोटल



टायको ब्राहे

वेधशालाओंमें उपयोगमें लिये जाते थे। तारों और ग्रहोंके आकाशीय स्थानोंकी गिनतियाँ एवं ग्रहकोष्ठकोंमें जो गलतियाँ थीं उन्हें सुधारनेके लिये उसने भगीरथ प्रयत्न किया है। अपने

समयकी समरकदकी विख्यात वेधशालामें जो विविध यंत्र थे ठीक वैसे ही यंत्र उसने बनवाये थे। हाँ, उसने उन यंत्रोंकी खामियोंको दूर किया था और नये यंत्र ईंटचूनेके बनवाये थे। इन नये यंत्रोंके निरीक्षणोंके आधार पर तैयार किये गये ग्रहकोष्ठक 'झीज महमदशाही' के नामसे पहचाने जाते हैं।

जयसिंह अपने जमानेका सर्वश्रेष्ठ वेधकार था। उसके जमानेके बाद यूरोपमें दूरबीनकी खोज हुई और उसीके कारण खगोलमें जो प्रगति हुई उसमें भारत कदम नहीं मिला सका और भारतीय खगोलशास्त्रकी पुरानी विरासत वहीं रुक गई।

जयसिंह द्वारा स्थापित की गई दिल्हीकी (और अन्य) वेधशाला आज काम नहीं देती है परन्तु फिर भी 'जंतर-मंतर' के नामसे वह लोगोंके आकर्षणकी वस्तु बनी रही है। जयपुरकी वेधशाला आज भी अच्छी स्थितिमें है अलबत्ता वह आजके जमानेके अनुसार सूक्ष्म वेधोंका काम दे सके वैसी नहीं है।

अरस्तु और टॉलेमीकी खगोलविषयक विचारसरणीमें दोष होनेका बताया कोपरनिकसने। उसके समय तक ग्रहोंके कोष्ठक पुरानी पद्धति अनुसार तैयार किये जाते थे। उन कोष्ठकोंके आधार पर समुद्रके नाविक अक्षांश खोजते थे। हुआ ऐसा कि गुरु और चद्रके वेधोंके आधार पर बीच समुद्रमें अक्षांश खोजनेमें ई स १४९३ में कोलंबस असफल रहा और दिशा ज्ञान गँवा बैठा। दूसरे अन्य नाविकोंकी भी ऐसी ही दशा हुई। यह सब होनेका कारण ग्रहोंके कोष्ठकों की अपूर्णता थी। वे सही नहीं थे। मगर उनके दोषोंको सुधारा कैसे जाय? इस सबधमें जो भी प्रयत्न किये गये वे सभी असफल रहे।

इस असफलताने कोपरनिकसको ग्रहगतिका नया सिद्धांत खोजनेकी प्रेरणा दी। अपने जमानेमें उपलब्ध सारा खगोल साहित्य प्राप्त करके कोपरनिकसने उसका गहरा अध्ययन किया और बादमें ग्रहोंके वेध लेनेका काम शुरू किया। २५ साल तक वह निष्ठापूर्वक इस कामके पीछे लगा रहा, और इस दरमियान उसने ग्रहोंके अनेक वेध लिये और उनसे सबधित अनेक त्रुटियोंकी वह तुलना करता रहा। आखिरमें उसे सफलता प्राप्त हुई। उस अभिनव ज्ञानको उसने अपनी पुस्तकमें शब्दबद्ध किया। कोपरनिकसने किताब तैयार की सही मगर उसे मुद्रित करे कौन? उस जमानेमें धर्मगुरुओंकी धाक बहुत भारी थी और इस कारण ई स १५२९ में तैयार की गई किताब छपी ठीक १५४३ में। २३ मई १५४३ का दिन कोपरनिकसकी मृत्युका अगला दिन था। पुस्तक प्रकाशित हुई और कोपरनिकसकी आत्मा अनतमें मिल गई।

कोपरनिकसने अपनी पुस्तकमें कौनसी बातें लिखी थी? उसने लिखा था कि पृथ्वी विश्वके केन्द्रमें नहीं है। विश्वके केन्द्रमें सूर्य है। उसने यह भी कहा कि पृथ्वी अपनी धुरीके इर्दगिर्द एव सूर्यके भी इर्दगिर्द घूमती है। यानी पृथ्वी भी एक ग्रह है, चद्र ग्रह नहीं है। वह पृथ्वीके चारों ओर घूमनेवाला उपग्रह है।

'विश्वकेन्द्र पृथ्वी' वाली मान्यताका इस तरह खात्मा हो जानेकी बात धर्मगुरु कैसे बरदास्त करे? धर्मशास्त्रोंसे विरुद्ध कहने या लिखनेवालेको कडी नजरसे देखा जाता था और उसे

विविध प्रकारसे सताया जाता था। मगर कोपरनिकसके साथ यह सवाल रहा ही न था क्योंकि पुस्तक प्रकाशित होनेके दूसरे ही दिन कोपरनिकस पचत्वको प्राप्त हुआ था।

कोपरनिकसकी पुस्तकके कारण शुरूमे ज्यादा हो-हल्ला नहीं मचा पर उसके आधार पर तैयार किये गये ग्रहकोष्ठकोंके कारण किताबमे लिखा गया तथ्य खगोलज्ञोंकी समझमे आया और उन सभीको ग्रहगणितका सवाल सुलझता हुआ नजर आया।

यों शास्त्रीय गंगा ग्रीक फिलॉसफीसे उलटी ही बहने लगी।

कोपरनिकसके बाद तीन खगोलशास्त्री हुए जो एक दूसरेके समकालीन थे। टायको ब्राहे, गेलिलियो और केप्लर। टायको ब्राहे सूक्ष्म नाप लेनेवाला उत्तम वेधकार था। उसने देखा कि पृथ्वी विश्वका केन्द्र नहीं है यह बात अनेकोको पसन्द नहीं है। इसलिये उसने कोपरनिकस के सिद्धांतमे थोड़ा हेरफेर करके अपना (टायकोनिक) सिद्धान्त पेश किया। उस सिद्धातके अनुसार पृथ्वी विश्वके केन्द्रमे रहती थी और सूर्य एव चंद्र उसके इर्दगिर्द घूमते थे। इतना ही नही परन्तु कोपरनिकसके अनुसार ग्रह सूर्यके इर्दगिर्द घूमते थे। टायको ब्राहेके वेध केप्लरके काम आये थे। इसीलिये टायकोको यह विश्वास हो गया था कि केप्लर एक दिन उसके (टायकोके) सिद्धांतकी सचाई प्रमाणित करेगा। मगर हुआ इससे बिलकुल उलटा। केप्लरने टायको ब्राहेके सिद्धांतको गलत घोषित किया।

ऐसा कहा जा सकता है कि केप्लरने एक प्रकारसे कोपरनिकसका अधूरा काम पूरा किया। ग्रह वर्तुलमे घूमते हैं कि वृत्त-परिवृत्तमें इस बातके बारेमें कोपरनिकसने कुछ नहीं कहा था। केप्लरने स्पष्ट रूपमे कह दिया कि सारे ग्रह सूर्यके इर्द-गिर्द दीर्घवृत्तमे घूमते हैं। सूर्य इस दीर्घवृत्तके एक केन्द्रमे होता है। इसके साथ-साथ केप्लरने और दो नियम भी घोषित किये। फलतः ग्रहोंके वृत्त-प्रतिवृत्तके सारे भूत अदृश्य हो गये।

अरस्तुकी फिलॉसफीका विरोध करनेवाला गेलिलियो केप्लरका समकालीन था। दूरबीनकी बात सुनकर और उसे तैयार करनेकी जानकारी प्राप्त करके उसने खुद एक दूरबीन बनाई। और उस दूरबीनसे उसने आकाशकी ओर देखा। आकाशीय पदार्थोको दूरबीनसे देखनेवाला वह प्रथम खगोलशास्त्री था। दूरबीनसे उसने गुरुके चन्द्र, शुक्रकी कलाये और चंद्रके ज्वालामुखोंको देखा और केप्लरके नियम सच्चे होनेकी प्रत्यक्ष साबिती प्राप्त की; जो कि इस ज्ञानप्रचारकी बहुत कड़ी सजा उसे भुगतनी पड़ी थी।

गेलिलियोका जिस साल देहांत हुआ उसी साल महान गणितशास्त्री न्यूटनका जन्म हुआ था। न्यूटनने खगोलशास्त्रके सिद्धांतोंकी काया आमूलाग्र पलट दी। न्यूटनकी दो खास खोजे अत्यंत महत्त्वकी बन पड़ी। (१) दूरबीनमे ताल (लैंस) का प्रयोग करनेके बदले दर्पणका उपयोग करनेसे रंगावरण दूर किया जा सका और (२) गुरुत्वाकर्षणके नियमोके कारण अनजाने ग्रहोंकी खोजे हुई। न्यूटनका रचा हुआ 'प्रिन्सिपिया' ग्रन्थ नई दृष्टि और नये ढंगको प्रस्तुत करनेका आरंभ सूचित करता है। दूसरे प्रकारसे कहे तो न्यूटनसे आधुनिक खगोलशास्त्रका युग शुरू होता है। महा मेधावी न्यूटनके द्वारा ही खगोलका अज्ञात पर्दा उठाया गया और अनंतमे विहार करनेवाली ज्योतियोंके परिचयका श्री गणेश हुआ।

२१. प्राथमिक खगोलशास्त्र

आकाशीय ज्योतियोंसे संबंध रखनेवाली विद्या खगोलशास्त्र या ज्योतिषशास्त्र है। आम लोग जिसे 'ज्योतिष' कहकर पुकारते हैं वह वास्तवमें फलज्योतिष (Astrology) है, खगोलशास्त्र नहीं। वैज्ञानिक फलज्योतिषको शास्त्र नहीं समझते हैं।

आकाशीय ज्योतियोंकी गतिविधि, उन गतियोंके नियम, आकाशीय पिंडोंके आयतन, द्रव्य-मान, रंग, तेजस्विता आदिके अतिरिक्त इन ज्योतियोंके स्वरूप, उनकी संरचना, भौतिक परि-स्थिति और उनके पारस्परिक प्रभाव इत्यादिकी चर्चा जिस शास्त्रमें की जाती है वह *खगोलशास्त्र है।*

आधुनिक खगोलशास्त्रकी नीचे लिखी अनेक शाखा-प्रशाखायें हैं

(१) वर्णनात्मक खगोल	(२) गोलीय खगोल
(३) व्यावहारिक खगोल	(४) सैद्धान्तिक खगोल
(५) गाणितिक खगोल	(६) भौतिक खगोल
(७) रेडियो खगोल	(८) नौतरणी (नाविकी) खगोल
(९) क्ष-किरणी खगोल	

अब तक इस पुस्तकमें जिन बातोंकी चर्चा हमने की है उसका स्वरूप वर्णनात्मक ढंगका ही रहा है। मतलब यह कि गणितशास्त्रके सिद्धांत और उनके नियमोंकी चर्चा हमने नहीं की है और न अब ऐसी चर्चा करनेका कोई इरादा भी है। फिर भी इन दो बातों—वर्णन और गणित—के आपसी संबंधको स्पष्ट रूपसे समझ लेना अनुचित न होगा। और उस नाते आकाशीय ज्योतियों (विशेष करके सूर्य, चन्द्र, ग्रह और तारों) से अच्छा परिचय होना आवश्यक माना जायगा। इसके अतिरिक्त ये सारे आकाशीय पदार्थ अंतरिक्षमें किस तरह सरकते हैं उसका भी स्पष्ट खयाल होना बहुत जरूरी है। तारों और तारामंडलोंका परिचय अन्यत्र (इस पुस्तकके २३ वें अध्यायमें) कराया गया है। यहाँ उनकी आकाशीय स्थितियों और गतिविधियोंके बारेमें प्राथमिक चर्चा करेंगे।

चारों ओरसे पृथ्वीको जिसने घेर रक्खा है और जिसमें सूर्य, चन्द्र, तारे और ग्रह हीरोंके झूमकोंकी तरह जड़े हुए दिखाई देते हैं वह नीला वितान ही हमारा खगोल है। उपर्युक्त सारी ज्योतियाँ इस गोलकके पूर्वमें उगती हैं और पश्चिममें अस्त होती हैं। या ऐसा कहा जा सकता है कि तारों भरा आकाश पूर्वसे पश्चिमकी ओर गतिशील है। आकाशीय वितान की यह गति उसकी सच्ची गति नहीं है—वह झूठी (आभासीय) है। पृथ्वी अपनी धुरी पर

पश्चिमसे पूर्वका चक्कर काटती रहती है इसी कारण आसमानी वितान पूर्वसे पश्चिमकी ओर गतिशील दिखाई पड़ता है।

पृथ्वी पर गाँव, शहर, नदी, पर्वत, जंगल वगैरह जिस प्रकार दिखाये जाते हैं ठीक उसी तरह खगोलक पर भी आकाशीय ज्योतियोंको दिखाया जाता है। फर्क केवल यह है कि पृथ्वीके गोलेको बाहरसे देखा जाता है जबकि खगोलकको भीतरसे। अक्षांशों और देशांतरोंके द्वारा पृथ्वीके स्थानोंको निश्चित किया जाता है वैसे ही आकाशीय अक्षांशों और देशांतरोंके द्वारा ज्योतियोंके स्थान निर्णीत किये जाते हैं।

खगोलक पर स्थान-निर्देश किस प्रकार किया जाता है उस बातको समझनेकी अब हम चेष्टा करेंगे। पृथ्वीकी नाईं खगोलकके भी विषुववृत्त और ध्रुव हैं। पृथ्वीके अक्षको दोनों ओर बढ़ाने पर वह आसमानसे दो बिंदुओंमें जा मिलता है। ये दोनों बिंदु हमारे आकाशीय ध्रुव हैं। पृथ्वीके विषुववृत्तीय तलको फैलाने पर वह आकाशको बड़े वृत्तमें काटेगा। यह वृत्त होगा हमारा आकाशीय विषुववृत्त। दोनों आकाशीय ध्रुव इस विषुववृत्तसे समान अंतर पर हैं। ऐसा भी कहा जा सकता है कि आकाशीय विषुववृत्तका हरेक बिंदु दोनों आकाशीय ध्रुवों से समान अंतर पर है।

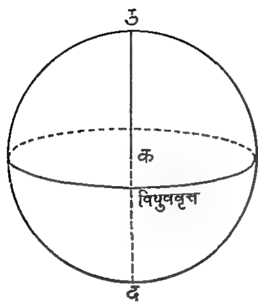
सुविधाके कारण, आकाशीय विषुववृत्त और आकाशीय ध्रुवबिंदुओंको संक्षेपमें हम विषुववृत्त और ध्रुव कहेंगे।

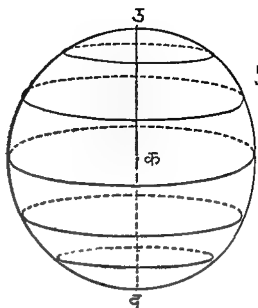
आकृति १ देखिये। उसमें विषुववृत्त, उत्तरध्रुव (**उ**) और दक्षिण ध्रुव (**द**) दिखाये गये हैं। ध्रुवोंको जोड़नेवाली **उद** रेखा पृथ्वी-धुरीकी दिशारेखा है और विषुववृत्तीय समतलसे वह सम-कोण बनाती है। यह रेखा विषुववृत्तके और साथ-साथ खगोलकके केन्द्र **क** में होकर गुजरती है और **कउ** = **कद** होता है।

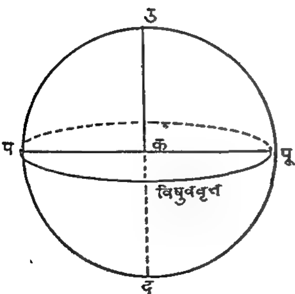
आकृति २ और २ अ में दिखाया गया विषुववृत्तीय तल (जो **उद** रेखाको लंब है) पूर्व और पश्चिम बिंदुओंसे गुजरनेवाला वृत्त है यह बात असानीसे समझी जायगी। विषुववृत्त पर, एकदूसरेके बराबर आमने-सामने पूर्व और पश्चिम बिंदु रख लिये जायँ तो **कपू**, **कप**, **कउ** और **कद** सभी खगोल-त्रिज्यायें बनेंगी और आपसमें एक समान होंगी।

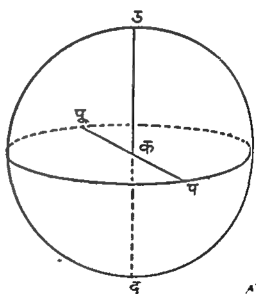
अब आकृति ३ देखिये। विषुववृत्तके समांतर बहुतसे और वृत्त वहाँ दिखाये गये हैं। ये सारे वृत्त **उद** के साथ समकोण बनाने पर भी विषुववृत्त ऐसे बड़े वृत्त नहीं हैं। एक बात और भी है। उपर्युक्त सारे वृत्तोंके केन्द्र खगोलकवाला केन्द्र नहीं है। ये सारे वृत्त लघुवृत्त हैं: विषुववृत्त और दूसरे और वृत्त जिन सबका केन्द्र **क** है गुरुवृत्त हैं। आकृति ४ देखिये।

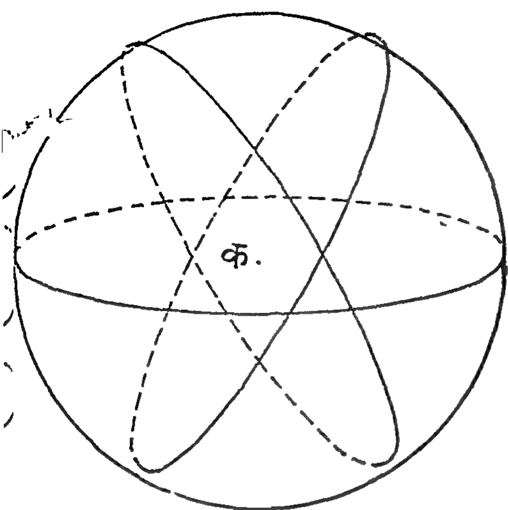
आकृति ५ में दो गुरुवृत्त एक दूसरेको **प** और **पू** में काटते दिखाई देते हैं। इन दोनोंमेंसे एक विषुववृत्त है और दूसरा होरावृत्त। होरावृत्त उत्तरध्रुव, पूर्वबिंदु, दक्षिणध्रुव, और पश्चिमबिंदु में होकर गुजरता है। होरावृत्तकी तुलना पृथ्वीके गोले परके देशांतरवृत्तके साथ की जा सकती है। पृथ्वीके देशांतरवृत्त विषुववृत्तके साथ समकोण बनाते हैं उसी प्रकार होरावृत्त भी विषुववृत्तके साथ समकोण बनाता है। आकृतिमें दिखाये गये **उपूस**, **उपूर**, **उपस** और **उपर** सभी समकोण हैं।


उ
क
विषुववृत्त
द
१

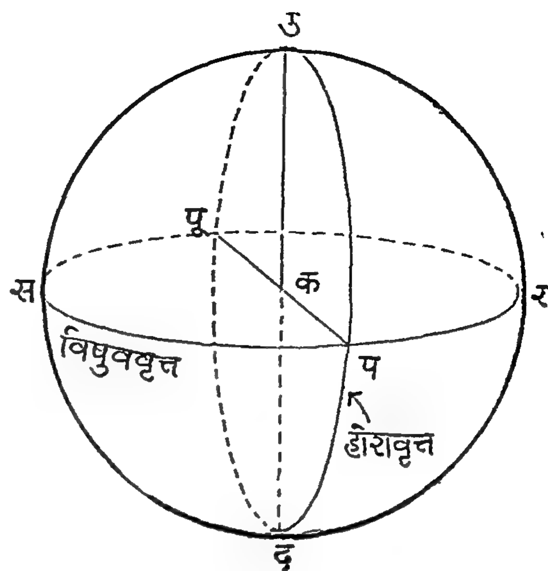

उ
क
द


उ
प
क
पू
विषुववृत्त
द
२

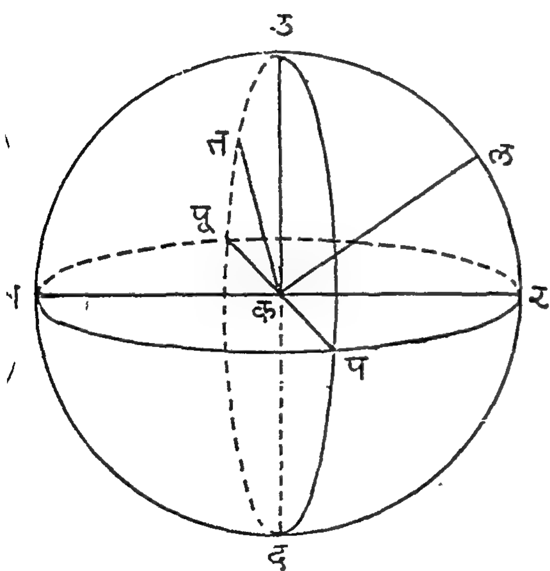

उ
पू
क
प
द


क.

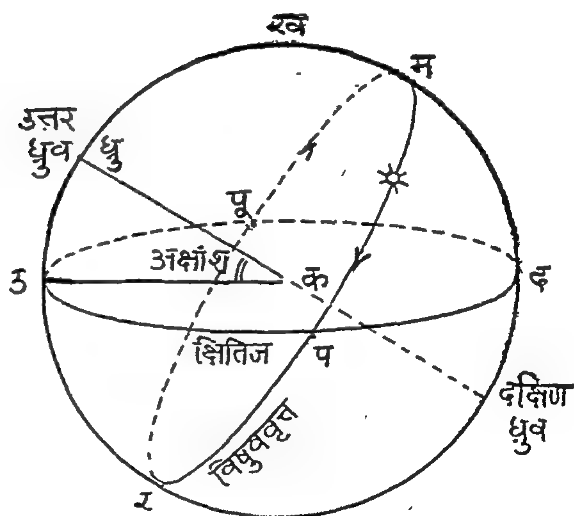
४


उ
पु
क
स
र
विषुववृत्त
प
होरावृत्त
द

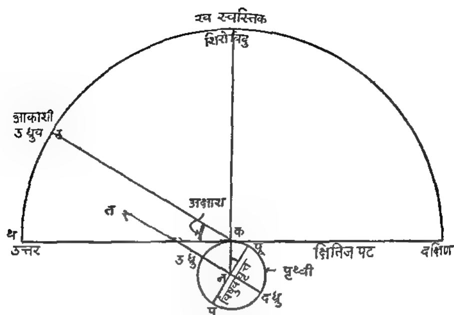
५

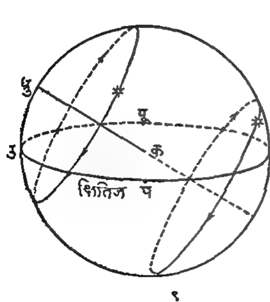

उ
त
ल
पु
क
र
प
द

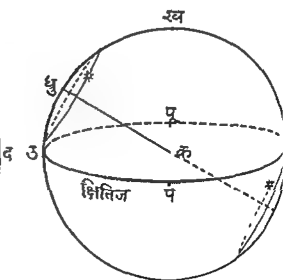
६


ख
म
उत्तर
ध्रुव
ध्रु
पु
अक्षांश
उ
क
द
क्षितिज
प
दक्षिण
ध्रुव
विषुववृत्त

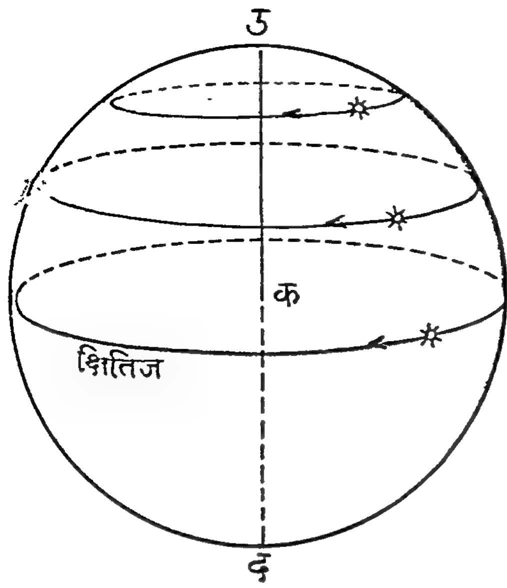
८


ख स्वस्तिक
शिरोबिंदु
आकाशी
उ ध्रुव
अक्षांश
त
थ
क
उत्तर
उ ध्रु
पू
क्षितिज पट
दक्षिण
पृथ्वी
न
विषुववृत्त
द ध्रु
प

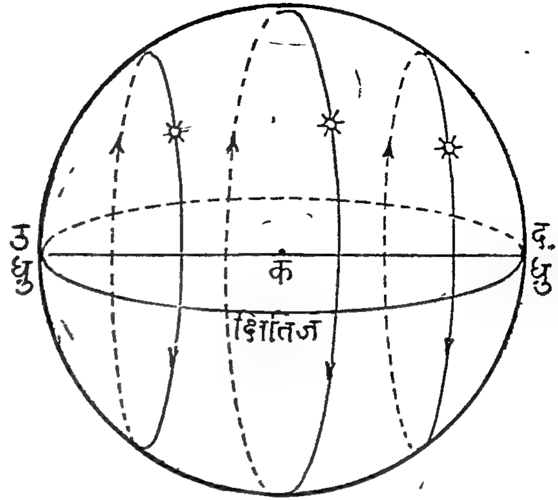

ध्रु
पू
उ
क
द
क्षितिज
प


ख
ध्रु
पू
उ
क
क्षितिज
प

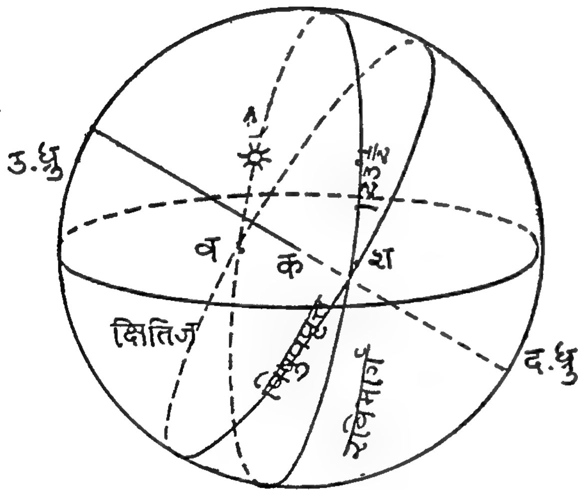
१


उ
क
क्षितिज
द

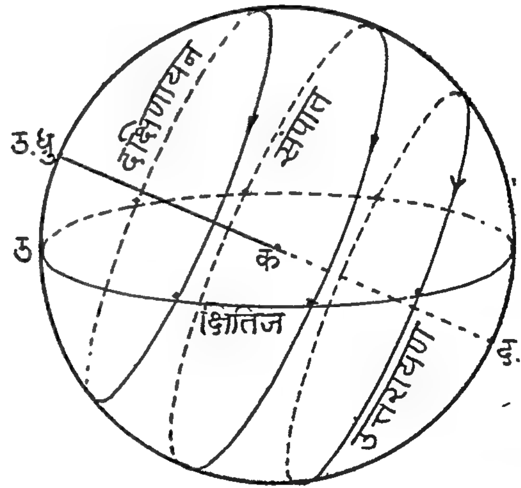
११


उ ध्रु
द. ध्रु
क
क्षितिज

१२

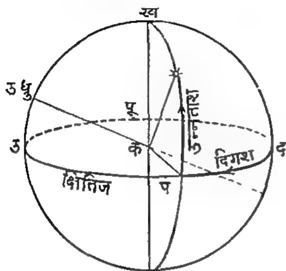

उ.ध्रु
व
क
श
क्षितिज
विषुववृत्त
रविमार्ग
द.ध्रु

१३


उ.ध्रु
दक्षिणायन
संपात
उ
क
क्षितिज
उत्तरायण

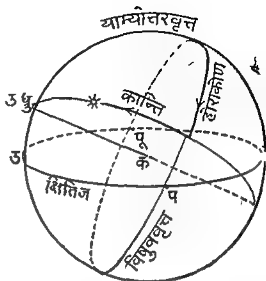
१४

नोट (१) ये सारे अंतर गुरुवृत्त परके चापीय अंतर है।
(२) कदंब रविमार्गका ध्रुव है। रविमार्ग परका हरेक बिंदु कदंबसे ९०° दूर है।



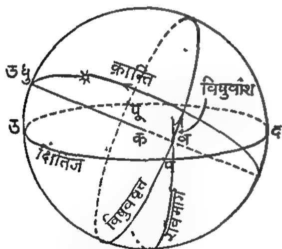
१५

उन्नतांश — क्षितिजसे ऊँचाई
दिगंश — उत्तर या दक्षिण से अंतर



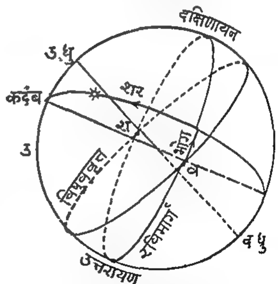
१६

क्रांति — विषुववृत्तसे अंतर
होराकोण — याम्योत्तरवृत्त से अंतर



१७

क्रान्ति — विषुववृत्तसे अंतर
विषुवांश — विषुववृत्त पर वसंतसंपातसे अंतर



१८

भोग — रविमार्ग पर वसंतसंपातसे अंतर
शर — रविमार्गसे अंतर

वार रवि | सोम | मंगल | बुध

तिथि चतुर्थी | पंचमी | षष्ठी | सप्तमी

वार रवि | सोम | मंगल | बुध

तिथि तृतीया | चतुर्थी | पंचमी | षष्ठी

१ और २

6-29 6-30 6-30 6-30

सूर्योदय | गुरु | शुक्र | शनि | रवि

तिथि | तृतीया | चतुर्थी | पंचमी |

3.00 5-39 8-17 10-45

6-33 6-33 6-33 6-33

सूर्योदय | रवि | सोम | मंगल | बुध

तिथि | त्रयोदशी | चतुर्दशी | अमावस |

10-26 8-39 5-25 1-54

३ और ४

यहाँ एक रसप्रद बातका अवलोकन करेंगे। हमने देखा कि विषुववृत्तका हरेक बिंदु उ या द से समान अंतर पर है और यों आकृति ५ में उस=उपू=उर=उप है। यह हरेक चाप गुरुवृत्तका चौथा हिस्सा है और उन सबके द्वारा केन्द्रके आगे जो कोण बनाये जाते हैं वे सभी– ∠उकस, ∠उकपू, ∠उकर और ∠उकप–समकोण हैं। खगोलीय परिपाटीके अनुसार गुरुवृत्तोंके चापोंको कोणीय नापमें दिखलानेका रिवाज है। यों उपू, उस, उर और उप सभी चाप ९०° हैं। याद रहे कि गुरुवृत्तोंके चापोंके कोणीय नाप उन चापों द्वारा केन्द्र समक्ष बनाये गये कोणोंके बराबर हैं। मिसालके तौर पर आकृति ६ देखिये। यहाँ चाप उन= ∠ उकन, चाप लर = ∠ लकर और चाप सप= ∠ सकप हैं।

अब एक और मजेदार बात सुनिये। गुरुवृत्त उसदर की और होरावृत्त उपदपू की सतहें एक दूसरीसे उकद में मिलती हैं। इस कारण इन दोनों सतहोंके बीचका कोण इसी रेखाके हरेक बिंदुके आगे एक-सा ही– ∠ सकप के बराबर–है। यह कोण सउप या सदप भी है। मतलब कि चाप सप= ∠ सउप या ∠ सदप है और चाप रप= ∠ रउप या ∠ रदप है।

ये सारी बातें हैं रसपूर्ण लेकिन जिन्हें कोणों और चापोंमें दिलचस्पी नहीं है उन्हें वे जटिल-सी मालूम होगी। कोणों और चापोंकी बात छोड़कर, आइये, तारोंके उदय और अस्तकी कुछ बातें करें।

आकाशीय ज्योतियोंके दर्शन करनेवाले हम पृथ्वीकी सतह पर ही विचरते हैं। दूर तक फैली पृथ्वीकी यह सतह आकाशीय गोलकसे क्षितिजमें जा मिलती है। हमारा स्थान इसी क्षितिज-सतहके केन्द्रमें ही है। पूरे आस्मानको एकसाथ हम नहीं देख पाते हैं। क्षितिजसे ऊपर उठा आधा आसमान ही हम देख पाते हैं और यों क्षितिजसे नीचेकी ओरकी ज्योतियाँ हमसे ओझल रहती हैं। उनके दर्शन जब वे क्षितिज पर आती हैं तब ही होते हैं। पूर्व क्षितिज पर किसी ज्योतिका आना उसका उदय है। इससे विपरीत बात अस्तकी है। पश्चिम क्षितिज पर पहुँचनेवाली ज्योति वहाँ क्षणभर ही टिकती है। और बहुत जल्द ही वह दिखाई देना बन्द भी हो जाती है। इस घटनाको हम ज्योतिका अस्त कहेंगे। सूर्यचन्द्रके उगने और डूबनेको तो हम उदय और अस्त कहते ही हैं।

आकृति ७ देखिये। उसमें नीचेकी ओर न केन्द्रवाली पृथ्वी दिखाई गई है। कल्पना कीजिये कि पृथ्वीकी सतह पर हम क स्थान पर हैं। नत रेखा पृथ्वी-धुरीकी दिशा है और चूँकि आकाशीय खगोलक हमसे अत्यंत दूर है आकाशीय उत्तरध्रुवको क के साथ मिलानेवाली कध रेखा तत रेखाको समांतर होगी और यों क स्थलके अक्षांश ∠कनपू=∠उकध होंगे।

किसी स्थानके अक्षांश मालूम करनेके लिये क्षितिजसे ध्रुवतारेकी ऊँचाईका कोणीय मान इसी कारण नापा जाता है।

क स्थानसे आकाशीय ज्योतियोंका उगना और अस्त होना हमें किस प्रकार दिखाई देगा उसकी अब हम चर्चा करेंगे। (देखिये आकृति ८)

क स्थानसे आकाशदर्शन करनेवालोंका क्षितिज उपूदपउ है ऐसा मान लीजिये। उ को उत्तर दिशा और ध्रु को आकाशीय उत्तर ध्रुवबिंदु माना जाय तो ∠उकध्रु क स्थानके अक्षांश

दिखायेगा। ध्रुक पृथ्वी-धुराकी दिशा-रेखा है। धूमपर विपुववृत्त है और ध्रुक रेखासे समकोण बनानेवाला वह एक गुरुवृत्त है। विपुववृत्तका हरेक बिंदु ध्रुवसे एकसरीखे अंतर (९० अंश) पर है यह हम जानते ही हैं। विपुववृत्त पूर्व और पश्चिम बिंदुओंमें होकर गुजरता है: इस कारण ठीक पूर्वमें उगनेवाला तारा या आकाशीय ज्योति अपनी अंतरिक्ष-यात्रा विपुववृत्त पर ही करता रहेगा। पूर्वमें उदित होकर विपुववृत्त पर चलनेवाली ज्योति जब मध्याकाशको पहुँचेगी तब वह ठीक हमारे सर पर (ख स्थान पर) दिखाई देनेके बजाय उससे कुछ दूर म स्थान पर दिखाई देगी। यह (खम) अंतर उध्रु अंतरके बिलकुल बराबर होगा। मध्याकाश पार कर लेने पर उपर्युक्त ज्योति पश्चिमकी ओर ढलती रहेगी और पश्चिम बिंदु तक पहुँचकर क्षितिजके नीचे अदृश्य हो जायेगी।

आकृति ९ देखिये। एक ज्योतिको ठीक हमारे सर पर होकर आसमानमे गुजरती हुई उसमें दिखाया गया है। पाठक देखेंगे कि यह ज्योति ठीक पूर्वमें उदित होनेके बजाय उससे कुछ दूर उत्तरकी ओरके क्षितिजबिंदुसे उदित होकर आसमानमे ऊँची उठती दिखाई देती है। गुजरात, मध्यप्रदेश, बंगाल वगैरह राज्योंमे गरमीके दिनोंमें ठीक सर पर तपनेवाला सूर्य ईशानकी ओरसे क्षितिजसे उदय पाकर वायव्य दिशामें अस्त होता दिखाई देता है। सरदीके दिनोंमें यही सूर्य अग्नि दिशामे उदित होकर नैर्ऋत्यके क्षितिजके नीचे जा छिपता है। इतना ही नहीं उस कालमें वह छोटे दिन भी बनाता है यह भी हम जानते हैं। आकृति ९ में यह बात दायीं ओरके वृत्तद्वारा दिखाई गई है। देखिये, दिन और रातका समय-प्रमाण अखंड और खंडित रेखाओंसे वहाँ दिखाया गया है। पाठकोंकी समझमें अब आ गया होगा कि सूर्य ठीक पूर्वमें उदित होता है तब रात और दिनका पैमाना समान होता है। पृथ्वी पर रात और दिन, साल भरमे दो दफा एकसरीखे होते हैं। ये दिन हैं वसंतसंपात (२१ मार्च) और शरदसंपात (२३ सितंबर)। इन दिनों सूर्य ठीक पूर्वमें उगता है और ठीक पश्चिममें अस्त होता है।

जिन तारोंके (उत्तर ध्रुव नजदीकके) उदयास्त नहीं होते हैं और जिन तारोंके उदयास्तको हम कभी नहीं देख पाते हैं उनके अंतरिक्षीय मार्ग आकृति १० में दिखाये गये हैं। पहली किस्मके तारे अनस्त या सदोदित तारे हैं और दूसरी किस्मके अनुदित या अनुदयी।

हमारा अनुभव है कि उत्तरकी ओर यात्रा करते समय हमें उत्तर ध्रुवतारा ऊँचा उठता दिखाई देता है। पृथ्वीके उत्तर ध्रुव तक पहुँचने पर आकाशीय उत्तरध्रुव ठीक सर पर आ जाता है। इससे विपरीत दक्षिणकी ओर अग्रसर होने पर उत्तर ध्रुवतारा क्षितिजकी ओर सरकता दिखाई देता है और विपुववृत्त तक पहुँचने पर वह क्षितिजपर उत्तरबिंदुसे जा मिलता है।

पृथ्वीके उत्तर ध्रुवसे एवं विपुववृत्तसे देखने पर आसमानके तारे किस प्रकार सरकते दिखाई पड़ेंगे उसकी यहाँ चर्चा करेंगे।

पृथ्वीके किसी ध्रुवसे देखने पर आसमानके सिर्फ आधे ही तारे नजर आयेंगे। ये सारे तारे क्षितिज समांतर मार्गो पर परिक्रमा करनेवाले अनस्त तारे होंगे (देखिये आकृति ११)। विपुववृत्तसे देखने पर आसमानके सभी तारे दिखाई देंगे। इन सभीके उदयास्त देखे जायेंगे

इतना ही नहीं वे सभी जितने समय क्षितिजके ऊपर दिखाई देंगे बराबर उतने ही समय वे क्षितिजके नीचे अदृश्य भी रहेंगे। हां, इन तारोंके अवकाशीय मार्ग उनके ध्रुवबिंदुओंसे अंतरके प्रमाणमें छोटे-बड़े अवश्य रहेंगे। (देखिये आकृति १२)

पृथ्वी अपने अक्ष पर पश्चिमसे पूर्वकी ओर घूमती है और इस कारण सूर्य, चंद्र, तारे वगैरह पूर्वसे पश्चिमकी ओर सरकते दिखाई देते हैं। सरकनेवाली इन ज्योतियोंके अवकाशीय मार्ग विषुववृत्तके समांतर हैं यह हम जानते हैं। अगर हम किसी एक निश्चित स्थानसे तारोंको देखा करें तो हरेक तारा हमेशा उसके अपने एक ही स्थान पर उदित होता या अस्त होता दिखाई देगा। मगर यह बात सूर्य, चन्द्र और ग्रहोंमें न दिखाई पड़ेगी। ये सभी अपने उगने और अस्त होनेके स्थान हररोज बदलते रहते हैं। हम जानते हैं कि गर्मियोंमें सूर्य ईशानकी ओर और सर्दियोंमें अग्निकी ओर उदित होता है। फिर भी एक बात ध्यानमें आये बिना न रहेगी। सूर्यका दैनिक अंतरिक्षीय मार्ग विषुववृत्तके करीब-करीब समांतर है। हाँ, उसका वार्षिक मार्ग वैसा नहीं है। सूर्यके वार्षिक मार्गको रविमार्ग कहते हैं। रविमार्ग विषुववृत्तकी तरह दीर्घवृत्त है और विषुववृत्तसे २३½° का कोण बनाता हुआ उसे दो बिंदुओंमें काटता है (देखिये आकृति १३)। ये बिंदु हैं वसन्तसपात और शरदसपात। रविमार्ग पर चलनेवाला सूर्य जब इन बिंदुओंमें आता है तब वह विषुववृत्त पर भी होता है और यों इन दोनों समय वह ठीक पूर्वमें उगता है और ठीक पश्चिममें अस्त होता है।

वसन्तसपातके बाद सूर्य हररोज उत्तरकी ओर खिसकता रहता है। तीन महीने तक सरकनेके बाद वह विषुववृत्तसे ज्यादासे ज्यादा दूर (२३½°) पहुँच जाता है। इसके बाद वह दक्षिणकी यात्रा (दक्षिणायन) शुरू करता है और तीन मासके बाद शरदसपातमें जा पहुँचता है। उस दिन पृथ्वी पर दिन और रात एक सरीखे हो जाते हैं। शरदसपातके बाद सूर्य २३½° दूर दक्षिणमें पहुँचकर वापस उत्तरकी यात्रा शुरू करता है। सूर्य जिस दिन उत्तरका रुख करता है वह दिन है उत्तरायणका। यों हम देख पाते हैं कि दो सपातोंके या दो अयनोंके (उत्तरायण और दक्षिणायन) बीच ३ मासका फासला रहता है। दक्षिणायन, सपातदिन और उत्तरायण के समय मध्य भारतमें सूर्यके अंतरिक्षीय मार्ग कैसे निराले रहते हैं यह आकृति १४ में दिखाया गया है। पाठक देखेंगे कि दक्षिणायनके समय, मध्याह्नवाला सूर्य मध्य भारतके कई स्थानोंमें ख स्वस्तिक (सर परके आकाशीय बिंदु) से कुछ उत्तरकी ओर रहता है।

ग्रह सूर्यके चारों ओर घूमते हैं। इस वजहसे ग्रहोंको आसमानमें रविमार्गके इर्दगिर्द ही देखा जाता है। हमारा चंद्र रविमार्गके साथ ५° का कोण बनाकर घूमता है।

रविमार्गको एक सरीखे १२ भागोंमें विभक्त किया गया है। यह हरेक भाग राशि कहलाता है। सूर्य हरेक महीनेमें एक राशिसे दूसरी राशिमें प्रवेश करता है। सूर्यके राशिप्रवेशको संक्रान्ति कहते हैं। सूर्य आजकल १४ जनवरीको मकर राशिमें प्रवेश (मकर संक्रान्ति) करता है।

सूर्यका उत्तरायण २२ दिसम्बरको और दक्षिणायन २२ जूनको होता है।

बारह भागोंके अलावा रविमार्गका २७ भागोंमें भी विभाजित किया गया है। इनमेंसे हरेक भागको नक्षत्र कहते हैं। सूर्य एक महीनेमें सवा दो नक्षत्रका अंतर काटता है। चंद्रका

एक पूरा आकाशीय चक्र करीव एक मासका है· यों चंद्र हररोज एक-एक नक्षत्र बदलता रहता है।

प्रश्न होगा कि रविमार्ग पर नक्षत्रकी या राशिकी शुरुआत कहाँसे की जाती है? इस वातको जरा विस्तारसे सोचना होगा।

हम जानते हैं कि वृत्तके किसी भी विंदुसे वृत्तकी शुरुआत की जा सकती है। फिर भी शुरुआतके लिये जिस विंदुको पसद किया जाय वह अगर विशिष्टतावाला हो तो ज्यादा अनुकूल होता है। आकृति १३ देखने पर मालूम होगा कि रविमार्ग पर ऐसे चार विशिष्ट विंदु (उत्तरायण, शरदसंपात, दक्षिणायन, वसतसपात) हैं। हमारे पुरखोंने उनमेंसे एक 'वसतसपात' से नक्षत्रचक्रकी और राशिचक्रकी शुरुआत की। और इस विंदुके नजदीकके नक्षत्रको अश्विनी नक्षत्र और राशिको मेपराशि कहा। वास्तवमे ये नाम उन नामोंको सार्थ वनानेवाले तारामडलों के आकारोंको देखकर दिये गये है। मगर यह हुई प्राचीनकालीन लोगोंकी वात! आज इस वातको लेकर हमारे सामने दो मुश्किले खड़ी हुई हैं। प्राचीनकालीन लोगोंका वसंतसंपात हमारा आजका वसंतसंपात नहीं है। वह पलट गया है। हम जानते हैं कि हमारी पृथ्वी पूर्ण गोलाकार नहीं है। नारंगीकी भाँति ध्रुवोंके आगे वह चिपटी है। एक और वात भी है: पृथ्वीकी धुरी पृथ्वीकक्षाके साथ समकोण नहीं वनाती है। वह उसके साथ ६६½° का कोण वनाती है। पृथ्वीके इस झुकावसे सूर्य और चन्द्र फायदा उठाना चाहते हैं। वे पृथ्वी पर दवाव डालकर उसे और झुकानेका प्रयत्न करते हैं। मगर पृथ्वीके अक्ष पर घूमते रहनेके कारण उनका यह प्रयत्न सफल नहीं होता है। फिर भी सूर्यचंद्रका आकर्पण असफल नहीं रहता। उसके कारण, अक्ष पर घूमनेवाली पृथ्वीको कोल्हूकी लाटकी तरहकी गति प्राप्त हो जाती है। यह गति विपुवायनके नामसे मशहूर है। विपुवायन गतिका एक चक्र २६,००० वर्पमें पूरा होता है।

विपुवायन गतिके कारण पृथ्वीका विपुववृत्त स्थिर नहीं रह पाता है। वह रविमार्ग पर सरकता रहता है। इस कारण दोनों वृत्तोंके छेदनविंदु (दोनों सपात) वदलते रहते हैं। यों आजका वसंतसपात हमारे पुरखोंका वसंतसंपात नहीं है। यह हुई एक तकलीफकी दास्तान।

दूसरी तकलीफ पुरखोंके वसंतसंपातके स्थानके सवधमे है। पुराने लोगोंने अपने वसंतसंपातके वारेमे जो कहा है वह एकदम स्पप्ट नहीं है। इस कारण भारतीय नक्षत्रचक्रकी शुरुआत जिस विंदुसे करनेमें आयी है उसकी निश्चितताके वारेमे आजके विद्वान एकमत नहीं हैं। नक्षत्रचक्रका आरंभ वसंतसंपातसे मान लेनेका होता तो आज भी हम वैसा कर सकते हैं—पश्चिम के लोग वैसा ही करते हैं—मगर हमारी तकलीफ दूसरे ढंगकी है। हमारे करणग्रन्थ अश्विनीआरंभसे ही नक्षत्रचक्रका और राशिचक्रका गणित देते हैं। आधुनिक वसंतसंपात और अश्विन्यारंभके वीचके अंतरको अयनांश कहकर आज हम गणित करते हैं मगर ये अयनांश सर्वसंमत न होनेके कारण मुश्किल पैदा होती है। परिस्थिति ऐसी होते हुए भी विद्वानोंने २२ मार्च १९६९ के अयनांश २३° २५′ २७″ माननेकी कार्यसाधक संमति प्रदान की है।

खगोलक पर आकाशीय ज्योतिका स्थान किस प्रकार दिखलाया जाता है वह पृ. १८२ पर की आकृतियोंमें दिखलाया गया है।

२२. पचाग और समय

रात और दिन मिलकर दिवस बनता है। दिवसकी शुरुआत सूर्यके उदयके साथ होती है। यो एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदय तकका समय एक पूरा दिवस है। दिवसको कालगणनाकी हम एक इकाई मानते हैं। दिवस नैसर्गिक काल-इकाई है। दिवससे बडी नैसर्गिक काल-इकाई मास है। मासका आधार चद्र है। पूर्णिमासे पूर्णिमा या अमावस से अमावस तककी समय अवधि मास है। चाद्र मासकी यह समयमर्यादा करीब २९½ दिवसकी—२९.५३०५९ दिवस या २९ दि १२ घ ४४ मि २८ सेकड की—है। महीनेसे भी बडी नैसर्गिक काल-इकाई वर्ष है। सूर्यके इर्दगिर्द एक चक्कर लगानेमें पृथ्वीको जो समय लगता है वह हमारा वर्ष है। हमारा व्यावहारिक वर्ष ऋतुवर्ष या सायनवर्ष है। ऋतुवर्षका दैर्घ्य करीब ३६५¼ दिवसका है। वास्तवमें एक ऋतुवर्ष ३६५.२४२१९ दिवसोंका होता है।

वर्षके बारह मास होनेका हम मानते हैं लेकिन यह पूर्ण सत्य नही है। चाद्र मासकी मीयाद २९½ दिवसकी है और इसी अनुपातसे बारह महीनेका वर्ष ३५४ दिवसका होता है। ऐसा वर्ष वास्तविक वर्षकी तुलनामें छोटा ही रहेगा। वर्षके साथ मासोंका मेल बिठानेके लिये कुछ दिवस जोडनेकी जरूरत रहती है। भारतीय पचागकार यह काम हर पाँच वर्षके दरमियान दो अधिक मासोकी वृद्धि द्वारा करते हैं। वृद्धिके ये दो मास चाद्र मास हैं। यो भारतीय पचाग सौर-चाद्र पचाग है। मुस्लिम जनता महीनोंकी ऐसी घटाबढीमें नहीं पडती है। वह बारह चाद्र मास पूर्ण होनेको वर्ष मानती है। मुस्लिमोका वर्ष चाद्र वर्ष है। ईसाई पचाग (कैलेन्डर)के महीने चाद्र मास नहीं हैं। ईसाई वर्ष सौर वर्ष है और उसके कुल दिवस ३६५ हैं। चौथाई दिवसका मेल बिठानेको प्रति चौथे वर्ष एक दिन बढाया जाता है। इस तरहके ज्यादा एक दिवसवाले वर्षको प्लुत वर्ष (Leap Year) कहते हैं।

आम तौर पर हरेक पचागमें—चाहे वह सभ्य जातिका हो या पिछडी असस्कारी जातिका—वर्षारभ कब होगा और उसके बादके दिवसोमें कौनसी तारीख और वार होगे उसकी जानकारी सामान्यतया दी जाती है। भारतीय पचाग सौर-चाद्र पचाग होनेके कारण उसमें तारीख और वारके अलावा और भी अन्य जानकारी दी जाती है। पचाग शब्द पच अगका निर्देश करता है। भारतीय पचागके पाच अग हैं तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण। हरेक भारतीय पचागमें कमसे कम ये पाच अग रहते ही हैं मगर उनके अलावा और भी बहुत सी बातें समाविष्ट की जाती हैं। दिनमान, सूर्योदय और सूर्यास्त, चद्रोदय और चद्रास्त, ग्रहोंके दर्शन और लोप, ग्रहण, अग्रेजी तारीख, पारसी दिनाक, मुसलमान रोज, राष्ट्रीय दिनाक, वर्षारभसे दिनक्रमाक,

लग्न, सांपातिक काल, ग्रहोंकी आकाशीय स्थितियाँ, चंद्रके शर और क्रान्ति, सूर्यक्रान्ति, पर्व और उत्सवोंके अलावा अन्य शास्त्रार्थ और कुंडली वगैरह इनमें मुख्य हैं।

यहाँ हम पंचांगके अंगोंकी बात पहले करेंगे और बादमें मास और वर्षकी चर्चा करेंगे।

पंचांगके दो मुख्य अंग तिथि और वार हैं। तिथियोंमे कमीवेशी होती है लेकिन वारोंके क्रममे ऐसी कोई गड़बड़ी नहीं है। वारोंका प्रवाह अस्खलित बहता रहा है। महीनेके दिवसोंकी संख्या पूर्णांक होना जरूरी है। चान्द्र मासके २९½ दिवस हैं इस कारण अगर एक महीना ३० दिवसका हो तो दूसरे महीनेमे २९ दिवस रखने पड़ेंगे। यों आधे दिनका फर्क तिथि बढ़ाकर या घटाकर दिखाना पड़ेगा। याद रहे कि महीनेमे ३० तिथियाँ होती हैं मगर दिवस २९½।

भारतीय पंचांगके अनुसार तिथिका आरंभ सूर्योदयसे संबंध रखता है। तिथि समयकी एक इकाई है और वह सूर्यचंद्रके अंतरों पर आधारित है। सूर्य और चंद्रके बीच १२ अंशका फर्क होने पर तिथिमे फर्क होता है। अमावसके दिन सूर्य और चन्द्र एक साथ रहते हैं। उसके बाद उन दोनोंके बीचमे अंतर बढ़ता जाता है। यह अंतर १२ अंश तक पहुँचे वहाँ तक प्रथमा तिथि, प्रतिपक्ष या परिवा गिना जाता है। १२ अंश से २४ अंश तकके अंतरके लिये द्वितीया या दूज मानी जाती है। आगेकी तिथियाँ इसी हिसाबसे प्राप्त की जाती हैं। हमने कहा कि १२ अंशका फर्क होने पर तिथि पलटती है मगर इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि १२ अंशका यह अंतर हमेशा एक समान समयमे ही तय हो पाता है। चंद्रकी आकाशीय गति एक-सी नहीं है। १२ अंशका अंतर वह कभी १९ घंटे ५९ मिनिटमे काट लेता है तो कभी उसे पूरा करनेमे उसे २६ घंटे ४९ मिनिटका समय लग जाता है। मतलब यह कि तिथिकी शुरूआत हमेशा सूर्योदयके साथ नहीं होती है। आज अगर वह सूर्योदयके साथ हुई हो तो कल वह सूर्योदयसे पहले या उसके बाद भी हो सकती है। आम तौर पर हरेक दिवसकी अपनी अलग तिथि होती है: फिर भी कभी ऐसा भी होता है कि किसी दिन कोई एक तिथि सूर्योदयके पहले शुरू हो गई हो और दूसरे दिन वह सूर्योदयके बाद समाप्त होती हो। या यों भी बनना संभवित है कि सूर्योदयके बाद कोई तिथि शुरू हो लेकिन दूसरे सूर्योदयके पहले ही वह समाप्त हो जाय। भारतीय पंचांगशास्त्रके अनुसार सूर्योदयके समय जो तिथि चलती हो वही उस दिवसकी तिथि मानी जाती है चाहे वह सूर्योदयके बाद तुरन्त ही समाप्त होती हो। यों ऊपरके प्रथम किस्सेमे एक ही तिथि दो दिवसकी तिथि रहेगी और दूसरे किस्सेमें एक तिथि कम हो जायगी—मतलब कि उस तिथिका क्षय होगा। तिथियोंकी क्षय वृद्धिकी बात पृ. १८३ पर दी गयी आकृतियोंके द्वारा और भी स्पष्ट हो जायगी।

आकृति १ अनुसार सोमवारके दिन सूर्योदयके समय चतुर्थी चलती है। इस कारण सोमवारकी तिथि चतुर्थी होगी। और यों मंगलवारकी तिथि पंचमी और बुधवारकी षष्ठी रहेगी। अब आकृति २ देखिये। वहाँ सोमवारके दिन सूर्योदयके समय तृतीया है। चतुर्थी तिथि सूर्योदयके बाद शुरू होती है इस कारण सोमवारकी तिथि तृतीया ही रहेगी। अब मंगलवारकी तिथि देखिये। मंगलवारके दिन सूर्योदयके समय पंचमी है इसलिए उस पूरे दिवसकी तिथि पंचमी रहेगी। प्रश्न होगा कि चतुर्थी कहाँ चली गई? सोम-सूर्योदय और मंगल-सूर्योदयके बीचमे आ

जानेके कारण (किसी एक सूर्योदय तक न पहुंच पानेके कारण) उसका क्षय हो गया है। तिथि कब शुरू होती है और उसकी मीयाद क्या है ये बातें (हरेक तिथिके बारेमें) पचांगमें दी जाती हैं।

एक और मिसाल लें। ता. २२ सितम्बर १९६७ के दिन शुक्रवार है और उस दिवसकी तिथि है भादोंकी कृष्णपक्ष चतुर्थी। दूसरे दिन (शनिवार) की तिथि भी चतुर्थी है। तीसरे दिन (रविवार) की तिथि पंचमी है। (देखिये आकृति ३)। उसी पखवाडेमें ता. २ अक्तूबर '६७ सोमवारके दिन (गांधी जयंतीके दिन) कृष्णपक्षीय त्रयोदशी है मगर दूसरे ही दिन (मंगलवारको) अमावस है (देखिये आकृति ४)। यहां चतुर्दशीका क्षय हुआ है। इस तरह सन् १९६९ के फरवरीकी २८ और मार्चकी १ तारीखका दोनों दिन माघ सुदी द्वादशी है जबकि मार्च ८ और ९ के दिन माघ वदी चतुर्थी और षष्ठी हैं। यों फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें एक अधिक-तिथि है जबकि कृष्णपक्षमें एक क्षयतिथि।

हमने देखा कि सूर्योदयके समय जो तिथि चलती हो वही सारे दिवसकी तिथि है। हमारा भारत देश बहुत बड़ा है। इस कारण संभव है कि किसी एक जगह एक तिथि चलती हो और दूसरी जगह उसी दिन दूसरी तिथि चलती हो। भारतमें सब जगह एक साथ सूर्योदय नहीं होता है इस कारण दो अलग जगहोंकी तिथियोंमें एकाध तिथिका फर्क होगा। आम तौर पर, लोग अपने राज्यमें प्रकाशित पचांगोंका उपयोग करते हैं। सामान्यतया ऐसे पचांग किसी मध्यस्थ नगरको या स्थानको ध्यानमें रखकर तैयार किये जाते हैं और लोग उन्हें अपना ही पचांग समझ कर अपना काम चलाते हैं।

तिथि और वारके बाद अब नक्षत्रकी बात करेंगे।

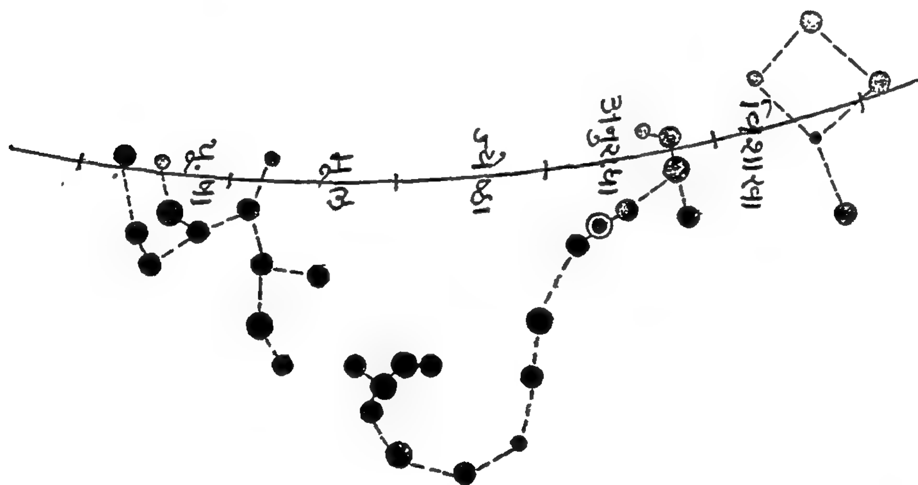
नक्षत्रका सामान्य अर्थ है तारा मगर उस अर्थमें हम नक्षत्र शब्द प्रयुक्त नहीं करते हैं। खगोलीय परिभाषाके अनुसार नक्षत्रका अर्थ रविमार्गका सत्ताईसवां भाग है। रविमार्गके इन भागोंके नजदीक जो तारागुच्छ हैं उनके नामोंसे ही इन सत्ताईस भागोंका नामकरण हुआ है। इस प्रकार नक्षत्रका एक अर्थ तारोंका समूह भी है। 'आज कौनसा नक्षत्र है?' पूछनेवाला रविमार्गके विभागीय नक्षत्रकी ही बात पूछता है। पचांगमें रोज बरोजके नक्षत्र दिये जाते हैं। सन् १९६९ के मार्च मासकी ११ तारीखको कृष्णपक्षकी अष्टमी है। उस दिवसका नक्षत्र ज्येष्ठा है। १३ अप्रैल १९६८ के दिन चैतकी पूर्णिमा थी और उस दिनका नक्षत्र था चित्रा। मतलब कि किसी दिवसके नक्षत्र परसे उस दिन चंद्र किस नक्षत्रमें होगा उसका संकेत मिलता है। हिन्दू मासोंके नाम पूर्णिमाके दिन चंद्र जिस नक्षत्रमें होता है उसीके आधार पर रखे जाते हैं। माघ पूर्णिमाके दिन चंद्र मघा नक्षत्रमें और श्रावणीके दिन वह श्रवण नक्षत्रमें होता है।

तिथिके समाप्ति-कालकी तरह नक्षत्र-समाप्तिके समय भी पचांगोंमें दिये जाते हैं।

'आज कौनसा नक्षत्र है?' के बजाय 'आजकल कौनसा नक्षत्र चलता है?' ऐसा कोई प्रश्न करे तो ऐसा समझा जाएगा कि सूर्य-नक्षत्रकी बात वह पूछ रहा है। हमारे गावोंमें आज भी आर्द्रा, रोहिणी, मघा वगैरह नामोंसे सूर्य नक्षत्रोंका उल्लेख होता है। सूर्य हरेक नक्षत्रमें १३ से

१४ दिवस टिकता है। वह जब आर्द्रा नक्षत्रमे प्रवेश करता है तब वर्षाऋतुका आरंभ होता है। वर्षाऋतुमे जमीन गीली हो जाती है: इस कारण इस नक्षत्रका नाम आर्द्रा (या गीली) रखा गया है। आश्लेषा नक्षत्रके समय नाजकी वाले पवनके थपेड़े खाकर और लूम-लूम कर एकदूसरेसे आलिंगन करती हैं। 'मघा नक्षत्रके महँगे पानी' की लोकोक्ति गुजरातमे बहुत मशहूर है।

किसी नक्षत्रमे सूर्य कब प्रवेश करेगा उसकी जानकारी हरेक पचांगमे दी जाती है। इतना ही नहीं, हरेक राशिसक्रान्ति (सूर्यका राशिप्रवेश) कब होगी उसकी भी जानकारी साथमें दी जाती है। उदाहरणतः सन् १९६८ मे सूर्यका अश्विनी (प्रथम नक्षत्र) प्रवेश और साथ-साथ प्रथम राशि (मेष) प्रवेश ता. १३ अप्रैलको शनिवारके रोज हुआ था। उस दिन चैत्रकी पूर्णिमा थी और दिवसका चंद्र-नक्षत्र चित्रा था। हम जानते है कि पूर्णिमाके दिन सूर्य और चंद्र एकदूसरेसे विरुद्ध दिशाओंमे रहते ह : और इस कारण उनके बीच १३ से १४ नक्षत्रका फासला पड़ता है। अश्विनी प्रथम नक्षत्र है; उसके बादका १३ वाँ नक्षत्र चित्रा है। यों उपयुक्त उदाहरणकी पुष्टि होती है।



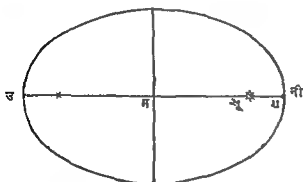
पंचांगमे दिये गये दैनिक नक्षत्र विभागात्मक नक्षत्र हैं। वे सभी रविमार्गके विभागोंका ही निर्देश करते हैं। रविमार्गके इन विभागोंके नजदीक आये हुए तारागुच्छोंको भी नक्षत्र कहा जाता है। मगर वे सभी तारात्मक नक्षत्र हैं। तारात्मक और विभागात्मक नक्षत्रोंके बीचका फर्क एक आकृति द्वारा स्पष्ट किया गया है। आकृतिमे तारात्मक नक्षत्र उनकी अपनी आकृतियोंके रूपमें और विभागात्मक नक्षत्र रविमार्गके टुकड़ोंके रूपमे दिखाये हैं। गौरसे देखने पर पता चलेगा कि विभागात्मक नक्षत्र रविमार्ग पर एक समान दूरी पर आये हैं मगर तारात्मक नक्षत्रोंके हाल वैसे नही हैं।

तारात्मक नक्षत्रकी सहायतासे चंद्र कौनसे विभागात्मक नक्षत्रमे है उसका अनुमान किया जा सकता है। तारात्मक नक्षत्रको ही चंद्रका दैनिक नक्षत्र (विभागात्मक) मान लें तो कभी-

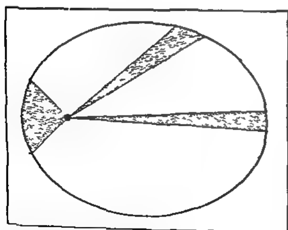
कभी उसमें एक नक्षत्रकी गलती हो जानेकी संभावना रहती है। सच्चे चंद्र-नक्षत्रको ढूंढने के लिये गलत अनुमान करनेके बजाय पंचांगसे ही जानकारी मालूम कर लेनी चाहिये।

पंचांगकी बाकीकी दो बातें योग और करणकी हैं। आम आदमियोंके लिये ये बातें तिथि या नक्षत्रकी तरह ज्यादा महत्त्वकी नहीं हैं। योग सूर्य और चन्द्रके भोगोंके योगोंसे निश्चित होता है। कुल योग २७ हैं। सूर्यचंद्रके भोगोंका जोड़ १३° २०′ होते ही एक योग पूरा होता है। पंचांगोंमें योगोंके नाम और उनके समाप्तिकाल दिये जाते हैं।

करण तिथिका अर्ध भाग है। ३० तिथिके ६० करण हैं। तिथि द्वारा चंद्रबिंबके १५ वें भागकी कमीबेशी दिखाई जाती है जबकि करण द्वारा ३० वें भागकी। ६० करणोंमेंसे ३० करण तिथियोंके साथ समाप्त होते हैं। इस कारण पंचांगमें तिथियोंके बीचमें समाप्त होनेवाले ३० करणोंका ही समाप्तिकाल दिखलाया जाता है।



'अमुक समय कौनसा लग्न है' इसका अर्थ यह होगा कि उस समय रविमार्गका कौन-सा बिंदु पूर्व-क्षितिज पर है या पूर्व-क्षितिजको पार कर रहा है। लग्नका ज्ञान पूर्व-क्षितिज के रविमार्ग-बिंदुकी हमें जानकारी देता है।



अब मासकी बात लें। भारतीय पंचांगके महीने चांद्र मास हैं। हमारे व्रतपर्वोंका लगाव चांद्र माससे है। होलीका त्योहार फागुनमें और दिवालीका त्योहार कार्तिकमें आता है। साल-साल ऐसा ही होता आया है। हमारे त्योहार ऋतुओंके त्योहार हैं। ऋतुओं और महीनोंका मेल बिठानेका काम हमारे पंचांगकार करते हैं। चांद्र वर्ष सौर वर्षसे कुछ छोटा है। इन दोनोंका मेल बिठानेके लिए अधिक मासकी योजना की गयी है। और इसके साथ-साथ महीनोंका और ऋतुओंका मेल टूटनेकी नौबत न आये उसका भी ध्यान रखा जाता है।

हमने देखा कि चंद्र अपनी कक्षामे एक-सी गतिसे नही चलता है इस कारण तिथियोंकी लम्बाई कम या ज्यादा रहती है। पृथ्वीकी वात भी चंद्रके जैसी ही है। वह भी अपनी कक्षामें सूर्यके इर्दगिर्द एक-सी गतिसे नहीं घूमती है। नतीजा यह होता है कि सूर्य एक-सी गतिसे आसमानमें चलता हमें नहीं दिखाई देता है। सूर्यका एक आकाशीय चक्र पूरे एक वर्षका है। इस चक्रको वारह राशियोंमें विभक्त किया गया है। हरेक राशिका नाप ३० अंशका है। सूर्यके ३० अंश चलने पर एक मास पूरा होकर दूसरा शुरू होता है। सूर्यके मास सौर मास या संक्रान्ति-मास हैं। इन मासोंकी लम्वाई, सूर्य एक राशिको पूरा करनेमे जो समय विताता है उस पर निर्भर है। फिर भी सभी राशियोंके लिये यह समय-अवधि एक समान नहीं है और इस कारण सूर्यके सभी सौर महीने एक-से लंवे नहीं हैं। सौर मासोंकी लम्वाई २९ दि. १० घं. ३८.६ मि. से लेकर ३१ दि. १० घं. ५४.६ मि. तककी होती है। मासोंकी लम्वाईमे ऐसा फर्क क्यों होता है उस वातकी अव हम चर्चा करेंगे।

पृथ्वी सूर्यके चारों ओर जिस मार्गमें घूमती है वह कक्षा वृत्ताकार नही है। वह दीर्घ-वृत्ताकार है। दीर्घवृत्तके दो नाभियाँ होती हैं। सूर्य इनमेंसे एक नाभिमे रहता है। पृष्ठ १९२ पर दी गयी आकृतिमें सूर्य '**सू**' से दिखलाया गया है। अपनी कक्षामे घूमनेवाली पृथ्वी जव नीच विंदु (**नी**) को पहुँचती है तव वह सूर्यसे सवसे ज्यादा निकट होती है मगर वह जव उच्च विंदु (**उ**) को पहुँचती है तव वह सूर्यसे सवसे ज्यादा दूर रहती है। पृथ्वी जव सूर्यके नजदीक होती है उस वक्तका उसका कक्षा-वेग ज्यादा होता है मगर दूरकी स्थितिमे कम। यों **नी** विंदु-के आगे यह वेग सवसे ज्यादा और **उ** विंदुके आगे सवसे कम रहता है। नतीजा यह होता है कि **नी** के इर्दगिर्दका ३० अंशका कक्षा भाग वह वहुत जल्द काट लेती है मगर **उ** के आगेका उतना ही कक्षा भाग तय करनेमें उसे थोड़ा ज्यादा समय लगता है। केप्लरका तीसरा नियम वतलाता है कि सूर्यके इर्दगिर्द घूमनेवाला ग्रह एक सरीखे समयमे अपने कक्षातलमें एक-सा क्षेत्रफल घेरता है। चाप-खंड ३० अंशका होने पर भी **नी** वाले त्रिकोणका क्षेत्रफल **उ** वाले त्रिकोणके क्षेत्रफलसे कम ही है। मतलव कि **उ** समक्ष जव पृथ्वी होगी उस वक्त जो महीना चलता होगा वह सवसे ज्यादा लंवा महीना होगा। इसके विपरीत पृथ्वी जव **नी** को पहुँचेगी उस वक्तका महीना सवसे छोटा होगा। पृथ्वी ता. ३–४ जुलाईको **उ** समक्ष पहुँचती है। उस समय आपाढ़ मास चलता है। पृथ्वी **नी** समक्ष ता. २–३ जनवरीको आती है और उस वक्त पौष महीना चलता है। सामान्यतया अगहन, पौष और माघ छोटे महीने हैं जवकि जेठ, आपाढ़ और श्रावण लंवे महीने ।

ऊपर हमने छोटे-वड़े महीनोंकी वात की। ये सारे महीने हमेशा एकसरीखे ही रहते हैं ऐसा नहीं है। उनकी समय-अवधिमें थोड़ा-वहुत फर्क पड़ता रहता है। हाँ, एक वात सही है कि वड़े महीने हमेशा वड़े रहते हैं और छोटे महीने हमेशा छोटे। सौर मासोंकी लम्वाई २९ दि. १० घं. ३८ .६ मि. से ३१ दि. १० घं. ५४.६ मि. तककी है। चांद्र मासकी औसत लम्वाई २९.५३०५९ दिवसकी है जवकि सूर्य मासकी ३०.४३६८५ दिवस की।

भारतीय चांद्र मासके लिये एक नियम है कि जिस महीनेमे सूर्यसंक्रान्ति हो उसे ही महीनेका नाम दिया जाय। अगर किसी चांद्र मासमें सूर्यसंक्रान्ति न हुई तो वह महीना वेनाम या

अधिक मास समझा जायगा। सौर मासकी औसत लम्बाई चान्द्र मासकी औसत लम्बाईसे कुछ ज्यादा है। इस कारण अगर किसी चान्द्र मासकी अमावस्याको या उससे पहले एक सूर्यसंक्रान्ति हो जाय और दूसरी उसके बादकी अमावस्याके बीतने पर हो तो बीचवाला चान्द्र मास बेसंक्रान्तिका या अधिक मास समझा जायगा। कभी इससे उलटी बात होना भी संभव है। सूर्य द्वारा जो सौर महीने बनते हैं उनमें सबसे छोटा महीना (२९ दि १० घ ३८६ मि का) औसत चान्द्र माससे भी छोटा है। ऐसे मौके पर अगर शुक्लपक्षीय परिवाके दिन सूर्य संक्रान्ति हो तो फिर वह उसी मासकी अमावस्याको या उससे पहले भी हो जानेकी पूरी संभावना है। यों एक ही चान्द्र मासमें दो संक्रान्तियाँ होनेसे उस मासको दो मासोंका नाम देनेकी नौबत आयेगी। मगर यह अनुकूल नहीं है। हमें एक मासका नाम छोड़ना पड़ेगा। जो नाम छोड़ दिया जायगा वह क्षयमास होगा।

आम तौर पर क्षयमासोंकी संख्या बहुत ही कम रहती है। क्षयमासकी औसतन संख्या ६३ वर्षमें एककी है। फिर भी दो क्षयमासोंके बीचका फासला कभी कम हो जाता है तो कभी बहुत लंबा। छोटा फासला १९ वर्षका और लंबा फासला १४१ वर्षका है। हमारे समयमें पिछला क्षयमास विक्रम संवत् २०२० (सन् १९६४) का अगहन था। आगामी क्षयमास विक्रम संवत् २०३९ (सन् १९८३) का पौष होगा। मजेदार बात यह है कि क्षयमासवाले वर्षमें क्षयमाससे पहले और बादमें एक एक अधिक महीना आता है। संवत २०२० में कार्तिक और चैत्र अधिक मास थे, संवत २०३९ में आसोज और फागुन होंगे।

पाठक देखेंगे कि जिन मासोंका क्षय होता है वे महीने अगहन, पौष और माघ के छोटे महीने हैं। इन तीनों के सिवाय बाकीके महीने अधिक मास बन सकते हैं। अधिक मासोंमें जेठ, आषाढ़ और श्रावणकी ही अधिकता रहती है। अधिक मास मलमास भी कहलाता है। बहुतसे लोग उसे पुरुषोत्तम मास भी कहते हैं।

अंग्रेजी महीनेमें ऐसी तकलीफ नहीं है। मुस्लिम जनताका वर्ष बारह चान्द्र मासका वर्ष है इस कारण उसके मासोंमें भी कोई तकलीफ नहीं है।

महीनोंके बाद अब वर्षकी बात करेंगे।

वर्ष शब्द वर्षा परसे आया है। वर्षके अर्थमें प्रयुक्त होनेवाले और शब्द शरद, अब्द, संवत्सर, समा वगैरह हैं। ये सारे शब्द ऋतु-सूचक शब्द हैं। मतलब कि हमारे वर्षका नाप एक ऋतुसे लेकर फिर उसी प्रकारकी दूसरी ऋतु तककी समय मर्यादा है। वार्षिक रूपमें पुनरावर्तित होनेवाली किसी निश्चित आकाशीय घटनाके साथ वर्षका आरंभ जोड़ा जा सकता है। यों हम अपने वर्षको मुख्यतः वसंतसंपात, शरदसंपात, उत्तरायण या दक्षिणायनसे कर सकते हैं। इस प्रकार जो वर्ष प्राप्त होता है वह अयनवर्ष (सायन) या ऋतुवर्ष (Tropical year) है। हमारे आम व्यवहारका वर्ष भी ऋतुवर्ष ही है। ऋतुवर्षको सांपातिक-वर्ष भी कहा जाता है।

हमने देखा कि सूर्यके चारों ओरका पूर्ण आकाशीय चक्कर लगानेमें पृथ्वीको एक वर्षका समय लगता है। सूर्य किसी तारेके नजदीक हो और वहाँसे हटकर फिर वह उसी तारेके

समीप दिखाई दे, इस बीचमें जो समय गुजरता है वह भी एक तरहसे वर्ष है। मगर यह वर्ष ऋतुवाला वर्ष नहीं है। वह तारोंसे प्राप्त किया जाता है इस कारण उसे नाक्षत्र वर्ष (Sidereal year) कहते हैं। नाक्षत्र वर्ष हमारे ऋतु वर्षसे थोड़ा—२० मिनटके करीब—बड़ा है।

पुराने जमानेके भारतीय पंडित इन वर्षोंके भेदको नहीं समझ सके थे। उत्सवों और त्यौहारोंके लिये उन्होंने ऋतुपर्वोंकी व्यवस्था की थी मगर वर्षका मान सायन रखनके बजाय नाक्षत्रिक रखा था। शुरूआतके अनेक वर्ष तक पर्वोंका और ऋतुओंका संबंध अटूट रहा मगर बादमें उनके बीचकी खाई धीरे-धीरे दिखाई देने लगी। मगर ऐसा फर्क होनेका कारण उस वक्त समझमें नहीं आया और इस कारण उसका संस्कार भी न हो सका। परिणाम यह हुआ कि पुराने जमानेमें एकसाथ होनेवाले उत्तरायण और संक्रान्तिके बीच आज २३ दिवसका फर्क पड़ गया है। मतलब कि पुरानी परिपाटीके अनुसार ऋतुओंकी शुरूआत उनके सही आरंभसे २३ दिवस बाद की जाती थी। यह बड़ी गलती थी मगर हम लोगोंने उसे दुरुस्त कर लिया है और ता. २२ दिसम्बरके दिन उत्तरायण-पर्वके साथ शिशिरऋतुका आरंभ होना भी निश्चित कर दिया है। (मकर संक्रान्ति आजकल ता. १४ जनवरीके दिन होती है और वह कोई ऋतु त्यौहार नहीं है)। मगर यह अकेला ही काम नहीं है; नाक्षत्रिक वर्ष-गणनाके कारण और भी बहुत-सी असंगतियाँ रह गयी हैं जिन्हें सुधारनेका काम अभी बाकी है।

नाक्षत्र वर्षकी बातको यहाँ छोड़कर ऋतुवर्षकी कुछ बात करेंगे। आजकल हम जिसका ज्यादा उपयोग करते हैं वह अंग्रेजी वर्ष ऋतुवर्ष है। पढ़ी-लिखी भारतीय आम जनता अपना व्यवहार उसके जरिये चलाती है। अलबत्ता धार्मिक कृत्योंके लिये हम भारतीय सौर-चांद्र-वर्षका उपयोग करते हैं लेकिन सरकारी और नागरिक कामोंके लिये हम अंग्रेजी वर्षको ही प्राधान्य देते हैं। भारत सरकारने अपने कारबारके लिये अंग्रेजी वर्षके ढंगका अपना शासकीय वर्ष जारी किया है। इस वर्षका आरंभ ता. २२ मार्चको होता है। तारीखोंके आंकड़ोंको छोड़ दें तो यह भारतीय वर्ष अंग्रेजी वर्षके जैसा ही है। अंग्रेजी वर्षकी तरह भारतका यह राष्ट्रीय वर्ष भी प्लुतवर्ष बनता रहता है।

प्लुत दिवस और प्लुत वर्षकी थोड़ी बात कर लें।

नाक्षत्र वर्षकी लंबाई ३६५.२५६३६ दिवस है। ऋतुवर्षकी लम्बाई ३६५. २४२२ दिवस है। हर चौथे साल १ दिवस और जोड़कर हमारे वर्षकी औसत लम्बाई ३६५.२५ दिवस की जाती है। इस प्रकार प्राप्त होनेवाला नागरिक वर्ष ऋतुवर्षके हिसाबसे ०.००७८ दिवस (= ३६५.२५ दि. –३६५.२४२२ दि.) बड़ा है। लम्बाईके इस फर्कको मिटानेके लिये हर चौथे वर्ष जोड़ा जानेवाला १ दिवस हरेक सदीके वर्षमें नहीं जोड़ा जाता है। वह हरेक चौथी सदीके वर्ष जोड़ा जाता है। यों ४०० वर्षमें कुल ९७ वर्ष प्लुत वर्ष होते हैं। और इस प्रकार हरेक नागरिक वर्षकी लम्बाई ३६५ दिवस + (९७ दि. ÷ ४००) = ३६५.२४२५ दिवस होती है। ऋतुवर्षके हिसाबसे यह वर्ष ०.०००३ दिवस बड़ा है। वर्ष लम्बाईका यह फर्क ३२०० वर्षके बाद सिर्फ १ दिवसका हो जाता है। इस दृष्टिसे देखने पर क्रिश्चियन वर्षकी लम्बाई

संतोषप्रद है। ३२०० वर्षमें पड़नेवाले उपर्युक्त १ दिवसके फर्कको आसानीसे टाल दिया जा सकता है हर तीसरे या हर चौथे हजार वर्षको प्लुत वर्ष न मानकर यह फर्क दूर किया जा सकता है।

ईरान और रूसकी प्लुतपद्धति कुछ भिन्न है। वहां हर चौथे वर्षको प्लुत वर्ष मानते हैं मगर ७ प्लुत वर्षोंके बाद आनेवाला ८ वां प्लुतवर्ष चौथे वर्षके बजाय पांचवें वर्ष होता है। यों उनके हिसाबसे ३३ वर्षमें ८ प्लुत वर्ष होते हैं और हरेक वर्ष की औसत लम्बाई ३६५ दिवस +(८ दि−३३)=३६५.२४२४२४ दिवस होती है। ऋतुवर्षकी तुलनामें यह वर्ष ०.०००२२४ दिवस बड़ा है। करीब साढे चार हजार वर्षोंके बाद एक दिवसका फर्क डालकर इस मोटाईको दूर किया जा सकता है।

भारतीय तिथियोंवाले पचागकी तुलनामें अंग्रेजी कैलेन्डर बहुत सरल है। सामान्य आदमी भी उसकी तारीख और वार कह सके उतना वह आसान है। तिथियोंका पचाग वैसा नहीं है। उसकी गणित-गणना बहुत ही पेचीदी है और इसी कारण आम आदमी तिथि-वारकी आगाही आसानीसे नहीं कर सकता है।

अंग्रेजी पचाग सरल होने पर भी वह सब प्रकार अनुकूल नहीं है। उसके वर्षारंभ अलग-अलग दिनोंमें होते हैं। दूसरी बड़ी तकलीफ वर्षके सप्ताहोंकी है। अंग्रेजी वर्ष पूरे सप्ताहोंवाला नहीं है। उसके ३६५÷७=५२⅟₇ सप्ताह होते हैं। वर्षारंभका दिवस हमेशा एक-सा ही रहे इस उद्देश्यको लेकर 'वर्ल्ड कैलेन्डर' की योजना की गयी है। इस पचागमें चार त्रैमासिक विभाग हैं जिनमें से प्रत्येक ९१ दिवसका है। हरेक विभागके पहले महीनेकी पहली तारीख रविवारको, दूसरे महीनेकी पहली तारीख बुधवारको और तीसरे महीनेकी पहली तारीख शनिवारके दिन शुरू होती है। चौथे विभागके अंतमें एक ज्यादा (प्लुत) तारीख रखी गयी है। इस तारीखको रविवार पड़ता है और इस कारण यह भी प्लुत दिवस बन जाता है। लेकिन यह हुई ३६५ दिवसवाले वर्षकी बात। ३६६ दिवसवाले वर्षमें एक और प्लुत तारीखकी (और यों एक और प्लुत दिवसकी) व्यवस्था करनी होगी। विश्वपचागमें यह व्यवस्था प्लुतवर्षके जून मासकी ३० तारीखके बादके दिवसको प्लुत तारीख और प्लुत रविवार ठहराकर की गयी है।

उपर्युक्त व्यवस्था वास्तवमें बहुत ही सरल है। मगर आश्चर्यकी बात यह है कि दुनियाके राष्ट्रोंने इस पचागका स्वीकार नहीं किया है। विश्वमें पचागकी सबसे बड़ी तकलीफ प्लुत रविवारोंकी है। पुराने जमानेसे आजतक लोग, तारीख और वारोंकी गिनती करते आये हैं। ऐसा करनेमें उन्होंने तारीखों या तिथियोंको प्लुत करार दिया है। मगर वारोंको कभी प्लुत नहीं कहा है। वारोंका चक्र अविरत बहता ही आया है। प्लुत रविवारोंसे उसे खंडित करना उपयुक्त मालूम नहीं होता है।

दूसरी तकलीफ यह है कि दुनियाके सारे वार आज एक-से हैं। दुनियाके सभी राष्ट्र 'वर्ल्ड कैलेन्डर' को स्वीकार न करें तो अलग-अलग राष्ट्रोंकी तारीखों और वारोंमें भेद उत्पन्न हो जानेकी पूरी संभावना है। ऐसी परिस्थितिमें 'वर्ल्ड कैलेन्डर' विश्वपचाग बननेके बजाय अविश्व-पचाग हो जानेका डर रहता है।

आशा करें कि केलेन्डरकी इस गुत्थीको सुलझानेका कोई रास्ता मिल जायेगा।

अंतमें हम पंचांगकी कुंडलीकी बात करेंगे।

भारतीय पंचांगोंमें हर मास पूर्णिमाकी और अमावसकी कुंडलियाँ दी जाती हैं। कुंडली वास्तवमें सूर्य, चंद्र और आकाशीय ग्रहोंकी स्थितियोंका आलेख है। उसकी सहायतासे आकाशीय पदार्थ आसमानमें किस राशिमें देखा जा सकता है उसका पता चलता है। आकाशीय ज्योतिका वास्तविक स्थान ढूंढ़नेके लिये राशिके अलावा उस ज्योतिके दैनिक आकाशीय अवच्छेदकोंका ज्ञान होना भी जरूरी है। ता. २ नवम्बर १९६७ के रोज दिवाली है। इस दिवसके दैनिक ग्रह (राशि, अंश, कलामें) नीचे अनुसार हैं। सायमें दिवालीकी–आसोजकी अमावस्याकी–कुंडली भी दी गयी है।

सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	युरेनस	नेप्चुन
६-१५-२७	६-१२-२	८-१३-५६	६-१४-३९	४-८-४०	४-२९-६	१३-२७	३-४६	४-४

ने. ८
७
यु. ६
मं. ९
सू. के. चं. बु.
शु.
गु. ५
१०
४
११
रा. १
३
श. १२
२

कुंडलीसे मालूम होगा कि सूर्य सातवीं राशिमें है और शनि बारहवींमें। इसके अलावा, किसी एक राशिमें कौन कौन-सी ज्योतियाँ हैं वह भी कुंडलीसे जल्द ही मालूम हो जाता है। ऐसा होते हुए भी, कोई ग्रह या सूर्य-चंद्र आकाशमें किस जगह है वह जानने के लिये दैनिक स्पष्ट ग्रहोंके कोष्ठकोंकी भी जरूरत रहती है। मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि कुंडलीकी कोई खास महत्ता नहीं है। कुंडलीकी खास महत्ता उसके अभिलेख (Record) की है। पुराने जमानेकी कुंडलियोंके आधार पर उस समयकी घटनाओंका खयाल आता है। इतना ही नहीं अनेक ऐतिहासिक तथ्योंकी छानबीन भी की जा सकती है।

कई पंचांग अलग-अलग ग्रहोंके आकाशीय स्थानोंके अलग-अलग आलेख देते हैं। इस प्रकारके आलेखोंमें, अमुक तारीखसे अमुक तारीख तक, वह ग्रह आकाशमें किस जगह दिखाई देगा उसका रेखांकन रहता है। पंचांगोंके अलावा कई दैनिक और सामयिक पत्र-पत्रिकायें भी सूर्य, चंद्र और ग्रहोंके आकाशीय स्थानोंकी जानकारी देती रहती हैं।

विश्वपंचाग

जनवरी						
र	सो	म	बु	गु	शु	श
१	२	३	४	५	६	७
८	९	१०	११	१२	१३	१४
१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
२९	३०	३१				

फरवरी						
र	सा	म	बु	गु	शु	श
			१	२	३	४
५	६	७	८	९	१०	११
१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
२६	२७	२८	२९	३०		

मार्च						
र	मो	म	बु	गु	शु	श
					१	२
३	४	५	६	७	८	९
१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३
२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०

अप्रैल						
र	मो	म	बु	गु	शु	श
१	२	३	४	५	६	७
८	९	१०	११	१२	१३	१४
१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
२९	३०	३१				

मई						
र	मो	म	बु	गु	शु	श
			१	२	३	४
५	६	७	८	९	१०	११
१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
२६	२७	१८	२९	३०		

जून						
र	सा	म	बु	गु	शु	श
					१	२
३	४	५	६	७	८	९
१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३
२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०

जुलाई						
र.	सो.	मं.	बु.	गु.	गु.	श.
१	२	३	४	५	६	७
८	९	१०	११	१२	१३	१४
१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
२९	३०	३१				

अगस्त						
र.	सो.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
			१	२	३	४
५	६	७	८	९	१०	११
१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
२६	२७	२८	२९	३०		

सितम्बर						
र.	सो.	मं.	बु,	गु.	शु.	श.
					१	२
३	४	५	६	७	८	९
१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१७	२८	१९	२०	२१	२२	२३
२४	२५	२६	२७	१८	२९	३०

अक्टूबर						
र.	सो.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
१	२	३	४	५	६	७
८	९	१०	११	१२	१३	१४
१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
२९	३०	३१				

नवम्बर						
र.	सो.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
			१	२	३	४
५	६	७	८	९	१०	११
१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
२६	२७	२८	२९	३०		

दिसम्बर						
र.	सो.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
					१	२
३	४	५	६	७	८	९
१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३
२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०

हर वर्ष ता. ३० दिसंबरके बादका दिवस वर्षान्त दिन व अधिक रविवार माना जायगा।

हर प्लुत वर्ष ता. ३० जूनके बादका दिवस प्लुत दिन व अधिक रूपका विशिष्ट रविवार माना जायगा।

२३. आकाश दर्शन

आकाशविज्ञान या खगोलशास्त्रकी बातोंको अच्छी तरहसे समझनेके लिये आकाशीय ज्योतियोंसे परिचित होना बहुत जरूरी है। मंदाकिनी विश्व अपना ताराविश्व है। इस विश्वमें १०० अरब तारे हैं मगर उन सबसे हमारी पहचान नहीं है। नग्न आंखोंसे जो तारे दिखाई पड़ते हैं उनमेंसे कुछ विशिष्ट तारोंको और उनके तारक मंडलोंको हम पहचान लें तो आकाश दर्शनका हमारा काम बहुत सरल हो जायगा।

प्रस्तुत पुस्तक तारक परिचयकी किताब नहीं है। यहाँ नौसिखियोंको आकाश दर्शन करानेका प्रयत्न नहीं किया गया है विपरीत इसके जो लोग तारोंको पहचानते हैं उनके उस परिचयको और भी दृढ़ बनानेका—तारादर्शनका आनंद लूटनेका—यहाँ प्रयत्न किया गया है। हमारे पाठकोंको तारों और तारामंडलोंका कुछ परिचय है ऐसा मानकर विभिन्न मासोंके विशिष्ट तारामंडलों और उनके तारोंका यहाँ खास परिचय करवाया गया है। परिचयात्मक बहुत-सी बातें तारोंके युग्म या बहुल स्वरूपकी हैं। कई जगह ज्यादा संख्यामें तारे दिखाई पड़नेका जिक्र किया गया है और उस समयमें बायनोक्युलर या छोटी दूरबीन इस्तेमाल करनेकी सिफारिश की है। हरेक आदमीके पास दूरबीनका होना असंभव है लेकिन हममेंसे बहुत ऐसे आदमी होंगे कि जिनके पास बायनोक्युलर (या फील्डग्लास) हैं। छोटी दूरबीन कहनेसे हमारा अभिप्राय २ से मी से लेकर १० से मी व्यासके वस्तुकाँच (ताल या दर्पण) वाली दूरबीनसे है। आकाशका गहरा अध्ययन करनेवालोंके लिये ८ से मी से लेकर १२ से मी व्यासके वस्तु-काँचवाली दूरबीन विशेष अनुकूल होगी। बायनोक्युलरकी नाप आम तौर पर ६×३०, ७×३५; ७×५०, १०×५०, २४×६० वगैरह अंकों द्वारा दर्शाई जाती है। इन अंकोंमें पहला अंक पदार्थके दूरत्वमें कितनी कमी होगी वह दिखाता है। दूसरा अंक बायनोक्युलरके वस्तुकाँचका मिलिमीटरमें दिया गया व्यास है। दृश्य पदार्थ २४० मीटर दूर हो तो ६×३० बायनोक्युलर से वह २४०मीटर−६=४० मीटरकी दूरी पर (आया हुआ) दिखाई पड़ेगा और २४×६० से वह २४०मीटर−२४=१० मीटर दूर मालूम होगा।

अलग-अलग मासके तारादर्शनके रूपमें सब मिलाकर बारह मासोंके ४५ तारामंडलोंकी विशिष्टताओंका यहाँ परिचय कराया गया है। आम नजरमें सामान्य दिखनेवाले तारोंकी असामान्यताकी झाँकी कराई गई है और इसके द्वारा अगोचर सौन्दर्यको प्रकट करनेकी और हमारे मन और हृदयाकाशको ज्यादा विशाल बनानेकी बात सोची गई है।

आकाशदर्शनके बारेमें जरूरी सूचनायें विषयके आरंभमें ही दे देना उचित मालूम होगा।

(१) इस पुस्तकमें अलग मासोंके अलग तारानकशे दिये गये हैं। हरेक तारानकशा अपन महीनेकी पहली तारीखको रातके नौ वजेके समयका (पूर्व भारतमें आठ वजेके समयका) आकाश दिखाता है। पहली तारीखके वजाय दूसरी और तारीखको आकाश दर्शन करना हो तो दर्शनका समय रोजके चार मिनिटके हिसाबसे कम कर लेना चाहिये। इस प्रकार ता. १० का दर्शनसमय ८ घं. २० मि.; ता. १५ का ८ घं. ०० मि.; ता. २२ का ७ घं. ३२ मि. और ता. ३० का ७ घं. ०० मि. रहेगा।

(२) यहाँ दिये गये तारानकशे दो प्रकारके हैं। पूर्व और पश्चिम आकाशके अर्धवृत्ताकार नकशे और उत्तर-दक्षिणाकाशके खंड वृत्ताकार नकशे। इनका उपयोग करते समय हमें इन नकशोंको निर्दिष्ट दिशाओंमें धरने होंगे और आकाशके तारोंका नकशेके तारोंके साथ मिलान करना होगा। खंड वृत्ताकार नकशे जिस प्रकार छपे हैं उस रूपमें वे दक्षिणका आकाश दिखलाते हैं। उत्तरकी ओरके तारोंका परिचय करनेके लिये उन्हें उलटा करके देखना होगा।

(३) नकशेमें तारोंको छोटे-वड़े विन्दुओंके रूपमें दिखलाया गया है। वास्तवमें तारे इस प्रकार छोटे-वड़े नहीं दिखाई देते हैं। चमकते या ज्यादा तेजस्वी तारोंको निस्तेज तारोंसे अलग दिखानेके लिये ही यह रीति अखत्यार की है। छोटे-वड़े सभी तारे तेजविन्दुओंकी तरह दिखाई देते हैं किन्तु कई लोगोंका खयाल है कि दूरवीनसे देखने पर तारे वड़े होते दिखाई देते हैं। मगर यह खयाल गलत है। दूरवीनसे देखने पर तारे छोटे लेकिन ज्यादा तेजस्वी दीखते हैं।

(४) नकशोंमें ग्रहोंको कायमी रूपमें नहीं दिखाये जा सकते हैं। सूर्यके इर्दगिर्द घूमनेवाले ये ग्रह रविमार्गके अगलवगलमें ही रहते हैं। दूसरी तकलीफ उनके स्थानकी है। वे हमेशा एक ही जगह नहीं दिखाई देते। ग्रह कहाँ पर हैं उसकी जानकारी पंचांगोंमें दी जाती है। नक्षत्रोंको पहचाननेवाला कोई भी व्यक्ति ग्रहोंको आकाशीय तारोंके वीच ढूंढ़ सकता है। तारे चमकते रहते हैं मगर ग्रहोंका तेज स्थिर होता है: इस युक्तिसे भी ग्रहोंको पहचाना जा सकता है।

(५) पूर्वमें उगते समय तारामंडलोंके जो आकार होते हैं वे पश्चिममें अस्त होते समय नहीं होते हैं। उनके वे आकार उलटे हो जाते हैं। उगते समय रथीमंडलका आकार हँडिया जैसा दीखता है मगर अस्त होते समय ताज या मुकुट जैसा। इस कारण तारामंडलोंके उगने, अस्त होने और मध्याकाशवाले आकारोंको ध्यानमें रखनेकी जरूरत है। अलवत्ता इस कामके लिये विशेष प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है। पूर्व, पश्चिम और मध्याकाशके तारानकशोंमें ये आकृतियाँ दी गई हैं।

(६) आखिरमें सवसे वड़ी एक वात: तारों और तारामंडलोंको पहिचाननेका काम जरा भी कठिन नहीं है इस वातका हमेशा आत्मविश्वास रखना चाहिए।

आकाश दर्शनकी परिपाटी पश्चिम आकाशका दर्शन प्रथम करवानेकी है। पश्चिमकी ओरके तारे क्षितिजकी ओर सरकते रहते हैं। उनके अस्त होनेसे पहले उन सवके दर्शन कर लेनेकी इच्छासे ऐसा किया जाता है। पूर्वमे उगते तारोंके वारेमें चिन्ताकी ऐसी कोई वात नहीं है।

वारह मासोंके तारानकशोंके अलावा दो और तारानकशे दिये गये हैं। वे उत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुवके इर्दगिर्दके तारोंके नकशे हैं। इन चक्राकार नकशोंकी वार पर तीर दिखाये गये हैं।

नक्शोंका उपयोग करते समय उनको तीरकी दिशामें घुमाना है। पाठक देखेंगे कि दोनों नक्शोंकी तीरकी दिशायें एकदूसरेसे उल्टी हैं मगर नक्शोंको घुमाते समय वे पूर्वसे पश्चिमकी ओरकी गति दिखायेंगे।

यहाँ जो तारानक्शे दिये गये हैं वे जिस किसी महीनेका मानसे नौ बजे तकका आकाश दिखाते हैं। इसका मतलब कोई यह न समझे कि उसी तरहका आकाश किसी दूसरे महीनेमें न देखा जायगा। अलबत्ता ७ से ९ बजे तककी समयमर्यादामें वह दूसरे महीनेमें न देखा जायगा मगर उसके बादकी समयमर्यादामें — अर्थ रात्रिको या बड़े तड़के — किसी महीनेकी रात्रिकी शुरूआतका आकाश देखा जा सकता है। जनवरीकी शामका आकाश सितम्बरकी सुबहमें और सितम्बरकी शामका आकाश मई मासकी सुबहमें देखा जाता है। मतलब कि किसी महीनेकी सुबहका आकाश उस महीनेके बादके पाँचवें महीनेकी शामका आकाश है। रातके अलग-अलग समय कौनसे महीनेका नौ बजेवाला आकाश देखा जायगा उसकी जानकारी पुस्तकके अन्तमें परिशिष्ट ३ में दी गयी है।

यहा जो तारानक्शे दिये गये हैं वे अपने महीनेकी रातके नौ बजेका आकाश दिखाते हैं। अगर हमें उसी महीनेकी रातके सात बजेका आकाश देखना हो तो क्या करना चाहिये? ११ बजेका आकाश देखना हो तो क्या करना चाहिये? इन दोनों किस्सोंमें समयका फर्क दो घंटेका है। दो घंटेका समयफर्क एक मासके आकाश दर्शनका फर्क है। यो किसी महीनेकी रातके ७ बजेका आकाश उस महीनेसे एक महीना पहलेकी रातका ९ बजेका आकाश होगा। उसी तरह रातके ११ बजेका आकाश एक महीने बादके रातका आकाश होगा। कोष्टकमें ये सारी बातें दी गयी हैं।

कोष्ठकमें मालूम होगा कि जनवरीकी पहली तारीखको रातके नौ बजे जो आकाश (ज) दीखता है वह सितम्बरकी १ तारीखके सुबह ५ बजे, सितम्बरकी १६ तारीखके सुबह ४ बजे, अक्टूबरकी १ तारीखके रातके ३ बजे, अक्टूबरकी १६ तारीखको रातके २ बजे, नवम्बरकी १ तारीखको रातके १ बजे वगैरह समयका आकाश है। उसी तरह सितम्बरकी पहली तारीखके नौ बजेका आकाश मई मासकी पहली तारीखके सुबह ५ बजेका और जून मासकी पहली तारीखके रातके ३ बजेका आकाश है।

यों हम देख सकते हैं कि किसी महीनेकी रातके नौ बजेका आकाश उस महीनेके बादके ८ वें महीनेकी सुबहके पाच बजेका आकाश है।

जनवरीका आकाश

उत्तरकी ओर दृष्टि करने पर मालूम होगा कि ध्रुवमत्स्य ध्रुवतारेको कील बना कर उस पर क्षितिजकी ओर औंधे मस्तक लटक रहा है। ध्रुवतारेकी नजदीकमें ही ध्रुवबिंदु है जो समस्त आकाशीय ज्योतियोंका प्रदक्षिणाकेन्द्र है। ध्रुवतारा ध्रुवबिंदुके नजदीक होनेके कारण स्थिर-सा दीखता है। वास्तवमें और तारोंकी भाँति वह भी अस्थिर है और ध्रुवबिंदुके इर्दगिर्द १½ अंशकी त्रिज्या बनाकर घूमता है। ध्रुवतारेके इस परिक्रमावृत्तके भीतर करीब २०० तारे हैं। मगर वे सभी निस्तेज होनेकी वजहसे ध्रुवतारेको विशिष्ट दर्जा प्राप्त हुआ है।

जनवरीका मध्याकाश

अपने आकाशीय मार्ग पर चलते समय ध्रुवतारा एक बार ध्रुवबिंदुके बराबर ऊपर और एक दफा बराबर नीचेकी ओर रहता है। इसकी इन दोनो आकाशीय स्थितियोंसे ध्रुवबिंदुका स्थान और हमारे स्थलके अक्षांश प्राप्त किये जा सकते हैं। ध्रुवबिंदुकी क्षितिज-ऊँचाई हमारे स्थलके अक्षांश हैं। स्थलके अक्षांश ज्यादा होंगे वहाँ ध्रुवतारा क्षितिजमे और भी ऊँचा रहेगा। पृथ्वीके उत्तरध्रुव तक पहुँचने पर वह हमारे सिर पर आया हुआ दिखाई देगा मगर विषुव-वृत्त तक पहुँचने पर वह क्षितिज पर पहुँच जायेगा।

ध्रुवतारा दूसरे वर्गका तारा है। वह हमसे करीब ४०० प्रकाशवर्षकी दूरी पर है और सूर्यसे करीब ढाई हजार गुना ज्यादा तेजस्वी है। ध्रुवतारा अकेला तारा नहीं है वह एक युग्म तारा है। उसका साथी तारा ९ वें वर्गका नीलश्वेत तारा है। मुख्य तारा खुद भी युग्म तारा है और वह वृषपर्वा प्रकारका ३.९७ दिवस का रूपविकार बतलाता है।

ध्रुवमत्स्यके ठीक ऊपर आकाशगंगा-पाटमें आये हुए ययाति मंडलकी विशेष प्रसिद्धि अलगूल और तारकगुच्छद्वयके कारण है। ६८ घंटे ४८ मिनटका नियमित रूपविकार बतलानेवाला अल्गूल ग्रहणवर्गी एक तारा है। सामान्य रूपका २.३ वर्गका यह तारा रूपविकार बतलाता हुआ ३.५ वें वर्गका तारा बन बैठता है और इस नयी जिंदगीके २० मिनिटके बाद यह तेज बढ़ाता हुआ साढे चार घंटेमें मूल रूपको प्राप्त कर लेता है। करीब ९ घंटेका उसका यह खेल सफेद तारेके आगे काले तारेके आनेके कारण रचा जाता है।

ययाति मंडलके सबसे ऊपरके दो तारोंको देखिये। जो तारा ज्यादा चमकीला है वह एक बहुल तारा है। ययाति मंडलका ठेठ नीचेका, गुच्छद्वयके नजदीकका तारा भी एक प्रसिद्ध युग्म तारा है। उसका ताराद्वय श्वेत और नील तारोंसे बना है। इन दो तारोंमें भी विशेष दर्शनीय है ययाति तारकगुच्छद्वय। ययाति और शर्मिष्ठाके बीच आये हुए और एकदूसरेमें पिरोये गये कंकणी जैसा यह गुच्छद्वय अलग-अलग रूपरंगवाले उसके तारोंके कारण, दूरबीनमेंसे देखने पर, रमणीय स्वरूप प्रकट करता है।

ययातिसे नीचेकी ओरवाले आकाश विभागमेंसे ता. १० अगस्तके अरसेमें उल्का वर्षा होती देखनेको मिलती है।

अब जरा दक्षिणकी ओर हो जाइये। दक्षिण क्षितिज पर वैतरणी मंडलका नदीमुख चमक रहा है। सूर्यसे चार गुना व्यासवाला और ३०० गुना तेजस्वी प्रथम वर्गका यह तारा हमसे ११८ प्रकाशवर्ष दूर है। मुखकी बाईं वैतरणी मूल भी एक तेजस्वी तारा है। ऊँचे तापमानवाला यह तारा बाणरजके नजदीकमें ही है। दूरबीनसे देखने पर उसके चारो ओरका तारालंचित आकाश अत्यन्त आकर्षक मालूम होता है।

फरवरीका आकाश

ठीक पश्चिममें मीनका बोलबाला है। उसकी एक मछली क्षितिजके साथ लंब खडी रहनेकी चेष्टा कर रही है जबकि दूसरी क्षितिजके समांतर। मीनसे बायी ओर तिमि है। तिमिकी विशेषता उसके मिरा सितारेकी है। मिरा यथानाम एक अद्भुत रूपविकारी तारा है। सामान्य

फरवरीका पश्चिमाकाश

फरवरीका पूर्वाकाश

स्थितिमें वह दूसरे या तीसरे वर्गका तारा है मगर रूपविकारकी उलटफेरमें वह दसवें वर्गका तारा हो जाता है। मिराका रूपविकार समय ३३१ दिनका है। मगर इस दरमियान वह एक-सा रूपविकार नहीं बतलाता है। सबसे ज्यादा प्रकाशित बन चुकने पर वह उसी रूपमें करीब १० दिन तक रहता है और उसके बाद धीरे-धीरे प्रकाश गँवाता हुआ ८ मासके भीतर वह दसवें वर्गका निस्तेज तारा हो जाता है। इसके बाद उसका तेज वेगसे बढ़ने लगता है और ढाई महीनेमें वह मूल रूपका हो जाता है। मिराका महत्तम तेज उसके लघुतम तेजसे १००० गुना ज्यादा है।

मिरा लाल रंगका विराट तारा है। वह युग्म तारा है और उसका साथी तारा नीले रंगका निस्तेज तारा है।

मिरासे कुछ ऊपर तिमिके धड़ और सिरको जोड़नेवाला तारा है। पीले और नीले तारोंसे बना वह मनोहर युग्म तारा है।

मीनके ठीक ऊपर अश्विनी है जिसका योगतारा हामल या च्यवन चद्रमार्ग पर ही है। अश्विनीके बाकी दो तारोंमें जो तेजस्वी है वह सबसे प्रथम खोजा गया युग्म तारा है।

अश्विनीसे नक्षत्रचक्र और राशिचक्र शुरू होता है। इस कारण भारतीय खगोलशास्त्रमें यह नक्षत्र बड़ा महत्त्व रखता है।

अब पूर्वाकाशकी मुलाकात करेंगे।

ऊँचे उठने सिंहकी बगलमें वासुकि कुछ ऊँचा उठा हुआ दीखता है। वासुकिका सिर आश्लेषा नक्षत्र है। वासुकिका वह सबसे चमकीला तारा युग्म तारा है जिसका एक साथी धुँधला है और दूसरा तेजस्वी। तेजस्वी साथी तारा स्वयं युग्म तारा है। यह वासुकि नितारा हमसे १३५ प्रकाशवर्ष दूर है। उसके साथी १५ वर्षमें एकदूसरेकी परिक्रमा करते हैं।

वासुकिका योगतारा सर्पमणि है। वह लाल रंगका तारा है और उसके इर्दगिर्दकी बहुत ही कम तारासमृद्धिके कारण वह अकेला मालूम होता है। उसका 'एकाकी' नाम इस कारण सार्थक ही है।

आश्लेषाका आश्लेष कर देना चाहनेवाला पुष्य नक्षत्र (कर्क राशि) धुँधला होने पर भी उसके अंदर आये हुए मधुचक्रके कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया है। मधुचक्रका खगोलीय नाम मे ४४ है। सरसरी निगाहसे मधुचक्र निहारिका जैसा दीखता है। उसके सारे तारे निस्तेज हैं मगर दामनीक्युलरसे देखने पर वे बहुत अच्छे दिखाई देते हैं। मधुचक्रमें कुल ३५८ तारे हैं। इनमेंसे कईएक १८ वें वर्गके भी हैं। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि मधुचक्रके सारे तारे क्षुद्र हैं। मधुचक्रके १०० के करीब तारे सूर्यसे भी ज्यादा तेजस्वी हैं। इनमें भी २० तारे सूर्यसे १० गुना तेजस्वी हैं।

मधुचक्रके मध्यभागका व्यास १० प्रकाशवर्षोंका है।

पुष्यकी डकोका (उत्तरकी ओरका) तारा सुन्दर युग्म तारा है।

कर्क
मधुचक्र
मघा
पुष्य
आश्लेषा
शुनी
प्रभास
एकाकी
शीर्ष
रोहिणी
आर्द्रा
बाण
एकशृंग
व्याध
श्वान
शशक
वैतरणी
वासुकी
नौपृष्ठ
कपोत
नौवस
नौतल
अगस्त्य
असिमीन

मार्चका मध्याकाश

अब शुनिको देखिये। उसके दो तारे हैं। एक प्रभास और दूसरा गोमीसा या जलाक्षी। प्रभास प्रथम वर्गका सुनहरा तारा है। इसका एक और नाम प्रश्वा है। श्वान मंडलसे पहले वह उदित हो जाता है जिस कारण उसे यह नाम मिला है।

सूर्यसे ६५ गुना तेजस्वी प्रभास अत्यन्त निस्तेज साथी तारोंवाला युग्म तारा है। प्रभासका सहचर श्वेत वामन तारा है जिसे देखनेके लिये बहुत शक्तिशाली दूरबीनकी जरूरत रहती है। इस बौने तारेका व्यास सूर्यव्यासके १०० वें भागका (करीब पृथ्वीके बराबरका) है मगर उसका घनत्व बहुत ज्यादा है। अपने चमकते साथीसे १५००० गुने निस्तेज इस तारेका घनत्व पानीके घनत्वसे दस लाख गुना ज्यादा है। श्वा (व्याध) के साथी तारेके घनत्वसे भी बहुत ज्यादा।

मार्चका आकाश

दक्षिणसे वायव्य तक फैली हुई आकाशगंगाका किनारा सुहावने तारामंडलोंसे शोभित हो रहा है। दक्षिण दिशामें आकाशगंगाकी दाहिनी ओरके मुख्य तारामंडल मृग, व्याध और नौका हैं।

मृगके भव्य दर्शनकी तरह उसकी समृद्धिकी भी प्रचुरता है। मृगशीर्षका सबसे ज्यादा चमकीला तारा पीले और लाल साथी तारोंका बना एक युग्म तारा है। सारे मृगमंडलमें कुल मिलाकर ७० युग्म तारे हैं।

लाल आर्द्रा, नीला बाणरज और सीधी रेखावाले बाणके तारोंके कारण मृग जितना फबता है उतना ही वह अपनी मृगपुच्छवाली निहारिकाके कारण प्रसिद्ध हुआ है। मे ४२ नामसे प्रख्यात यह श्वेत निहारिका आकाशका अद्भुत दर्शन है। उसके ठीक बीचमें एक चतुष्तारा है। दूरबीनसे देखने पर हम मंत्रमुग्ध हो जायें ऐसा रूप सौंदर्य वहाँ छलकता नजर आता है। इस निहारिकामें शिशु तारे जन्म पा रहे हैं। उनके तेजके कारण यह निहारिका बहुत ही दमक रही है। मे ४२ का यथार्थ वर्णन करनेके लिए हमें कविहृदय बनना पड़ेगा।

आर्द्रा लाल तारा है जबकि बाणरज नीला। एक विस्तारमें महान है दूसरा प्रकाशसे। बाणरज युग्म तारा है। उसका साथी तारा ६७ वें वर्गका है जो खुद भी एक युग्म तारा है। आर्द्रा रूपविकारी तारा है। इन्टरफेरोमीटरसे उसका व्यास सबसे पहले मालूम किया गया था। आकाशस्थित किसी भी तारेकी अपेक्षा वह हमें ज्यादा गरमी (उष्णता) देता है फिर भी उसके द्वारा ५१,००० वर्षोंमें हमें प्राप्त होनेवाली उष्णता सूर्य द्वारा प्राप्त होनेवाली १ मिनटकी उष्णता के बराबर है।।

बाणके बीचका तारा अनिरुद्ध है। उसके दोनो ओरके तारे—ऊपर चित्रलेखा और नीचे उषा—युग्म तारे हैं। चित्रलेखाके साथी तारे श्वेत और नीले हैं जबकि उषाका एक तारा पीला है और दूसरा नीला। चित्रलेखाकी विशेषता अगर उसके विषुववृत्तीय स्थानकी है

तो उपाकी उसके पास अवस्थित अश्वशीर्ष श्याम निहारिका की। उपाके ठीक नीचे जो तारा है उससे नजदीकका एक तारा अनेक रंगी तारोंवाला वहुल तारा है।

मृग चौकड़ीकी शोभाकी तरह आर्द्रा, रोहिणी, वाणरज और व्यावसे बननेवाले चतुष्कोणका सौन्दर्य भी नयन-रम्य है। मृग मंडलमे एक उल्कोद्गम-स्थान है। वहाँसे अक्टूवर १९ के अरसेमे त्वरित वेगवाली उल्कायें छूटती हैं। इन सभीके कारण आकाशके सारे तारा मंडलोंमें मृगका स्थान सर्वोत्कृष्ट है।

श्वान मंडलका योग तारा (व्याध) अपनी शौकतके कारण प्रसिद्ध हुआ है या मृगके पीछे दौड़नेके कारण, उसका फैसला करना मुश्किल है। व्याध युग्म तारा है। उसका मुख्य तारा अपने साथी तारेसे १०,००० गुना तेजस्वी है। मगर साथी तारा भी कुछ कम नही है। पानीके हिसावसे ५०,००० गुनी घनतावाला यह श्वेत वौना अंतरिक्षका एक आश्चर्य है। कुछ भी हो नग्न आँखसे व्याधको उदयमान होता देखनेमे वड़ा मजा आता है। उसके तेज-पलटोंकी शोभा देखते ही वनती है। व्याधको दूरवीनसे देखनेवाले उसके रूपसौन्दर्य पर लट्टू हो जाते हैं। हरेक किस्मके प्रकाश-फव्वारे छोड़नेवाला व्याध सुन्दर तेजशिखाओंसे आवृत्त तेजस्वी रत्न सरीखा दीखता है।

व्याससे ठीक नीचे नग्न आँखसे दिखाई पड़नेवाला एक तारकगुच्छ है। वायनोक्युलरसे देखने पर उसके केन्द्रमें एक लाल तारा नजर आयेगा। इस लाल तारेका ७ या ८ से. मी. वाली दूरवीनसे निरीक्षण करनेमे वड़ा आनंद आता है।

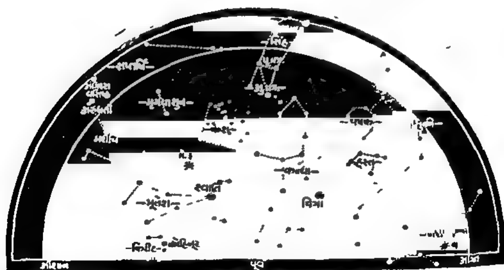
मगर अगस्त्यका क्या? व्याधसे दूसरे नंवरका यह तेजस्वी तारा आयतनकी और तेजकी दृष्टिसे विराट है। आश्चर्यकी वात तो यह है कि इस तारेका अवगुंठित रहस्य हम अभी तक नही खोल पाये हैं।

अप्रैलका आकाश

पश्चिमकी ओर मन्दाकिनीका पुल वना है और उसके नीचे हचकोले खाते हुए मृग और रोहिणी पश्चिम क्षितिजके घाटकी ओर वढ़ रहे हैं। इस शोभामें अभिवृद्धि करता है मिथुन मंडल। आकाशगंगाके दूसरे किनारे नरनारायणकी मंगलमूर्ति सम वह खड़ा है। एकको पुरुष और दूसरेको प्रकृति मान लिया जाय तो आकाशमंदिरका यह मूर्तिद्वय अर्थपूर्ण वनता है। मिथुन मंडलके पुरुष और प्रकृति दोनों प्रथम वर्गके तारे हैं। इन दोनोंमें प्रकृति कुछ कम तेजस्वी है। प्रकाशके हिसावसे वह कम उज्ज्वल भले हो, हरे और श्वेत मुख्य तारोंसे वना छ तारेवाला प्रकृति अपनी अन्य प्रकारकी उज्ज्वलता प्रकट करता है। सिरकी तरह प्रकृतिके पैर भी समृद्धिसे परिपूर्ण हैं। उत्तरकी ओरके पैरके अंगूठेके नजदीक ही दक्षिणायनविंदु है। यहाँसे सूर्य आर्द्रा-प्रवेश करता है। इसके अलावा इस पैरसे कुछ ऊपरकी ओर एक अत्यंत मुन्दर तारक गुच्छ मे ३५ आया है। सामान्य दूरवीनसे देखने पर भी वह हमें आनंदविभोर कर दे वैसा उत्तम उसका रूप है। उसकी इस कमनीयताको और वढ़ाती हैं दो तारा पंक्तियाँ, जो उसके



मेल्का पश्चिमाकाश



मेल्का पूर्वाकाश

दोनों ओर समांतर रेखाओंके रूपमें विद्यमान हैं। प्रकृतिके इसी पाँवके नजदीक युरेनस ग्रह खोजा गया था। मगर इस प्रकारका गौरव लेते समय पुरुषको हम कोई अन्याय तो नही कर रहे ऐसा प्रश्न उठना स्वाभाविक है। इतिहास बतलाता है कि प्लुटो ग्रह पुरुषकी कमर (पुरुषकी नीचेके तारे) के पास खोजा गया था। इन दोनों ग्रहोंकी खोजोंको जोड़नेवाला रविमार्ग भी प्रकृतिपाद और पुरुषकटिमें होकर गुजरता है और यों पुरुष और प्रकृतिके द्वैतको वह अद्वैतमें पलट देता है।

तारागुच्छोंमे कृत्तिका परम दर्शनीय है वैसे ही नक्षत्रोंके तारोमे रोहिणी है। रक्तांगी रोहिणी नितान्त सुन्दर तारिका है। रोहिणीशकटको चद्र भेदता है तब वृषभचक्षु रोहिणीकी शोभा और महत्ता बढ़ जाती है। रोहिणी कृत्तिकाकी अनुगामिनी है लेकिन भौतिक खगोल उसे दूरगामिनी ठहराता है।

वृषभके एक सीगकी नोक अग्नि है। वृषभका दूसरा सींग छोटा भले ही हो उसका पड़ोस बहुत समृद्ध है। उसके सिरेके नजदीक ही खगोलप्रसिद्ध कर्क निहारिका है। यह सबसे प्रथम आविष्कृत निहारिका है जो मे १ के नामसे मशहूर हुई है। कर्क निहारिका छोटी दूरबीनसे नहीं दिखाई देती है। उसके दर्शन पानेका काम हमारी दर्शनशक्तिको चुनौती देनेवाला है।

वृषभको यहाँ ही छोड़कर आइये अब पूर्वके सिहसे मुलाकात करें। यथानाम तथा आकृति सिंहका योग तारा मघा है। सर्प्तार्षियोंने जिसके महँगे पानीको पसंद किया है वह मघा रवि-मार्ग पर आया हुआ ८वे वर्गके साथी तारोंवाला एक श्वेत त्रिकतारा है। मघाकी हँसिया दो प्रकारसे प्रसिद्ध है। उसे जम्भाई लेते हुए सिंहका मुँह माना जाय तो उसकी नोक सिंहकी नाक समझी जायगी। इस नाकके नजदीक ही ता. १४–१५ नवम्बरके अरसेमें दिखाई देनेवाली उल्कावर्षाका उद्गमस्थान है। दूसरी प्रसिद्धि है सिंहके कवेकी। मघाकी हँसियाका यह दूसरा चमकीला तारा मघासे तीसरा तारा है। उसका अरबी नाम है अल जीबा। इस नामका अर्थ है केसर। सिंहका केसरी नाम भी केसर (अयाल) परसे ही आया है। केसर रूपहला युग्मतारा है मगर सामान्य दूरबीनको वह दाद नही देता है।

सिंहकी कमर पूर्वा-फाल्गुनी है और उसकी पुच्छ उत्तरा-फाल्गुनी। उत्तरा-फाल्गुनीका एक तारा चमकीला है मगर दूसरा धुँधला। चमकीला तारा नीले रंगका तारा है और हमसे दूर अवकाशमें वह सरक रहा है।

सिंहराशिसे कुछ दूर स्वाति और चित्रा क्षितिजसमांतर रहते हुए ऊपर उठते आते हैं। उनके दर्शन करके इस मासका आकाश दर्शन पूरा करना ठीक होगा।

मईका आकाश

दक्षिण दिशामें क्षितिजसे ऊपरकी ओर आकाशगंगा फैली हुई है। उसमें अवगाहन करनेवाले तारा मंडलोंमें स्वस्तिक छोटा लेकिन सलौना तारा मंडल है। कर्णफूलकी तरह लट-कता क्षितिज की ओरका उसका त्रिशंकु तारा हमसे ३७० प्रकाशवर्षकी दूरी पर बैठा हुआ युग्म तारा है। उसके दोनों साथी तारे आसानीसे देखे जा सकते हैं। वे दोनों बहुत तेजस्वी

सिंह
पूर्वा
मघा
आश्लेषा
पुष्य
वृक
प्रभास
कन्या
चित्रा
वासुकी
चषक
हस्त
वासुकी
नौपृष्ठ
नौतल
अगस्त्य
स्वस्तिक
विजय
त्रिशंकु

मई का मध्याकाश

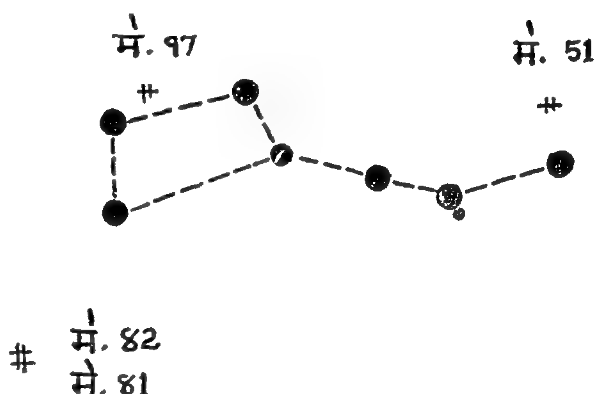
तारे हैं। एक तारा सूर्यसे १३०० गुना तेजस्वी है तो दूसरा २५०० गुना। ज्यादा आश्चर्यकी बात यह है कि हरेक साथी तारा खुद युग्म तारा है!

स्वस्तिकमंडलका सबसे ऊपरका तारा दूसरे वर्गका नारंगीके रंगका पीला युग्म तारा है। उसे त्रिशंकुके साथ जोड़नेवाली रेखा दक्षिण ध्रुवको ताकती है। स्वस्तिकके बगलवाले नराश्व मंडलके जय-विजयको जोड़नेवाली रेखाका लंबद्विभाजक भी दक्षिण ध्रुवको ताकता है। इन दोनों रेखाओंके संगम पर दक्षिण ध्रुव है।

स्वस्तिकमंडलका बायीं ओरका तारा विश्वामित्र है। उसका तेजांक १९०० है। कहनेका मतलब यह है कि वह सूर्यसे १९०० गुना तेजस्वी है। विश्वामित्र अत्यंत गरम नीला तारा है जो हमसे ३०० प्रकाशवर्ष दूर है। स्वस्तिककी खास विशेषता उसकी काजलथैली है। उसकी और विशेषता इस थैलीके किनारे अवस्थित 'रत्नपेटी' नामके तारा गुच्छकी है। यह गुच्छ विश्वामित्रके नजदीक है और उसका स्वरूप कृत्तिकासे होड़ लेता है।

रूपराशि स्वस्तिकको विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की है ऑस्ट्रेलियावालोंने। उन्होंने स्वस्तिक को अपने राष्ट्रीय झंडेका राष्ट्रप्रतीक बनाया है।

स्वस्तिकको छोड़ अब सप्तर्षिकी मुलाकात करें।



आँखोंके तेजकी परीक्षा करनेको अरब लोग जिस घोड़े और घुड़सवारको देखनेको कहते हैं वह वसिष्ठ और अरूंधतीके तारे युग्म नहीं बनाते हैं। छोटी दूरबीनसे देखने पर वसिष्ठ और अरूंधतीके बीचमे एक निस्तेज तारा दिखाई देता है: इतना ही नहीं वसिष्ठ खुद युग्म-तारा प्रतीत होता है। वसिष्ठ-युग्मका एक तारा हरा है और दूसरा सफेद।

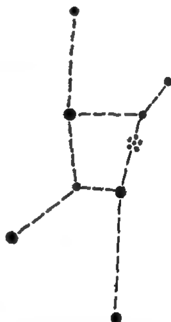
सप्तर्षिमंडलकी खास विशिष्टता उसके इर्द-गिर्द आये हुए ताराविश्व हैं। पुलह और क्रतुको जोड़नेवाली रेखाको बढ़ाने पर, इन दोनों सितारोंके अंतरकी दूरी पर मे ८१ और मे ८२ विश्वद्वय आये हैं। पुलहके करीब ही मे ९७ निहारिका है जबकि मरीचिसे उत्तरकी ओर मे ५१ नामका प्रख्यात भँवरविश्व है। मे ९७ ग्रहरूप निहारिका है और 'उल्लू निहारिका' के नामसे प्रसिद्ध है।

वसिष्ठसे ऊपरकी ओर एक चमकीला तारा दिखाई देगा। वह मृगयाशुनका योगतारा है। यह तारा युग्म तारा है जिसके दोनों साथी तारे पीले रंगके हैं। छोटी दूरबीनसे इनको आसानीसे

देखा जा सकता है। कोर कारोठी (मृग्याग्नुरा योगतारा) और स्वातिको जोड़नेवाली रेखा पर मे ३ नामका गोलाकार तारकगुच्छ है जिसमें हजार तारोंमेंसे डेढ सौके करीब रूपविकारी तारे हैं। यह तारागुच्छ हमसे ४०,००० प्रकाशवर्ष दूर है।

जूनका आकाश

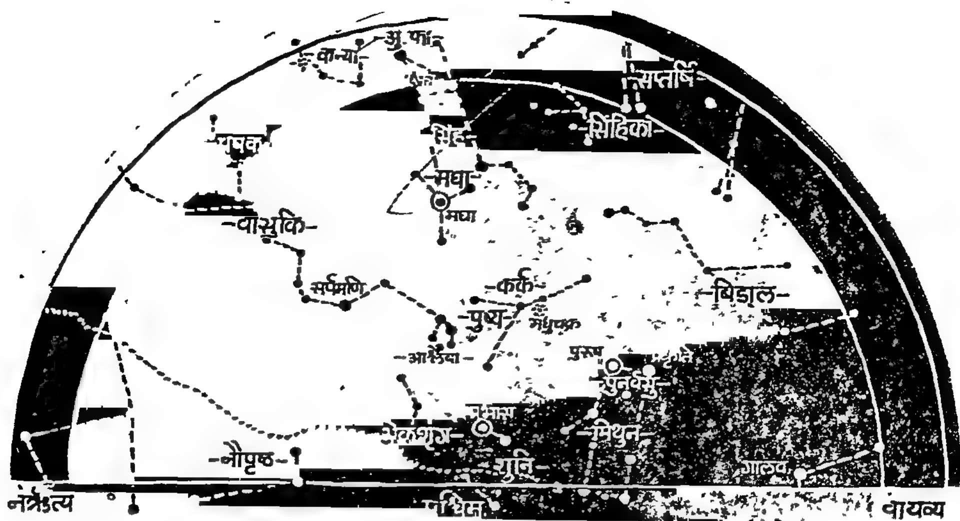
ईशानमें शुरू होकर पूर्वाकाशमें ऊँचे उठनेवाली आकाशगंगा अग्नि दिशामें तारापुल बनाती हुई दक्षिणमें गुजरती हुई ठेठ पश्चिम तक पहुँच गई है। उसके ईशानी छोर पर हंस मंडल है और पश्चिमी छोर पर एकशृंग। हंसके ऊपर वीणा मंडल है। इस छोटे लेकिन सुहावने तारा मंडलके मुख्य छ तारे हैं जिनमें अभिजित सबसे ज्यादा तेजस्वी है। हीरे जैसी नीलश्वेत चमकवाला अभिजित हमारे सूर्यसे ढाई गुने व्यासवाला ५० गुना तेजस्वी तारा है। १२,००० वर्षके बाद हमारा ध्रुवतारा बननेवाला २६.५ प्रकाशवर्षकी दूरी पर स्थित इस तारेको कई लोग २८ वाँ नक्षत्र करार देते हैं।


शौरि और मे १३

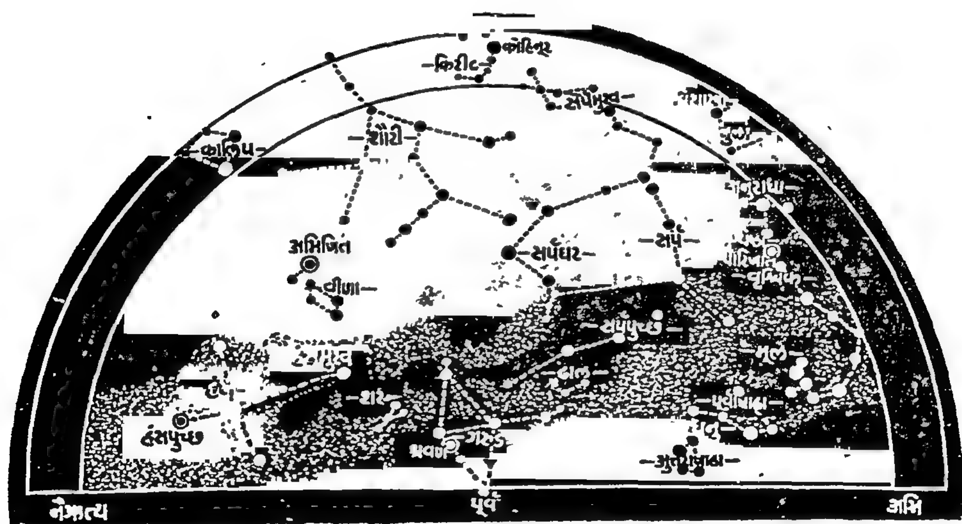
वीणामंडल दो आकृतियों—त्रिकोण और समान्तर भुज चतुष्कोण—से बना है। त्रिकोणका उत्तरी निस्तेज तारा एक चतुष्तारा है। उसके दो तारोंको नग्न आँखसे देखा जा सकता है मगर बाकीके दो तारोंको देखनेके लिये दूरबीनकी आवश्यकता रहती है। नग्न आँखसे दिखाई देनेवाली तारा जोड़ी ४५ वर्गके तारोंकी है। वीणा चतुष्कोणके दो तारे चमकते और दो कम तेजस्वी हैं। तेजस्वी तारोंमें से ऊपरवाला तारा एक रूपविकारी बहुल तारा है जिसका रूपविकार नग्न आँखसे भी मालूम हो सकता है। ३४ से ४५ वर्गके उसके रूपविकारकी समयमर्यादा १२.९ दिवसकी है। रूपविकारीका नीचेका तारा वर्णपटीय युग्म तारा है। चतुष्कोणके बाकी दो तारे भी युग्म तारे हैं जिनमें द्विरवको वायनोक्युलरसे भी देखा जा सकता है।

वीणा मंडलकी खास विशेषतायें दो हैं। मे ५७ वलय-निहारिका और उल्का-उद्गम स्थान। वलय निहारिकाका स्थान हंसकी ओरके वीणाके चमकीले तारेके पास है जबकि उल्का उद्गम-स्थान अभिजितसे कुछ दूर, वीणाके दूसरे चमकीले तारोंको जोड़नेवाली रेखा पर है। यहाँ से ता. २१ अप्रैलके अरसेमें उल्कायें झड़ती दिखाई देती हैं।

वीणाके ऊपर शौरिमंडल है। उसका योगतारा (सर्पधरके निकटका) लाल रंगका रूप-विकारी युग्म तारा है। यह तारा परम विराट तारा है।



जूनका पश्चिमाकाश



जूनका पूर्वाकाश

शौरिमंडलकी विशेषता मे १३ तारागुच्छकी है। शौरिकी बीचवाली ताराचौकड़ीकी एक धार पर आया हुआ यह तारागुच्छ छठवें वर्गके तारा जैसा दीखता है। उसे ठीक तरहसे देखनेको बायनोक्युलर या दूरबीनका उपयोग करना चाहिये।

मे १३ गोलाकार तारागुच्छ है। हमसे ३६,००० प्रकाशवर्ष दूर आये हुए इस तारा-गुच्छमें करीब एक लाख तारे हैं और उनमेंसे आधे हमारे सूर्यसे भी ज्यादा तेजस्वी हैं। १०० प्रकाशवर्ष व्यासवाले इस गुच्छके तेजस्वी तारे सामान्यतया विराट तारे हैं।



किरीटमंडल स्फोटक





किरीटकी दो अवस्थायें

शौरि कृष्णका अन्य नाम है। पश्चिमके लोग शौरिको औजारोंकी धार तेज करनेवाला सान कहते हैं। रुचिभिन्नता इसे कहते हैं।

शौरिसे कुछ ऊपर आया हुआ घोड़ेके खुरके आकारका किरीट मंडल कोहिनूर तारेसे बहुत सोहता है। कोहिनूर सूर्य-प्रकारका तारा है और वह व्याध, सप्तर्षिके बीचवाले पांच तारों वगैरहके साथका तारा संघ रचता है। कोहिनूरको और किरीटके अन्य तारोंको एकदूसरे के साथ निस्बत न हो ऐसा उनका वर्ताव है। वे सभी अलग दिशाओंमें गति कर रहे हैं। पचास हजार वर्षके बाद किरीटका आजका खुबसूरत आकार रॉकेटरूपका हो जायगा।

सन् १८६६ में एक स्फोटक तारा किरीट मंडलमें दिखाई दिया था जो बहुत भारी तेज-चमक दिखाकर अति अल्प समयमें मूलरूपका तारा बन गया था।

जुलाईका आकाश

दक्षिण-आकाशमें क्षितिजसे थोड़े ऊँचे मराग्व मटग्के जय और विजय चमक रहे हैं। जय हमसे नजदीकका तारा है लेकिन विजय दूरका। जय सूर्य जैसा तारा है और हमसे ४३ प्रकाशवर्ष दूर है। विजयकी बात अलग है। ४९० प्रकाशवर्षकी दूरीवाला यह तारा सूर्यसे ८००० गुना तेजस्वी है।

जय-विजयकी जोड़ी प्रकृति-पुरुषकी जोड़ी जैसी है। फर्क इतना ही है कि जय तारा प्रकृतिकी तरह छ तारोंसे नहीं लेकिन तीन तारोंसे बना हुआ बहुल तारा है। उसका एक साथी तारा सूर्यके हिसाबसे एक तिहाई तेजवाला है। यह तारा प्रमुख तारेसे २३ आकाशीय एकक दूर है। तीसरा तारा ११ वें वर्गका है। सूर्यकी तुलनामें उसका तेज २०,००० वें भागका है। यह तारा हमारे सबसे नजदीकका तारा है। उसे समीप तारा कहते हैं। कई बार अपना तेज बढ़ाकर वह थोड़े समयके लिये भभकता है इस कारण उसे भभूका तारा भी कहते हैं।

जय-विजयको जोड़नेवाली रेखा स्वस्तिकशीर्षको ताकती है।

जुलाईका मध्याकाश

नराश्वमंडलकी निजी विशिष्टता व गोलाकार तारकगुच्छकी है। नग्न आँखसे चौथे वर्गके तारे जैसा दिखाई पड़नेवाला यह गुच्छ हमसे २०,००० प्रकाशवर्ष दूर है और करीब एक लाखकी तारा-समृद्धिवाला है।

स्वाति मध्याकाशमें है और चित्रा उससे कुछ दक्षिणकी ओर है। स्वाति विराट तारा है। सूर्यसे १०० गुना तेजस्वी यह तारा हमसे ३६ प्रकाशवर्ष दूर है। चमकके हिसाबसे यह आकाशका चौथा चमकीला तारा है। जिन थोड़े तारोंके व्यास इन्टरफ़ेरोमीटरसे नापा गया है उनमेंसे यह एक है। भूतेशमंडलके अनवन होने पर भी वह उस मंडलका सदस्य नहीं है। स्वाति अति वेगसे गति करनेवाला तारा है। उसका अंतरिक्षीय वेग प्रति सेकंड १२० किलोमीटर का है। इस दरमियान वह २५ आकाशीय एकक अंतर तय करता है। कहनेका मतलब यह है कि यह १६०० वर्षमें एक अंशका अंतर काटता है। स्वाति-गमन चित्राकी ओरका है। स्वातिसे चित्रा ३१ अंशके फासले पर है। चित्राका अंतरिक्षीय वेग बहुत ही अल्प है। इस कारण करीब आधे लाख वर्षोंके बाद स्वाति और चित्रा एकदूसरेके नजदीकके हो जायेंगे।

भूतेशशीर्ष (या गदाका सिरा) तीसरे वर्गका तारा है और ऋक्षपाल नामसे पहचाना जाता है। सप्त ऋषि (ऋक्ष) इस बातके प्रमाण हैं।

चित्रा कन्याराशिका योगतारा है। यह वर्णपटीय युग्म तारा है जिसके दोनों साथी एक-दूसरेके इर्दगिर्द ४ दिवसका चक्कर काटते हैं। चित्राका अपने अक्ष पर घूमनेका समय सिर्फ १७ दिवसका है। चित्रा हमसे २२० प्रकाशवर्ष दूर है और सूर्यसे वह १४०० गुना तेजस्वी है।

चित्रावाली कन्याकी ताराहारका, चित्राके बादका, तारा युग्म तारा है। इसी हारके चौथे तारेके समीप ही शारदसपात होता है।

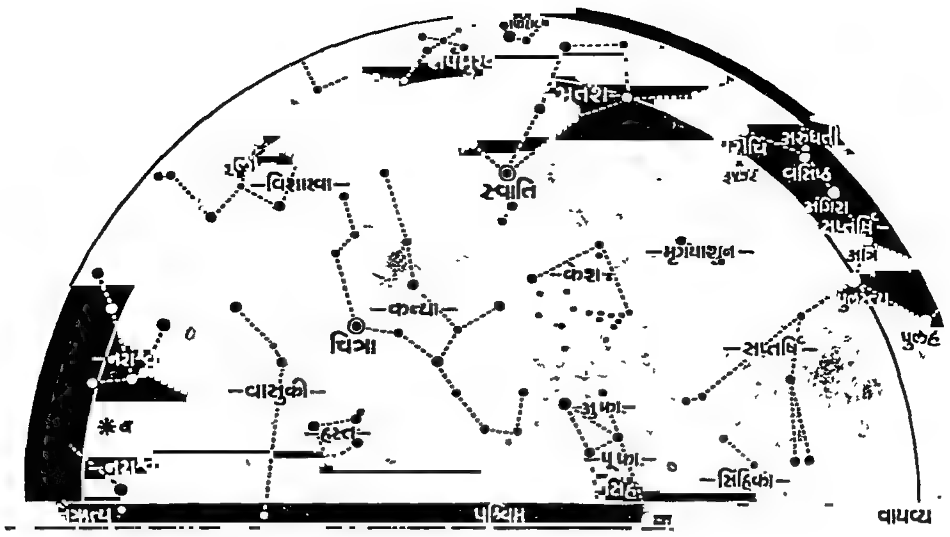
उत्तरमें कालिय ध्रुवमत्स्यके ऊपर लटक रहा है। उसका *क* तारा ई पू ३५०० में हमारा ध्रुवतारा था। आज वह चौथे वर्गका तारा है मगर पुराने जमानेमें वह दूसरे वर्गका तारा था। उसके तेजमें कमी आ गयी है।

कालियके फन पर ग्रीक मंडल मंडा है। फनका चमकीला तारा कालियकी आँख है। यह तारा प्रकाश-अपेरणके आविष्कारका गवाह है। कालियकी खास विशेषता उसकी गरदनके मोड़में अवस्थित कदंब (रविमार्गका ध्रुव) की है। कदंबको केन्द्र समझकर कदंब-ध्रुवतारा अंतरकी त्रिज्यासे खींचे हुए वृत्त पर आये हुए तारे क्रमश हमारे ध्रुवतारे बनते रहते हैं। विषुवायन गतिके कारण हमारी पृथ्वी २६,००० वर्षोंमें एक ध्रुवचक्र पूरा करती है।

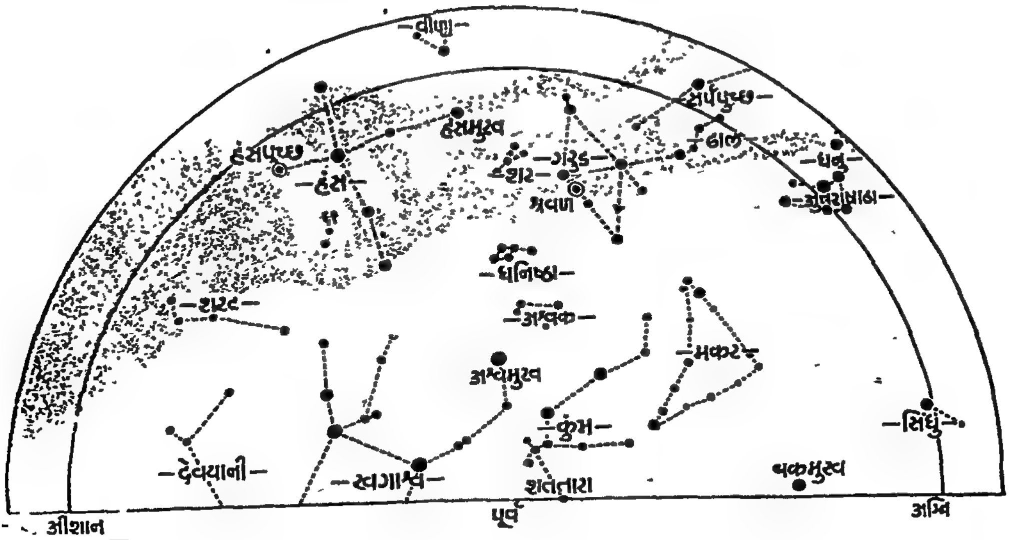
कालियमें एकसे अधिक स्थानोंमें उल्का वर्षा होती है मगर उन सभीमें जून २८ के दिन होनेवाली उल्कावर्षा विशेष महत्त्व रखती है।

अगस्तका आकाश

पश्चिमाकाशमें वासुकि और सिंहने अपनी पूछोंको क्षितिजके बाहर रखकर अस्ताचलमें डुबकी लगाई है। वासुकिका साथ करनेवाला हस्त भी बहुत जल्द अस्त हो जायगा। पश्चिमके



अगस्तका पश्चिमाकाश



अगस्तका पूर्वाकाश

लोग इसको कौआ कहते हैं। और हम भी कुछ गये-बीते नहीं हैं। भादोंमें मेघ गरजता है तब 'गगन गाजे हाथियो'—(गगनमें हाथी गरजता है)—कह इसको हस्ती बना दिया है।

ठीक पश्चिमकी ओर ऊँचे स्वाति दिखाई देता है। उसके और सिंहके बीचमें आया हुआ केश मंडल पाँचवें या छठे वर्गके निस्तेज तारोंका अनिरीक्षीय तारकगुच्छ है। वह हमसे २७० प्रकाशवर्ष दूर है। वायनोक्युलरसे देखने पर उसमें २० से ३० तारे दिखाई पड़ते हैं। केशकी खास समृद्धि है उसके ताराविश्वोंकी। केशसमूहके ताराविश्वोंको बड़ी दूरबीनोंसे ही देख पाना संभव है।

अब पूर्वदिशाकी मुलाकात करें।

आकाशगंगाके पाटमें एक-दूसरेके विफल उड्डयनके मूक साथी हंस और गरुड़के दर्शन होंगे। उनके पास आकाशगंगा दो धाराओंमें बहती है। हंसपुच्छ या गाथी तारा एक काजलथैलीके किनारे पर अवस्थित है। इस श्याम निहारिकामें ६१ हंस नामका एक तारा है जिसकी हमसे दूरी सबसे पहले मालूम की गयी थी। ११.२ प्रकाशवर्षके दूरत्ववाला यह तारा छठवें वर्गके दो तारोंसे बना एक युग्म तारा है। हंसपुच्छ या गाथी तारा महाप्रतापी तारा है। हमसे १६०० प्रकाशवर्ष दूरके इस तारेका तेजांक ५०,००० है। वैज्ञानिकोंका ख्याल है कि इस तारेका वातावरण स्पंदित होता रहता है।

हंस मंडलका दूसरा तेजस्वी तारा हंसमुख है। इसके आसपास श्याम निहारिकायें बिखरी पड़ी हैं। तीसरे और पाँचवें वर्गके सुनहरी और नीले तारोंसे बना यह युग्मतारा आसमानके सारे युग्मताराका सिरमौर है। हंसमुखका द्वैत शक्तिशाली वायनोक्युलरसे ही देखा जा सकता है। समूचा हंसमंडल श्वेत और श्याम निहारिकाओंके अलावा अनेक स्फोटक तारोंकी भी लीलाभूमि है।

हंसकी छाती या हंसवक्ष तीसरे वर्गका तारा है। वह हर सेकंड ६ किलोमीटरके वेगसे हमारी ओर बढ़ रहा है। दोनों ओरकी काजल थैलियोंके संगम पर वह बहुत फबता है।

गरुड़ भी कोई कम मंडल नहीं है। उसकी शोभाको बढ़ाती है उसकी तीखी चमकीली आंख—श्रवण। श्रवणका अंग्रेजी नाम है अल टेरा या उड़ता गरुड़। हमसे १६.५ प्रकाशवर्ष दूरका यह तारा उसके अगल-बगलके दो तारोंके साथ श्रवण नक्षत्र या कांवर (बहँगी) बनाता है। ये दो तारे श्रवणके सौआप हैं। इनके बीचका अंतर ५ अंशका है इस कारण वह मापका काम देता है।

श्रवणका व्यास सूर्यव्याससे डेढ़ गुना है। श्रवणकी सतहका उष्णतामान ८०००° सें है इस कारण वह सूर्यसे १० गुना तेजस्वी मालूम होता है। मजेदार बात यह है कि श्रवण अपने अक्ष पर बहुत तेजीसे घूमता है। साढ़े सात घंटेकी अवधिमें एक चक्कर पूरा करनेके कारण श्रवणकी दशा बीचमें उभरी हुई नासपाति जैसी हो गई है। इसका विषुववृत्तीय व्यास ध्रुवीय व्याससे डेढ़ गुना है!! मतलब श्रवण और तेजीसे घूमनेका उपक्रम करे तो वह

टूटकर युग्म तारा बन जानेकी पूरी संभावना है। दर असल श्रवणके १० वें वर्गका एक साथीतारा है ही, घुमावके फलस्वरूप वह त्रिकतारा हो जायगा।

गुरुड़ मंडलकी पूँछके करीव ही ढाल मंडल है। गरुड़की ओरके उसके तारेकी वगलमे ही मे ११ नामका ९ से ११ वे वर्गके निस्तेज तारोंसे वना एक सुन्दर तारक गुच्छ है।

अव धनिष्ठाकी चर्चा करेंगे।

अरववाले उसे सवारीका ऊँट कहते हैं और चीनवाले तुमड़ी। हम उसे झंडा समझते हैं। इस झंडेके उत्तरकी ओरके दोनों तारे युग्म तारे हैं मगर उनके साथी तारे वहुत ही धुंधले हैं। नग्न आँखोंसे जिन्हें देखा न जाय उनकी किसी भी प्रकारकी प्रशस्ति करना वेकार है।

प्राचीन खगोलके हिसाबसे धनिष्ठाका नाम श्रविष्ठा है।

सितम्बरका आकाश

ईशानसे नैर्ऋत्य तक पहुँचती आकाशगंगा वृश्चिक विस्तारमे वहुत फैली पड़ी है। आकाश-गंगाका सवसे ज्यादा चमकीला भाग धनुराशिमे है। यह विभाग मंदाकिनी विश्वका केन्द्रभाग है। हमारा विश्वकेन्द्र तारावादलों और तारक गुच्छोंसे वहुत समृद्ध वना हुआ है। आकाशगंगाका उज्ज्वल पाट धनु और वृश्चिकके आगे दो धाराओंमे विभक्त होकर वहता है। आकाशगंगामे इन सव जगह श्वेत और श्याम निहारिकाये हैं। धनु विभागकी त्रिदेही निहारिका वहुत प्रसिद्ध है।

धनुराशि विलकुल दक्षिणकी राशि है। इस राशिमे सूर्यप्रवेश १४ दिसम्वरके रोज होता है। २२ दिसम्वरको सूर्य ज्यादासे ज्यादा दक्षिणका होकर उत्तरकी ओर मुड़ता है। यह दिवस उत्तरायणके पर्वका है।

धनुमे दो तारा-चतुष्टय हैं। उनमेंसे वृश्चिककी ओरका धनुष्य और वाण दर्शाता है जवकि गरुड़की ओरका धनुर्धारीको। धनुष्यका मध्यतारा और तीरकी नोकको जोड़नेवाली रेखा ज्येष्ठाको ताकती है। वदलेमे वृश्चिकके डंककी धाक धनुष्यके छोरवाले तारेको प्राप्त होती है।

वायनोक्युलर या छोटी-सी दूरवीनसे देखने पर सारा धनुप्रदेश अत्यंत आकर्षक मालूम होता है।

लेकिन वृश्चिक क्यों चुप है?

वृश्चिकके प्रभावोत्पादक दर्शनकी तरह उसकी तारासंपत्ति भी उत्तम प्रकारकी है। वृश्चिकका योगतारा पारिजात है। उसका लाल रंग चित्ताकर्षक है। मंगलके लाल रंगकी होड़ करनेके कारण पारिजातका एक नाम मंगलारि है। वास्तवमे आर्द्राकी तरह वह एक अति विराट-तारा है। हमसे ५२० प्रकाशवर्ष दूर उस तारेका तेजांक '५००० है। यों वह एक महाप्रतापी तारा है: फिर भी उसका घनत्व वहुत ही कम है: वह पृथ्वीकी प्रयोगशालामें उत्पन्न किये जानेवाले शून्यावकाशके घनत्वके वरावर है।

शततारा
मकर
सिंधु
मयूर
धनु
वेदी
त्रिकोण
वृश्चिक
वृक
अनुराधा
ज्येष्ठा
सर्पधर
सर्पपुच्छ
श्रवण

सितम्बर का मध्याकाश

पारिजात युग्म तारा है। उसका साथी ५ वें वर्गका हरे रंगका तारा है। वातावरण स्थिर और स्वच्छ हो तो १० से १२ से. मि. वाली दूरवीनसे उसे देखा जा सकता है। विशेष करके पारिजातके पिवानके समय उसे देखनेमे मजा आता है। चंद्र द्वारा ढक जानेके वाद जव पारिजात प्रकट होता है तव यह साथी तारा पारिजातसे ४ सेकंड पहले नजर आता है। इस वातके साथ एक दूसरी वातका भी पता चला है। पारिजात चंद्रबिंवकी धार पर एकदम स्पष्ट दिखाई नहीं देता है। वह अतिविराट तारा है इस कारण चंद्रकी धारसे अलग होकर पूर्ण तेजस्वी वन पानेमें उसे $\frac{1}{10}$ सेकंडका समय लगता है। देखनेमे यह वात छोटीसी मालूम होगी मगर उसके कारण पारिजातका व्यास मालूम हो सका है।

खगोलशास्त्री पारिजातको श्याम निहारिकामे जड़ा हुआ अंतरिक्षीय पुष्प मानते हैं।

वृश्चिकमें तारागुच्छ और वायुवादल वहुतसे हैं। मगर इन सवको छोड़कर उसके डंककी वात करना ठीक होगा। डंकका योगतारा हमसे २१० प्रकाशवर्ष दूर वैठा है। वह एक वहुत ही गरम तारा है। उसकी सतहका तापमान तीस हजार अंश से. कूता गया है। इस गरम तारेका 'शाआला' (अर्थ डंक) नाम इस प्रकार चरितार्थ मालूम होता है।

थोड़ी मकरसे भी मुलाकात करे।

मसखरेकी औंधी टोपीके त्रिकोण आकारको चतुष्कोणमे पलटनेवाला मकर विना आकारकी पानीकी नाव जैसा है। उसके दाहिने सिरे पर तीसरे वर्गके दो चमकीले युग्मतारे हैं। उनमेसे ऊपरवाला तारा नग्न आँखसे भी द्वि-तारा मालूम होता है। आश्चर्यकी वात यह है कि ये दोनों तारे भी युग्म तारे हैं।

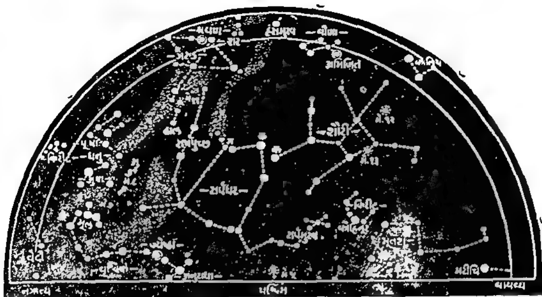
मकरकी वायीं ओरके सिरेका तारा भी तीसरे वर्गका तारा है। इस तारेके नजदीकके अवकाशमे ही नेपच्युन ग्रहका पता चला था।

अक्टूवरका आकाश

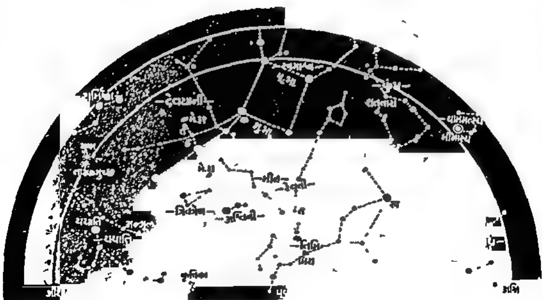
वृश्चिक इस वक्त पश्चिम आकाशमें क्षितिजके समांतर हो गया है। वगलमे ही ऊँची उठी हुई आकाशगंगा है। सारा दृश्य वाणशय्या पर सोये हुए भीष्म पितामहकी याद दिलाता है।

सर्पधर और सर्प क्षितिजकी ओर सरक रहे हैं। किरीटके नजदीक सर्पमुख कैसा फवता है? उसकी गरदनका तारा युग्म तारा है जिसके दोनों साथी सफेद रंगके हैं। सर्पमुखकी ग्रीवाके नजदीकका तारा भी युग्म तारा है। इस तारेका साथी ९ वे वर्गका निस्तेज तारा है।

सर्पधरशीर्ष दूसरे वर्गका तारा है जवकि सर्पधरके कंधे तीसरे वर्गके तारे हैं। सर्पधर-शीर्षके करीव ही शौरिशीर्ष है। क शौरि सूर्यसे ५१ करोड़ गुना परमविराट तारा है। सर्पधरके वायीं ओरके कंधेके नजदीक चार तारे हैं। इन तारोंसे उत्तरकी ओर वर्नार्डका भगोड़ा तारा ढूंढा गया था। यह भगोड़ा तारा म वर्गका वामन तारा है जो हमारी ओर हर सेकंड १२० किलोमीटरके वेगसे आ रहा है।



अक्टूबरका मध्याकाश



अक्टूबरका पूर्वाकाश

सर्पवरके अंतरालमे और नीचेके हिस्सेमें वहुत-से तारक गुच्छ हैं। सर्पधरकी श्याम निहारिका भी अति प्रसिद्ध है।

पूर्वाकाशमें मीन ऊँचा उठ रहा है। उसके ऊपर ही खगाश्व है। पूर्वा भाद्रपदाके दो तारोंमे से उत्तरकी ओरका गहरे पीले रंगका रूपविकारी तारा है और हमसे दूर अंतरिक्षमें गति कर रहा है। पूर्वा-भाद्रपदाका दाहिनी ओरका तारा रथ या वाहन या जीन नामसे प्रसिद्ध श्वेत रंगका तारा है। उत्तरा-भाद्रपदाका दायीं ओरका तारा भी सफेद रंगका है। यह तारा उड़न-घोड़ेके पंख जैसा है। वायीं ओरका तारा देवयानी मडलका योगतारा है। पश्चिमके लोगोंके कयनानुसार जंजीर-कैदी राजकुमारी एन्ड्रोमिडाका वह सिर है। यह तारा भी युग्म तारा है मगर उसका साथी तारक तेजस्वी तारा नहीं है।

ग देवयानी पीला या नारंगी रंगका तारा है। हरे-नीले रंगके साथी तारेके साथ वह वहुत फवता है।

देवयानी-विस्तारकी विशिष्टतायें **मे ३१** और **मे ३३** ताराविश्वोंकी है। ये दोनों विश्व ख देवयानी के आमने-सामने हैं। **मे ३१** देवयानी ताराविश्व है और **मे ३३** त्रिकोण ताराविश्व है। **मे ३३** को दूरवीनसे ही देखा जा सकता है। **मे ३१** कोरी आँखसे सुखाई हुई खिरनीके आकारका दिखाई देता है। **मे ३१** और **मे ३३** हमसे २२ लाख प्रकाशवर्ष दूर हैं।

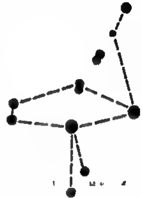
भाद्रपदाका चतुष्कोण विभाग नग्न आँखसे खाली दिखाई देता है मगर छोटी दूरवीनसे उसे देखने पर उसकी समृद्धि प्रत्यक्ष दिखाई देती है। तेज नजरवाले भी, प्रयत्न करके, भाद्र-पदाके चतुष्कोणमें ३० के करीव तारे देख सकते हैं।

मीन मंडलमें दो तारक धारा हैं। इन दोनोंके संगम पर मीन मंडलका योगतारा है। यह तारा युग्म तारा है और उसके साथी तारेको देखनेके लिये १० से. मी. वाली दूरवीनकी जरूरत रहती है। लंवी मछलीवाला मीनका सिरा गोलाई पर है। उसमें सात तारे हैं जिनमेंसे तीन चौथे वर्गके और चार पाँचवें वर्गके तारे हैं। मीन मंडलमें तीसरे वर्गका कोई तारा नही है। आज-कल वसंतसंपात मीन राशिमे होता है।

मीनके नजदीक छोटा लेकिन सुहावना अश्विनी मंडल है। उसका योगतारा हामल या च्यवन है। हमसे ७२ प्रकाशवर्ष दूर वैंठा यह लाल तारा चंद्रके रास्तेमें ही पड़ता है। अश्विनीका दूसरा तेजस्वी तारा मंडलके वीचका तारा है। यह और अश्विनीका तीसरा तारा मिलकर अश्विनीकुमार वनते हैं।

अश्विनी भारतीय नक्षत्रगणनाका प्रथम नक्षत्र है। साथमे राशिचक्रका भी वह प्रथम नक्षत्र है। भारतीय खगोलके अनुसार भ चक्रका आरंभस्थान किस जगह है उस वारेमें विद्वान लोग एक मत नही हैं। आरंभस्थान दिखानेवाला वसंतसंपात आजकल उत्तरा भाद्रपदामें होता है। वर्षोंके वाद वह पूर्वा-भाद्रपदामें सरक जायगा।

दक्षिण दिशामें चमकीले तारोंकी मजलिस जमी है। बक मंडलके दो, मयूर और गृध्रका एक एक, नदीमुख और मीनास्यके कारण दक्षिणाकाश दमक रहा है। बकका स्वरूप बगलमें दी गई आकृतिका समझें तो बकको भारतीय घोराड (Bustard) कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है। कई लोग बककी अपेक्षा इसका सारस नाम पसंद करते हैं।



बकमे ऊपरकी ओर याममत्स्य है। उसका योगतारा मीनास्य एक युग्म तारा है। विद्वानों का कहना है कि आजसे पाँच हजार वर्ष पहले मीनास्यसे कुछ उत्तरकी ओर उत्तरायण होता था। आज वह वहांसे हटकर धनु तक चला गया है।

कुंभराशिके कुंभके ऊपरवाले चार तारोंमेंसे बीचका तारा युग्म तारा है। उसके दोनों तारोंका एकदूसरेके आसपास घूमनेका समय ७५० वर्षका है। कुंभकी ऊपरवाली तारालडीमें दो चमकीले तारे हैं। इन तारोंसे थोड़ी दूरी पर गोलाकार तारक गुच्छ मे २ है। ८ से मी की दूरबीनसे देखने पर वह रेतके ढेर जैसा मालूम होता है। उसका सौन्दर्य इस ढेरमें स्पर्श करनेवाली तारालडियोंका है।

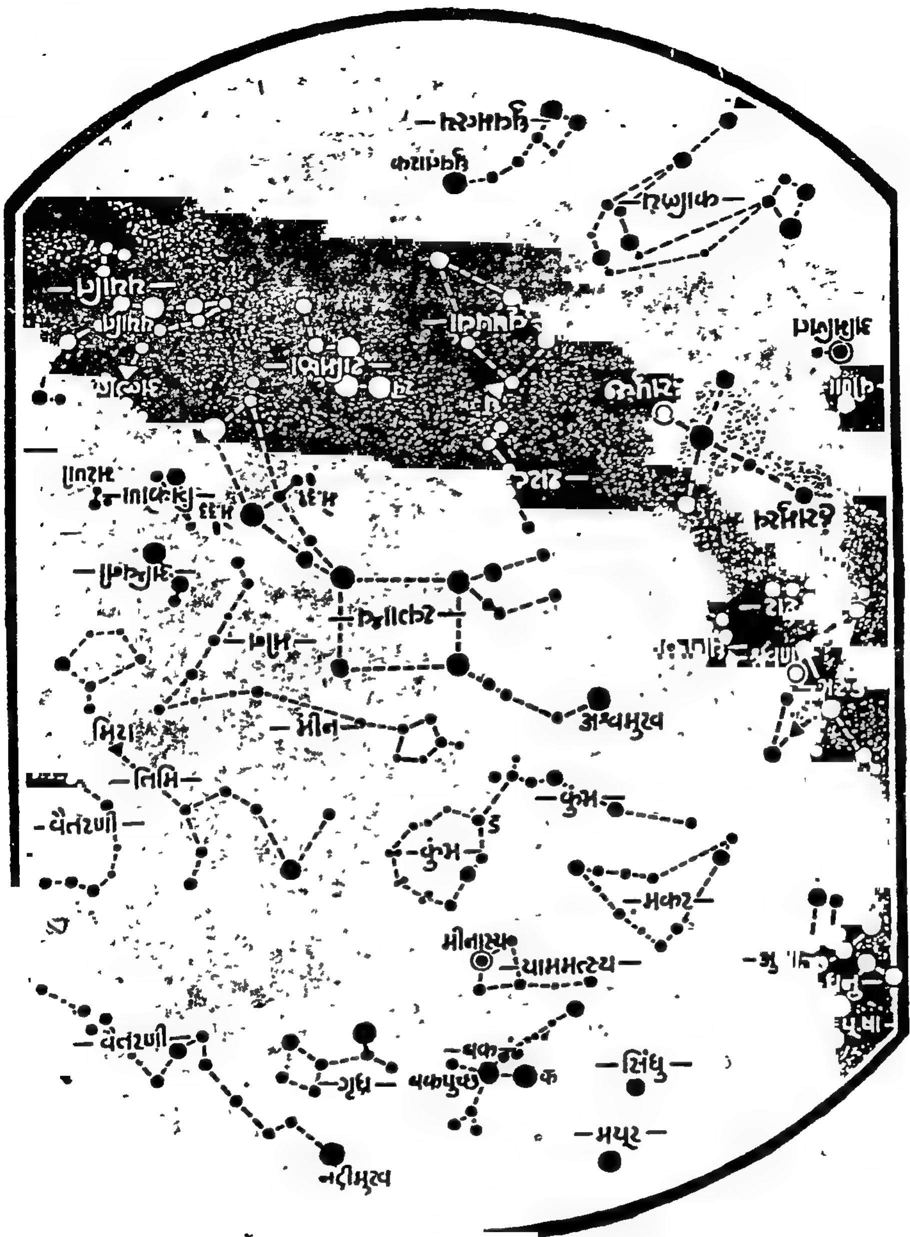
उत्तरकी ओर, अपना एक पैर आकाशगंगामें रखकर वृषपर्वा औंधे सर लटक रहा है। उसका घ तारा अति प्रसिद्ध रूपविकारी तारा है। उसीके प्रकारके सारे रूपविकारी तारे वृषपर्वा रूपविकारी कहलाते हैं। ये तारे अंतरिक्षीय अंतर नापनेके काम आते हैं। घ वृषपर्वाके नजदीक ही एक श्याम निहारिका है। सबसे पहला स्फोटक तारा भी इसी विस्तारमें देखा गया था।

वृषपर्वा चतुष्कोणमें घ वृषपर्वाके सामनेका तारा—ख वृषपर्वा—युग्मतारा है जिसके साथीदारोंका परिक्रमा-चक्र सिर्फ पांच घंटोंका है।

वृषपर्वाके निकट ही शर्मिष्ठा है। उसका वृषपर्वाकी ओरका चमकीला तारा—क शर्मिष्ठा या काफ ऊँटकी कूबडके नामसे प्रसिद्ध है। उसे ध्रुवतारेके साथ जोडनेवाली रेखा घडीकी सूईका काम करती है। यह तारा ० या २४ घंटेवाली सापातिक कालरेखा पर है। इस रेखाको बढाने पर वह वसंतसंपातमें होकर गुजरती है। ध्रुव और संपातको जोडनेवाली यह *रेखा ध्रुवसापातिक कहलाती है। तारासंपात ज्ञात करनेके लिये उसका उपयोग किया जाता है।*

शर्मिष्ठाका बायीं ओरसे दूसरा तारा उसका योगतारा है। उसके नजदीकका चमकीला तारा शर्मिष्ठाका तीसरा तेजस्वी तारा है। इन दो तारोंके बीचमें जो निस्तेज तारा दीखता है वह युग्म तारा है। क शर्मिष्ठा खुद युग्म तारा है जिसका साथी तारा नौवें वर्गका धुंधला तारा है।

सन् १७५२ में शर्मिष्ठा मंडलमें एक स्फोटक तारा दिखाई दिया था। शर्मिष्ठाके तीनों चमकीले तारोंसे एक चतुष्कोण रचा जाय तो इसके चौथे कोण पर इस स्फोटकका स्थान है।


मिरा
मीन
अश्वमुख
तिमि
वैतरणी
कुंभ
मकर
मीनास्य
याममत्स्य
वैतरणी
गृध्र
बकपुच्छ
सिंधु
मयूर
नदीमुख

नवंबरका मध्याकाश

यह स्फोटक तारा टायको-तारा कहलाता है। टायको ब्राहे नामके खगोलशास्त्रीने उसे पहचाना था और उसका ब्योरेवार अभ्यास किया था।

शर्मिष्ठाके तीसरे और चौथे (दायी ओरसे) तारोंको जोड़नेवाली रेखा पर, ययातिकी ओर सुप्रसिद्ध तारकगुच्छद्वय है। दूरबीनसे देखने पर उसके इर्दगिर्दका अतरिक्षीय विस्तार बहुत रमणीय मालूम होता है। पंडितोंका कहना है कि इन गुच्छोंके दजनके करीब तारे अति-विराट तारे हैं।

दिसम्बरका आकाश

आकाशगंगाका पूर्वसे पश्चिमका उत्तरी पुल कमानके आकारमें कमनीय मालूम होता है। उसमें आधे डूबे ब्रह्म मडलकी खास विशेषता ब्रह्महृदय और उसके नजदीकके तारात्रिकोणकी है। ब्रह्महृदय पीला या सुनहरी रगका सूर्य-प्रकारका तारा है। सूर्यसे १३० गुना तेजस्वी यह तारा हमसे ४७ प्रकाशवर्षकी दूरी पर है और अपने इस दूरत्वमें वह हर सेकड २९ किलो-मीटरकी वृद्धि करता है।

ब्रह्महृदय वर्णपटीय युग्म तारा है। इसके दोनो साथी तारे एक-से द्रव्यमानवाले हैं। ये दोनों एकदूसरेके इतने समीप—सूर्य-पृथ्वी अतरसे भी कम अतर पर—हैं कि इनको दूरबीनसे अलग रूपमें देख पाना सभव नहीं है। सामान्य गुरुत्वकेन्द्रके आसपासका उनका भ्रमणचक्र १०४ दिवसका है।

ब्रह्महृदयको अग्रेजीमें केपेल्ला कहते हैं। इस नामका अर्थ है बकरी। ब्रह्महृदयके पास-वाले तारात्रिकोणके तीनों तारे इस बकरीके बच्चे हैं। ब्रह्महृदयको बकरी इसलिये कहा जाता है कि ओरिगा नामके राजाने रथका आविष्कार किया था और उस रथमें बकरे जोते जाते थे। *ओरिगाको आकाशीय स्थान मिलने पर उसका मडल रथी नामसे और ब्रह्महृदय बकरी नामसे पहचाने जाने लगे।*

बकरीके तीन बच्चोंमें से ऊपरकी ओरके दो तारे रूपविकारी हैं। इसके अलावा वे अति-विराट तारे भी हैं। इन दोनोमें से ब्रह्महृदयके पास जो तारा है वह है च रथी और दूसरा है छ रथी। छ रथी दो तारोंसे बना युग्म तारा है। आयतन, तेज, द्रव्य सचय वगैरह बातोंमें एकदूसरे-से बिल्कुल भिन्न ये तारे अपने गुरुत्वकेन्द्रके इर्दगिर्दका एक भ्रमण ९७२ दिवसमें पूरा करते हैं। इन दो साथी तारोंमें जो छोटा है वह नीले रगका गरम तारा है। उसका व्यास सूर्यव्याससे ३५ गुना और द्रव्यसपत्ति ९ गुनी है। छ रथीका बडा तारा सूर्यसे २०० गुना व्यासवाला अतिविराट तारा है।

च रथीकी बात अनोखी है। छ रथीकी तरह वह भी युग्म तारा है। च रथीका एक साथी छोटा है और दूसरा बडा। छोटा तारा सूर्यसे २०० गुना व्यासवाला अति विराट तारा है। उसका द्रव्यमान सूर्यके हिसाबसे ४० गुना है। यह तारा सूर्यसे ६०,००० गुना तेजस्वी है मतलब यह है कि तेजकी दृष्टिसे भी वह महाप्रतापी तारा है।

दिसम्बरका पश्चिमाकाश

दिसंबरका पूर्वाकाश

मगर यह हुई छोटे साथीकी बात। उसका बड़ा भाई इन्फ्रारेड तारा है। उसकी सतहका उष्मामान केवल १२०० अंश सेन्टिग्रेड है। यो वह एक ठंडा तारा है। च रथीके दोनो तारे एकदूसरेके इर्दगिर्द २७ वर्षमें एक चक्कर लगाते हैं। २७ वर्षकी इस अवधिमें २ वर्ष तक इन तारोंका ग्रहण चलता है।

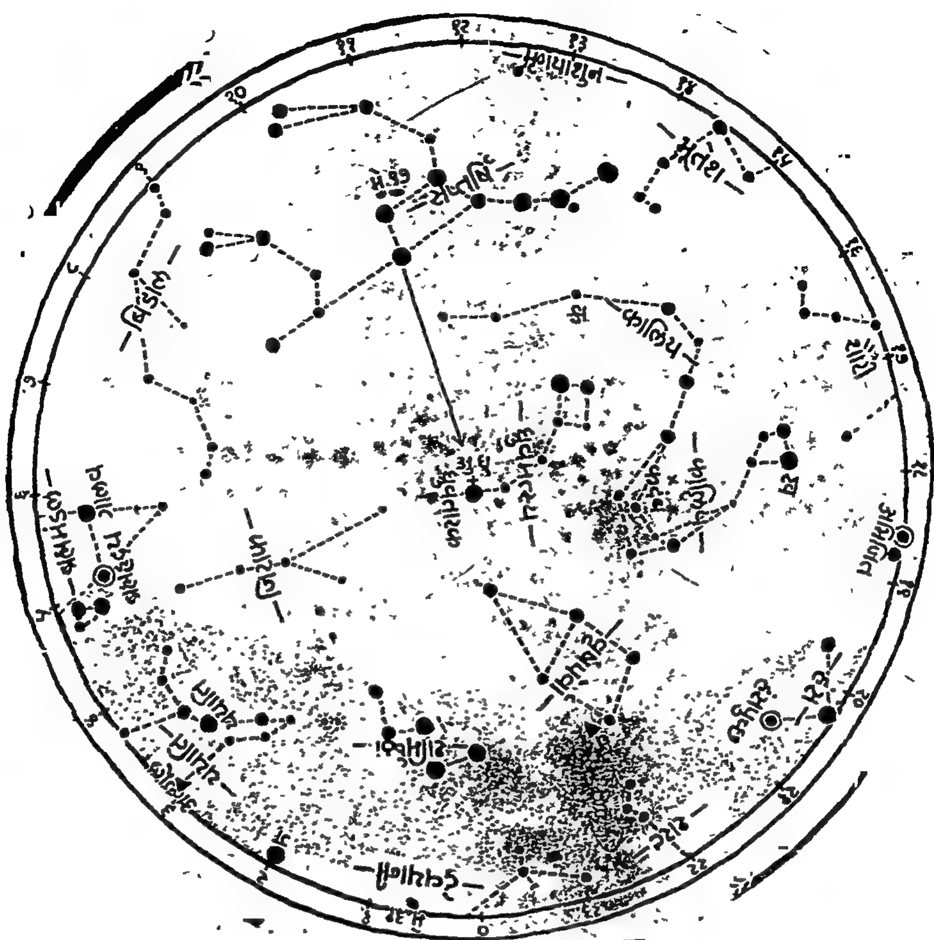
च रथीके बड़े तारेकी विशिष्टता उसका आयतन है। इस तारेका व्यास सूर्यव्याससे २००० गुना कूता गया है। इसका एक अर्थ यह है कि यह तारा हमारे सूर्यसे ८ अरब गुना बड़ा है!!

उपर्युक्त बातमें कुछ कमी होनेकी संभावना है। फिर भी इस तारेको विराटोंमें अतिविराट या परमविराट कहना होगा। इस तारेसे टक्कर लेनेवाला परमविराट तारा ह गौरि (गौरिशीर्ष) है।

ब्रह्ममंडलका सारा क्षेत्र वायनोक्युलरकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्ममंडलका दूसरा तेजस्वी तारा गाल्व है। यह तारा एकसरीखे दो तारासे बना युग्म तारा है और उसके साथी-तारे हरेक परिक्रमामें एक दूसरेका ग्रहण करते हैं।

आखिरमें वैतरणी और शशकको भी देख लें। शशक या योगतारा युग्म तारा है जिसका साथी तारा १२ वें वर्गका निस्तेज तारा है। वैतरणीका उद्‌भवस्थान बाणरजके नजदीक है। वैतरणी-मूल दूसरे वर्गका चमकीला तारा है। नदीमुख (वैतरणी योगतारा) ८०० तेजाकवाला हमसे ११८ प्रकाशवर्ष दूरका प्रतापी तारा है।

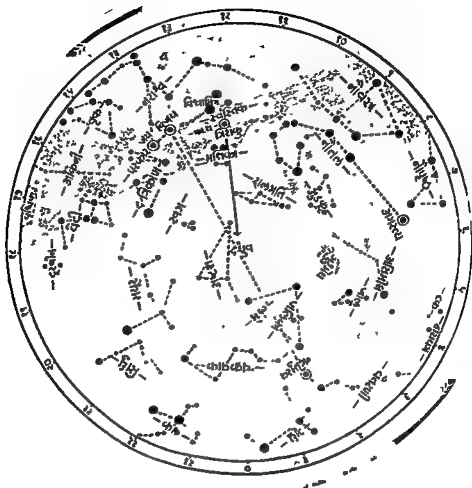
वैतरणीका किनारा नौ तारामंडलोंसे संबंधित है और इस प्रकार उसका वैतरणी नाम मिथ्या नहीं है इस बातकी गवाही आप देंगे न?।



उत्तरध्रुवके आसपासके तारे

महीनेकी निर्दिष्ट तारीखों पर रातके नौ बजे नाक्षत्र होरारेखा कब याम्योत्तर होगी

नाक्षत्र होरारेखा	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३
महीनेकी ता.-१		—	ज	—	फ	—	मा	—	अ	—	म	—	जू	—	जु	—	अ	—	सि	—	अ	—	
महीनेकी ता. १६	—	दि	—	ज	—	फ	—	मा	—	अ	—	म	—	जू	—	जु	—	अ	—	सि	—	अ	—



दक्षिणध्रुवके आसपासके तारे

प्लेट-१



मंदाकिनी विश्व

श्मिट दूरबीन

यर्कीज़ दूरबीन

२४. वेधशाला और यंत्र – १

ईसाकी वीसवीं शताव्दी तक खगोलशास्त्र अधिकांशत: आकाशीय पदार्थोंकी गतिविधि समझानेवाला अवलोकन-शास्त्र था। वेधशाला शब्द भी वेध या आकाशीय पदार्थकी गतिविधिको सूचित करता है। यह होते हुए भी आजका खगोलशास्त्र, शास्त्रीय गतिविज्ञानके द्वारा समझाये जानेवाला पुरातन खगोलशास्त्र नहीं रहा है। उसका भारी कायापलट हो रहा है। गाणितिक और नाविकीय खगोलशास्त्रके अलावा उसकी अनेक शाखायें विकसित हो रही हैं। इनमें भौतिक खगोलशास्त्र और रेडियो खगोलशास्त्र मुख्य हैं। आकाशमें घटनेवाली भौतिक घटनाओंका अभ्यास करनेके लिये निरीक्षण-साधनोंका और भौतिकशास्त्रके नियमोंका सहारा लिया जाता है। खगोलशास्त्री, आजकल, ब्रह्मांडके घटकोंके (तारा, ताराविश्व, निहारिकायें, वायुकण व. के) स्वरूपोंका अध्ययन करके उनकी उत्क्रान्तिकी थाह लेनेका प्रयत्न कर रहा है। साथ-साथ ब्रह्मांडके घटकोंके उपादानोंकी खोज और उत्क्रान्तिकी प्रक्रियाके बीचका सादृश्य स्थापित करना वह चाहता है। इस कारण वह ब्रह्मांड व्याप्त ऊर्जाके उद्‌गमोंकी खोज करता है और उनके विविध स्वरूपोंका अध्ययन करता है। ब्रह्मांड अनंत है कि सान्त उसका और उसके स्वरूपका सच्चा खयाल पानेका वह प्रयत्न कर रहा है। इस सिलसिलेमें गुरुत्वाकर्षण और उसकी क्षेत्रमर्यादाका अभ्यास भी आवश्यक हो गया है।

उपर्युक्त सारी बातोंके ब्योरेवार अध्ययनके लिये अनेक प्रकारकी जानकारियों की जरूरत पड़ती है। इनमें मुख्य आकाशीय ज्योतियोंके दूरत्व, द्रव्यमान, त्रिज्या, तापमान, तेजांक और विविध गतियाँ हैं। इन जानकारियोंको प्राप्त करनेके लिये अनेक प्रकारकी दूरवीनोंके अलावा दूसरे अनेक उपकरणोंकी सहायता ली जाती है। स्पेक्ट्रोग्राम, मेग्नेटोग्राम, ट्रान्झिट सर्कल, कोरोनोग्राफ, सिलोस्टेट, फोटोमीटर, फोटोइलेक्ट्रिक सेल, फोटोइलेक्ट्रिक मल्टिप्लायर, ब्लिन्क मायक्रोस्कोप, इन्टरफेरोमीटर, थर्मोकपल, राडार, कृत्रिम चंद्र, रोकेट आदि बहुत ही महत्त्वके साधन हैं।

ऊपरकी बातोंसे मालूम होगा कि आधुनिक खगोलशास्त्र केवल आकाशीय वेधों तक अब मर्यादित नहीं रहा है। और इस कारण दिल्ली, जयपुर, वगैरह स्थलोंमें आयी हुई हमारी पुरातन वेधशालाओंको सही अर्थमें वेधशालाये करार देनेको अनेक ढंगसे उनको व्यवस्थित करनेकी आवश्यकता है। यहाँ एक और स्पष्टता कर लें। हवामान के अध्ययनके लिये जो वेधशालायें काम करती हैं वे खगोलीय वेधशालाये नही हैं। इस कारण यहाँ, वेधशाला शब्दसे केवल खगोलीय वेधशाला अभिप्रेत है ऐसा समझना होगा।

आधुनिक वेधशालाका प्रमुख साधन दूरबीन है। दूरबीनसे आकाशका प्रत्यक्ष और फोटोग्राफिक निरीक्षण किया जाता है। दूरबीनका खास कार्य ज्यादा प्रकाश प्राप्त करना और यों नग्न आँखोंसे न दिखाई देनेवाले पदार्थको हमारी दृष्टिके समक्ष लाना है। एक और काम भी—दिखाई देनेवाले प्रतिबिंबोंको बड़े करके दिखानेका—उससे लिया जाता है। इसके अलावा दिशायें निश्चित करनेका एक और बड़े महत्त्वका काम भी दूरबीन करती है। किसी एक आकाशीय ज्योतिकी अमुक समयकी आकाशीय अवस्थिति क्या होगी यह जाननेमें दूरबीन बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है।

दूरबीनसे हम परिचित हैं। उसका वस्तुताल प्रकाशकी किरणोंको ग्रहण कर उनका प्रतिबिंब रचता है। यह प्रतिबिंब उसके नाभितलमें लगता है। यहां उसे फोटोग्राफिक प्लेट पर ग्रहण किया जा सकता है। अवकाशीय ज्योतियोंके तेजाक नापनेके समय फोटोग्राफिक प्लेटके स्थान पर फोटोइलेक्ट्रिक सेल रखा जाता है। और उसी प्रकार तापमानके लिये थर्मोकपलको और प्रकाशके पृथक्करणके लिये स्पेक्ट्रोग्राफको वहां रखा जा सकता है। हाँ, आँखोंसे निरीक्षण करना हो तो चक्षुतालका उपयोग किया जाता है।

दूरबीनका काम ज्यादा प्रकाश प्राप्त करनेका है। मतलब यह कि दूरबीनका वस्तुताल अगर बड़ा है तो वह ज्यादा प्रकाश पायेगा। इसका एक अर्थ यह भी हुआ कि निरीक्षित पदार्थ परसे जितना ज्यादा प्रकाश पाया जायगा उतनी ही उसकी छोटी-छोटी तफसीलें हमारे सामने प्रकट होंगी। मतलब कि बड़े वस्तुतालवाले दूरबीनकी पृथग्दर्शिता या विभेदन-क्षमता ज्यादा होगी। आकाशमें अनेक युग्म तारे हैं। इनमेंसे बहुत कमको नग्न आँखोंसे युग्म रूपमें देखा जाता है। एकदूसरेके निकट आये हुए तारोंको अलग-अलग देखनेके लिए दूरबीनकी जरूरत पड़ती है। एकदूसरेसे सटे हुए और हमसे बहुत ज्यादा दूर आये हुए युग्म तारोंको अलग साथी तारोंके रूपमें देखनेके लिये शक्तिशाली दूरबीनकी जरूरत पड़ती है।

या दूरबीनके खास गुणधर्म तीन हैं (१) विकिरण संग्राहकता (२) पृथग्दर्शिता और (३) आवर्धनशक्ति। इन सबके बारेमें संक्षेपमें कुछ कहेंगे।

मनुष्यकी आँख उसकी पुतली पर पड़नेवाले प्रकाशको झेलती है। हमारी आँखकी पुतलीका व्यास आधे सेंटिमीटरका है। दूरबीनका वस्तुताल समग्र सतह पर पड़नेवाले प्रकाशको ग्रहण करता है। इस कारण उसका विकिरण-संग्राहक—क्षेत्रफल बहुत बढ़ जाता है। २ से मी व्यासवाली दूरबीनके वस्तुतालकी सतहका क्षेत्रफल मनुष्य-आँखकी पुतलीकी सतहके क्षेत्रफल से $(२)^{२}-(\frac{१}{२})^{२}=१६$ गुना है। मतलब कि इतनी छोटी दूरबीनसे भी हम ९ वें वर्गके तारोंको प्रत्यक्ष कर सकेंगे। १० स मी व्यासवाली दूरबीनसे ४०० गुना प्रकाश पाया जायगा और उसकी सहायतासे १२ वें वर्गके तारोंको हम देख पायेंगे।

उपर्युक्त बातें पढ़कर यह सोचना स्वाभाविक होगा कि बहुत बड़ी दूरबीनोंसे बहुत ही निस्तेज तारोंको देखना संभव होगा। मगर वास्तवमें ऐसा नहीं है। लिक वेधशालाकी ९० से मी की दूरबीन १७ वें वर्गके तारोंको प्रत्यक्ष करती है जब कि माउंट विल्सन वेधशालाकी

२५० से. मी. वाली दूरबीन १९ वे वर्गके तारोंको! दुनियाकी सबसे बड़ी ५०० से. मी. वाली माउन्ट पालोमर वेधशालाकी दूरबीन २१ वे वर्गके तारोंको प्रत्यक्ष करती है!!

युग्म या त्रितारेके साथी तारोंको एकदूसरेसे अलग दिखानेवाली दूरबीनकी पृथग्दर्शिता भी दूरबीनके वस्तुतालके व्यास पर आधार रखती है। छोटी दूरबीनसे एक ही तारेके रूपमें दिखाई पड़नेवाला युग्म तारा बड़ी दूरबीनसे एकदूसरेसे दूर बैठे हुए दो तारोंके रूपमें दिखाई देता है। वास्तवमें दूरबीन बड़ी होनेके कारण तारोंके प्रतिबिंब छोटे दिखाई देते हैं और यों उनके बीच अंतर पड़नेके कारण तारे स्पष्ट रूपसे अलग दिखाई देते हैं। साथमें इसी बातको पुष्ट करनेवाला एक चित्र दिया गया है जिसमें एक युग्म तारा बड़ी दूरबीनसे त्रितारा के रूपमें दिखाई देता है।



रेडियो-दूरबीन आवाजको पकड़ती है। २० से. मी. लम्बाईकी तरंगोंको पकड़नेवाली ७५ मीटर व्यासवाली रेडियो-दूरबीनकी पृथग्दर्शिता ६६० विकला है। मतलब यह है कि चाक्षुष दूरबीनोंकी पृथग्दर्शिता-शक्ति रेडियो-दूरबीनोंकी अपेक्षा बहुत अच्छी है।

अब आवर्धनशक्तिकी बात सोचें। आवर्धनशक्ति = वस्तुतालकी नाभीय लम्बाई ÷ अक्षितालकी नाभीय लम्बाई।

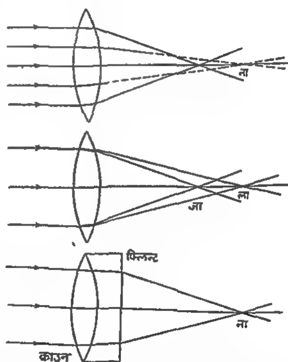
आम तौर पर ०.६ से. मी. नाभीय लम्बाईवाले अक्षिताल इस्तेमाल किये जाते हैं ऐसा मानें तो २४ से. मी. नाभीय लम्बाईवाली दूरबीनकी आवर्धनशक्ति ४० होगी। लिक वेधशालाकी ९० से. मी. व्यासवाली दूरबीनके वस्तुताल (दर्पण) की नाभीय लम्बाई १८ मीटर है और यों उसकी आवर्धनशक्ति १८×१०० ÷ ०.६ = ३००० होगी। कम नाभीय लम्बाईवाले अक्षितालका उपयोग करके दूरबीनकी आवर्धनशक्तिको और भी बढ़ाया जा सकता है। फिर भी इस वृद्धिकी भी हद होती है। आवर्धन बढ़ने पर तारेके प्रतिबिंबका विवर्तन भी बढ़ जाता है। हदसे ज्यादा विवर्तन तारेकी आकृतिको अस्पष्ट बनाता है। इसी कारण और पृथ्वीके वायुमंडलमें उत्पन्न होनेवाले विक्षोभोंके कारण, १००० से ज्यादा मात्रावाला आवर्धन निकम्मा साबित होता है।

दूरबीनके गुणधर्मोकी बात छोड़कर दूरबीनकी थोड़ी बात करना ठीक रहेगा।

दूरबीनोंके मुख्य प्रकार दो हैं वर्तक और परावर्तक। वर्तक दूरबीनका वस्तुकांच ताल या लेंस होता है जबकि परावर्तक दूरबीनका दर्पण। वर्तक दूरबीन १०० से भी व्यासके बड़े व्यासवाले वस्तुतालकी नहीं बनाई जाती है। परावर्तकमें ऐसी रोक नहीं है। सबसे बड़ी परावर्तक दूरबीन ५०० से भी व्यासवाली माउन्ट पालोमर वेधशालावाली दर्पण-दूरबीन है।

दूरबीनका वस्तुकांच ताल हो या दर्पण वह हरेक त्रुटिसे मुक्त नहीं है। तालके सिरोंमें होकर गुजरनेवाली किरणोंकी अपेक्षा तालके मध्यभागमें होकर गुजरनेवाली किरणें तालसे कुछ दूर केन्द्रित होती हैं। इस कारण यहां दी गयी पहली आकृतिके अनुसार ना समक्ष अगर फोटोग्राफिक प्लेट रख दी जाय तो उसके द्वारा ग्रहण किया गया प्रतिबिंब तीक्ष्ण होने पर भी उसके चारों ओरके धुंधले आउट ओफ फोकस प्रतिबिंबवाला होगा। इस त्रुटिको गोलीय अपेरण कहते हैं। यह क्षति तालकी गोलाईके कारण उत्पन्न होती है। उसे हटानेके लिये तालकी गोलाईको कम करना चाहिये।

तालकी दूसरी कमी रंगापेरणकी है। हम जानते हैं कि श्वेत प्रकाश सात रंगोंसे बना है। इन सातोंमें से जामुनी या नीले रंगकी किरणें तालसे गुजरते समय लाल रंगकी किरणोंकी बनिस्बत ज्यादा झुक जाती हैं। फल यह होता है कि जामुनी रंगकी किरणें जिधर केन्द्रित होती हैं वह नाभि लाल रंगके किरणोंकी नाभिकी अपेक्षा तालसे ज्यादा निकट होती है। इस कारण फोटोप्लेटको जामुनी नाभिके आगे रख दी जाय तो उस परका जामुनी प्रतिबिंब तीक्ष्ण उतरेगा मगर उसके चारों ओर धुंधला आउट ओफ फोकस लाल प्रतिबिंब रहेगा।



उपर्युक्त रंगापेरणको दूर करनेके लिये विभिन्न परावर्तनांकवाले दो अलग-अलग तालोंको एकसाथ इस्तेमाल करना चाहिये। फ्लिन्ट और क्राउन तालोंकी एक ऐसी रचना ऊपरकी आकृतिमें दिखाई गई है। भिन्न प्रकारके कांचके दो लेन्सोंको जोड कर जामुनी और लाल रंगोंको एक ही नाभिमें एकत्र किया जा सकेगा मगर अल्ट्रावायोलेट और इन्फ्रारेड किरणें वैसे एकत्रित न होंगी। इतना ही नहीं जामुनी और लाल रंगोंके बीचकी किरणें भी केन्द्रित न हो सकेगी।

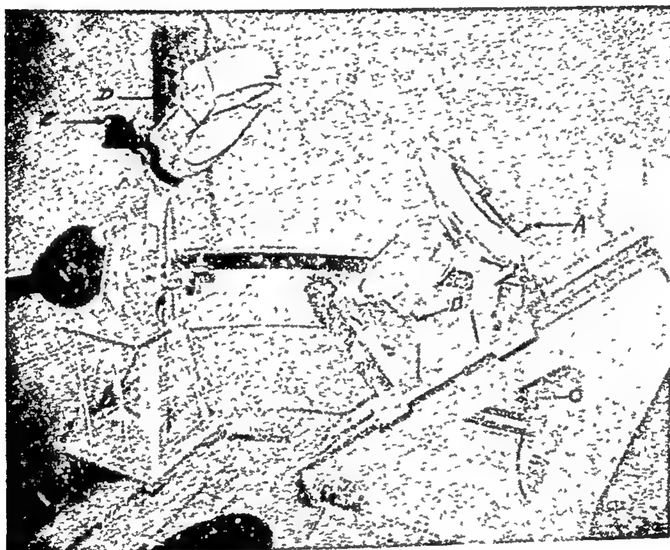
यों रंगापेरणकी थोड़ी त्रुटि रह जायगी मगर वह नगण्य-सी है। वर्तक-दूरबीनें आम तौर पर अवर्णक लेन्सवाली होती हैं।

दर्पण-दूरबीनमें प्रकाशका वेग नहीं बदलता है। इस कारण वहाँ गोलीय अपेरण नहीं होता है। इसके अलावा प्रकाशका विवर्तन न होनेके कारण रंगापेरण भी नहीं होता है। इन दो बातोंके सिवाय दूसरे कुछ लाभ भी दर्पण-दूरबीनसे होते हैं। वे निम्न हैं:—

(१) दर्पण-दूरबीनकी सतहको आसानीसे घिसी जाती है और पॉलिश की जाती है।

(२) प्रकाशीय गुणधर्मोंके हिसाबसे एक-सा न हो ऐसे काँचका भी उपयोग किया जा सकता है।

(३) दर्पणको टिकाना सरल है। दर्पण बड़ा हो तो उसकी सारी पीठको टिकाया जा सकता है। इस प्रकार वजनके कारण उसमें कोई विकृति पैदा नहीं होती है।



सिलोस्टेट (स्थिराकाश)

मगर इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि दर्पण-दूरबीन त्रुटि-मुक्त है। अगर ऐसा होता तो ताल-दूरबीनकी आवश्यकता मिट जाती। दर्पण-दूरबीनकी मर्यादायें निम्नानुसार हैं:—

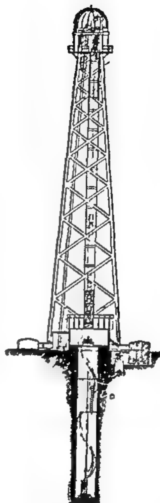
दर्पण-दूरबीनका आकार हमेशा एक-सा नहीं रहता है। दबाव और तापके कारण उत्पन्न होनेवाला फर्क दर्पणके वजनकी विकृतिके कारण उत्पन्न होनेवाले फर्कसे ज्यादा गंभीर होता है। दर्पण पर चढ़ाया जानेवाला चाँदी या एल्युमिनियमका मुलम्मा पाँच वर्षके बाद निकम्मा हो जाता है। तब दर्पण पर फिरसे मुलम्मा चढ़ाया जाता है। मुलम्मा चढ़ानेके लिए दर्पणको दूरबीनसे बाहर निकालना पड़ता है और बादमें उसे असली जगह बैठाना पड़ता है। ऐसा करते समय दर्पण अपने पूर्वस्थानमें ठीक पहलेकी तरह जमता नहीं है। उसमें सूक्ष्म फर्क पड़ जाता

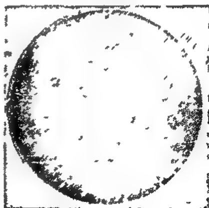
है। इस फर्कके कारण दूरबीन द्वारा लिये गये पुराने और नये चित्रोंमें फर्क पड जाता है। मतलब कि दो अपरणोंकी तकलीफ दूर होती है वहा तीसरे प्रकारके अपरणकी मुश्किल खडी होती है। एक और तकलीफ भी है। दर्पण पर गिरनेवाली समातर किरणें परावर्तनके बाद किसी एक जगह केन्द्रित होनेके बजाय धूमकेतुके जैसी पुच्छ बनाती हैं। इस त्रुटिके कारण दर्पण-दूरबीनका उपयोग अमुक सीमा तक की मर्यादावाला हो जाता है।

दर्पण-दूरबीनें बडे आकारकी बनाई जा सकती हैं। ताल-दूरबीनोंका वैसा नही है। ताल दूरबीनमें लेन्सको उसकी धार पर ही टिकाना होता है। लेन्स अगर बडा है तो उसका वजन भी बडा हुआ रहेगा और तब इसी वजनके कारण लेन्सको टिकानेमें और अपने ही वजन के कारण विकृत होना बचानेमें तकलीफें उत्पन्न होनेकी। सबसे बडी मुसीबत लेन्सका काच पूर्ण गुणवाला (अदर और बाहर एक-सा) न होनेकी है। बडे लेन्समें यह तकलीफ (फिर वह घनता की हो या हवाके बुलबुले काचमें रह जानेकी हो) और भी बडी होनेकी।

प्रश्न होगा कि इन दोनों प्रकारकी दूरबीनोंकी अपनी विशिष्ट रचनाके कारण कोई खास अलग कामगीरी होगी क्या? हा, ऐसा कुछ है सही। ताल दूरबीनें आकाशीय ज्योतियोंके स्थान और उनके गतिवेगके पक्के नाप देती हैं। जबकि दर्पण-दूरबीनें उन ज्योतियोंके प्रकाश, रग वगैरहकी जानकारी देती हैं। आधुनिक खगोलशास्त्रका एक विशिष्ट कार्य आकाशीय ज्योतियोंके रग और उनके तेजाकके द्वारा उनके उद्भव और उत्क्रान्तिका अध्ययन कर-

जारी





नेका है। इस कामके लिये फोटोप्लेटके अतिरिक्त फाटोइलेक्ट्रिकसेलका प्रचुरमात्रामे उपयोग किया जाता है। फोटोइलेक्ट्रिकसेल १६०० किलोमीटरकी दूरी पर जलनेवाली मोमवत्तीको ताड़नेकी संवेदनक्षमता रखती है।

सभी दूरवीने एक-सी नहीं है। अलग-अलग कामोके लिये उनको अलग-अलग ढगसे वनाया और इस्तेमाल किया जाता है। चद्रके लिये, ग्रहोके लिये, सूर्यके लिये, तारों और ताराविश्वोंके लिये, यों अलग-अलग प्रकारकी दूरवीने वनाई जाती है। कई एक दूरवीने ऐसी है कि वे निश्चित दिशामे ही घूम सकती है। कई एक ऐसी है जो विलकुल घूमतो नही है। न घूमनेवाली स्थिर दूरवीनोंको प्रकाश पहुँचानेके लिये अन्य तरकीवे काममे लायी गयी है। सूर्यके गहरे अध्ययनके वास्ते टावर-दूरवीने वनाई गई है। ये दूरवीनें स्थिर रहती है और सिलोस्टेट द्वारा उनको प्रकाश पहुँचाया जाता है।

आकाशीय ज्योतियोके स्थाननिर्णयके लिये ट्रान्झिट-इन्स्ट्रमेन्ट, मेरिडियन-सर्कल, ओल्ट-एझिमथ-सर्कल, प्राइम-वर्टिकल-ट्रान्झिट्स, झेनिथ-टेलिस्कोप वगैरहका उपयोग किया जाता है। इन सभीमें मेरिडियन-सर्कल अति महत्त्वका साधन है।

मेरिडियन सर्कलको ट्रान्झिट सर्कल भी कहते है। वह ट्रान्झिट इन्स्ट्रुमेन्टकी वड़ी और अत्यन्त चौकस आवृत्ति है। ट्रान्झिट सर्कलमे सूक्ष्म ढगसे अकित किये गये वृत्त होते है, दूर-वीनके साथ लगे हुए ये वृत्त दूरवीन जिस अक्षके चारों ओर घूमती है उसके समकेन्द्र होते है। वृत्तोके अंक या नापोंको पढ़नेकी व्यवस्था ४ से ६ माइक्रोस्कोप द्वारा की जाती है।

वास्तवमे ट्रान्झिट-सर्कल वर्तक-दूरवीन ही है। यह दूरवीन ठीक उत्तर-दक्षिण दिशामें घूम सके इस प्रकार उसे दो खंभों पर टिकाई जाती है। ये खंभे और उन पर विठायी गई ट्रान्झिट-सर्कलकी धुरी ठीक पूर्व-पश्चिम दिशामे होती है। यंत्रकी यह धुरी क्षितिजके भी समसूत्र होती है। इस धुरी पर घूमनेवाली दूरवीन हमेशा याम्योत्तरवृत्तको ही ताकती रहती है।

ट्रान्झिट-दूरवीनका वस्तुताल अवर्णी लेन्स होता है। उसके नाभितलमे पृ. २३८ पर दिखाये गये चित्रानुसारकी जाली रखी जाती है। इस जालीके सभी लंव-तार एकदूसरेसे एक-से अतर पर है। इन तारोंकी संख्या ५ या ७ की एकातर रहती है। आकाशीय पदार्थको जालीकी क्षैतिज दो रेखाओंके वीचसे देखा जाता है। आकाशीय ज्योति लंव-तारोंमेसे पहले तारको स्पर्श करे उस वक्तका और आखिरके तारको स्पर्श करे उस वक्तका यों दो समय अत्यत सावधानीसे नोट कर लिया जाता है। इनके अलावा हरेक तार तक पहुँचनेका समय भी नोट किया जाता है। इन सभीके आधार पर आकाशीय ज्योति सचमुच कव याम्योत्तर होती है वह समय अत्यत चौकसीसे मालूम किया जाता है। यह काम आजकल स्वयसेवक माइक्रोमीटर या फोटोकोरोनो-ग्राफकी सहायतासे किया जाता है। और यो मनुष्यकी आँख द्वारा उत्पन्न होनेवाली दर्शन-क्षतिको दूर कर दिया गया है।

आकाशीय ज्योतियोके याम्योत्तरके समय नापनेके सिवा उनकी क्रान्ति (Declination) नापनेका काम भी ट्रान्झिट-सर्कल करता है। इस कारण हरेक वेधशालामे ट्रान्झिट-सर्कल रखा जाता है।

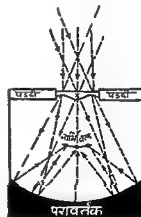
वर्तक और परावर्तक दूरवीनोंके सिवाय दूरवीनका एक तीसरा प्रकार भी है जिसके द्वारा इन दोनो दूरवीनोंके फायदे उठाये जा सकते हैं। वह है श्मिट-दूरवीन। वेधशालाओंके वास्ते यह अति महत्त्वका साधन है। श्मिट-दूरवीनका दर्शनक्षेत्र विशाल है। इतना ही नही उसके द्वारा तैयार की जाती आकाशीय तसवीर बिलकुल स्पष्ट होती है। वास्तवमें श्मिट-दूरवीन आकाशीय ज्योतियोंकी तेजीसे तसवीरें लेनेवाला एक विराट आकाशीय केमेरा है। इस कारण श्मिट-दूरवीनको श्मिट-केमेरा भी कहा जाता है।

श्मिट-दूरवीनका आविष्कर्ता बर्नहार्ड श्मिट है। परावर्तक-दूरवीनामें उत्पन्न होनेवाली प्रकाशपूंछके प्रभावको निर्मूल करनेका प्रयत्न श्मिट-दूरवीन है। परावर्तक-दूरवीनका वस्तुकाँच दर्पण होता है और वह परवलयाकार होता है। श्मिट-दूरवीनके दर्पणकी सतह गोलाकार होती है इस कारण उसमें गोलीय अपेरणकी क्षति पैदा होती है। यह क्षति परवलयाकारमें नही रहती है। परवलयाकारके भारी पचडेमें न पडकर श्मिटने यह काम शोधनपटसे लिया। शोधनपट काँचकी पतली प्लेटकी एक खास रचना है जिसके कारण रंगापेरण उत्पन्न नही होता है। इतना ही नही शोधनपटको पार करके दर्पण पर पडनेवाली किरणें परावर्तनके बाद प्रकाशपूंछका उत्पन्न नही होने देती हैं। नीचे चित्रमें यह बात दिखाई गई है।



श्मिट

सामान्य परावर्तक दूरवीनमे दिखाई देता या प्रतिबिंबित होनेवाला आकाशीय क्षेत्र सीमित होता है। इतना ही नही वह अमुक हद तक की प्रतिबिंब-तीक्ष्णता दिखलाता है। श्मिट-दूरवीनमे प्रतिबिंबित होता आकाशीय क्षेत्र बहुत बडा होता है इतना ही नही उसमें प्रकाश-पुच्छका असर उत्पन्न न होनेके कारण श्मिट-दूरवीनसे ली गयी तसवीरें उनके आखरी छोरों तक तीक्ष्ण प्रतिबिंबवाली रहती हैं। (इतना ही नही ये तसवीरें उतारी जाती हैं भी बेगसे।)



श्मिट दूरवीन

श्मिट-दूरवीनकी शोधनपट्टी दर्पणकी गोलाईके केन्द्र-भागमें रखी जाती है। शोधनपट्टी और दर्पणके ठीक बीच दर्पणके नाभिस्थानमें नाभिप्लेट रखनेमें आती है। इस प्लेटका दर्पण की ओरका भाग बहिर्वक्र होता है। शोधन-पट्टीका व्यास सामान्यतया दर्पणके व्याससे कम होता है। माउन्ट पालोमर वेधशालाकी श्मिट-दूरवीन १२० से मी व्यासवाली दूरवीन है। इस दूरवीनकी शोधनपट्टीका व्यास १२० से मी है इस कारण उसे १२० से मी की दूरवीन

कही जाती है। इस दूरवीनके दर्पणका व्यास १८० से. मी. है और उसके द्वारा ५°×५° के आकाशीय विभागकी तसवीरें प्राप्त की जाती हैं।

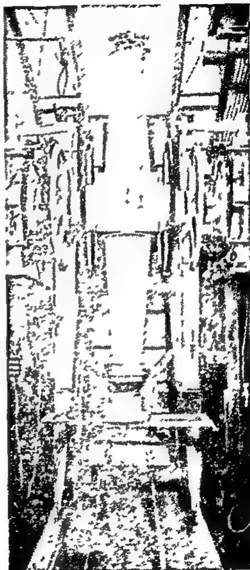
उपर्युक्त माउन्ट पालोमरकी श्मिट-दूरवीन द्वारा पूर्ण किया गया सबसे बड़ा काम आकाशीय नकशोंका है। माउन्ट पालोमरसे आकाशकी अनेक तसवीरें ली गयी हैं। ये सारी तसवीरें आकाशके एटलसके रूपमें प्रकट की गई हैं। आकाशके विभिन्न विभागोंके फोटोग्राफ लेकर एटलस बनानेका काम लगातार सात वर्ष तक चलता रहा था। खगोलशास्त्रियोंका कहना है कि इस कामके कारण बड़ी दूरवीनोंको अवकाशीय संशोधनका पचास साल तकका मसाला मिल गया है।

गणितकी परिभाषाके अनुसार श्मिट-दूरवीनें कम नाभीय अनुपात (Ratio)-वाली होती हैं। माउन्ट लिक वेधशालाकी ९० से. मी. व्यासवाली दूरवीनका नाभिअंतर १८ मीटर है। यों उसका नाभीय अनुपात (१८×१००)÷९०=२० है। माउन्ट पालोमरकी १२० से. मी. की श्मिट-दूरवीनका नाभीय अनुपात २.५ है। उल्काओंके अध्ययनके वास्ते बनाई जाती विशिष्ट या अविश्मिट-दूरवीनोंका नाभीय अनुपात ०.८५ के करीब होता है। इन दूरवीनोंकी अवकाशीय क्षेत्र-मर्यादा ५२ वर्ग अंशकी होती है।

श्मिट-दूरवीनसे निरीक्षणका कोई काम नहीं होता है। वह केवल फोटोग्राफ्स लेनेका ही काम करती है। प्लेट १० पर दिये गये श्मिट-दूरवीनके चित्रमें निरीक्षक कुछ देख रहा हो ऐसा मालूम होता है। दर असल वह श्मिट-दूरवीनके भीतर नहीं देखता है मगर उससे लगी हुई निर्देशक-दूरवीन द्वारा अवकाशीय क्षेत्र देखता है। श्मिट-दूरवीन उस आकाशीय विभागकी तसवीर उतार रही है।



प्राचीन जापानकी वधशाला



शून्हिट सडेल

२५. वेधशाला और यंत्र – २

दूरबीन द्वारा आकाशीय ज्योतियोंको प्रत्यक्ष किया जाता है। और उनकी तसवीरें भी उतारी जाती हैं। आकाशीय ज्योतियोंका अध्ययन इन दोनों पद्धतियोंसे किया जाता है। खगोलविज्ञानमें आकाशीय ज्योतियोंके फोटोग्राफोंका जितना महत्त्व है उतना ही उनके वर्ण-पटके फोटोग्राफोंका भी है। वर्णपटका अभ्यास वर्णपृथक्करण-यंत्र द्वारा किया जाता है। फोटो उतारनेकी अनुकूलतावाले वर्णपृथक्करण-यंत्रको स्पेक्ट्रोग्राफ कहते हैं। स्पेक्ट्रोग्राफ द्वारा उतारे गये फोट्रोग्राफको स्पेक्ट्रोग्राम कहते हैं। खगोलीय दुनियामें स्पेक्ट्रोग्राफ बहुत ही महत्त्वशाली और आवश्यक साधन है। करीब पिछले सौ सालसे वह दूरबीनोंके साथ इस्तेमाल होता आया है। दुनियाकी सभी बड़ी वेधशालाओंमें आकाशीय ज्योतियोंके वर्णपटके अध्ययनका कार्य निरंतर होता रहता है। तेजस्वी ज्योतियोंके वर्णपट जल्दी प्राप्त हो सकते हैं मगर निस्तेज ज्योतियोंके वर्णपट उतारनेमें अनेक घंटे बीत जाते हैं।

स्पेक्ट्रोग्राफके तीन प्रकार हैं। प्रिज्म-स्पेक्ट्रोग्राफ, ग्रेटिंग स्पेक्ट्रोग्राफ और वस्तुकाँच-प्रिज्म-स्पेक्ट्रोग्राफ। पहले दो प्रकारोंमें प्रिज्म और ग्रेटिंगके अदल-बदलका फर्क है। तीसरे प्रकारमें प्रिज्मको दूरबीनके वस्तुकाँचके आगे रख दिया जाता है। नतीजा यह होता है कि आकाशीय ज्योतिकी किरणें पहले प्रिज्म पर गिरती हैं और बादमें वस्तुकाँच पर। इस फर्कके सिवाय उपर्युक्त तीनों स्पेक्ट्रोग्राफकी कामगीरी करीब एक-सी है। वेधशालाओंमें सबसे ज्यादा उपयोग ग्रेटिंग-स्पेक्ट्रोग्राफका किया जाता है।

इन तीनों प्रकारोंकी बात संक्षेपमें करेंगे।

प्रिज्म स्पेक्ट्रोग्राफकी रचना नीचेकी आकृतिमें दिखाई गई है।



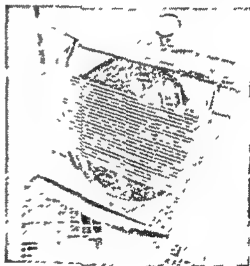
ज्योतिके प्रकाश को, सर्वप्रथम, एक लेन्सके द्वारा 'स्लिट' या झिरीमेंसे पार करके संधानक लेन्स पर गिरने दिया जाता है। संधानकमें होकर प्रकाश जब बाहर निकलता है तब उसकी किरणें एक-दूसरेके समानांतर हो जाती हैं। ये समानांतर किरणें प्रिज्म या त्रिपार्श्व

कांच पर गिर कर उसके पार निकलती है। मगर ऐसा होते समय वह सफेद प्रकाश सात रंगोंमें विभक्त हो जाता है। इन रंगीन किरणोंको दूरबीन द्वारा एकत्रित किया जाता है। स्लिट से लेकर दूरबीन तककी सारी सामग्री स्पेक्ट्रोस्कोप कहलाती है। स्पेक्ट्रोस्कोप द्वारा उत्पन्न वर्णपटको, अक्षिनाल द्वारा देखा जाता है। अक्षितालके स्थान पर फोटोप्लेट रखकर तसवीर उतारी जाय तो उस फोटोग्राफको स्पेक्ट्रोग्राम कहते हैं और पूरी यंत्रसामग्रीको स्पेक्ट्रोग्राफ। स्पेक्ट्रोग्राफकी सहायतासे उतारे गये स्पेक्ट्रोग्राममें दृश्य प्रकाशके अलावा अल्ट्रावायोलेट और इन्फ्रारेड प्रकाशकी भी तसवीर उतरती है।

स्पेक्ट्रोग्राफ द्वारा ज्यादा लम्बाईवाला वर्णपट प्राप्त करना हो तो दूरबीनका वस्तुताल बड़े नाभीय अन्तरवाला पसंद करना चाहिये मगर तीक्ष्ण या ज्यादा स्पष्ट वर्णपटकी आवश्यकता हो तो प्रकाशको दाखिल करनेवाली 'स्लिट' या दरार ज्यादा सकरी बनानी चाहिये और उसके साथ-साथ त्रिपाश्व कांचका त्रिकोण भी बढ़ाना चाहिये।

यह हुई प्रिझम-स्पेक्ट्रोग्राफकी बात। अगर इस यंत्रमें प्रिझमके स्थानपर ग्रेटिंग रख दी जाय तो यह साधन ग्रेटिंग-स्पेक्ट्रोग्राफ बन जाता है।

६८२ भाग तांबा और ३२९ भाग रांगा मिलाकर बनाये गये खास किस्मके कांसेमेंसे ग्रेटिंग बनाई जाती है। ग्रेटिंग-पट्टीको तैयार करनेके बाद उस पर हीरेकी कनीसे एकदूसरेके पास अनेक समानान्तर रेखायें खींची जाती हैं। यह काम बिजलीके यंत्रों द्वारा होता है। एक सेन्टिमीटरकी चौड़ाईमें चार हजारसे लेकर बीस हजार तककी एकसे अंतरवाली समानान्तर रेखायें खींचनेमें आती हैं। सबसे बड़ी ग्रेटिंग-प्लेट १५ से मी × १८ से मी की होती है। रेखायें खींचनेका काम उत्तम रूपमें पूरा होना जरूरी है। इस कारण जिस कमरेमें ग्रेटिंगकी लकीरोंका काम चलता है उस कमरेका तापमान सारे समय एक-सा रखनेमें आता है। तापमानका ०.१ अंश जितना फर्क भी आपत्तिजनक होता है।



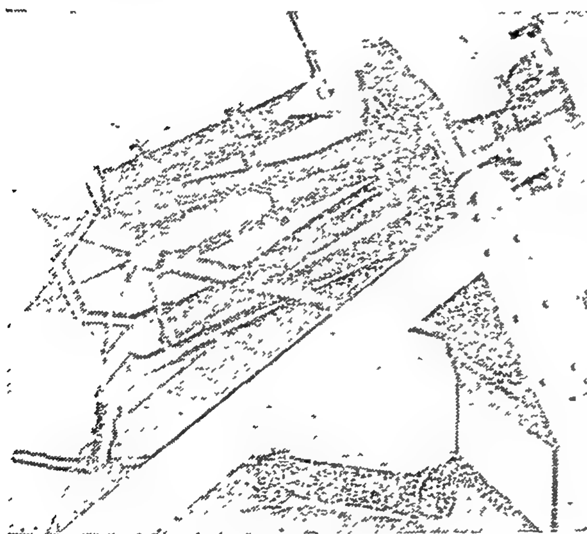
स्थूल ग्रेटिंग

कांसेके बजाय एल्युमिनियमके मुलम्मेवाली कांचकी पट्टीसे भी ग्रेटिंग बनायी जाती है। कांचके मुलम्मेवाले भाग पर रेखायें खींची जाती हैं। एल्युमिनियमके मुलम्मेवाली ग्रेटिंग कांसेकी ग्रेटिंगसे ज्यादा प्रबल रूपसे प्रकाशको परावर्तित करती है। अल्ट्रावायोलेट प्रकाशके लिये एल्युमिनियम-ग्रेटिंग बहुत ही महत्त्वकी है।

कई वार समतल ग्रेटिंगके वदलेमें वहिर्गोल ग्रेटिंगका उपयोग किया जाता है। यह ग्रेटिंग वर्णपट उत्पन्न करनेके अलावा उसे संकेन्द्रित करनेका काम भी करती है और इस प्रकार उसके साथ संकेन्द्रक लेन्सकी जरूरत नहीं रहती है।

प्रिज्मके स्थान पर ग्रेटिंगका उपयोग करनेकी वात कुछ अटपटी-सी लगना संभव है। झंझट-पूर्ण होने पर भी आजकल उसीका ही उपयोग हो रहा है। ग्रेटिंगकी वड़ी भारी दिक्कत उस पर लकीरें खींचनेकी है। मगर वह काम कामयावीसे पूरा कर लेने पर ग्रेटिंगके उपयोगमे ही फायदा मालूम हुआ है। ग्रेटिंगकी रेखाये एकदूसरेके जितनी ज्यादा नजदीक हों उतनी ही ग्रेटिंगकी पृथक्-दर्शनशक्ति वढ़ती जाती है।

प्रिज्मके स्थानमे ग्रेटिंगका उपयोग करनेमे एक सुभीता है। ग्रेटिंगके कारण वर्णपट कुछ वड़ा वनता है और यो विभिन्न रंगोंको एकदूसरेसे दूर फैले हुए देखा जा सकता है। प्रिज्मके वर्णपटकी एक और तकलीफ है। वहाँ लाल छोरके लवे तरग जामुनी छोरके छोटे तरंगो के मुकाविलेमे एकदूसरेके ज्यादा नजदीक–भीड़ उत्पन्न करते–दिखाई पड़ते है। ग्रेटिंगके वर्णपटमे यह मुसीवत नही है। उसके सारे रंगोंकी किरणे समान रूपसे फैलती हैं। प्रिज्मके वर्णपटमे तरंगलम्वाईका प्रमाण लालसे जामुनी तकके रंगोंमें वदलता रहता है। ग्रेटिंग का वर्णपट इस क्षतिसे मुक्त है।



ब्रुस स्पेक्ट्रोग्राफ

प्रिज्मका हो या ग्रेटिंगका किसी भी स्पेक्ट्रोग्राफसे एक-वारगी एक ही तारेका या आकाशीय ज्योतिका वर्णपट प्राप्त किया जायगा। कई दफा अनेक तारोंके वर्णपट एकसाथ प्राप्त करनेकी जरूरत पैदा होती है। ऐसे मौके पर, छोटे शिरकोणवाले एक त्रिपार्श्व काँचको दूरवीनके वस्तुकाँचके आगे रख दिया जाता है। इस तरकीवसे एकसे अविक तारोंके वर्णपट एकसाथ प्राप्त किये जा सकते हैं। इतना ही नही उनका तुलनात्मक अध्ययन भी आसानीसे हो सकता है। कई दफा, वहुत ही कम प्रकाश-विक्षेपवाले वर्णपट प्राप्त करनेके लिये स्थूल ग्रेटिंगका उपयोग किया जाता है। यह ग्रेटिंग धातुओंके समानांतर सीखचोंसे वनती है। ग्रेटिंगकी इन छड़ोंके वीच खाली जगह रहती है। यर्किज्ञ वेधशालाकी १०० से. मी. वाली दूरवीनके साथ लगाई जानेवाली

स्थूल ग्रेटिंगका चित्र पृ० २४४ पर दिया गया है। उसी दूरबीनके साथ सलग्न ब्रुम स्पेक्ट्रोग्राफका चित्र पृ २४५ पर दिया गया है। इस यंत्रमें बिल्कुल नीचेकी ओर कोलिमेटर (स्लिट और लेन्स) हैं और बिलकुल ऊपरके भागमें कैमेरासे सज्ज दूरबीन है। बायीं ओर तीन प्रिज्म हैं। कोल्मिटरमेंसे गुजरनेके बाद प्रकाश इन प्रिज्मोंमेंसे होकर दूरबीनके जरिये कैमेराकी प्लेट तक पहुँचता है।

हरेक परमाणु और अणु खास निश्चित तरंगलम्बाईवाले प्रकाशका उत्सर्ग करता है या वैसे प्रकाशको ग्रहण करता है। अलग-अलग तत्त्वोंकी यह प्रकृति तारों और तारविश्वोंके वर्णपट द्वारा प्रकट होती है। और इस प्रकार पृथ्वी पर जो तत्त्व हैं और साथ ही साथ वे तत्त्व कौनसी आकाशीय ज्योतियोंमें हैं उसका पता चलता है। दूसरे ढंगसे कहें तो यों कहा जायगा कि तारोंके वर्णपटसे तारों-विषयक अनेक बातोंकी हमें जानकारी मिलती है। तारोंमें कौनसे मूलतत्त्व विद्यमान हैं यह बतलानेके अलावा तारोंके तापमान, उनकी निर्गमनगति, उनकी वायुओंका दबाव वगैरहके साथ-साथ तारा युग्म है या अकेला, वह हमारी ओर आता है या हमसे दूर अवकाशमें गति कर रहा है इत्यादि बातोंकी हमें वह जानकारी देता है। ग्रहों और सूर्यके वायुमंडलका अध्ययन करके और तारोंमें कौनसे तत्त्व विपुल प्रमाणमें हैं यह जानकर तारोंके भूतकाल पर हम नजर डाल सकते हैं और यों उनके उद्भव और उत्क्रान्तिके बारेमें रसमय तथ्य प्राप्त किये जाते हैं।

वर्णपृथक्करण-यंत्रका एक उपयोग तारे चुम्बकित हैं या नहीं यह समझनेका है। चुम्बकीय क्षेत्रमें आया हुआ परमाणु ऊर्जाका उत्सर्ग करता है या ऊर्जाको ग्रहण करता है तब उसकी वर्णपटीय रेखा दो रेखाओंमें विभक्त हो जाती है। इस प्रकारका 'झीमन असर' कुछेक तारोंके वर्णपटमें देखा गया है और यों तारा और तारविश्वोंके चुम्बकीय क्षेत्रोंका पता चला है।

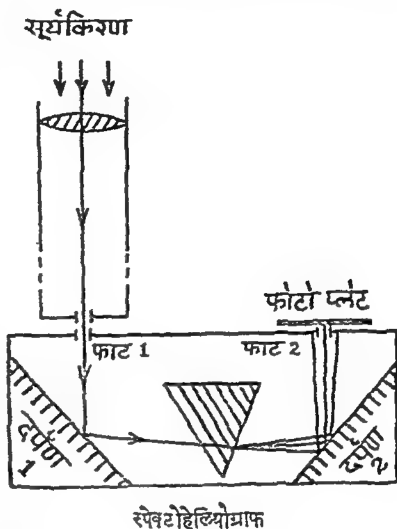
सूर्यका अभ्यास करनेके लिये, कई बार उसका एकवर्ण प्रकाशका फोटो खींचा जाता है। यह काम स्पेक्ट्रोहेलियोग्राफ नामका यंत्र करता है। इस यंत्रकी सहायतासे निश्चित तरंगलम्बाईके प्रकाशकी सूर्य-छवि प्राप्त की जाती है। एक किस्मके स्पेक्ट्रोहेलियोग्राफकी आकृति पृ २४७ पर दी गई है।

स्पेक्ट्रोहेलियोग्राफ दो भागोंमें बना है। उसका एक भाग दूरबीन है जो सूर्यका प्रतिबिंब रचता है और दूसरा भाग सूर्यका एकवर्ण-फोटो खींचनेवाला यंत्र है जिसमें दो जगहों पर दरारें (फाट) हैं।

सूर्यप्रतिबिंबके बहुत कम हिस्सेको दरार १(फाट १) द्वारा यंत्रके दूसरे हिस्सेमें दाखिल किया जाता है। यह प्रकाश दर्पण १ पर गिरता है और परावर्तनके बाद यंत्रके बीचमें रखे गये त्रिपार्श्व कांचमें होकर दर्पण २ पर जा गिरता है। ऐसा करते समय वह अनेक रंगोंमें विभाजित हो जाता है। दर्पण २ परकी आपात किरणें परावर्तनके बाद दरार २(फाट २) के रास्ते बाहर निकलती हैं। दरार २ सभी किरणोंको बाहर नहीं जाने देती है। वह सिर्फ

एक ही किरणको वाहर जाने देती है। वाहर निकलनेवाली किरण उसके सम्मुखकी फोटो-प्लेट पर अपनी छवि अंकित कर देती है।

दूरवीनको और फोटोप्लेटको यथास्थित रखे और स्पेक्ट्रोहेलियोग्राफके वाकीके हिस्सेको सरकाते रहें तो दरारमें से सूर्यके विभिन्न भागोंके प्रतिविंव गुजरते रहेंगे और उनकी छवियाँ फोटोप्लेट पर अंकित होती जायेंगी। यों समूचे सूर्यका एक वर्णका फोटो खींचा जा सकेगा। इस प्रकारके एक वर्णवाले फोटोग्राफको स्पेक्ट्रो-हेलियोग्राम कहनेमें आता है।



स्पेक्ट्रोहेलियोग्राफ

केवल खग्रास ग्रहणके समय दिखाई पड़नेवाले सूर्यके रंगावरणके और अग्निपिंडोके फोटोग्राफ अव स्पेक्ट्रोहेलियोग्राफकी सहायतासे किसी भी समय लिये जा सकते हैं और उनके द्वारा सूर्यके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

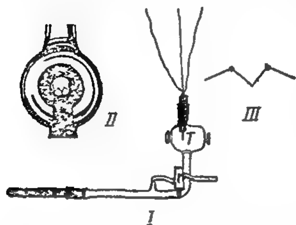
आकाशस्थित तारोंके विषयमें जो जानकारियाँ प्राप्त की जाती हैं उनमें तापमान विशेष महत्त्वका है। तारे हमसे वहुत दूर हैं। उनके पास पहुँचकर तारोंका तापमान प्राप्त करनेकी संभावना नहीं है। हमारे सामान्य उष्मामापकोमें यह सामर्थ्य नहीं है इस कारण वैज्ञानिकोंने विशिष्ट प्रकारके और साधन वनाये हैं जिनमेंसे एक थर्मोकपल है।

पृ. २४८ वाली आकृतिमें I मार्कवाला साधन थर्मोकपल-सेल है। उसका वायीं ओरवाला काला छोर केल्सियमसे वना है। दायी ओरके ऊपरके भागमे T लिखा है वहाँ थर्मोकपल रखा गया है। इस भागमें आमने-सामने खिड़कियाँ हैं। इनमे से वायीं ओरकी खिड़कीसे तारेका प्रकाश यंत्रमे प्रवेश करता है। दायी ओरकी खिड़कीमेंसे थर्मोकपलको देखने पर वह आकृति II की तरह दीखता है। थर्मोकपलका विशिष्ट अंग उसके केन्द्रस्थानमे रखे गये तार हैं। ये तार दो अलग धातुओंके (तांवेके और लोहेके) तार हैं जिनको एकदूसरेके साथ जोड़ दिया गया है। चौकसीके वास्ते और सूक्ष्म रूपमे भी उष्मा वह न जाय इस कारण उपर्युक्त दोनों तारोंको एकके वजाय दो वक्त पाँजा जाता है (आकृति III मे दो मोटे तारोंको उनके वीचमें पतले तारके साथ जोड़े हुए दिखाया है)। यह तारसंगम थर्मोकपलका हार्द है। थर्मोकपलके खुले तारोंको एम्मीटरके या गेल्वेनोमीटरके साथ जोड़ दिया जाता है।

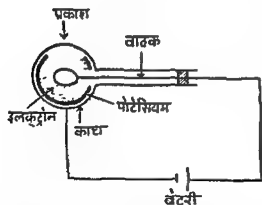
तारसंगम पर आकाशीय ज्योतिका विकिरण गिरता है तव उसका तापमान वढ़ता है। और तव मंद किन्तु स्पष्ट विद्युतप्रवाह एम्मीटरमें वहने लगता है। थर्मोकपलकी सहायतासे वहुत ही सूक्ष्म विद्युतप्रवाह-फर्क (एक अंगके दस लाखवें भाग) को नापा जाता है।

आकाशमें अनेक तारे हैं। दूरवीनसे देखने पर एक ही स्थानमें वहुत-से तारे दिखाई देते हैं। प्रश्न होगा कि इन तारोंमेंसे किसी एक ही तारेका प्रकाश थर्मोकपलमें किस प्रकार

दाखिल किया जाना होगा। दूरबीनके नाभितलमें अनेक तारे प्रतिबिंबित होते हैं। खास तरकीबसे उनमेंसे एक ही तारेका प्रकाश छाँट लिया जाता है और उसके विकिरणको थर्मोकपल्के तार-संगम तक पहुँचाया जाता है। थर्मोकपल द्वारा प्राप्त होनेवाली उष्मा हरेक सेकंडमें एक वर्ग सेन्टिमीटर क्षेत्रफलके हिसाबसे कितनी होती है उसका हिसाब लगाकर समग्र तारेकी उष्माका अनुमान किया जाता है। मतलब कि इस प्रकार उस तारेका तापमान निश्चित किया जाता है। इस पद्धतिके अनुसार अब तक हजारों तारोंकी सतहोंके सही तापमान मालूम कर लिये गये हैं। एक वर्गसेंटिमीटरकी जगह पर एक सेकंडमें गिरनेवाली उष्माको उसे विकसित करनेवाली ज्योतिका उष्मास्थिरांक कहनेमें आता है। सूर्यका उष्मास्थिरांक $\frac{१}{३०}$ कॅलरी है। सूर्यकी समग्र सतह परसे होता ऊर्जा-विकिरण हरेक सेकंडमें ४×१०^{३३} अर्ग है। सूर्यसतहका तापमान ५,७००° सेन्टिग्रेड है।



तारोंके तापमानकी तरह उनके वर्ण और रंग यथातथ नापे जायें यह भी बहुत जरूरी है। इस प्रकारके काम आनेवाला एक साधन फोटोइलेक्ट्रिक सेल है। इसकी रचना निम्नानुसार है।



पोटेसियम या अन्य आल्कली धातु पर प्रकाश गिरता है तब उस धातुसे इलेक्ट्रॉन अलग होते हैं। इलेक्ट्रॉन अलग होनेका अनुपात धातु पर गिरनेवाले प्रकाशकी प्रबलताके प्रमाणमें होता है। इलेक्ट्रॉनमें सूक्ष्म वैद्युतिक शक्ति उत्पन्न करनेकी क्षमता है। करीब सभी धातुयें उनके पर अल्ट्रावायोलेट प्रकाश गिरने पर इलेक्ट्रॉन छोड़ती हैं मगर इन सबमें पोटेसियम और सेसियम जैसी आल्कली धातुयें ज्यादा उपयोगी मालूम हुई हैं। ये धातुयें दृश्य प्रकाशमें भी काम आती हैं। यह सब होते हुए भी उनकी एक कमजोरी है। ये वातावरणके प्राणवायुको नहीं सह सकतीं हैं। इस कारण इनकी पट्टियोंको ऊपरके चित्रमें दिखाया गया है उसी

अनुसार शून्य अवकाशवाले फ्लास्कमे या अति अल्प निष्क्रिय वायुसे भरी ट्यूवोंमें रखा जाता है।



सामान्य इलेक्ट्रिक सेलमे आल्कली धातुकी पट्टी केथोडका काम करती है। उसमेसे अलग होनेवाले इलेक्ट्रोन एनोडकी ओर वहकर एनोड पर जमा होते है। (आकृतिमे गोलेके बीचमें एनोड है) यह होते हुए ही विद्युतप्रवाह शुरू होता है और प्रकाशके गिरते रहने तक चालू रहता है। काँचके गोले पर गिरनेवाला प्रकाश एक-सा रहता है तव तक उत्पन्न होनेवाले प्रवाहका जोर एक-सा रहता है: प्रकाशमे फर्क उत्पन्न होते ही प्रवाहके जोरमे फर्क पड़ता है।

फोटोइलेक्ट्रिक-सेल अत्यंत सवेदनक्षम उपकरण है और रूपविकारी तारोंके प्रकाशकी कमी-वेशीको नापनेके लिये वह वहुत उपयोगी है। रूपविकारी तारोके सिवाय वह दूसरे तारोके तेज नापनेका भी काम देती है। वजह यह है कि फोटो-इलेक्ट्रिक-सेल पर गिरनेवाले प्रकाश के अनुपातमे वह इलेक्ट्रोन छोड़ती है और इस कारण पैदा होनेवाले सूक्ष्म विद्युत्प्रवाहको अत्यंत वारीकीसे नापा जा सकता है। तारोके प्रकाशके हिसावसे उनके वर्ग सरलतासे मालूम किये जाते हैं।

कुछेक संकुल इलेक्ट्रिक-सेलोंमे एक धातुपट्टीके एवजमे दो धातुपट्टियाँ काममे लायी जाती हैं। प्रकाशके आपतनसे पहली पट्टीमेसे छूटनेवाले इलेक्ट्रोन दूसरी पट्टीके साथ टकराकर उसमेसे इलेक्ट्रोनोंको उत्पन्न करते हैं। इन द्वितीयक या गौण इलेक्ट्रोनोंकी उपज दूसरी पट्टीसे टकरानेवाले कणोके वेगके प्रमाणमे होती है। पट्टियोंके वीचके विद्युत्-पोटेन्शियलको वढ़ाकर इस वेगको भी वढ़ाया जा सकता है। कुछ धातुओके द्वारा दो गौण इलेक्ट्रोन पैदा किये जाते हैं तो कुछके द्वारा दस तक गौण इलेक्ट्रोन उत्पन्न किये जाते हैं। इस अधिकताका लाभ खगोलीय फोटो-मीट्रीमें काम आनेवाली फोटोमल्टिप्लायर ट्यूवोंके द्वारा उठाया गया है। ये ट्यूव अत्यंत सवेदनक्षम होती हैं।

प्रकाश-संवेदनक्षम उपकरणोंकी कार्यदक्षता उनकी प्रमाणक्षमतासे निश्चित होती है। सामान्य फोटोइलेक्ट्रिक-सेलमे प्रकाशके १० कण प्रवेश करते हैं तव उनमेंसे सिर्फ एक कण ही धातु-पट्टीमेंसे इलेक्ट्रोन अलग करता है। फोटोइलेक्ट्रिक-सेलकी प्रमाणक्षमता $\frac{१}{१०}$ है। यह आँक छोटा जरूर है मगर फोटोग्राफीकी तुलनामें वह १०० गुना ज्यादा है! फोटोइलेक्ट्रिक-सेलसे ज्यादा प्रमाणक्षमता दिखानेवाला उपकरण फोटोकन्डक्टिव-

सेल है। इस सेलमें लेड सल्फाईड या थालियम सल्फाईड इस्तेमाल किया जाता है जिसके कारण उसके इन्फ्रारेड प्रकाशकी प्रबलता बहुत बढ़ जाती है। सामान्य प्रकाशके लिये इस सेलकी प्रमाणक्षमता १/१० है लेकिन इन्फ्रारेड प्रकाशके लिये वह सामान्य फोटोइलेक्ट्रिक सेल से १०० से लेकर १००० गुना प्रबल हो जाती है।

फोटोकन्डक्टिव सेलकी प्रबलता अमुक प्रकाश तक मर्यादित है। इस कारण इस सेलका उपयोग निस्तेज तारोंकी जानकारी प्राप्त करनेके बजाय चमकते लाल तारा और ग्रहोंके अध्ययनके लिये ही किया जाता है।

सभी प्रकारके खगोलीय फोटोमीटर आकाशीय ज्योतियोंके प्रतिबिंब नहीं दरसा सकते। इस कारण उनके द्वारा ज्ञान होनेवाले २३ या २४ वें वर्गके अंतरिक्षीय ज्योतियोंको अगर दूरबीनसे देख न लिया जाय तो उनके अस्तित्व रातके आकाशमें विलुप्त हो जाते हैं। इस कामको ज्यादा उपकारक बनानेके लिये अब टेलिविजन (सामान्य नहीं) की सहायता लेनेका सोचा गया है। तारक्षेत्रकी वैद्युतिक छवि प्राप्त करनेवाले उपकरण 'इमेज-कन्वर्टर' कहलाते हैं। फिलहाल ये उपकरण प्रायोगिक दशामें हैं। वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि चंद सालोंमें ही वे कामके साधन साबित हो जायेंगे।

रेडियो-दूरबीन, गुब्बारे, रॉकेट और कृत्रिम चंद्र जैसे साधन हरएक वेधशालाके पास होना संभव नहीं है। इनकी अलग वेधशालायें होती हैं। रेडियो-दूरबीनके बारेमें हमने विस्तारसे कहा है इसलिये गुब्बारे, रॉकेट और कृत्रिम चंद्रोंने खगोलशास्त्रके विकासमें क्या मदद पहुँचाई है उसके बारेमें यहां बात करेंगे।

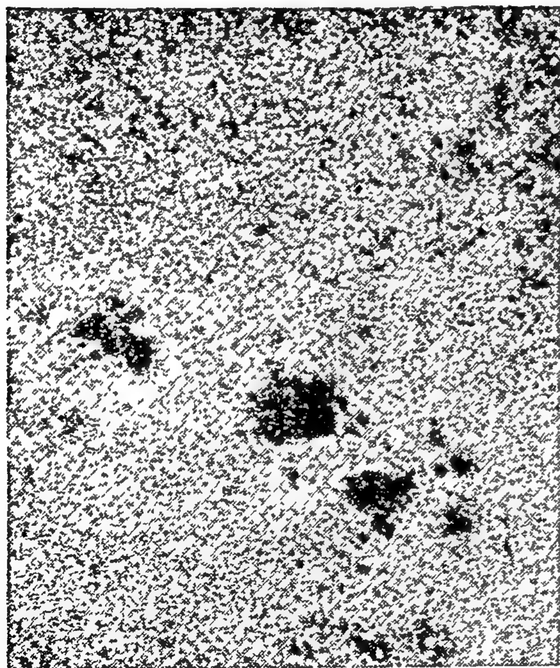
अंतरिक्षीय ज्योतियोंके निरीक्षणके लिये पृथ्वीका वातावरण विघ्नकर्ता है। वातावरण



बेलून दूरबीन

को हम पारदर्शक समझते हैं मगर वास्तवमे, दृश्य प्रकाश और कम लम्बाईवाली रेडियो-तरंगोके सिवाय सभी प्रकारकी अन्य इलेक्ट्रोनिक तरंगोके लिये वह अपारदर्शक है। इसके अलावा एक और भी अड़चन है। पृथ्वीका वातावरण अस्थिर प्रकृतिका है और इस कारण दृश्य-प्रकाशकी खिड़की के द्वारा दिखाई पड़ता आकाश बिलकुल स्पष्ट रूपका नही होता है। वातावरणमे उत्पन्न होते रहते प्रवाह और झंझावात अंतरिक्षीय छवियोंको कभी संपूर्ण नही होने देते। कई दफा तफसीलोंको वे पोंछ भी डालते हैं।

सवाल है कि क्या किया जाय? पृथ्वीके वायुमंडलको थोड़े ही मिटा सकते हैं? वातावरण बाधारूप हो तो उसकी बाधाको दूर करनेका और उपाय सोचना चाहिये। पृथ्वीके चारों ओर करीब १००० किलोमीटर तक वायुमडल है। इस वायुमंडलकी घनता पृथ्वीके नजदीक सबसे ज्यादा है। हमारा वायुमंडल ऊपरी भागमे बहुत ही पतला है। अगर हम गाढ़े वातावरणसे ऊँचे उठकर आकाशीय ज्योतियोके निरीक्षणकी तरतीब निकाले तो वह उपकारक बन सकती है। मगर आजकी स्थितिमे वह संभवित नही है। आदमी अभी तक अंतरिक्षमे रहनेका आदी नही हुआ है। इस कारण, अन्य रीतियाँ अख्त्यार करके आकाशीय पदार्थोकी जानकारी प्राप्त की जा रही है। इस तरहकी एक प्रयुक्ति बैलून-दूरबीन है।



रवादार सूर्य सपाटी

बैलून-दूरबीनमें दूरबीनको बैलूनके नीचेके हिस्सेके साथ जोड़ दिया जाता है। बैलूनकी गति-दिशा कोई भी हो दूरबीन अपना काम करती ही रहती है। पृ. २५० पर जो बैलून दिखाया गया है उसके साथ जुड़ी हुई दूरबीन ३० से. मी. वाली केमरेसे सज्ज दूरबीन है। यह गुब्बारा धरातलसे २५ किलोमीटर ऊँचे पहुँचा था और दूरबीनने वहाँसे सूर्यके फोटो खींचे थे।

उपर्युक्त दूरबीनसे ली गई सूर्यकी छवियोंमेसे एकका चित्र यहाँ दिया गया है। चित्रमे सूर्यकी रवादार सतह (मय काले कलंकोंके) दिखाई देती है। धरातलसे सूर्यके ऐसे चित्र प्राप्त करना अत्यंत मुश्किल है। उपरके चित्रसे भी ज्यादा तफसीलवाले चित्र प्राप्त करनेके लिये वैज्ञानिक लोग ९० से. मी. की दूरबीनको गुब्बारे

द्वारा अन्तरिक्षमें और भी ऊँचा भेजनेकी सोच रहे हैं। इनका विश्वास है कि सूर्यके अलावा ग्रहों, तारों और तारापिंडोंकी अच्छी छवियां इस दूरबीनके द्वारा प्राप्त हो सकेंगी।

अन्तरिक्षसे भिन्न प्रकारकी शक्तियां विकिरित होकर पृथ्वी तक पहुँचती रहती हैं। इनमें अल्ट्रावायलेट प्रकाश, क्ष-किरणें, विश्व किरणें वगैरह मुख्य हैं। इन सबके अध्ययनके लिये हमें वातावरणमें बहुत ऊँचाई पर पहुँचना चाहिये और हो सके तो उससे पार होकर उपर्युक्त किरणोंकी अवकाशीय परिस्थितियोंकी थाह लेनी चाहिये। मगर यह काम चंद मिनटों में फोटो खींचकर पूरा हो जाय ऐसा अल्पकालीन नहीं है। इस कामके लिये अन्तरिक्षमें ज्यादा समय रहकर जानकारी प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। आजकल यह काम रॉकेटों और कृत्रिम ग्रहोंके द्वारा हो रहा है। हवामानका उपग्रह, संदेश-उपग्रह, दूसरे उपग्रह और रॉकेटोंके द्वारा चांद एवम् पट व सूर्यग्रहणको प्राप्त जानकारीको लगभग मंगल, बुध, और मंगल भूमिके बारेमें और साथ-साथ उनके वायुमंडलकी बाबत जानकारी इकट्ठी की जा रही है। तारोंके चुंबकीय क्षेत्रोंको, परम स्फोटकमेंसे प्रसृत विश्वकिरणोंको और क्ष-किरणों तारोंके स्वरूप सम्बन्धी जो आज जो अनुसन्धान किया जा रहा है वह आजके विकासशील खगोलशास्त्रका सबूत है।

निकटके भविष्यमें पृथ्वीकी परिक्रमा करनेवाली उत्तमवेधशालायें अवकाशमें भेजी जायेंगी। ये वेधशालायें लंबे अरसे तक अन्तरिक्षमें घूमती रहेंगी और इनके द्वारा आकाशीय ज्योतियोंका विस्तृत अभ्यास किया जा सकेगा। सन् १९६२ में, सूर्यका अध्ययन करनेके लिये एक वेधशालाको अन्तरिक्षमें भेजा गया था। इस वेधशालाका संचालन पृथ्वीके रेडियो-संकेतोंके द्वारा करनेमें आया था। वेधशालामें रखी गई चुंबकीय पट्टी पर अंकित निरीक्षणोंको पृथ्वी तक भेजनेका काम भी रेडियोसे लिया गया था। वेधशालाका इच्छित दिशामें घुमानेका काम उसके चार कोनोंमें से बाहर निकाले गये चार वाहुल्यिन गोलाकार जेटों द्वारा हुआ था। कुछ देर तक काम करनेके बाद यह वेधशाला ठिठक गई थी।

खगोलशास्त्री उपर्युक्त वेधशालासे भी बहुत बड़ी एक उत्तमवेधशाला अन्तरिक्षमें स्थापित करना चाहते हैं। यह वेधशाला वर्णपटकी प्रबलताका अभ्यास करेगी और इस कारण उसको ६० से मी से ७० से मी की दूरबीन, स्पेक्ट्रोग्राफ, फोटोइलेक्ट्रिक-सेल वगैरहसे सुसज्जित की जायगी। पूरी वेधशालाका वजन सवा दो टनके करीब होगा।

एक ओर उपर्युक्त वेधशाला स्थापित करनेका प्रयत्न चल रहा है तब दूसरी ओर वैज्ञानिकोंका एक दल १२५ से मी दूरबीनको ३५००० किलोमीटरकी दूरी पर अन्तरिक्षमें भेजनेकी योजना बना रहा है। यह काम सेटन रॉकेट द्वारा होगा। अन्तरिक्षमें उपर्युक्त ऊँचाई पर पहुँच कर यह दूरबीन २४ घंटेमें ही पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करना प्रारम्भ करेगी। मतलब कि हमें यह दूरबीन हमेशाके लिये आकाशमें एक ही जगह दिखाया करेगी। सम्भव है सन् १९७० के अरसेमें यह दूरबीन अवकाशमें स्थापित की जाय।

लेकिन कल्पनाका दौर यहां पूरा नहीं होता है। निकटके भविष्यमें ३० से ४० टन वजनकी एक अद्यतन वेधशालाको पृथ्वीके चारों ओर घूमती रख छोड़नेका सोचा जा रहा है। वैज्ञानिकोंका एक दल, वेधशालाको घूमती रख छोड़नेके बजाय इसे चंद्र पर प्रस्थापित करना

ज्यादा ठीक समझते हैं। उनकी दलीलोंमें सचाई भी है। उपर्युक्त वेधशालामें काम करनेवाले मनुष्य रहेंगे ही, चाहे वे दो हों या पाँच। अंतरिक्षमे घूमनेवाली इस वेधशालाके यंत्रोंकी निगरानी—खास करके कोई एकाध विगड़ जाय या काम न दे उस वक्त—रखनी ही पड़ेगी। यंत्रोको ठीक-ठाक करनेके लिये वेधशाला-स्थित मनुष्यको थोड़ा-वहुत इधर उधर होना ही पड़ेगा। और ऐसा करनेमे उसका स्थान डगमगायेगा और उसके कारण वेधशालाकी गतिमे विक्षेप उत्पन्न होगा। यह विक्षेप मनुष्यके लिये जोखमी भी सावित हो। विक्षेपका यह भय कहाँ तक ठीक है वह जाननेके प्रयोग भी हो रहे हैं। अंतरिक्षयानमे से मनुष्य वाहर निकले, थोड़ा समय अंतरिक्षमे रह कर वापस यानमें आ जाय, नजदीकके यान पर चला जाय और वहाँसे साधन-सामग्री प्राप्त करके वापस आ जाय वगैरह प्रकारके प्रयोग हो रहे हैं। इन प्रयोगोंकी सफलता पर मनुष्यकी सलामती निर्भर करती है।

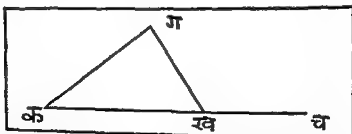
चंद्र पर वेधशाला स्थापित करनेमे कुछ अन्य प्रकारकी मुसीवते भी हैं। वीरान, रूखे-सूखे और उजाड़ चंद्र पर काम करनेवाले मनुष्यकी जीवन रक्षाका प्रश्न वहुत महत्त्वका है। चंद्र पर हवा नहीं है, पानी भी नहीं है इस कारण खानेपीनेकी और जीवनोपयोगी सारी आवश्यक साधन-सामग्रीका वंदोवस्त करना अत्यंत जरूरी होगा। संभव है कि शुरूआतमे वेधशाला अमानव हो और वादमे वह समानव हो जाय।

कुछ भी हो, एक वात निश्चित है कि हमारा जगत तेजीसे पलट रहा है। टेक्नोलोजीके विकासके साथ-साथ अनेक वातें नये रूपमे हमारे सामने प्रकट हो रही हैं। अंतरिक्ष-यात्राके यान ऐसी एक वावत है। हवा और पानीमे जिस प्रकार आसानीसे यात्रा की जाती है उसी तरह अंतरिक्षमें भी सुखद यात्रा करनेका मनुष्य सोचे तो उसकी यह कल्पना मिथ्या न मानी जायेगी। हम सवके सर्वतोभद्र विकासके हेतु यह स्वप्न साकार हो यही इच्छनीय है।

२६. अंतरिक्षीय अंतर-मापन

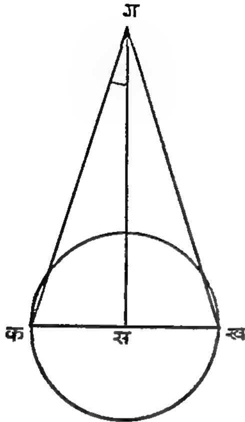
अंतरिक्षीय पदार्थोंके अंतरका खगोलशास्त्रमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। कौनसी ज्योति हमसे नजदीक है और कौनसी हमसे दूर, इसे जानकर वे सभी अवकाशमें किस प्रकार अवस्थित हैं यह हम समझ सकते हैं। कई ज्योतियोंका एकदूसरेके निकट होनेका आभास होता है मगर यथार्थमें वे हमसे कम या ज्यादा अंतर पर आयी हुई हो सकती हैं। अंतरिक्ष कितना गहरा है और उसे समृद्ध बनानेवाली ज्योतियाँ आकाशमें किस प्रकार फैली हुई हैं इसका स्पष्ट खयाल इन ज्योतियोंके अंतरोंके द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। अंतरिक्षीय ज्योतियोंके स्थान और दूरत्वकी मददसे ब्रह्मांडका स्वरूप समझा जाता है।

अंतरिक्षीय पदार्थोंके अंतर नापनेके लिये अलग-अलग पद्धतियाँ प्रयोगमें लाई जाती हैं। इनमेंसे एक पद्धति लंबन-पद्धति है। यह पद्धति ज्योतिके दिग्भेद-विस्थापन (Parallatic displacement) पर आधार रखती है। इस बातको हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करेंगे। हाथमें पेनसिल या कलमका सटी पकड़कर और हाथको दूर तक लंबा फैलाकर पेनसिलको एक दफा बायीं आंखसे और दूसरी दफा दायीं आंखसे देखेंगे तो वह पेनसिल उसके पीछेके पदार्थोंके मुकाबलेमें अपना स्थान बदलती नजर आयेगी। यह स्थानाभास (shift) नजदीककी वस्तुमें ज्यादा और दूरकी वस्तुमें कम मालूम होता है। पदार्थ बहुत दूरका हो ऐसे मौके पर उसे देखनेवाली आंखोंके बीच ज्यादा फर्क हो तो दूरके पदार्थका स्थानाभास ज्यादा स्पष्ट होता है और उसकी मददसे उस पदार्थकी हमसे दूरी मालूम की जा सकती है। अब हम उदाहरण द्वारा इस बातको समझेंगे



कल्पना कीजिये कि हम समतल भूमि पर खड़े हैं और हमसे कुछ दूर एक मकान या चट्टान है जिसकी दूरी हम नापना चाहते हैं। सबसे पहले हम एक आधार-रेखा कच खींचेंगे। बादमें क से देखने पर मकान या चट्टानकी चोटी आधार-रेखाके साथ जो कोण बनाती है उसे थियोडोलाइट की मददसे नापेंगे। मकान या चट्टानकी चोटी को ग कहें तो यह कोण

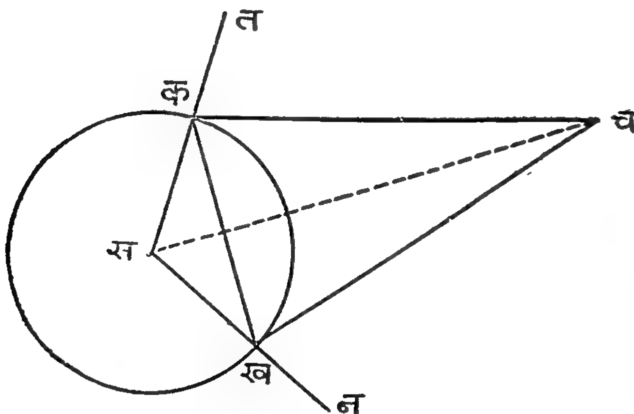
∠चकग होगा। बादमें कच रेखा पर क से २०० या ज्यादा मीटर दूरका ख स्थान पसंद किया जायेगा और वहाँसे ग का दिशांतर नापा जायगा। इन सब नापोंके आधार पर △कखग रचा जायगा और उसकी मददसे कग और खग अंतर मालूम कर लिये जायेंगे। कख पर गन लंब खीचने पर ग का कख से सीधा अंतर भी प्राप्त हो जायगा। ज़मीनकी पैमाइश करनेवाले इसी त्रिकोणमापन पद्धतिका उपयोग करते हैं



ऊपर जो उदाहरण दिया गया उसमे ग को देखनेवाली एक आँख क के आगे और दूसरी ख के आगे थी और इन दोनोके बीच काफी अंतर भी था।

उल्का या गिरते तारेकी ऊँचाई निकालनेकी पद्धति भी इसी तरहकी है। पृथ्वी पर दो अलग स्थानोंसे उल्का तेजपथके छोरोंके उन्नतांश और दिगंश नापे जाते हैं। इनके और उक्त दोनों स्थानोके बीचके दूरत्वके आधार पर उल्काकी ऊँचाई (जलकर खाक हो जानेकी) नापी जाती है।

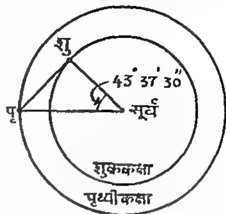
सूर्य, चंद्र और ग्रहोके अंतरोंको प्राप्त करनेके लिये उपर्युक्त दो स्थलोंके बीचकी दूरी हो सके उतनी ज्यादा रखी जाती है। पृथ्वी पर की ऐसी सबसे बड़ी दूरी पृथ्वीके विषुववृत्तीय व्यासकी है। बगलमे दी गई आकृतिमे कख पृथ्वीव्यास है, स पृथ्वीकेन्द्र है और ग आकाशीय पदार्थ है। ∠खकग और ∠कखगकी सहायतासे ∠कगख का नाप मालूम किया जाता है। इस कोणका आधा भाग ∠कगस या ∠खगस भूकेन्द्रीय लंबन है। लंबकोण △कसग के कस, ∠क और ∠कगस के नाप ज्ञात हैं और उनकी मददसे गस अंतर प्राप्त किया जा सकता है।



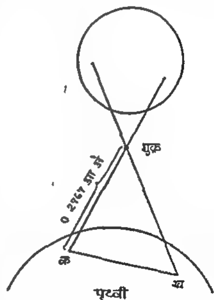
लेकिन दीखनेमे सरल इस पद्धतिका अमल उतना सरल नही है। इसकी बड़ी मुसीबत है क और ख आगेके कोणोंको बहुत ही सूक्ष्मरूपमें नापनेकी। इस कारण चंद्रकी दूरी नीचेकी पद्धति अनुसार प्राप्त की जाती है।

सबसे पहले पृथ्वी पर के दो स्थानोंको (इनमेसे एक उत्तर गोलार्धमें हो और दूसरा दक्षिण गोलार्धमे हो तो और भी अच्छा) पसंद करके उनके बीचकी दूरी ज्ञात की जाती है। बादमें

पृथ्वीके केन्द्रसे इन दोनों स्थानोंका अन्तर मालूम कर लिया जाना है। कल्पना कीजिये कि ये दो स्थान, पृ २५५ पर दी हुई आकृतिके अनुसार, क और ख हैं और म पृथ्वीकेन्द्र है। क और ख से चन्द्रका स्वस्तिक अन्तर नापा जाता है। ये अंतर ∠तकच और ∠नखच हैं। △कखम के तीनों भुजाओंकी लम्बाई ज्ञात होनेके कारण त्रिकोणके तीनों कोणोंके मान मालूम हो जाते हैं। इनकी सहायतासे ∠चकख और ∠चखक मालूम हो जाते हैं और यों △कखच की कच और खच भुजाओंके नाप निश्चित हो जाते हैं। आखिरमें मख, कच और ∠मकच की मददसे △मकच की मच भुजाकी लम्बाई मालूम कर ली जाती है। यह अंतर (मच) चन्द्रका पृथ्वी के केन्द्रसे दूरत्व है।



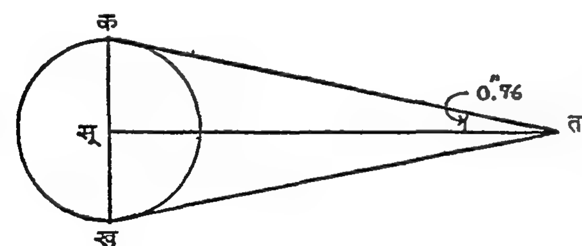
मगर यह पद्धति सूर्यके अन्तरको नापनेके काम नहीं आती है। ∠चकख और ∠चखक को सूक्ष्म रूपमें मालूम करनेमें कख रेखा बहुत ही कम पड़ती है। सूर्यकी दूरी प्राप्त करनेके लिए शुक्र ग्रहका उपयोग किया जाता है। कई दफा इरोस नामके लघु ग्रहका भी उपयोग किया जाता है। शुक्र और पृथ्वीके कक्षातल एकसे नहीं हैं। इस कारण पृथ्वी, शुक्र और सूर्य सामान्यतः सीधी रेखामें नहीं आते हैं। फिर भी अपवाद रूप प्रसंगोंमें वे तीनों सीधी रेखामें आ जाते हैं और ऐसे मौके पर शुक्रको काले बिंदुकी तरह सूर्यबिंब पर सरकता हुआ हम देख पाते हैं। यह प्रसंग अधिक्रमण कहलाता है। अधिक्रमणके समय, पृथ्वीके दो अलग-अलग स्थानोंसे शुक्रका निरीक्षण करके उसका पृथ्वीसे अन्तर (उपर्युक्त चन्द्र-अन्तरकी पद्धतिसे) नापा जाता है और उस अन्तरकी सहायतासे सूर्यका अन्तर मालूम कर लिया जाता है। ऊपर जो आकृति दी गई है उसमें मान लीजिए सू, शु और पृ अनुक्रमसे सूर्य, शुक्र और पृथ्वी है। साथ-साथ यह भी मान लीजिये कि शुक्रका यह स्थान उसके परम इनान्तर (सूर्यसे अन्तर) का है। परम इनान्तरके समय शुक्र पृथ्वी-क्षितिजसे सबसे ज्यादा ऊँचा दिखाई देता है। शुक्रका परम इनान्तर ∠शुसूपृ ४३° ३७' ३०" है। परम इनान्तरके समय ∠पृशुसू ९०° होता है। पृथ्वी-सूर्य अन्तरको आकाशीय इकाई मानकर त्रिकोणमितिकी सहायतासे △पृशुसू के हल करने पर सूर्य-शुक्र अन्तर ०.७२३३



आकाशीय एकक होता है। पृथ्वी, शुक्र और सूर्य सीधी रेखामें आनेके समय पृथ्वी-शुक्र अंतर (१–०.७२३३) आकाशीय एकक=०.२७६७ आकाशीय एकक होता है। अधिक्रमण समयके शुक्रके अंतरके साथ इस अंतरकी तुलना करके सूर्य-पृथ्वीके बीचका आकाशीय अंतर (किलोमीटरमें) मालूम कर लिया जाता है। (सरलताके लिये, शुक्र और पृथ्वीकी कक्षायें यहाँ वृत्ताकार दिखाई गई हैं।)

तारोंके अंतर नापनेके लिये लंबनका ही सीधा उपयोग किया जाता है। और इसके लिये जो आधार-रेखा पसंद की जाती है वह बहुत ही बड़ी है। यह आधार-रेखा पृथ्वीकी कक्षाके आमने-सामनेके दो बिंदुओंके बीचका सबसे ज्यादा अंतर है। सूर्यके इर्द-गिर्द घूमनेवाली पृथ्वी ता. १ जनवरीको क के आगे और ता. १ जुलाईको ख के आगे है ऐसी कल्पना कीजिये। अब कख पृथ्वीकक्षाका व्यास है और उसकी लम्बाई करीब ३० करोड़ किलोमीटर है। अब मान लीजिये कि त हमसे नजदीकका कोई तारा है। क और ख स्थानोंसे देखने पर, उस तारेका आकाशीय स्थान दूरस्थ अंतरिक्षीय ज्योतियोंकी पृष्ठभूमि पर सरकता दिखाई पड़ेगा। और यों उसका लंबन ∠ कतसू निश्चित किया जा सकेगा। वास्तवमें यह कोण बहुत ही सूक्ष्म नापका होता है। हमसे अत्यंत नजदीकके तारेका लंबन ०.७६ विकला है। सुविधाके कारण आकाशीय अंतरोंको अंतरिक्षीय एककके (Astro-unit) रूपमें या पार्सेकके रूपमें दर्शाया जाता है। लंबन १ विकलाका हो उस अंतरको १ पार्सेक अंतर माना गया है। यह अंतर ३.२६ प्रकाशवर्ष या २०६२६५ आकाशीय एककके बराबर है। पार्सेक अंतर लंबनके व्यस्त रूपमें पलटता है इस कारण आकाशीय अंतरोंको पार्सेकके रूपमें आसानीसे दिखाया जा सकता है। जरूरत पड़ने पर उन्हें आकाशीय इकाईके रूपमें भी दिखाया जा सकता है। समीप तारे (Proxima) का लंबन ०.७६ विकला है: इस कारण उसका पार्सेक अंतर १ ÷ ०.७६ = १.३१५ पार्सेक है। यह अंतर ३.२६ प्रकाशवर्ष ÷ ०.७६ = ४.२४ प्रकाशवर्ष या २,७१,४०० आकाशीय एककके बराबर है।

तारोंके अंतर निकालनेके लिये उपयोगमें ली जानेवाली लंबन-पद्धति ३० पार्सेक या १०० प्रकाशवर्षके अंतर तक ही काम आती है। अंतर ज्यों-ज्यों बढ़ता है, मापे जानेवाले कोणोंकी चौकसी कम होती जाती है। बहुत-से तारे हमसे अत्यंत दूर हैं। इन तारोंके अंतर अलग पद्धतिसे निकाले जाते हैं। एक पद्धति है दृश्य निरपेक्ष वर्ग-पद्धति। किसी एक तारेको ३२.६ प्रकाशवर्ष (१० पार्सेक) की दूरीसे देखने पर उसका जो तारक वर्ग दिखाई पड़े वह उस तारेका निरपेक्ष वर्ग है। तारे के दृश्य वर्ग द और निरपेक्ष वर्ग न के आधार पर द – न = ५ लाघवांक अ–५ का हिसाब करके उक्त तारेका अंतर नापा जाता है। यहाँ अ पार्सेक अंतर है।



प्रश्न होगा निरपेक्ष वर्ग कैसे मालूम किया जाय?

हरेक विश्वमें रूपविकारी तारोंका अस्तित्व है। ध्रुवपर्वा प्रकारके और र र वीणा रूप-विकारी तारोंके निरपेक्ष वर्गोंका उनके रूपविकारोंके साथका संबंध विख्यात खगोलशास्त्री मिस लीविटने खोज निकाला है। हमसे अत्यंत करीबका ताराविश्व मेगेलन विश्व है। उसमें ध्रुवपर्वा प्रकारके बहुत तारे हैं। वे सभी एक-से तेजस्वी नहीं हैं। कुछ ज्यादा तेजस्वी हैं तो कुछ कम। मतलब यह है कि उनके दृश्य वर्ग अलग-अलग हैं। तारे अगर हमसे कम-ज्यादा अंतर पर हों तो उनके दृश्य वर्गोंमें दिखाई पडनेवाला फर्क उनके अंतरके कारण ही माना जायेगा। मगर, यहाँ (मेगेलन विश्वमें) सभी तारे हमसे एक-सी दूरी पर हैं, और यों उनके दृश्य वर्गोंके फर्क का कारण उनके अंतरके कारण नहीं बल्कि उनके निरपेक्ष वर्गोंका है। निरपेक्ष वर्गका, तारोंके रूपविकार समयके साथ मेल बिठाने पर मालूम हुआ कि उन दोनोंके बीच निश्चित प्रकारका संबंध मौजूद है और इस संबंधको आलेखके रूपमें स्पष्ट किया जा सकता है। तारोंके निरपेक्ष वर्ग जो अन्य पद्धतियों से प्राप्त थे उनका भी यहाँ उपयोग करनेमें आया और उपर्युक्त आलेखको निरपेक्ष वर्ग-कालका आलेख बनाया गया। ध्रुवपर्वा प्रकारके तारोंकी एक विशिष्टता यह है कि तारा जितना ज्यादा तेजस्वी उतना उसके रूपविकारका समय भी ज्यादा अरसेका होता है। आलेखमें (पृ २५९ देखिये) रूपविकारका समय दिया गया है। उसकी मददसे तारेका निरपेक्ष वर्ग मालूम करके उस तारेका हमसे अंतर प्राप्त हो सकता है। मंदाकिनी विश्वके बहुतसे रूपविकारी तारोंके अंतर इसी पद्धतिसे मालूम कर लिये गये हैं। इतना ही नहीं दूसरे ताराविश्वोंमें दिखाई पडनेवाले उपर्युक्त प्रकारके रूपविकारी तारोंकी मददसे उन ताराविश्वोंके हमसे अंतर भी मालूम हो सके हैं। अपने ताराविश्वकी भुजाओंमें अवस्थित रूपविकारी तारोंने भी उसी प्रकार उन विश्वभुजाओंका और उनके तारोंका अंतर प्राप्त करनेमें हमें सहायता दी है।

निरपेक्ष वर्ग मालूम करनेकी रूपविकारी तारोंकी पद्धति जटिल और ज्यादा मेहनतकी अपेक्षा रखनेवाला काम है। सबसे पहले फोटोग्राफकी सहायतासे रूपविकारी तारेकी खोज निकालना पडता है। तारेकी प्राप्तिके बाद करीब १०० दिवस तक उसकी छवियाँ ली जाती हैं और उनके आधार पर तारा सचमुच रूपविकारी है या नहीं वह निश्चित किया जाता है। तारेके रूपविकारी होनेका साबित होनेके बाद उसके दृश्य वर्ग और रूपविकारके समय चौकस कर लिये जाते हैं। और उनकी सहायतासे तेजात-काल-आलेखसे उस तारेका निरपेक्ष वर्ग निश्चित किया जाता है। बादमें ५ लाघवाक अ=५+व-न का उपयोग करके उसका पार्सेक अंतर मालूम कर लिया जाता है।

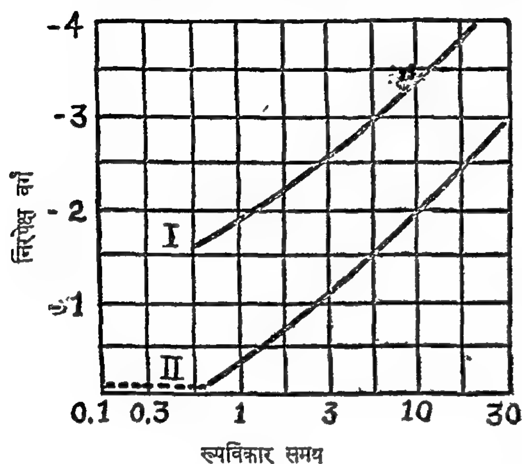
उपर्युक्त पद्धतिसे २० लाख प्रकाशवर्ष तकके अंतरिक्षीय अंतर प्राप्त हो सकते हैं।

मगर यह अंतर हमसे एकदम करीबके ताराविश्वोंका है। दूसरे ताराविश्वोंके अंतर कैसे प्राप्त होते हैं?

हमसे दूसरे ताराविश्वोंके तारोंको एकदूसरेसे अलग नहीं देखा जाता है और यों ध्रुवपर्वा रूपविकारी तारेकी पद्धतिसे यहाँ काम नहीं निकलता है। ऐसे मौकों पर एक अलग तरकीब

काममें लायी जाती है। यह पद्धति एक ही प्रकारके सारे ताराविश्वोंको एकसे निरपेक्ष वर्गवाले माननेकी है। ताराविश्वोंके निरपेक्ष वर्गो और दृश्य वर्गोकी सहायतासे उनकी हमसे दूरी मालूम की जाती है। यह पद्धति वास्तवमे पूर्णतावाली नही है मगर सांख्यिकीय (Numeric) ढंगसे यथार्थ है।

हमने देखा कि ५ लाघवांक अ=५+द–न है और यों लाघवाक अ= $\frac{५+द-न}{५}$ =१+०.२ द– $\frac{न}{५}$ है।



सामान्य ताराविश्वोके लिये न=–१५ माना गया है। यों लाघवाक अ = १+०.२ द+३= ४+०.२ द होता है। यहाँ अ पार्सेक है। उसे प्रकाश वर्षमे पलटने पर उपर्युक्त सूत्र लाघवाक प्र=०.२ द+४.५१ हो जाता है।

५०० से. मी. वाली माउन्ट पालोमरकी दूरवीनसे जिन दूरतम ताराविश्वोके फोटो प्राप्त हो सके है उनके दृश्य वर्ग २१ है। और यो उनके हमसे अंतर लाघवांक प्र= ०.२×२१+४.५१=४.२+४.५१=८.७१ से मिलता है।

२१के वर्गके ताराविश्वोंका हमसे अंतर ५ अरव प्रकाशवर्षका है।

ताराविश्वोंके अंतर मालूम करनेकी उपर्युक्त पद्धतिको वर्णपटीय लंवन-पद्धति कहते हैं। यह पद्धति तारोंके अतर खोजनेमे भी काम आती है। मिसालके तौर पर अभिजित तारे की दूरी क्या है वह जाननेका हम प्रयत्न करेगे।

अभिजित अ वर्णपटका ०.१ दृश्य वर्गका तारा है।

यह मध्य-क्रम प्रकारका तारा है। मध्य-क्रम प्रकारके अ वर्णवर्गके तारोंका औसतन निरपेक्ष वर्ग ०.६ है।

अंतरको लंवनके रूपमे दर्शानेवाला सूत्र ५ लाघवांक ल=द–न–५ है। इस हिसावसे अभिजितका लंवन ०.१२६ विकला ठहरता है।

दूरी जाननेकी अन्य पद्धतियाँ वर्णविश्लेपीय लंवन और रक्त विचलनकी हैं।

वर्णविश्लेपीय पद्धतिमें वर्णरेखाओंकी प्रवलताकी तुलना की जाती है। ताराओके कम-ज्यादा तेजांकके अनुसार एक ही प्रकारकी वर्णरेखा की प्रवलता कम या ज्यादा दिखाई देती है। एक मिसाल द्वारा इस वातको स्पष्ट करेगे। रोहिणी और ६१ हंस दोनों क वर्णवर्गके तारे हैं। उनकी वर्णपट रेखाये ४०७७ एंग्स्ट्रोम और ४२१५ एंग्स्ट्रोम (दोनों स्ट्रोन्सियम वातुके कारण) तरंग लम्वाई की हैं। इन दोनों रेखाओंमेसे रोहिणीकी रेखाये प्रवल हैं मगर हंसकी कमजोर। इससे

विपरीत बात ४२२७ एंग्स्ट्रोम (कैल्सियम धातु) की है। इन सभी वर्णरेखाओंकी प्रबलताकी या मदताकी मददसे तारोंके निरपेक्ष वर्ग मालूम हो जाते हैं और उनकी सहायतासे तारोंकी हमसे दूरी ज्ञात हो जाती है। यह पद्धति २० पार्सेकसे ज्यादा अंतरवाले तारोंके दूरत्वको मालूम करनेमें काम आती है।

रक्त विचलन पद्धति ताराविश्वोंके अंतर प्राप्त करनेके लिये इस्तेमाल की जाती है। ताराविश्वकी दूरी जाननेके लिये सबसे पहले ताराविश्वका हमसे दूरगमनका वेग निश्चित रूपमें मालूम कर लिया जाता है। बादमें हर दस लाख पार्सेकके अंतर पर ताराविश्वके वेगमें ८० किलोमीटरकी वृद्धि होती रहनेका हिसाब लगाकर ताराविश्वका अंतर खोजा जाता है। हर सेकंड २२,५०० किलोमीटरका वेग दर्शानेवाला ताराविश्व हमसे एक अरब प्रकाशवर्षकी दूरी पर है इस बातको ताराविश्वोंके अंतर ज्ञात करनेकी आधार-शिला माना जाता है।

आखिरमें राडार-पद्धतिका भी उल्लेख करें। रेडियो दूरबीनके द्वारा सूर्यमंडलके ग्रह, उपग्रह वगैरह तक प्रबल रेडियो-संकेत भेज कर उसके परावर्तनको बादमें ग्रहण किया जाता है। संकेतको गन्तव्य-स्थान तक पहुँचनेमें और परावर्तनके बाद हम तक वापस आनेमें जो कुल समय बीतता है उसीके आधार पर अंतरिक्षीय पदार्थका हमसे अंतर मालूम किया जाता है। राडार पद्धति हमसे बहुत नजदीकके आकाशीय पदार्थोंके लिये कामकी है। इस पद्धतिसे चंद्र, बुध, शुक्र, मंगल और गुरुके सही दूरत्वकी यथार्थता जाँची गई है।

२७. संशोधकी पगडंडी

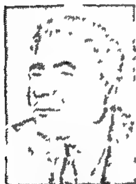
सूर्यके उदय और अस्त दिनरात वनाते हैं तो चंद्रकी कलाये महीना। ऋतुओंके हिसाव से वर्षकी लम्बाई मालूम होती है। इन सभीके कार्यकारणोंकी चर्चामीमासा करनेवाले आदि मानवोंने स्वाभाविकतया शोधके मार्ग पर चलना शुरू कर दिया था। वादमें इन वातोंको एकदूसरेके साथ जोड़कर उनका पारस्परिक संवंध ढूंढ़नेके प्रयत्नमें वहुत-सी समस्यायें खड़ी होती गयी। इन समस्याओंने मनुष्यकी वुद्धिशक्तिको वहुत-वहुत कसा; इस हद तक कि पृथ्वी अपनी धुरीके इर्दगिर्द घूमती रहती है इस तथ्यका आविष्कार करनेमें अनेक हजार वर्षका समय लगा। सूर्य, चंद्र, तारा, उल्का, धूमकेतु वगैरहके स्वरूपोंके आधार पर उनके आंतरिक रहस्य खोजनेके प्रयत्नोंमें, विज्ञानसे सुसज्ज मनुष्योंको भी वहुत लंवे अरसे तक विकट समस्याओंका मुकाविला करना पड़ा है। प्रतिदिन नूतनता प्रकट करनेवाले सृष्टिका चिरंतन तत्त्व खोजनेमें प्रयत्नशील मानव द्वारा जो भौतिक नियम स्थापित किये गये हैं वे उसकी अनेक सदियोंकी कठिन तपश्चर्याका फल है। केवल आँखों पर आधारित पुराने जमानेका वेधकार्य आधुनिक युग जैसा यांत्रिक सूक्ष्मतावाला न था फिर भी वह उस समयके हिसावसे वहुत ऊँची कोटिकी प्रतिभा दर्शानेवाला सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त उस वेधकार्यसे विकसित गाणितिक खगोल-शास्त्रके कारण पुरानी मान्यताओंका संशोध होकर नवीन तथ्योंका आविष्कार हुआ है। इस प्रकारकी प्रस्थापित नयी प्रणालियोंमें प्रकाशकी सेवा अत्यंत महत्त्वकी है। प्रकाशका वेग परिमित है और दूरवीनोंके द्वारा अंतरिक्षस्थित ज्योतियोंकी दूरी नापी जा सकी है ये वातें खगोल-शोधके अपने विशिष्ट अंग हैं। दूरवीनोंके आविष्कारके वाद कई अन्य यंत्रोंका भी आविर्भाव हुआ और इन सभीके द्वारा विश्वकी जो झाँकी हमें प्राप्त हुई उसने हमारे ज्ञानकी और दृष्टिकी मर्यादाको पृथ्वीके और सूर्यमंडलके क्षितिजोंको पार करके अंतरिक्षकी दूरकी सिवान तक पहुँचा दिया है।

यह सव होते हुए भी अनेक वातें ऐसी थीं जिनकी गुत्थियाँ नहीं सुलझ पायी थीं। सूर्य अंतरिक्षस्थित तारोंमें सरकता है यह वात स्पष्ट हुई थी मगर पृष्ठभूमिवाले इन तारोंकी कोई गति है या नहीं उसकी खोज करना वाकी था। तारोंके और ताराविश्वोंके अंतरोंको चौकसीसे प्राप्त करना भी वाकी था। उस कामको वेगवान वनाया फोटोग्राफीने। फोटोग्राफीके कारण यंत्रों द्वारा नापे गये अंतरिक्षीय अंतरोंमें आनेवाली कसरको ०.००८ विकला की मर्यादा तक सीमित किया जा सका। कई किस्सोंमें यह कसर केवल ०.००१ विकला तककी ही वन पड़ी।

तारोंके अक्षभ्रमण और निजगतिके प्रश्न भी फोटोग्राफीकी सहायतासे आसानीसे हल होने लगे थे। केप्टन डवल्यु एवनीने सवसे पहले घोषित किया कि तारे अपनी धुरियोंके इर्द-गिर्द

घूमते हैं। उसकी इस कल्पनाका आधार था वर्णपटीय रेखाओंकी स्थूलता। मगर एडनीकी बातको दूसरे वैज्ञानिकोंका समर्थन प्राप्त न हो सका। सन् १९२२ में हेलेरीग नामके एक विद्वानने अलगूल प्रकारके रूपविकारी तारोंके ग्रहणोंका अभ्यास करते समय तारोंके अक्षभ्रमण का भी गहराईसे अध्ययन किया। बादमें उसने घोषित किया कि एडनी द्वारा सोचा गया और प्रोफेसर फ्रेन्क श्लेसिंजर द्वारा अनुमोदित तारोंका अक्षभ्रमण सत्य बात है।

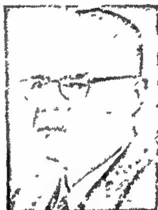
तारोंकी निज गतिका प्रश्न पृथ्वीकी विषुवायन गतिके साथ संबंधित है और इस कारण उसे अलग स्पष्ट रूपमें समझनेमें बहुत समय लगा है। फिर भी उसकी गुत्थीको सुलझानेमें



आम्बार्तसुमियन



जे सी कादम्ब



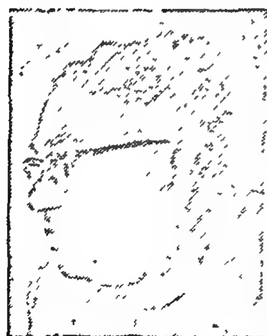
आटो स्ट्रूव

खगोलविदोंने जो जेहमत उठायी है वह प्रशंसापात्र है। तारोंके अंतरिक्षीय स्थानोंका और उनकी निजगतियोंका तारापत्रक तैयार करनेमें बीस खगोलशास्त्रियोंने पूरे तीस वर्ष सतत काम किया था और १७०० पृष्ठोंके महाग्रन्थको तैयार करनेमें, उस समय, ३५ लाख रुपयोंका खर्च हुआ था।

वर्णपट पैदा करनेवाले वर्णविश्लेषकका काम भी अत्यंत महत्त्वका है। वर्णविश्लेषकके कारण तारोंके वर्ण, तेजस्विता, आयतन वगैरह बातोंके बारेमें बहुत-सी नई जानकारी प्राप्त हुई। साथ साथ यह भी स्पष्ट हुआ कि तारोंके और ताराविश्वोंके वर्णपट एक-से नहीं हैं, वे एक दूसरेसे कुछ भिन्न हैं। इस भिन्नताका मूल है विश्वोंके तारासमूह। वर्णपटकी उपर्युक्त अल-गताकी छानबीन करनेका काम वाल्टेर बादेने किया। मंदाकिनी विश्वमें आयी हुई निहा-रिकाओंको और धूम्रपिटोंके रूपमें दिखाई पड़नेवाले तारा विश्वोंको एकदूसरेसे पृथक समझकर उनके दूरत्वका सही सयाल वह पा सका। मिस लीविटने इसी पगडंडी पर आगे चलकर, तेजविकारके आधार पर रूपविकारी तारोंके समय और वर्ग (Period & Magnitude)का संबंधसूत्र खोजा और उसकी सहायतासे दूर-सुदूरके ताराविश्वोंका हमसे अंतर नापनेमें सफलता मिली।

वर्णपटका अभ्यास करके लुइटनने घोषित किया कि व्याधके साथी तारेका रंग श्वेत है। छोटा साथीतारा सफेद क्यों इस प्रश्नने खगोल-शोधकार्यमे खलबली मचा दी। और उसीकी बदौलत वामन तारोंके बारेमें बहुत-सा अन्वेषण कार्य हुआ। सर आर्थर एडिंग्टनने कहा कि श्वेत वामन तारोंका द्रव्य-घनत्व बहुत ज्यादा होना चाहिये मगर अपने इस अनुमानकी कोई बुनियाद वह प्रस्तुत न कर सके। विशेष घनत्वके कारणोंकी खोजमे बहुत वर्ष बीत गये। ख्यातनाम भारतीय वैज्ञानिक डॉ. चंद्रशेखरने इस विषयमे अधिक गवेषणा की है और उसीके आधार पर तारा जन्मसे लेकर तारेकी मृत्यू तककी सिलसिलेवार कथा हमारे सामने प्रस्तुत हो सकी है। इसके अतिरिक्त 'ज्यादा द्रव्यसंचयवाले तारेका व्यास कम होता है'—वाली अद्भुत बातको 'किसी वामनतारेका द्रव्यसंचय सूर्यकी द्रव्यसंपत्तिसे अधिकसे अधिक १.४४ गुना ही हो सकता है' के साथ जोड़कर उसे महत्त्व प्रदान किया है। १.४४ गुनासे ज्यादा द्रव्यमानवाला वामन तारा टूट जाता है इस बातकी प्रतीति कर्कनिहारिकासे मिल रही है। वैज्ञानिक भाषामे १.४४ द्रव्यमान अंकको 'चंद्रशेखर अंक' कहनेमे आता है। अंतरिक्षमे स्फोटक तारोंकी बहुतायत है मगर परम स्फोटक तारे अत्यंत कम क्यों हैं इसका रहस्य भी डॉ. चंद्रशेखरके सिद्धांत द्वारा स्पष्ट हो सका है।

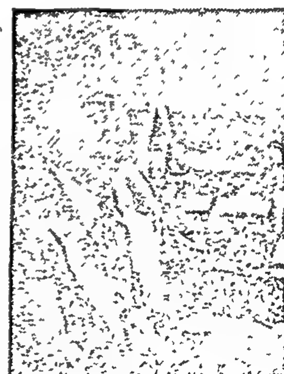
तारोंकी आभ्यंतरिक संरचना समझनेके लिये उनके व्यास और उनके आंतरिक ऊर्जा-उद्‌गमोंकी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। तारे प्रकाशबिंदु दीखते हैं इस कारण उनके व्यास मालूम करनेका काम बहुत मुश्किल है। मिचेलसनने इस कामका बीड़ा उठाया और माउन्ट विलसन २५० से. मी. वाली वेधशालाकी दूरबीनके साथ ६०० से. मी. लम्बा इन्टर-फेरोमीटर लगाकर उसने आर्द्रा (Betelguege) तारेका व्यास नापा। उसके बाद थोड़े और तारोंके व्यास नापे गये मगर यह पद्धति केवल विराट तारों तक सीमित रही। फलस्वरूप



डॉ. चंद्रशेखर



बी. जे. ब्वेरिय



हार्लो शेप्ली

अन्य तारोंकी दूरी नापनेके लिए अन्य पद्धतियाँ ईजाद की गयीं और यों अंतरमापनकी समस्या हल होती गई।

तारोंके अभ्यन्तरका सर्वांग कार्य विशेष करके सर आर्थर एडिंग्टनकी देन है। इस कामके लिये उन्होंने तारोंके तापमान, परमाणुओंके आयनीकरण (Ionization) और विकिरण द्रव्यमानका पारस्परिक संबंध जोड़ा था और उसके आधार पर सूर्यका द्रव्यमान २×१०^{२७} टन होनेका घोषित किया था। तारोंके द्रव्यमान मालूम करनेका एक सूत्र सन् १९१८ में हर्ट्ज़स्प्रगने सुझाया। वान मानेन और अन्य खगोलवेत्ताओंने भी अपने शोधकार्य प्रकट किये हैं। तारेकी ऊर्जा-निर्गमनकी बात तारेके द्रव्यमानसे संबंधित है। तारामें ऊर्जा किस प्रकार उत्पन्न होती है उसका समीकरण बीथी नामके खगोलशास्त्रीने प्रस्तुत किया है, जो 'बीथी कार्बन चक्र' के नामसे प्रसिद्ध है। इसी प्रक्रियाका विझेकरने भी स्वतन्त्र रूपमें आविष्कार किया है।

प्रोटोन प्रतिक्रियाका आविष्कार भी कार्बन प्रक्रियाके साथ साथ हुआ है। इन दोनों पद्धतियोंके सहारे सूर्य जैसे सामान्य और व्याध जैसे अति गरम तारोंको पहचाना गया है। इसके अतिरिक्त अपने मंदाकिनी विश्वमें दो किस्मकी तारावस्तियोंके होनेका भी पता चला है। लाल तारे वृद्ध हैं और नीले तारे युवा तारे हैं यह खोज वाल्टेर बाडेने की है। वामन और विराट ताराके विशेष भेदोंको परखनेका काम हेनरी रसेलने किया है। वर्णपट और तेजस्विताके बीच संबंध स्थापित करके वामन ताराकी आपसी विभिन्नताओं पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है।

तारोंके भीतरका हाइड्रोजन हेलियममें परिवर्तित होकर गर्मी और ऊर्जा देनेका काम करता है। यह भी ज्ञात हुआ है कि ऐसे समय अस्थायी नाइट्रोजन १३ केवल दस मिनटमें टूट कर कार्बन १३ को जन्म देता है। इसके सिवा अस्थायी ऑक्सीजन १५ उपर्युक्त समयसे भी बहुत कम समयमें–२ १ मिनटमें टूटकर नाइट्रोजन १५ में बदल जाता है आदि अन्य बातें भी प्रकट हुई हैं। आश्चर्य इस बातका है कि नाइट्रोजन १४ के साथ हाइड्रोजन संलग्न होकर ऑक्सीजन १५ बननेमें ४० लाख वर्षका समय लगता है मगर वही ऑक्सीजन १५ केवल २ मिनटमें टूटकर नाइट्रोजनमें परिवर्तित हो जाता है।

तारोंमें उत्पन्न होने आन्तरिक विक्षोभोंके कारण आयनीकरणका काम बहुत जोरोंसे चलता है। तारा सारे आरसे कवचावृत्त हो जाने पर भी यह काम बंद नहीं होता है। आन्तरिक विक्षोभोंकी प्रबलता उनके उत्पन्न होनेके बाद कुछ समय तक टिकती है। प्रबलता मंद होने पर नये विक्षोभ उत्पन्न होते हैं और पुराने नष्ट हो जाते हैं। तारोंके आभ्यन्तरिक विक्षोभोंकी तरह आन्तर्तारकीय बादलोंमें भी आन्तरिक विक्षोभ उत्पन्न होते और नष्ट होते रहते हैं। आन्तर्तारकीय बादलोंके विक्षोभोंके आविष्कारक डॉ चन्द्रशेखर हैं। उनका यह आविष्कार भारतके अन्य ख्यातनाम वैज्ञानिक मेघनाथ साहाके आयनीकरण सिद्धांतके आविष्कार जैसा ऊँची कोटिका शोधकार्य है।

ब्रह्मांडका उत्पत्तिवाद आज तक भी न सुलझी हुई एक टेढ़ी गुत्थी है। अनुत्तरित इस प्रश्नका क्षेत्र 'पृथ्वी कैसे जन्मी होगी' से लेकर 'सूर्य, तारे, विश्व, ब्रह्मांड, परमाणु वगैरहकी उत्पत्ति कैसे हुई होगी' तक विस्तृत है। 'पृथ्वी विश्वके केन्द्रमें नहीं है' यह साबित होनेके बाद 'पृथ्वीका जन्म सूर्यमेंसे हुआ है' इस बातने बहुत जोर पकड़ा। उसके साथ-साथ 'सूर्य ही

विश्वका केन्द्र है' यह विचार भी जोरों पर रहा। मगर धीरे-धीरे इन बातोंका सफाया हो गया। हार्लो शेप्लीके आविष्कारोंने हमे अकेन्द्रीय ब्रह्माड तक अब पहुँचा दिया है।

'ताराविश्व अक्षभ्रमण करते हैं' यह ऊर्टका अन्वेषण है तो 'दूरके ताराविश्व नजदीकके ताराविश्वोंकी अपेक्षा अतिवेगसे अंतरिक्षमें गति कर रहे हैं' वह हवल और ह्युमेसनका अन्वेषण है। मगर यह सब मालूम करने पर भी ब्रह्माड कहाँ तक फैला हुआ है उसका स्पष्ट खयाल हम आजतक भी नहीं पा सके हैं। अजीब बात यह मालूम हुई है कि नग्न आँखसे या दूरबीन से देखे गये अंतरिक्षीय ज्योतियोंके फैलाव यथार्थमें अधिक हैं यह रेडियो-दूरबीनोंने बतलाया है। ऐसी और भी आश्चर्यभरी बातें प्रकट हुई हैं। सूर्यका वातावरण ठेठ पृथ्वी तक पहुँचता है यह अब मानी हुई बात बन गई है। ताराविश्वोंसे हम प्रकाश ही पाते हैं-वाली बातमें आवाज और प्रखर गामा किरणें मिलनेकी बातकी अब वृद्धि हुई है। ये सारे आश्चर्य आइन्स्टीनके 'द्रव्यका ऊर्जामें रूपांतर होता है' वाले सिद्धांतकी तरह महत्त्वपूर्ण हैं। समयकी शुरूआत कबसे हुई होगी इस प्रश्नका इन बातोंके साथ गहरा नाता है। अधिकतर वैज्ञानिकोंका यह मत है कि ब्रह्मांडकी आजकी उम्र १० से १५ अरब सालोंकी है। नया अन्वेषण इस मर्यादाको लांघ-कर ब्रह्मांडकी आजकी उम्रका अंदाजा ७० से ७५ अरब सालोंका लगाता है। यह सारा प्रश्न 'ब्रह्मांड विकसित है कि स्थिर स्थितिवाला है' उससे संबंधित है। रूसके एक वैज्ञानिकने घोषित किया है कि ब्रह्मांडकी हस्तीके शुरूआतके १५ अरब वर्ष तक ब्रह्मांड विकसित होता रहा था मगर तबसे लेकर आज तक वह स्थिरत्वकी स्थितिमें है। रूसी वैज्ञानिककी इस बातसे सभी खगोलशास्त्रियोंका सहमत होना असंभवित है फिर भी हमें श्रद्धा रखनी होगी कि सर आर्थर एडिंग्टनने विश्वउत्पत्ति और विश्वविलयका जो प्रश्न हमारे सामने रखा था वह रेडियो-दूरबीनोंकी सहायतासे अब हल होगा। भारत सरकार उटाकामंडके पास एक बड़ी रेडियो-दूरबीन स्थापित करने जा रही है यह खबर आनंदजनक है।

आखिरमें, उपर्युक्त सारी बातोंके साथ क्वासारों, पल्सारों, नूतन तारकगुच्छों और क्ष-किरण ताराविश्वोंके रहस्य पानेका हम विश्वास रखें और कामना करें कि न्यूटनसे नार्लिकर तक चर्चित 'गुरुत्वाकर्षण' उसके सही अर्थमें गुरुत्व प्राप्त करे और ब्रह्मांडकी सिवान और भी ज्यादा कल्याणकर हो।

परिशिष्ट – १

स्थानीय विश्वजूथ

तारा विश्व	कौनसे तारा मण्डलमें	प्रकार	अंतर प्रकाशवर्ष	निरपेक्ष वर्ग
१ मंदाकिनी विश्व	—	$स_{ख}$	—	–१८०
२ मेगेलन गुरुविश्व	असिमीन	अ, $स_{द}$	१,४६,०००	–१७५
३ मेगेलन लघुविश्व	चषवाव	अ	१,४६,०००	–१६०
४ शिल्पी	शिल्पी	अ	४,६०,०००	–१३२
५ भट्ठी	भट्ठी	अ	९,२०,०००	–१३२
६ एन जी सी ६८२२	धनु	अ	१०,४०,०००	–१२५
७ एन जी सी १४७	देवयानी	अ	१३,२० ०००	–११८
८ एन जी सी १८५	देवयानी	अ	१३,२०,०००	–१२१
९ आइ सी १६१३	तिमि	अ	१८,००,०००	–१२५
१० मे ३३	त्रिकोण	$स_{ग}$	१८,००,०००	–१६३
११ आई सी १०	शर्मिष्ठा	$स_{ग}$	२०,००,०००	–११५
१२ आई सी ३४२	जिराफ	$स_{ग}$	२०,००,०००	—
१३ एन जी सी ३९४६	वृषपर्वा	—	२०,००,०००	–१०५
१४ मे ३१	देवयानी	$स_{ख}$	२२,००,०००	–१९०
१५ मे ३२	देवयानी	$अ_{२}$	२२,००,०००	–१४५
१६ एन जी सी २०५	देवयानी	$अ_{५}$	२२,००,०००	–१३०
१७ एन जी सी २४१९	मिथुन	—	—	–१०५

परिशिष्ट – २

ख्यातनाम अन्य विश्वजूथ

विश्वजूथ या विश्वमेघ	दृश्य वर्ग	अंतर लाख प्रकाशवर्ष
१. कन्या	१२.५	३३०
२. खगाश्व	१५.५	१,०००
३. मीन	१५.४	१,४००
४. कर्क	१६.०	१,४००
५. ययाति	१६.४	१,५००
६. केश	१७.०	२,४००
७. सप्तर्षि – १	१८.०	५,०००
८. सिंह	१९.०	६,५००
९. किरीट	१९.०	७,०००
१०. मिथुन	१९.५	७,५००
११. भूतेश	२१.०	१३,०००
१२. सप्तर्षि – २	२१.०	१४,०००

परिशिष्ट - ३

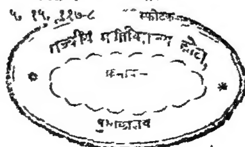
आकाशदर्शन - मासवार

समय → तारीख ↓		७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
जनवरी	१	दि	–	ज	–	फ	–	मा	–	अ	–	म
	१६	–	ज	–	फ	–	मा	–	अ	–	म	–
फरवरी	१	ज	–	फ	–	मा	–	अ	–	म	–	जू
	१५	–	फ	–	मा	–	अ	–	म	–	जू	–
मार्च	१	फ	–	मा	–	अ	–	म	–	जू	–	जु
	१६	–	मा	–	अ	–	म	–	जू	–	जु	–
अप्रैल	१	मा	–	अ	–	म	–	जू	–	जु	–	अग
	१६	–	अ	–	म	–	जू	–	जु	–	अग	–
मई	१	अ	–	म	–	जू	–	जु	–	अग	–	सि
	१६	–	म	–	जू	–	जु	–	अग	–	सि	–
जून	१	म	–	जू	–	जु	–	अग	–	सि	–	अक
	१६	–	जू	–	जु	–	अग	–	सि	–	अक	–
जुलै	१	जू	–	जु	–	अग	–	सि	–	अक	–	न
	१६	–	जु	–	अग	–	सि	–	अक	–	न	–
अगस्त	१	जु	–	अग	–	सि	–	अक	–	न	–	दि
	१६	–	अग	–	सि	–	अक	–	न	–	दि	–
सितबर	१	अग	–	सि	–	अक	–	न	–	दि	–	ज
	१६	–	सि	–	अक	–	न	–	दि	–	ज	–
अकतूबर	१	सि	–	अक	–	न	–	दि	–	ज	–	फ
	१६	–	अक	–	न	–	दि	–	ज	–	फ	–
नवंबर	१	अक	–	न	–	दि	–	ज	–	फ	–	मा
	१६	–	न	–	दि	–	ज	–	फ	–	मा	–
दिसबर	१	न	–	दि	–	ज	–	फ	–	मा	–	अ
	१६	–	दि	–	ज	–	फ	–	मा	–	अ	–

पारिभाषिक शब्द

अधिक्रमण	Transit over the sun's disc
अनस्त	Circumpolar (star)
अनुदित	Southern circumpolar (star)
अयनचलन	Precession of equinoxes
इनांतर	Elongation
उत्सर्जनशील	Emmissive
कथित त्रिज्या	Apparent radius
एन जी सी	New General Catalogue
कला	Minute of an arc
क्ष किरणें	X Rays
गुरुमेघ (मेगेलन)	Great Megallan Cloud
ताराविश्व	Galaxy
निज गति (तारेकी)	Proper motion of a star
परिहार प्रदेश	Empty region
ग्रामंडल (मंदाकिनी विश्व)	Hallo of the Milky Way Galaxy
भोग	Longitude
मे	Messier
रक्त विचलन	Red Shift
रवि परम मंदफल	Maximum equation of the centre
रूपविकारी तारे	Variable stars
वर्णपट	Spectrum
वातीभवन	Sublimation
विकला	Second of an arc
विकिरण	Radiation
विभेदनक्षमता	Power of resolution
विश्वजूथ	Cluster of Galaxies
विश्वसमूह मेघ	Clouds of Clusters of Galaxies
शर	Latitude
शोषक	Absorptive
संपात	Equinox
होरावृत्त	Hour circle
क, ख, ग. . .	α. β. γ...
अ, ब, क. . .	A, B, C...
क नराश्व	α Centaurus
नराश्व क	Centaurus C.

विषय-सूची



'ज्ञान-गंगोत्री' — योजना पर कुछ अभिमत :

मुझे विश्वास है कि आधुनिक विश्वकी समग्र प्रतिभा के अनुरूप 'ज्ञान-गंगोत्री' अर्थोमें ग्रंथ-रूप विश्वविद्यालयके रूपमें विकसित होगी। यह एक सुखद संयोग है कि भी पुराणोंकी भाँति विशाल ब्रह्माण्ड दर्शनकी जिज्ञासासे प्रारंभ होती है, और इस प्रकार पौराणिक परंपरा और वर्तमान युगकी महत्त्वाकांक्षाओंके अनुरूप सिद्ध होती है।

काद

गुजरात और विशेषत दहानाके लोगोंमें 'ज्ञान-गंगोत्री' ज्ञानका आ बहुत हद तक सहायक होगी।

डा

ज्ञानगंगोत्रीके तीनों ग्रन्थोंको मैं देख गया हूँ। उनमें दी गयी जानक विद्वत्ताके बारेमें मेरे मन पर बहुत अच्छा असर पड़ा है। ये ग्रन्थ प्रमाण सियाके लिये वे अत्यंत उपयोगी साबित होंगे उसमें मुझे शंका नहीं है।

नायब प्रधानमंत्री मोरारजी

यह आवश्यक है कि साहित्य व ज्ञानका प्रसार प्रादेशिक भाषाओंके माध्यम से ही हो। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रंथमाला इस आवश्यकताकी पूर्ति में दूर तक सहयोगिनी होगी।

क. मा. मुंशी

मेरे जैसे श्रांतबुद्धिवालेको भी जिज्ञासाके नवरसायनसे नवयौवन देनेवाली पुस्तकें नई और युवा पीढ़ीको कितनी ताजगी देगी उसका खयाल करने पर 'ज्ञानगंगोत्री' ग्रन्थमालाका हम यथार्थ मूल्यांकन कर पाते हैं।

प्रज्ञाचक्षु पंडित सुखलालजी

विद्यार्थियों व सर्वसाधारणमें ज्ञान-प्रसारकी इस योजनाके लिए सरदार पटेल युनिवर्सिटी बधाईकी पात्र है। विश्वविद्यालय जैसी उच्च-शिक्षा-संस्थाओंके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं कि वे अपने कार्य-क्षेत्रको विश्वविद्यालय-क्षेत्र या छात्र-जगत तक ही मर्यादित रखें। उनका प्रभाव तो पूरे समाज तक व्याप्त होना चाहिये और उसके मांगल्यमें उनका योगदान होना चाहिए। इस उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए ज्ञान-गंगोत्रीकी यह योजना वांछित दिशामें एक सही पदन्यास है।

उमाशंकर जोशी
उपकुलपति
गुजरात युनिवर्सिटी